ISO 9001: 2015

ISSN 2320-9976
Reference Resource Journal

केरल ज्योति

विशेषांक

2025

केरल हिंदी प्रचार सभा

केरल ज्योति विशेषांक 2025

दीक्षांत समारोह में
केरल के राज्यपाल माननीय
श्री.राजेन्द्र अरलेकर
उद्घाटन भाषण कर रहे हैं।

राज्यस्तरीय हिन्दी पखवाड़ा समारोह का उद्घाटन
श्री.वी.मुरलीधरन
(पूर्व विदेशकार्य राज्यमंत्री, भारत सरकार)
कर रहे हैं।

'श्रीनारायण गुरु चरित महाकाव्य' पुस्तक प्रकाशन

केरल विशेषांक (USM पत्रिका) का प्रकाशन

येनपक कथा - पुस्तक प्रकाशन

केरलज्योति

केरल हिंदी प्रचार सभा की मुख पत्रिका

(केंद्रीय हिंदी निदेशालय की वित्तीय सहायता से प्रकाशित)

केरल हिंदी प्रचार सभा के संस्थापक

स्व. के वासुदेवन पिल्लै

पूर्व समीक्षा समिति

प्रो (डॉ) एन रवींद्रनाथ
डॉ के एम मालती
प्रो(डॉ) आर जयचन्द्रन
प्रो (डॉ) जयश्री एस आर

परामर्श मंडल

डॉ तंकमणि अम्मा एस
डॉ लता पी
डॉ रामचन्द्रन नायर जे

प्रबन्ध संपादक

गोपकुमार एस (अध्यक्ष)

मुख्य संपादक

डॉ. एम एस विनयचंद्रन

संपादक

डॉ. रंजीत रविशैलम

संपादकीय मंडल

अधिवक्ता मधु बी (मंत्री)
सदानन्दन जी
मुरलीधरन पी पी
प्रो रमणी वी एन
चन्द्रिका कुमारी एस
एल्सी सामुवल
आनन्द कुमार आर एल
प्रभन जे एस
डॉ नेलसन डी

प्रकाशन संयोजिका

अर्चना एस

सूचना : लेखकों द्वारा प्रकट किये गये मत उनके अपने हैं। उनसे संपादक का सहमत होना आवश्यक नहीं।

अनुक्रमणिका

संपादकीय	3
संदेश	4
पत्र-पत्रिकाएँ साहित्य की विधाओं की जन्मदात्री हैं.. **अधिवक्ता (डॉ) बी मधु**	10
गाँधी-विचार एवं कार्य : एक दृष्टि-**डॉ.रवीन्द्र कुमार (पद्मश्री से सम्मानित)**	11
निधि का बरतन (लघुकथा) - **डॉ.जी.गोपीनाथन**	14
सांस्कृतिक परिदृश्य कुँवर नारायण के रचना संसार में -**प्रो. टी. के. प्रभाकरन**	15
किसी तीर्थ से कम नहीं होता था डॉ.रमानाथ त्रिपाठी जी का सान्निध्य - **सीताराम गुप्ता**	19
अनोखी ख्वाहिश (कविता) - **डॉ.बाबू.जे**	20
दर ए बुतख़ाना बंद है औरतों की समस्याओं के पेशे नज़र **- प्रो (डॉ) मनु**	21
प्रेमचंद का 'चिमटा'-**डॉ.प्रभाकरन हेब्बार इल्लत**	25
हिंदी उपन्यासों में भारतीय समाज की दृष्टि और किन्नर समुदाय का जीवन संघर्ष - **डॉ.नवनाथ गडेकर**	29
केरल हिंदी प्रचार सभा और हिंदी (कविता) - **डॉ.जे.रामचन्द्रन नायर**	34
जापानी छात्रों की क्रूर-कथा बकौल शिंतारो इशिहारा के उपन्यास-**डॉ. मुन्नी चौधरी**	35
ममता कालिया की 'प्रेम कहानी': बदलते सामाजिक परिदृश्य में प्रेम का द्वंद्व - **डॉ श्रीजा.बी.आर**	40
धार्मिक एकता की गूँज आधुनिक हिंदी उपन्यासों के परिप्रेक्ष्य में - एक अनुशीलन : **डॉ. गोपकुमार जी**	42
प्रकृति की कोमलता और मानवीय प्रवृत्ति को दर्शाती मुनि क्षमासागर की कविताएँ - **डॉ. भरत**	45
हाइकु - **डॉ.रंजीत रविशैलम**	47
कमलेश्वर की कहानियों में आधुनिक नारी - **डॉ.षेर्लिन**	48
आलोचना का नया द्वार खोलता काव्य-कोशः छायावादी काव्य-कोश - **डॉ. महेद्र प्रसाद कुशवाहा**	50
बुरी नज़र (लघुकथा) - **डॉ.जी.गोपीनाथन**	52
भारतीय ज्ञान सम्पदा के आलोक में हिन्दी जैन साहित्य - **श्री.घनश्याम कुमार/डॉ. धर्मेन्द्र प्रताप सिंह**	53
समकालीन हिंदी कविताःअवधारणा एवं जन सरोकार - **ब्रजेश कुमार चौधरी**	56
भैरव का ताड़ (लघुकथा)-**डॉ.जी.गोपीनाथन**	59
भूमंडलीकरण और हिंदी सिनेमा का प्रभाव - **प्रोफ(डॉ) मंजू ए**	60
छत्तीसगढ़ के दुर्ग-राजनांदगाँव उच्चभूमि में जनजातियों के साक्षरता स्तर में गत्यात्मक परिवर्तन प्रतिरूप (1991-2011)-**डॉ. खेमचंद एवं डॉ. मधु**	62
'छिन्नमस्ता' की सांस्कृतिक बहुस्वरता - **नीरदा मरिया कुरियन**	65
ईश्वर से एक प्रार्थना, एक पुरानी कविता (कविता) - **रघुवीर शर्मा**	67
'वे वहाँ कैद है' उपन्यास में अभिव्यक्त धर्मनिरपेक्षता की प्रतिरोधी संस्कृति - **डॉ सिन्धु ए**	68

मुखचित्र : केरल हिंदी प्रचार सभा

अस्तित्व की तलाश के आइने में 'कुलभूषण का नाम दर्ज कीजिए' उपन्यास - **मिनी.एन** 72

वैवाहिक संबंधों का विघटन सन्दर्भ - मन्नू भण्डारी के उपन्यास - **ममता देवी** 74

असम का लोकप्रिय त्यौहार "बिहू" - **डॉ. संगीता कुमारी पासी/डॉ. माधुर्य पेगु** 76

अपनी बात (कविता)-**प्रो(डॉ)उमाकुमारी.जे** 78

अशोक कुमार 'आस' का काव्य "रिश्ते एहसास के": विभिन्न आयाम -**इंदु रानी/डॉ. विनोद कुमार** 79

बुलेटिन (लघु कविता)-**कुरीप्पुषा श्रीकुमार** - अनुवादक- **डॉ.एम.एस.विनयचन्द्रन** 81

अल्मा कबूतरी-स्त्री संघर्ष की एक अलग कहानी- **अंजु.ई.एम** 82

अस्तित्ववाद और इक्कीसवीं सदी के हिन्दी नाटकों में वृद्ध विर्मश - **प्रियानाथ कुमार** 84

होमो सैपियंस(कविता) - **रघुवीर शर्मा** 87

डॉ. अंबेडकर - दलित साहित्य की प्रेरणा और ऊर्जा- **प्रो. डॉ. सुनील एम.पाटिल** 88

कमर मेवाड़ी की कहानियों में आधुनिक युगबोध - **रजाक शाह कादरी** 91

हिन्दी साहित्य के विकास में प्रवासी साहित्यकारों का योगदान - **डॉ.सुधा टी** 94

उदारीकरण के दौर में महिलाओं की बदलती भूमिका : भारत के संदर्भ में **डॉ. महेंद्र कुमार** 96

मंजूर एहतेशाम के कथा-साहित्य में राजनीतिक चेतनाः मध्यवर्ग के संदर्भ में - **डॉ.शमीम पी** 99

आधुनिकता, विडम्बना और भूखः'भूख आग है' की आलोचनात्मक पड़ताल - **डॉ.अनूपा कृष्णन** 102

कविता - **डॉ.देवेन्द्र कुमार धोदावत** 104

गणित (कहानी**)** - **महेश के बजाज** 105

प्राकृतिक संसाधनों का बाजारीकरण 'ठंडे पानी की मशीन' कविता के संदर्भ में - **डॉ.मिनि ए आर** 106

'तम्बू' (कविता) - **कमलादास (माधविकुट्टि)** 107
अनुवादक : **डॉ. एम.एस.विनयचन्द्रन**

हिंदी में अनूदित तेलुगु कहानियों का संवेदनात्मक पक्षः एक समीक्षा - **राथौड पुंडलीक** 108

आजमाइश (कविता) - **कैसरबेन राजपुरोहित** 111

अरुंधति रॉय की 'द गॉड ऑफ स्मॉल थिंग्स' (1997)और किरण देसाई की इनहेरिटेंस ऑफ लॉस' (2006) में पर्यावरण -आलोचना-**डॉ.रिंकू भाटिया एवं डॉ.पायल भाटिया** 112

मुखौटा (कविता) - **रेवति एस** 114

मंजुल भगत की कहानियों में स्त्री-परिप्रेक्ष्य - **डॉ.जीना मेरी जोस** 115

मीराकांत के नाटकों में स्त्री आत्मसंघर्ष - **परमिन्द्रजीत कौर / डॉ. विनोद कुमार** 117

मेरी कविता (कविता)-**रघुवीर शर्मा** 120

अंग्रेज़ी शासन के खिलाफ पहला विद्रोह 'आनंदमठ'- **डॉ माजिदा एम** 121

घरौंदे (कविता) - **योगेन्द्रकुमार** 123

उच्च प्राथमिक स्तर पर हिंदी विषय शिक्षण में शिक्षण सहायक सामग्री के उपयोग के प्रति अध्यापकों के प्रत्यक्षण का अध्ययन - **वर्तिका चौबे एवं डॉ.चंद्रशेखर पाण्डेय** 124

भाषा कौशलः रूपांतर प्राप्त करने की प्रभावी कुँजी- **लेफ्टिनेंट मेधा तड़वी और प्रो.दीप्ति ओझा** 130

कवि का मन (कविता)-**अमर बानियाँ 'लोहोरों'** 132

लोकतंत्र के चौथे स्तम्भ का बदलता स्वरूपःसमकालीन हिंदी कहानी के विशेष संदर्भ में -**डॉ.अंजली जोसफ** 133

नियति (कविता) - **परवूर सोमनाथन** 136

सुशीला टाकभौरे की कहानी 'सिलिया' में दलित नारी अस्मिता - **अखितामोल.एम.ए** 137

छठ्वाँ तत्व (कविता) - **रघुवीर शर्मा** 138

सुमित्रानंदन पंत जी के काव्य में प्रकृति-लघु परिचय- **डॉ.शालिनी सी** 139

पहनूँ क्यों पायल मैं? (मलयालम फिल्मी गीत) **:** मुल कविः**ओ.एन.वी.कुरुप, के जनार्दनन नायर-**अनुवादक 140

कृषक जीवन की कालातीत समस्याएँः विवेकी राय की कहानियों में - **डॉ जूलिया इमैनुएल** 141

काली आपने ही बनाए है हमें (कविता)- **दिव्या राणी के एस** 144

युद्ध उन्माद की ग्लोबल चुनौतियों का दस्तावेज़ : डॉ.अजय शर्मा कृत 'खारकीव के खंडहर'**-पूजा देवी/डॉ सपना शर्मा** 145

दलित-स्त्री विमर्श और कौशल पंवार ('जोहड़ी' कहानी संग्रह के संदर्भ में)-**डॉ.गोपाल जीनगर** 148

जीवन - सत्य **(**कविता**) -योगेन्द्रकुमार** 151

शोषण की दास्तान : 'राजा, जंगल और काला चांद' में - **डॉ.श्रीकला एस.आर** 152

इक्कीसवीं सदी की हिंदी कविताओं में चित्रित स्त्री चेतना (निर्मला पुतुल की कविताओं के विशेष संदर्भ में) **-परवीज़ पाशा.एस/डॉ. प्रभुसेन** 154

'पिंजर' और 'गुजरात पाकिस्तान से गुजरात हिंदुस्तान' में अभिव्यक्त विस्थापन की विभीषिकाएँ- **एम आर गोपिका** 156

हिंदी (कविता) **प्रो.(डॉ.) मनु** 158

चैन की बंसी (कविता) : **डॉ.रंजीत रविशैलम** 158

मेरे आँगन का छतनार पेड़ (कविता) - **प्रो हिल्डा जोसफ** 159

उच्चतर माध्यमिक स्तर पर वाणिज्य संगठन और प्रबंधन सिखाने के लिए मिश्रित शिक्षण रणनीति की प्रभावशीलता - **जसवंतसिंह हरमनसिंह सोलंकी/डॉ.जयश्री दास** 160

दूरभाष : 0471-2321378, 2329200, 2329459
फैक्स : 0471-2329459
मोबाईल : संपादक : 7898515222/ 9447657301
khpsabha12@gmail.com
www.keralahindipracharsabha.in

केरलज्योति
सांस्कृतिक जागरण की मासिक पत्रिका
विशेषांक 2025

संपादकीय

चहुँ ओर हिंदी का पंरचम लहराए

अनेक शोधों से यह निष्कर्ष निकाला गया है कि आजकल अंग्रेज़ी की तुलना में हिंदी भाषा का प्रयोग युवा-रचनाकार एवं अन्य विषयों के ज्ञाता खूब करने लगे हैं। हिंदी के महान भविष्य को केंद्र में रखकर केरल हिंदी प्रचार सभा विगत नब्बे वर्षों से हिंदी भाषा व साहित्य के प्रचार-प्रसार में माँ सरस्वती की मार्तंड वल्लभा बनी हुई है, साथ में विद्यावयसनियों के लिए राजवल्लभ का काम भी कर रही है। राष्ट्रीय हिंदी दिवस और विश्व हिंदी दिवस दोनों को बड़े ही भव्य तरीके से सभा मनाती आ रही है और इस वर्ष में भी समुचित रूप से मनाते आ रही थी। लेकिन इस बीच में सभा की मुख पत्रिका 'केरल ज्योति' के सर्वेसर्वा मुख्यसंपादक-विख्यात् साहित्यविद् प्रो.डी.तंकप्पन नायर जी की अपने तिरानबे वर्ष की अवस्था में देवलोक प्राप्ति हुई। इसलिए हिंदी पखवाड़ा समारोह में एक प्रकार की प्रमाद की स्थिति उत्पन्न हुई। क्योंकि सारे हिंदी प्रेमी सेवी संतप्त थे। केरल ज्योति के प्रमार्जन में प्रोफेसर डी.तंकप्पन नायर सर का बहुत बड़ा योगदान रहा था। 'केरल ज्योति' पत्रिका आपके प्राण थी या यों कहें कि 'केरल ज्योति' पत्रिका के आप प्राण थे।

हिंदी प्रचार सभा के कार्यकलापों में सालाना 'विशेषांक' निकालने की प्रथा भी है। इसलिए संपादक मण्डल ने यह निर्णय लिया कि 'हिंदी दिवस' के उपलक्ष्य में एक विशेषांक निकाला जाय। आजकल डिजिटल का ज़माना है, अतः इसे हमें डिजिटल प्लैटफार्म पर भी प्रकाशित करेंगे। कंप्यूटर और इंटरनेट पर आधारित डिजिटल क्रांति ने अर्थव्यवस्था, राजनीति और समाज तीनों को प्रभावित किया है। हिंदी की प्रायः सभी साहित्यिक गतिविधियाँ डिजिटल मंच पर आ गईं। लेकिन सभा ने अधिकतर विश्वविद्यालयों, महाविद्यालयों, विद्यालयों, बैंकों तथा अन्य पी एस यू से मिलकर 'लाइव' कार्यक्रम चलाने में सफल बनीं।

केरल राज्य में हिंदी के प्रति प्यार असीम है। किसी प्रकाशक ने कहा था कि हिंदी के अनुसंधानात्मक ग्रंथ सबसे ज़्यादा यहीं केरल से प्रकाशित होते हैं। अतः यहाँ हिंदी के प्रति एक ललक सदा ही रही है। केरल हिंदी प्रचार सभा का उद्देश्य सदा ही हिंदी का प्रचार प्रसार कर उसका परिन्यास करना रहा है। आर्थिक कठिनाई बीच-बीच में 'परिपंथ' बन जाती है लेकिन उसे पार कर सेवा-निष्ठा व लगन से सभा के कार्यकलाप अनवरत चलता रहा है। बच्चों को विद्वान बनाने से उपरि उन्हें 'विद्यावान' बनाना हमारा ध्येय रहा है। क्योंकि 'प्रेक्टिकल' जीवन में हिंदी का यथार्थ नौकरी पाने व आजीविका अर्जित करने से है। इसलिए बच्चों में भाषाई निपुणता लाना आवश्यक है। हिंदी के अध्यापक-प्राध्यापक, अनुवादक, दुभाषिया, राजभाषा अधिकारी, टंकक, आशुलिपिक आदि 'अन्न प्रदायिनी' आजीविका मार्ग हिंदी के राजपथ को शोभायमान बनाते हैं। केरल हिंदी प्रचार सभी उस मार्ग को दर्शाकर बच्चों को एक साथ अच्छे व्यक्तित्व के धनी एवं राष्ट्रोपयोगी नागरिक बनाने में प्रणबद्ध हैं। इसलिए हिंदी पखवाड़ा के दौरान बच्चों की प्रतियोगिताएँ आयोजित करते हैं और उन्हें प्रोत्साहित करते हैं। व्याकरण आदि पर भाषाविद् आजकल कम ध्यान देते हैं। लेकिन सभा की पाठ्यचर्या व्याकरण सम्मत हमेशा रही है। 'व्याकरण' ज्ञान के बिना भाषा में निष्णात बनना कठिन है। अतः 'व्याकरण' - अध्ययन पर हमारा ध्यान सदैव रहना चाहिए।

इस विशेषांक में हमने विषयों का विस्तार देने का निर्णय लिया है। इसलिए ही शिक्षा, इतिहास, भाषाविज्ञान, साहित्य, प्रचार, कविता, लघुकथा, उपन्यास, तुलना आदि पर विशद एवं प्रौढ़ लेखों को इसमें सम्मिलित किया गया है। पाठक इसे अवश्य पढ़ें और लाभ उठाएँ। समूचे भारतवर्ष के वरिष्ठ एवं कनिष्ठ रचनाकार इस विशेषांक के हिस्से बन रहे हैं। दसों दिशाओं के लेखक एवं शोधार्थी गण पत्रिका के विशेषांक का हिस्सा बनना आम बात नहीं है। वैसे एक सेतु के रूप में भारतवर्ष एवं भारतमाता की वरदपुत्री 'केरल ज्योति' कार्यरत है।

नयी व्यवस्था, नवीन संस्कृति धीरे-धीरे मँजती और परिष्कृत होती जाती है। लेकिन केरल हिंदी प्रचार सभा एवं 'केरल ज्योति' अपनी संस्कृति को अक्षुण्ण बनाए रखने में, उभरती नवीन संस्कृति को अपनाते हुए, सफल सिद्ध हुई हैं। गुणी पाठकों-सेवियों के कारण ही हम ऐसा कर पाते हैं। सुधी पाठकों को नव वर्ष 2026 में समूचे केरल ज्योति परिवार की ढेर सारी शुभकामनाएँ।

डॉ एम एस विनयचंद्रन
डॉ रंजीत रविशैलम

ले. जनरल के.टी. पारनाईक
पीवीएसएम, यूवाईएसएम, वाईएसएम (से.नि.)
राज्यपाल, अरुणाचल प्रदेश

सत्यमेव जयते

राजभवन
ईटानगर - 791111

संदेश

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हो रही है कि केरल हिन्दी प्रचार सभा अपनी 90वीं वर्षगांठ के उपलक्ष्य में विशेष कार्यक्रम का आयोजन तथा राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रचार-प्रसार हेतु अपनी मासिक पत्रिका **'केरल ज्योति'** प्रकाशित करने जा रहा है।

हिन्दी भाषा भारत की राष्ट्रभाषा है, इसे भारतीय संविधान में राजभाषा के रूप में स्वीकृति प्राप्त है। हिन्दी एक ऐसी भाषा है जो भारत के सभी नागरिकों द्वारा बोली और समझी जाती है। यह अन्य भाषाओं की अपेक्षा सबसे सरल, सुगम, सहज और सुस्पष्ट तो है ही, व्याकरण की दृष्टि से भी एक समृद्ध भाषा है। इसमें शब्दों की विविधता का एक विशाल भंडार है। यह सभी भाषाओं को आत्मसात कर आगे बढ़ रही है। भारतीय संस्कृति के संरक्षक, संवर्धन और संवाहक के रूप में भी हिन्दी भाषा का एक महत्वपूर्ण स्थान है।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि यह मासिक पत्रिका हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार के साथ पाठकों के जिज्ञासावर्द्धन का भी महत्वपूर्ण साधक बनेगी।

हिन्दी पखवाड़ा के गरिमामय आयोजन तथा पत्रिका के सफल प्रकाशन की कामना करते हुए संपादक मंडल तथा केरल हिन्दी प्रचार सभा के सभी सदस्यों को मेरी ओर से हार्दिक बधाई एवं शुभकामनायें।

पारनाईक

लेफ्टिनेंट जनरल के.टी. पारनाईक
पी.वी.एस.एम.,यू.वाई.एस.एम.,वाई.एस.एम.(से.नि.)

धर्मेन्द्र प्रधान
ಧರ್ಮೇಂದ್ರ ಪ್ರಧಾನ
Dharmendra Pradhan

सत्यमेव जयते

आज़ादी का अमृत महोत्सव

शिक्षा मंत्री
भारत सरकार
Minister of Education
Government of India

संदेश

मुझे यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता हुई कि भारत सरकार की राजभाषा नीति के कार्यान्वयन के लिए उत्साहवर्धक वातावरण बनाने के लक्ष्य के साथ **केरल हिंदी प्रचार सभा** द्वारा राज्य स्तर पर विगत कई वर्षों से हिंदी पखवाड़ा समारोह धूमधाम से आयोजित किया जा रहा है। संस्थान द्वारा नवंबर, 2025 में राजभाषा नीति के कार्यान्वयन से संबंधित योगदानों और उपलब्धियों पर आधारित हिंदी मासिक पत्रिका 'केरल ज्योति' का विशेषांक भी प्रकाशित किया जा रहा है।

राजभाषा के रूप में हिंदी, न केवल सरकारी कामकाज को सुविधाजनक बनाती है बल्कि राष्ट्रीय एकता और भारत की विविध संस्कृतियों को जोड़ने वाले एक सेतु का भी कार्य करती है। यह राजभाषा शैक्षिक, प्रशासनिक, व्यावसायिक और अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्रों में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। राजभाषा के रूप में हिंदी के इन वृहद् उद्देश्यों और भारतीय संविधान के मूल्यों के अनुरूप केरल हिंदी प्रचार सभा द्वारा संपूर्ण केरल राज्य में राजभाषा हिंदी के प्रचार- प्रसार के लिए किए जा रहे प्रयास सराहनीय हैं। मुझे इस बात की भी खुशी है कि केरल हिंदी प्रचार सभा द्वारा अपनी 90वीं वर्षगांठ के उपलक्ष्य में इस वर्ष विशेष आयोजन किया जाएगा। केरल की जनता में हिंदी के प्रति आकर्षण, अध्ययन-अध्यापन तथा लेखन के क्षेत्र में हो रही निरंतर प्रगति इस संस्था के योगदानों का प्रमाण है।

मैं इस अवसर पर केरल हिंदी प्रचार सभा की 90वीं वर्षगांठ की बधाई देता हूँ और पत्रिका 'केरल ज्योति' के विशेषांक के सुरुचिपूर्ण प्रकाशन हेतु हार्दिक शुभकामनाएँ प्रेषित करता हूँ।

(धर्मेन्द्र प्रधान)

सबको शिक्षा, अच्छी शिक्षा

MOE - Room No. 301, 'C' Wing, 3rd Floor, Shastri Bhavan, New Delhi-110 001, Phone : 91-11-23782387, Fax : 91-11-23382365
E-mail : minister.sm@gov.in

नितिन गडकरी
NITIN GADKARI

सत्यमेव जयते

मंत्री
सड़क परिवहन एवं राजमार्ग
भारत सरकार
Minister
Road Transport and Highways
Government of India

शुभकामना संदेश

यह अत्यंत हर्ष का विषय है कि तिरूवनंतपुरम स्थित **केरल हिंदी प्रचार सभा** केरल में जनमानस हेतु विगत 90 वर्षों से हिंदी के प्रचार-प्रसार के साथ-साथ हिंदी अध्ययन, अध्यापन तथा लेखन के क्षेत्र में निरंतर महत्वपूर्ण योगदान दे रही है। साथ ही, संघ सरकार की राजभाषा नीति के कार्यान्वयन के लिए उत्साहवर्धक वातावरण बनाने हेतु राज्य स्तर पर सभा का हिंदी पखवाड़ा का आयोजन संबंधी प्रयास अत्यंत सराहनीय एवं प्रेरक है।

केरल हिंदी प्रचार सभा की 90वीं वर्षगांठ पर हार्दिक शुभकामनाएं एवं सभा की हिंदी मासिक पत्रिका **"केरल ज्योति"** के आगामी विशेषांक के सफल प्रकाशन हेतु मेरी ओर से मंगलकामनाएं।

शुभकामनाओं सहित,

(नितिन गडकरी)

नई दिल्ली,
13 अक्टूबर, 2025.

Room No. 501, Transport Bhawan, 1, Sansad Marg, New Delhi – 110 001, Tel.: 011-23710121, 23711252 (O), 23719023 (F)
E-mail: nitin.gadkari@nic.in; website-www.morth.nic.in

सर्बानंद सोणोवाल
SARBANANDA SONOWAL

सत्यमेव जयते

पत्तन, पोत परिवहन और जलमार्ग मंत्री
भारत सरकार
Minister of Ports, Shipping and Waterways
Government of India

संदेश

आपकी संस्था, केरल हिंदी प्रचार सभा का पत्र इस मंत्रालय में प्राप्त हुआ है। अत्यंत हर्ष का विषय है कि आपकी संस्था केरल जैसे गैर हिन्दी भाषी राज्य में मनोयोग से हिंदी के प्रचार- प्रसार का पावन कार्य कर रही है।

यह जानकार भी अत्यंत प्रसन्नता हुई कि आपकी संस्था द्वारा हिंदी को समर्पित 'केरल ज्योति' पत्रिका का भी प्रकाशन किया जा रहा है और इसका विशेषांक नवंबर, 2025 में प्रकाशित होगा। आपकी संस्था द्वारा हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए किए जा रहे प्रयास अत्यंत सराहनीय हैं जो एक तरह से भारत सरकार द्वारा हिंदी के प्रचार-प्रसार में किए जा रहे प्रयासों में बहुमूल्य योगदान है।

आशा है कि आपके इन प्रयासों से केरल राज्य में लोग हिंदी में काम करने के लिए प्रेरित और प्रोत्साहित होंगे। आपकी मासिक पत्रिका 'केरल ज्योति' के विशेषांक के अवसर पर मेरी अनंत शुभकामनाएं।

(सर्बानंद सोणोवाल)

SAGARMALA
PORT-LED PROSPERITY

Room No. 201, Transport Bhawan, 1, Sansad Marg, New Delhi-110001
Ph. : 011-23717422, 23717423, 23717424, Fax : 011-23356709
E-mail : minister-shipping@gov.in | Website : www.shipmin.gov.in

स्वच्छ भारत
एक कदम स्वच्छता की ओर

रामदास आठवले
RAMDAS ATHAWALE

सामाजिक न्याय और अधिकारिता राज्य मंत्री
भारत सरकार
MINISTER OF STATE FOR
SOCIAL JUSTICE & EMPOWERMENT
GOVERNMENT OF INDIA

शुभकामना संदेश

मुझे यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता हुई है कुछ वर्षों से केरल हिन्दी प्रचार सभा केरल में स्थित केन्द्र सरकारी कार्यालयों, उपक्रमों, कॉलेज और राष्ट्रीयकृत बैंकों के सक्रिय सहयोग से राज्य स्तर पर हिन्दी पखवाड़ा समारोह आयोजित करती आ रही है। संघ सरकार की राजभाषा नीति के कार्यान्वयन के लिए उत्साहवर्धक वातावरण बनाना इस आयोजन का लक्ष्य रहता है ।

वर्ष 2025 का हिन्दी दिवस पखवाड़ा समारोह को धूमधाम से मनाने के लिए विविध कार्यक्रम आयोजित कर रहे हैं। इनमें हिन्दी दिवस समारोह, भारतीय भाषा कवि सम्मेलन, संगोष्ठियों कॉलेज के बच्चों के लिए प्रतियोगिताएँ, केंद्र सरकार के कार्यालयों, बैंकों, उपक्रमों और कंपनियों के कर्मचारियों के लिए प्रतियोगिताएँ, और केरल हिन्दी प्रचार सभा की 90वीं वर्षगांठ के उपलक्ष्य में कुछ विशेष आयोजन करने पर मैं संस्था द्वारा किये जाने वाले कार्यक्रम के सफलता के लिये अपनी शुभकामना देता हूँ तथा कार्यक्रम के सफल होने की कामना करता हूँ।

शुभकामनाओं सहित।

आपका,

(रामदास आठवले)

अधिवक्ता डॉ. मधु. बी
केरल हिन्दी प्रचार सभा
पी.ओ. थायकौड, वज़ुथाकौड,
तिरुवनंतपुरम - 695014

तटरक्षक स्टेशन कमांडर का संदेश

सबसे पहले में कमांडेंट श्रीकुमार, स्टेशन कमांडर भारतीय तटरक्षक अवस्थान विज़िंजम, मेरी और सारे भारतीय तटरक्षक बल और परिवार की और से केरल हिंदी प्रचार सभा को और इस महान संगठन में सेवा करनेवाले सभी कनिष्ट वरिष्ठ अधिकारी दल एवं कर्मचारी को हिंदी दिवस २०२४ का बड़ाई देता हू।

हम सब यह मानते हैं कि हिंदी भारत की राष्ट्रीय भाषा है और इसे देश भर में बढ़ावा देना आवश्यक है। केरल हिंदी प्रचार सभा हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार के लिए प्रतिबद्ध है। राजभाषा हिंदी का प्रगति एवं उसका प्रचार के लिए आप सब कड़ी मेहनत कर रहे है और उसका नतीजा है जो क्षेत्र में तेजी से राजभाषा का लोकप्रियता और नाम बढ़ चूका है। हम सब यह भी जानते है की आपका योगदान सिर्फ साल में एक दिन या पखौड़ा का नहीं है बल्कि रोज का कड़ी यत्न और योजना का व्यवहार से जुड़ा है।

यह जानकर ख़ुशी और गर्व हो रहे है की केरल में, हिंदी भाषा को लोकप्रिय बनाने और इसके महत्व को समझाने के लिए केरल हिंदी प्रचार सभा विभिन्न गतिविधियों का आयोजन करते हैं और हिंदी भाषा के शिक्षण, साहित्य, और संस्कृति को बढ़ावा देने के लिए समर्पित हैं। आज हम सभी मिलकर हिंदी भाषा के महत्व और उसकी समृद्धि को सराहें।

हिंदी हमारी राष्ट्रीय भाषा की रूप में हमारे देश की संस्कृति और विरासत को जोड़ती है। आइए, हम सभी हिंदी का प्रयोग करें और इसे दुनिया भर में फैलाने का प्रयास करें।

आप सबको भारतीय तटरक्षक सेना का एक बार फिर से हिंदी दिवस की हार्दिक शुभकामनाएं! आइए, हम सभी मिलकर हिंदी भाषा को और अधिक लोकप्रिय बनाएं और भारत की सांस्कृतिक विरासत को संरक्षित करें।

सभा की हिंदी मासिक पत्रिका " केरल ज्योति " का नवम्बर २०२४ का इस संस्करण को भी शुभकामनाएं देते हुए

जय हिंदी! जय हिंद !!

कमांडेंट श्रीकुमार जी
स्टेशन कमांडर

पत्र-पत्रिकाएँ साहित्य की विधाओं की जन्मदात्री हैं.....

अधिवक्ता (डॉ) बी मधु

जनवरी माह 2026 की नियमित पत्रिका के साथ अतिरिक्त विशेषांक के रूप में 'केरल ज्योति' का यह अंक सहृदय पाठकों को समर्पित करने में हमें अत्यधिक प्रसन्नता है। केरल हिंदी प्रचार सभा की मुख-मासिक-पत्रिका 'केरल ज्योति' केरल की हिंदी विषयक गतिविधियों को पूरे भारत में फैलाने में महती भूमिका निभा रही है।

राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ करने में, साहित्यिक अनुवाद के द्वारा भाषाई आदान-प्रदान को प्रोत्साहन देने में केरल ज्योति सदा जागरूक रहती है। भले ही सुधी पाठक जानते हैं कि 'सामान्य' से बहुत अलग है - साहित्यिक पत्रकारिता। दृढ़ संकल्प और सेवा-भाव ही इसके मूल में कार्यरत हैं। आजकल जीवन की विविधता और नूतन साधनों की प्रचुरता ने पत्रकारिता को बहुआयामी बना दिया है। साहित्य की रफ़्तार लघु पत्रिकाओं पर भी निर्भर है। 'केरल ज्योति' साहित्यिक-शोध लेखन की लघु पत्रिका है। यह एक साहित्यिक अभियान है।

केरल की हिंदी पत्रकारिता का इतिहास भी उल्लेखनीय है। इसकी ऐतिहासिक सृजन-यात्रा के पीछे संघर्ष का लंबा इतिहास है। केरल में हिंदी भाषा और साहित्य के प्रचार-प्रसार की प्रवृत्तियाँ सन् 1922 से चलती आई हैं। कई व्यक्तियों और संस्थाओं द्वारा निकाली गई पत्रिकाओं ने भी हिंदी के प्रचार-प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। शुरुआती दौर से ही सामाजिक जागरूकता तथा राष्ट्रीय चेतना को एक मिशन के रूप में स्वीकार करने को पत्रकार कटिबद्ध रहे। केरल की सर्वप्रथम हिंदी मासिक पत्रिका त्रिशूर से निकाली गई 'हिंदी मित्र' है। श्री जी नीलकंठन नायर प्रथम हिंदी पत्रकार रहे थे। पत्रिका केवल एक वर्ष तक (1941) निकली थी। इसके बाद कई पत्रिकाएँ निकाली गईं जो अल्पायु की रही थीं। सन् 1966 मार्च से 'केरल ज्योति' नियमित निकल रही है। सभा के संस्थापक स्व. के.वासुदेवन पिल्लै ने 1953 को 'राष्ट्रवाणी' नामक जिस पत्रिका का प्रकाशन किया था उसीका विकसित रूप है 'केरल ज्योति'।

यशस्वी अनुवादक एवं लेखक प्रो.डी.तंकप्पन नायर (मुख्य संपादक) की असामयिक मृत्यु 24 सितंबर को हुई। यह 'केरल ज्योति' परिवार केलिए 2025 वर्ष की अपूरणीय क्षति है। इसी संदर्भ में केरल ज्योति के पूर्व संपादकों का मैं स्मरण व नमन करता हूँ।

हिंदी पत्रकारिता के क्षेत्र में 'केरल ज्योति' को अपनी साठवीं सालगिरह पर पहुँच पाने में कुछ माह मात्र शेष है। सन् 2026 का वर्ष चमत्कार का वर्ष हो। सभा की अक्षर-नौका मस्ती से आगे बढ़ रही है। आप सहृदय पाठक आवश्यक सहयोग दें और अपने अक्षर प्रेम का परिचय देते रहे।

केरल में हिंदी के प्रचार को प्रगति प्रदान करना ही पत्रिका का मुख्य उद्देश्य रहा है। हिंदी अध्ययन, अध्यापन, अनुवाद, साहित्य एवं शोध संबन्धी विशिष्ठ सामग्रियाँ नियमित रूप से प्रकाशित की जा रही है।

यू.जी.सी केयर लिस्ट में मान्यता-प्राप्ति की अवधि के दौरान स्वीकृत की गई एवं बची गई लेखन-सामग्रियों से चयनित रचनाओं को इस विशेषांक में शामिल करने की हमारी योजना यहाँ साकार हो रही है। इस सारस्वत उद्यम को सफल बनाने में सहयोगी हिंदी प्रेमी बन्धुओं को तेहदिल से आभार भी प्रकट करते हैं।

हमें खेद के साथ कहना पड़ता है कि हिंदीतर प्रांत केरल से हिंदी मासिक पत्रिका का नियमित प्रकाशन सचमुच चुनौतीपूर्ण है। गैर व्यावसायिक होते हुए भी ज़रूरतमंद अनुदान प्राप्त नहीं। वर्तमान संदर्भ में साहित्यिक पत्रकारिता को नुकसान पहुँचाने का प्रयास जारी हो रहा है। डाक दरों में वृद्धि व कागज़ की कीमतों में वृद्धि करके प्रकाशकों पर गहरी चोट पहुँचाई गयी है। बुक पोस्ट एवं रजिस्टरी की सुविधा वगैरह को बंद किया गया। डाक-व्यय में भारी आर्थिक चोट पहुँचाने वाली नीति थोपी जा रही है। डाक व्यवस्था की पहले की सुविधाओं को बहाल करें और डाक दरों की वृद्धि में रियायत करें तो हितकर होगा।

शुभकामनाओं सहित,

मंत्री, केरल हिंदी प्रचार सभा

सुधी पाठकों को नववर्ष 2026 के पावन अवसर पर समूचे केरल हिंदी प्रचार सभा परिवार की शुभकामनाएँ

गाँधी-विचार एवं कार्य : एक दृष्टि

डॉ.रवीन्द्र कुमार (पद्मश्री से सम्मानित)

अनुभव और सत्य के बल पर किए गए प्रयोगों से विकसित गाँधीजी का जीवन बहुआयामी था। इस वास्तविकता से कोई मुँह नहीं मोड़ सकता। आर्थिक, राजनीतिक, शैक्षणिक, सामाजिक और सांस्कृतिक सहित जीवन के लगभग सभी क्षेत्रों में गाँधीजी के अपने विचार थे। इन क्षेत्रों में अपने विचारों के अधिकाधिक सम्भव अनुरूप ही उन्होंने कार्य भी किए। इसीलिए, मैं कहा करता हूँ कि गाँधीजी विश्वभर में, आजतक उपलब्ध मानव-इतिहास के उन कुछ एक लोगों (महान व्यक्तियों) में से एक थे, जिनके कहने और करने में यदि पूरी नहीं, तो लगभग पूरी एकरूपता अवश्य थी।

गाँधीजी को विश्वभर में एक राजनेता-राजनीतिज्ञ, एक समाजसुधारक एवं एक धर्मपरायण मानव महात्मा के रूप में स्वीकार किया जाता है। तो भी, राजनीतिक-सामाजिक और आर्थिक क्षेत्रों में गाँधीजी के विचार और कार्य आलोचना-समालोचना के विषय रहे हैं, तथा आजतक भी हैं। उनके सांस्कृतिक विचारों से स्वयं उनके जीवनकाल में उन्हीं के निकटतम साथियों-सहयोगियों सहित अनेक अन्य असहमत रहे, और वर्तमान में भी हैं। ऐसा होना स्वाभाविक है। वैचारिक मतभेद और कार्यपद्धति से असहमति होना कोई अस्वाभाविक स्थिति नहीं है। यह सदा से विद्यमान स्थिति है।

इतना ही नहीं, संसारभर में हजारों की सँख्या में गाँधीजी पर उन्हीं के जीवनकाल में और उनके निधनोपरान्त भी उनके जीवन, कार्यों तथा विचारों को केन्द्र में रखकर ग्रन्थ लिखे गए। उनपर शोध कार्य हुए, और अभी भी हो रहे हैं। इस सम्बन्ध में आज कदाचित् उनकी समानता करने वाला कोई अन्य सम्पूर्ण दक्षिण-दक्षिणपूर्वी एशिया में नहीं है। विश्वभर में अनेक विश्वविद्यालयों-उच्च शिक्षण संस्थानों में गाँधी-अध्ययन और शोध केन्द्र स्थापित हैं। इसके बाद भी शिक्षा-जगत उन्हें विधिवत विद्वान मानने को तैयार नहीं। हम सभी इस बात से परिचित हैं।

स्वयं भारत में गाँधीजी के राजनीतिक और सामाजिक विचारों, उनके सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक दृष्टिकोण तथा आर्थिक सोच की कइयों द्वारा आलोचना की गई तथा अभी भी की जाती है। उनके विचारों-कार्यों के अति तीव्र आलोचक आज भी हैं, जो विशेषकर उनके राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक विचारों पर, उनके आमजन केन्द्रित होने के बाद भी, प्रश्नचिह्न लगाते हैं। राजनीति को प्रत्येक स्थिति में नैतिकता से सम्बद्ध रखने के लिए गाँधीजी अपने राजनीतिक आलोचकों के निशाने पर रहे। आलोचक गाँधीजी की नैतिकता की स्वयं उन्हीं के द्वारा की गई परिभाषा से जाने-अनजाने विमुख रहे। गाँधी-विचार से साक्षात्कारकर्ता यह जानते है कि नैतिकता को संक्षेप में परिभाषित करते हुए हैं। महात्मा गाँधी ने कहा है, **"सच्ची नैतिकता लकीर का फकीर बनने में नहीं, अपितु अपने लिए उचित मार्ग खोजने और निडरतापूर्वक उसका अनुसरण करने में है"** (इपिक फास्ट, पृष्ठ 43) और उनके ये विचार राजनीति और नैतिकता-सम्बन्धी उनके विचारों में भी लागू होते हैं।

राजनीतिक क्षेत्र में अहिंसा की परिधि में ठहरते हुए उनके द्वारा की गईं जनकार्यवाहियाँ भी आलोचना का शिकार हुईं। आलोचकों ने नैतिकता और अहिंसा, दोनों, की मूल भावना तथा उनकी अन्तिम कसौटी से, जिसे स्वयं गाँधीजी ने भली-भाँति स्पष्ट किया, साक्षात्कार किए बिना ऐसा किया। आजतक भी ऐसा किया जाता है। महात्मा गाँधी ने अहिंसा की मूल भावना और कसौटी को मानवता के समक्ष रखा। संक्षेप में और सरल अर्थों में, प्राणिमात्र के प्रति सक्रिय सद्भावना अहिंसा की मूल भावना है; कृत्य के मूल में रहने वाला उद्देश्य अथवा आशय ही अहिंसा अथवा हिंसा की कसौटी है।

वे अपने राष्ट्रवाद, समाजवाद और संस्कृति सम्बन्धी विचारों के लिए समाजशास्त्रियों की आलोचनाओं के शिकार हुए। उनकी पुस्तक हिन्द स्वराज (वर्ष 1909 ईसवीं में लिखित), इसीलिए, तीव्र आलोचना की पात्र बनी। आलोचकों ने गाँधीजी के राष्ट्रवाद में वृहद् मानवतावाद के स्थान पर आँखें मूंदकर एकांगिता देखी। उनके कथन, ***"मेरे लिए देशप्रेम और मानव-प्रेम में कोई भेद नहीं है; दोनों एक ही हैं; मैं देशप्रेमी हूँ, क्योंकि मैं मानव-प्रेमी हूँ।"*** (यंग इण्डिया, 16 मार्च, 1921 ईसवीं) की जाने-अनजाने अनदेखी कर उनके राष्ट्रवाद-सम्बन्धी विचारों को पश्चिम के राष्ट्रवादी दृष्टिकोण के ही समान मानकर उनकी भी आलोचना की। यही नहीं, गाँधीजी के स्पष्ट और अति प्रगतिशील कथन कि वृहद् मानव कल्याण-भावना को हृदयंगम कर सजातियों के वृहद् सहयोग, सहकार और सौहार्द के साथ विकासपथ पर निरन्तर आगे बढ़ना ही होगा, क्योंकि आगे नहीं बढ़े, तो फिर पीछे गिरना होगा को अनदेखा कर उनके विचारों में रूढ़िवादिता को पाया।

विशेषकर ग्रामों के देश भारत में आमजन को आजीविका की प्रत्याभूति प्रदान करते, लोगों की आत्मनिर्भरता को सुनिश्चित करते और देश की अर्थव्यवस्था में अतिमहत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करते लघु उद्योगों कृषि से जुड़े कुटीर उद्योगों को गाँधीजी द्वारा भारी उद्योगों की अपेक्षा प्राथमिकता दिया जाना

बड़े उद्योगों के समर्थक अर्थशास्त्रियों, उद्योगपतियों-पूँजीपतियों, पश्चिम के समाजवाद समर्थकों, साम्यवादियों आदि को रास नहीं आया।

स्वः अनुभूति द्वारा सर्वसमानता की सार्वभौमिक सत्यता को स्वीकार करते हुए, सबके कल्याण उत्थान में ही अपना कल्याण - उत्थान देखते हुए, इस प्रकार नैतिकता का आलिंगन करते हुए संसाधनों, भूमि, धन-सम्पदा पूँजी आदि का अपने को ट्रस्टी समझते हुए प्राप्तियों का व्यक्ति द्वारा व्यापक जनहित में सदुपयोग गाँधीजी के संरक्षकता सिद्धान्त की मूल भावना थी। इसके माध्यम से उन्होंने अंत्योदय व सर्वोदय - सर्वोत्थान का आह्वान किया, जिसका विशुद्ध उद्देश्य समुचित अवसर सुलभ कराकर प्रत्येकजन को अपने चहुँमुखी विकास हेतु सक्षम बनाना था। लेकिन व्यक्तिवादियों, गुण-सर्वोच्चता की मानसिकता पालने वालों अथवा सम्पन्नता को अपना जन्मजात एकाधिकार मानने वालों को महात्मा गाँधी का ऐसा विचार क्यों पसन्द आएगा? गाँधी नैतिक विकास के बल पर साधन संपन्नजन - उद्योगपतियों, पूँजीपतियों और जमींदारों के हृदय परिवर्तन से उन्हें संसाधनों व धन-सम्पदा के स्वामियों से न्यासियों के रूप में परिवर्तित करना चाहते थे, लेकिन उनके निधनोपरान्त भूदान आन्दोलन जैसी एक सफल व अभूतपूर्व घटना के साकार रूप लेने के बाद भी हिंसा द्वारा ही प्रत्येक परिवर्तन की सम्भावना को स्वीकार करने वालों को उनका दृष्टिकोण आजतक भी स्वीकार्य नहीं है। वर्तमान पीढ़ी को जानना ही चाहिए कि बापू के निधन के तीन वर्षोपरान्त (वर्ष 1951 ईसवीं में) विनोबा भावे ने देश के ग्रामों में रहने वाले जन-जन को भूस्वामी बनाने के उद्देश्य से तेलंगाना क्षेत्र से भूदान कार्यक्रम प्रारम्भ किया था। क्षेत्र के पोचमपल्ली गाँव के एक जमींदार वी.रामचन्द्र रेड्डी (जीवनकालः 1905-1986 ईसवीं) ने विनोबाजी के आह्वान पर भूमिहीनों के लिए स्वेच्छा के साथ अपनी एक सौ एकड़ भूमि दान में दी थी। एक आन्दोलन के रूप में भूदान कार्यक्रम सफलता के साथ तीव्रतापूर्वक आगे बढ़ा था और विनोबाजी ने देशभर से भूमिहीनों के लिए अन्ततः लगभग पैंतालीस लाख एकड़ भूमि एकत्रित की थी। वह कार्य ऐतिहासिक था। गाँधी-मार्ग की सार्थकता और प्रासंगिकता का एक श्रेष्ठ उदाहरण था।

"हम पहले अपनी संस्कृति का सम्मान करना सीखें और उसे आत्मसात् करें; अन्य संस्कृतियों के सम्मान की, उनकी विशेषताओं को समझने और स्वीकार करने की बात उसके बाद ही आ सकती है, उससे पहले कभी नहीं", गाँधीजी का यह विचार बहुतों को पसन्द नहीं आया। यद्यपि संस्कृति-सम्बन्धी अपनी इस बात के प्रारम्भ में ही उन्होंने यह भी कहा, **"मेरा यह (कदापि) कहना नहीं कि हम शेष विश्व से बचकर रहें या आसपास दीवारें खड़ी कर लें; यह तो मेरे विचार से बहुत दूर भटक जाना है",** (यंग इण्डिया, 1 सितम्बर, 1921 ईसवीं) लेकिन संस्कृति के वास्तविक अर्थ और उद्देश्य को जाने-अनजाने न समझते हुए अपने धर्म सम्प्रदाय, पन्थ अथवा समुदाय से ही इसे जोड़कर देखने वालों के लिए संस्कृति-सम्बन्धी गाँधी-विचार अपाच्य रहा, और अभी भी है।

शिक्षा-जगत में उन्हें विधिवत विद्वान न माने जाने की बात मैं पहले ही कह चुका हूँ, यद्यपि मेरे दृष्टिकोण से गाँधीजी के शिक्षा-सम्बन्धी विचार अद्वितीय हैं। उनका दृष्टिकोण शिक्षा की सर्वश्रेष्ठ भारतीय अवधारणा, **"सा विद्या या विमुक्तये"** के पूर्णतः तारतम्य में है। अपने शैक्षणिक विचारों के आधार पर वे एक श्रेष्ठ शिक्षाविद के रूप में स्थापित होते हैं। चार पक्षीय शिक्षा-व्यवस्था सम्बन्धी उनका दृष्टिकोण व्यक्तित्व के चहुँमुखी विकास का श्रेष्ठ मार्ग है। यही नहीं, अपितु महात्मा गाँधी का बुनियादी शिक्षा-सम्बन्धी विचार आज भी न केवल प्रासंगिक है, अपितु वह शिक्षा की मूल भावना और शिक्षा के उद्देश्य की प्राप्ति हेतु कारगर है। इसीलिए, वह अद्वितीय एवं अनुकरणीय है।

संक्षेप में तात्पर्य यह कि विश्वभर में लाखों-करोड़ों लोगों द्वारा गाँधी को अपना आदर्श मानने, उनके अहिंसा-केन्द्रित मार्ग एवं कार्यों से सीख लेकर समानता, स्वाधीनता, अधिकार और न्याय-प्राप्ति की आशा रखने एवं उद्देश्य-प्राप्ति की कामना करते हुए अपने को संघर्षों में झोंकने वालों की उपस्थिति के बाद भी उनके सभी विचार, कार्य, यहाँ तक कि उनके निजी जीवन की घटनाएँ भी, न्यूनाधिक, आलोचनाओं से परे नहीं रहीं। वे आजतक भी आलोचनाओं-समालोचनाओं का विषय हैं, और ऐसा सबसे अधिक स्वयं भारत में है।

गाँधीजी के विचारों और कार्यों का, मैं बारम्बार पुनरावृत्ति करूँगा, अपने तर्कों के साथ आलोचनात्मक विश्लेषण करने का सबको अधिकार है। सुदृढ़ तर्कों के आधार पर किया गया आलोचनात्मक विश्लेषण किसी विचार को कदापि दुर्बल नहीं कर सकता। उसकी महत्ता अथवा प्रासंगिकता को समाप्त नहीं कर सकता। विपरीत इसके, किसी विचार अथवा मार्ग का आलोचनात्मक विश्लेषण उसे सुदृढ़ता और स्वस्थता प्रदान करता है। उसकी महत्ता और प्रासंगिकता को निखारता है। गाँधी-विचार और मार्ग भी इस वास्तविकता का अपवाद नहीं हो सकता। इतना ही नहीं, गाँधी-विचार अथवा मार्ग आलोचनात्मक विश्लेषण के बाद अपने बड़े-से-बड़े आलोचक को हृदय की गहराइयों तक झकझोरता है। मार्टिन लूथर किंग जूनियर (जीवनकालः 1929-1968 ईसवीं) की, जो प्रारंभ में गाँधीजी के अहिंसा-केन्द्रित विचार और मार्ग के यदि पूर्णतः आलोचक नहीं, तो उससे सहमत भी नहीं थे, गाँधी-विचार के मूल में जाने के बाद की स्वीकारोक्ति इस वास्तविकता का एक उत्कृष्ट

उदाहरण है। गाँधी-दर्शन और गाँधीजी द्वारा अहिंसा के बल पर किए जनकार्यों का पूर्वाग्रह मुक्तस्थिति में ईमानदारी से विश्लेषण करने के उपरान्त, इसीलिए, मार्टिन लूथर किंग जूनियर ने कहा था, **"गाँधी के अहिंसक प्रतिरोध दर्शन में मैंने केवल नैतिकता से भरपूर और व्यावहारिक दृष्टि से सुदृढ़ वह उपाय पाया है, जो सताए हुए लोगों को अपनी स्वतंत्रता के संघर्ष के लिए सुलभ है।"** (कुमार, भा0 म0 गाँ0, पृष्ठ 33)

अपने सार्वजनिक जीवन के पूर्वार्ध में नेल्सन मण्डेला (जीवनकालः 1918-2013 ईसवीं) गाँधी-विचार और गाँधीजी के सत्य-प्राप्ति को समर्पित अहिंसा-मार्ग से पूर्णतः सहमत नहीं थे। दक्षिण अफ्रीका के मण्डेला से जुड़े घटनाक्रम उनके संघर्ष वृतान्त से परिचितजन, विषय-विशेषज्ञ और इतिहासकार यह जानते हैं कि एक समय ऐसा भी आया, जब वे इससे बहुत दूर चले गए। लेकिन अन्ततः जीवन के उत्तरार्ध में अपने देश की स्वतंत्रता के ध्येय-प्राप्ति के द्वार पर खड़े मण्डेला ने यह स्वीकार किया कि अहिंसा-मार्ग का, वास्तव में, कोई विकल्प नहीं है।

ये दो स्वीकारोक्तियाँ - मार्टिन लूथर किंग जूनियर और नेल्सन मण्डेला के कथन अनायास ही नहीं थे। दोनों ने दमन व अत्याचारों के शिकार लोगों के लिए, अपने-अपने देशों, संयुक्त राज्य अमरीका और दक्षिण अफ्रीका में सतत संघर्ष किए थे। यह, निस्सन्देह, उनके द्वारा शुद्धहृदय से गाँधी-विचार और मार्ग की मूल भावना को समझने, तदनुरूप की गई कार्यवाहियों (मण्डेला के सन्दर्भ में न्यूनाधिक) और, जैसा कि कहा है, संघर्षों में हुए अनुभवों - प्राप्त उपलब्धियों का ही परिणाम था।

गाँधी-विचार अथवा/और मार्ग की मूल भावना क्या है? वास्तव में, गाँधीजी के विचारों, कार्यों, उनके मार्ग, यहाँ तक कि उनके जीवन को समझने के लिए सब प्रकार के पूर्वाग्रहों से मुक्त होकर यही जानना नितान्त आवश्यक है।

गाँधी-विचार के मूल में सार्वभौमिक एकता की सत्यता विद्यमान है। सार्वभौमिक एकता सर्व-समानता और सर्व-कल्याण का आह्वान करती है। सर्व-समानता की वृहद् अवधारणा में प्राणिमात्र सम्मिलित हैं; इसमें सृष्टि के सर्वश्रेष्ठ प्राणी के रूप में मनुष्य, जिसे बुद्धि और रचनात्मकता जैसे अद्वितीय महागुण प्राप्त हैं, जिनके बल पर वह अपने मानवीय कर्तव्यों का निर्वहन करते हुए सजातीयों के वृहद् सहयोग द्वारा सर्वकल्याण का मार्ग प्रशस्त करने में सक्षम है, प्राथमिकता पर है। महात्मा गाँधी के विचारों की यह मूल भावना उन्हें स्वयं महात्मा के रूप में स्थापित करती है।

महात्मा गाँधी की वृहद् भ्रातृत्व अवधारणा - सम्पूर्ण मानव-जाति के भाईचारे से जुड़ा अतिविशाल दृष्टिकोण, अनिवार्य रूप में सर्व समानता-आधारित स्वतंत्रता-सम्बन्धी उनके विचारों में देखा जा सकता है। उनके राजनीतिक-सामाजिक, आर्थिक अथवा राष्ट्रवाद के सम्बन्ध में विचारों के आलोचकों को इसे समझना चाहिए। उनके 4 जनवरी, 1929 ईसवीं को मानव-भ्रातृत्व शीर्षक के अन्तर्गत यंग इण्डिया में व्यक्त विचारों से साक्षात्कार करना चाहिए, जो सार्वभौमिक एकता के सिद्धान्त में प्राणिमात्र की समान सम्मिलितता, वृहद् भ्रातृत्व अवधारणा - मानव-जाति के भाईचारे से जुड़े उनके दृष्टिकोण और अन्ततः गाँधी-विचार/मार्ग के मूल में विद्यमान सार्वभौमिक एकता सर्वसमानता और सर्वकल्याण की प्रबल कामना को स्पष्टतः प्रकट करते हैं। प्राणिमात्र को केन्द्र में रखते हुए गाँधीजी ने कहा, **"मैं न केवल मनुष्य नाम से पहचाने जाने वाले प्राणियों के साथ भ्रातृत्व और एकात्मता सिद्ध करना चाहता हूँ, अपितु समस्त प्राणियों के साथ - रेंगने वाले सांप आदि प्राणियों के साथ भी - उसी प्रकार एकात्मता का अनुभव करना चाहता हूँ। कारण, हम सब उसी एक स्त्रष्टा** (जो स्वयं सार्वभौमिक एकता एवं सदैव प्रवहमान शाश्वत नियम के एकमात्र आधार हैं) **की सन्तति होने का दावा करते हैं और, इसीलिए, सब प्राणी, उनका रूप कुछ भी हो, मूलतः एक ही हैं।**

सम्पूर्ण मानव-जाति - मानव एकता, समानता और सर्वकल्याण हेतु अपनी प्रतिबद्धता प्रकट करते हुए आगे उन्होंने कहा, **"मेरा मिशन केवल भारतीय मानवता में भ्रातृत्व स्थापित करना ही नहीं है। मेरा मिशन केवल भारत की स्वतंत्रता ही नहीं है, यद्यपि आज निस्सन्देह व्यवहार में मेरा सम्पूर्ण जीवन और मेरा सारा समय इसी ध्येय की प्राप्ति में लगा है। लेकिन, भारत की स्वाधीनता प्राप्ति द्वारा मैं (सम्पूर्ण) मानव-भ्रातृत्व की आशा की अनुभूति करते हुए (अपने) इस मिशन को आगे बढ़ाना चाहता हूँ।"**

अपने विचारों को और आगे बढ़ाते हुए तथा विशेष रूप से देशभक्ति को केन्द्र में रखते हुए गाँधीजी ने कहा, **"मेरा देशप्रेम कोई बहिष्कारशील वस्तु नहीं है, अपितु अतिशय व्यापक वस्तु है और मैं उस देशप्रेम को वर्ज्य मानता हूँ, जो अन्य राष्ट्रों को कष्ट देकर या उनका शोषण कर अपने देश को (उपर) उठाना चाहता है। देशप्रेम की मेरी कल्पना यह है कि वह सदैव, बिना किसी अपवाद के प्रत्येक स्थिति में, मानव-जाति के विशालतम हित के साथ सुसंगत होना चाहिए।**

गाँधीजी के मात्र एक समय पर व्यक्त मानव-भ्रातृत्व केन्द्रित विचारों एकता, समानता और सर्वकल्याण की कामना करते विचारों का यह एक उदाहरण है । यह अन्ततः उनके सार्वभौमिकता को समर्पित सिद्धान्त और मार्ग को स्पष्टता से सामने लाता है। उन्होंने जीवनभर इसी प्रकार के विचार व्यक्त किए तथा सर्वोत्थान की कामना की। वर्ष 1939 ईसवीं में गाँधीजी ने द्वितीय विश्व युद्ध में सरदार वल्लभभाई पटेल (जीवनकालः 1875-1950

ईसवीं), पण्डित जवाहरलाल नेहरू (जीवनकाल: 1889-1964 ईसवीं) और मौलाना अबुल कलाम आजाद (जीवनकाल: 1888-1958 ईसवीं) जैसे वरिष्ठ नेताओं और अपने निकटतम साथियों की इच्छा के विरुद्ध जाकर और भारत को स्वाधीनता दिए जाने की प्रत्याभूति की शर्त पर भी साम्राज्यवादियों को सहयोग देने से मना कर दिया। कारण, महायुद्ध में मानवता का कुचला जाना था। निर्दोषजन का रक्त बहना था। लेशमात्र भी कल्याण नहीं, विनाश होना था, और वही हुआ। हम सब इस वास्तविकता से परिचित हैं। उन्होंने, इसीलिए, साम्राज्यवादियों को सहयोग देने के स्थान पर उनसे भारत छोड़ने को कहा। भारतवासियों का उन्हें देश छोड़ने को विवश करने के लिए सक्रिय संघर्ष में जुट जाने का आह्वान किया । वर्ष 1940 ईसवीं का व्यक्तिगत सत्याग्रह तदुपरान्त वर्ष 1942 ईसवीं का भारत छोड़ो आन्दोलन - अगस्त क्रान्ति उनकी उसी पुकार का परिणाम थे।

'भारत अपनी स्वाधीनता और प्रगति से विश्व के प्रत्येकजन की स्वतंत्रता के लिए अपने को समर्पित करेगा', इस आशा के साथ महात्मा गाँधी ने वर्ष 1942 ईसवीं में 'अंग्रेजो भारत छोड़ो' का नारा दिया। इसके माध्यम से गाँधीजी ने उस समय वर्ष 1925 ईसवीं के अपने दो अति उल्लेखनीय कथनों के अनुरूप ही भारत की स्वाधीनता एवं समृद्धि के बल पर विश्व कल्याण - संसार के प्रत्येकजन के उत्थान की बात को दोहराया था। वर्ष 1925 ईसवीं में उन्होंने यह स्पष्टतः कहा था, **"मैं भारत का उत्थान इसलिए चाहता हूँ कि सारा संसार उससे लाभ उठा सके। मैं यह (कदापि) नहीं चाहता कि भारत का उत्थान दूसरे देशों के नाश की नींव पर हो (यंग इण्डिया 12 मार्च, 1925 ईसवीं) एवं, मैं भारत को स्वतंत्र और बलवान बना हुआ देखना चाहता हूँ, क्योंकि मैं चाहता हूँ कि वह संसार के भले (कल्याण) के लिए स्वेच्छापूर्वक अपनी पवित्र आहुति दे सके।"** (यंग इण्डिया 17 सितम्बर, 1925 ईसवीं)

गाँधीजी के कथनों में विशुद्ध मानव-कल्याण की भावना थी। यही उनके विचारों का मूल है और उनकी साधुता - पुण्यता की पहचान है। इसी के आधार पर उनके विचारों तदनुरूप किए गए कार्यों को आज समस्त पूर्वाग्रहों से मुक्त होकर भारत ही नहीं, विश्व भर में सभी आम और खासजन द्वारा समझे जाने की आवश्यकता है। देश-काल की परिस्थितियों की माँग के अनुसार गाँधी-विचार/मार्ग को परिमार्जित कर - अनुकूल बनाकर, साथ ही उसकी मूल भावना को यथावत रखते हुए, अपनाए जाने की आवश्यकता है।

पूर्व कुलपति
चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ।

लघुकथा

निधि का बरतन

डॉ.जी.गोपीनाथन

टीले के ऊपरवाले परिवार के मुखिया मामा को निधि मिल गई, यह अफवाह गाँव भर में फैल गई। लेकिन मामला तब उलझ गया जब मुखिया के भानजे कुंजन ने सत्याग्रह शुरू किया। वह टीलेवालों के घर के सामने फाटक की सीढ़ी पर बैठ गया था। लोग इकट्ठे हुए और कुंजन से पूछताछ करने लगे। कुंजन उन्हें समझा रहा था। पहले कभी परिवार में डकैती होने के डर से ताँबे के घड़े में भरकर सोना, चाँदी, जवाहरात वगैरह जमीन के नीचे छिपाकर गाड़ देते थे। इसीको 'निधि' कहते हैं। यह किसी भाग्यशाली को कभी मिल जाता है। मुखिया मामा जब पारिवारिक जमीन पर खेती के लिए जमीन खोद रहे थे, तभी उनको निधि मिली। सबूत के लिए उसने जमीन पर बना गड्ढा भी दिखाया, जहाँ से निधि का बरतन मिला था। यह सब जानकर लोगों को भी यकीन हो गया कि वाकई निधि मिल गई है। सबने सुन रखा था कि जिसके भाग्य में लिखा होता है, उसे इस तरह की निधियाँ पात्रों में मिल जाया करती हैं। यह सब शायद उस पुराने जमाने की याद हो जिस समय बैंक की कोई व्यवस्था नहीं थी और लोग डाकुओं के डर से जमीन खोदकर सोना-चाँदी वगैरह को पात्रों में बंद कर सुरक्षित रखते थे। वैसे कुछ लोग आजकल भी काला धन ऐसे ही कहीं छिपाकर रखते हैं। कुंजन उस निधि में इसलिए हिस्सा चाहता था, क्योंकि उसके अनुसार वह परिवार की संपत्ति है। लोगों ने भी कुंजन का पक्ष लेना शुरू किया। कुंजन के साथ जाकर लोगों ने मुखिया मामा से पूछा तो उन्होंने निधि मिलने के समाचार को सरासर झूठ बताया। उनका कहना था कि 'वह गड्ढा जमीन खोदकर जमीनकंद निकालने का है। जहाँ निधि होती है वहाँ अकसर साँप और किसी निधि संरक्षक भूत की उपस्थिति होती है। लेकिन यहाँ तो ऐसा कुछ नहीं है।' कुंजन ने कहा कि 'यह सब बकवास है। असल बात यह है कि मामा निधि बाँटना नहीं चाहते।' यह सब सुनकर कुछ लोग ऊबकर चले गए और कुछ लोग कहने लगे कि कुंजन शायद पागल हो गया है।

इन सबके बावजूद लोगों को शक तब हुआ जब कुंजन और मामा के बीच कुछ गुप्त साठ-गाँठ हो गई। लोगों को पक्का विश्वास हो गया कि जब कुंजन देर रात तक यहाँ सत्याग्रह की धमकी लेकर बैठा रहा, मामा ने कुछ ले-देकर मामला सुलझाया। स्थानीय समाचार यह फैला रहा था कि लोगों के डर से मुखिया और कुंजन ने मिलकर निधि को रातोंरात और कहीं पहुंचा दिया है। काफी समय तक इसीको लेकर लोग अटकलें लगा रहे थे। लेकिन मुखिया और कुंजन अपने-अपने घरों में कुछ मरम्मत कराने और बेटियों की शादी का इंतजाम करने लगे, तो लोगों का विश्वास पक्का हो गया। चंदे के चक्कर में स्थानीय राजनीतिक नेता तथा उधार माँगनेवाले दोस्त और रिश्तेदार भी उधर चक्कर काटने लगे।

पूर्व कुलपति
अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा।

सांस्कृतिक परिदृश्य कुँवर नारायण के रचना संसार में

प्रो. टी. के. प्रभाकरन

आधुनिक हिंदी के विख्यात कवि-कहानीकार आलोचक कुँवर नारायण समकालीन हिंदी कविता के सशक्त हस्ताक्षर हैं, उन्होंने संपूर्ण भारतीय साहित्य में अपनी छाप छोड़ी है, विश्व पाठकों के बीच भी अपने प्रति उत्सुकता पैदा की है। उनकी कई रचनाएँ अंग्रेज़ी और अन्य विदेशी भाषाओं में अनूदित हैं। उनके बेटे अपूर्व नारायण ने उनकी कविताओं का अंग्रेज़ी में अनुवाद करके "Witnesses of remembrance" और "No other world" शीर्षक दो संकलनों में प्रकाशित किया है। उनकी कहानियों का अनुवाद 'The play of dolls' नाम से निकाला है। कुँवर जी का प्रबंधकाव्य 'आत्मजयी' का इतालवी में अनुवाद हुआ है जो रोम से प्रकाश में आया है। स्वयं कवि ने पेब्लो नेरुदा, बोखैस आदि लेखकों की कई कविताओं का अनुवाद हिंदी में किया है। 'अपने सामने' काव्य संकलन में सम्मिलित कविता 'अंतिम ऊँचाई' की निम्नलिखित पंक्तियों का प्रयोग सन् 2021 की 'टीवीएफ' द्वारा निर्मित हिंदी वेब परंपरा 'आस्पिरनट्स' (Aspirants) में किया गया और कवि की पहचान अत्यंत विस्तृत हो गयी। प्रयुक्त पंक्तियों ये हैं -

'शुरु शुरु में सब यही चाहते हैं/कि सबकुछ शुरू से ही शुरू हो,/लेकिन अन्त तक पहुँचते-पहुँचते/ हिम्मत हार जाते हैं।/हमें कोई दिलचस्पी नहीं रहती/कि वह कैसे समाप्त होता है जो इतनी घूमधाम से शुरू हुआ था/हमारे चाहने पर।"[1]

कहा जाता है कि इस परंपरा के प्रसारण के बाद कुँवर जी के इस काव्य संग्रह की माँग बढ़ी और उस पर खूब चर्चाएँ चलीं।

हिंदी साहित्य में सार्थक पहचान बना चुके यशस्वी कवि कुँवर नारायण अब हमारे बीच नहीं रहे, मगर उनकी अनुपस्थिति ही उपस्थिति महसूस करा रही है। इस संदर्भ में उनकी लिखी कविता 'काफ्का के प्राहा में' बरबस याद आ रही है। जर्मन लेखक फ्राज़ काफ्का के शहर 'प्राहा' (प्रागा भी कहते हैं) में पहुँच कर कवि को जो लगा था उसे इस कविता की प्रारंभिक पंक्तियों में इस प्रकार दर्ज किया है -

'एक उपस्थिति से ज्यादा उपस्थिति/हो सकती है कभी उसकी अनुपस्थिति'

काफ्का की स्मृति में लिखी यह कविता लेखक के प्रेमी पाठक की मानसिक स्थिति का बखान करती है। काफ्का प्राहा में नहीं है मगर उनकी गैर हाज़िरी में भी अंतरिक्ष में उनकी उपस्थिति महसूस हो रही है। यह केवल काफ्का के संबंध में ही सही नहीं है। कालिदास और उज्जयनी, कबीर और वाराणसी, प्रेमचंद और लमही के बारे में भी सही है। हिंदी और नारायण के संबंध में यह पूर्णतः सही है।

कुँवर नारायण की कविताओं का पहला संकलन 'चक्रव्यूह' सन् 1956 में प्रकाशित हुआ था। यह समय प्रयोगवाद बनाम नई कविता का था। उस समय की प्रतिष्ठित पत्रिका 'नई कविता' के तीसरे अंक में जगदीश गुप्त ने 'चक्रव्यूह' कविता को प्रकाशित करते हुए लिखा कि -"आधुनिक जीवन की विषमताओं के प्रति जागरूक एवं अनुभूतिशील व्यक्तित्व, परिष्कृत सौन्दर्यबोध तथा निहित शिल्प कौशल से परिपूर्ण कवि है।" 'चक्रव्यूह' संकलन पढकर उन्होंने लिखा - "चक्रव्यूह का कवि जीवन की घनीभूत भावनात्मक जटिलता के बीच उसकी विषमताओं का स्वयं अनुभव करते हुए एक सुस्थिर, गंभीर जीवन दृष्टि पाने के लिए ईमानदारी के साथ यत्नशील है।" नेमिचन्द्र जैन ने कहा कि "कुँवर नारायण की काव्यभूमि निस्संदेह बड़ी सूक्ष्म संवेदनशीलता की और गहनतम जीवन सत्यों की है जिसमें पूरी अनुभूति की प्रामाणिकता आने पर आज की कविता को नया ही स्तर प्राप्त होने का आश्वासन है।" निर्मलवर्मा ने इस कृति पर यह राय दी "Kunwar Narain is a lonely poet and many of the poem of his first collection Chakravyuh are deeply imbued with the spirit of quest for a faith in a world of disintegrating values" (कुँवर नारायण अकेला कवि है और उनके प्रथम काव्यसंग्रह 'चक्रव्यूह' की कई कविताएँ विघटित होते मूल्यों के इस संसार में एक आस्था के अनुसंधान के भाव से रंगी हुई है।)[2] एक कवि के प्रथम संकलन ही ऐसे सुधी आलोचकों और पाठकों की प्रशंसा का पात्र बनता है तो यह कवि की प्रतिभा का निशान मानना चाहिए। इन कविताओं की प्रयोगधर्मिता देख कर अज्ञेय ने उन्हें अपने संपादित 'तीसरे सप्तक' के सात कवियों में सम्मिलित किया । सप्तक में उन्होंने जो वक्तव्य दिया था, वह अवश्य पठनीय है।

"मैं अर्नल्ड के शब्दों में व्यापक अर्थ में कविता को जीवन की आलोचना मानता हूँ। साहित्य जब सीधे जीवन से संपर्क छोड़ कर वादग्रस्त होने लगता है, तभी उसमें वे तत्व उत्पन्न होते हैं जो उसके स्वाभाविक विकास में बाधक हो। कविता मेरे लिए कोई भावुकता की हाय-हाय न होकर यथार्थ के प्रति एक प्रौढ़ प्रतिक्रिया की मार्मिक अभिव्यक्ति है।" अपने छः दशकों तक फैले रचनाकाल में उन्होंने सदा अपनी घोषणा के अनुरूप सृजन करते रहे, वक्तव्य से ज़रा भी हटे नहीं ।

सन् 1961 "परिवेश हम तुम' संकलन का प्रकाशन हुआ। इस संकलन की समीक्षा करते हुए मुक्तिबोध ने लिखा 'कवि कुँवर नारायण ने अपना एक शिल्प विकसित कर लिया है, जिसमें कहने की सादगी, संवेदना की तीव्रता, रंगों की गहराई और खयालों की लकीरें साफ-साफ उभर कर आती है ।..... और यदि मैं अपनी व्यक्तिगत शब्दावली में कहूँ तो उसका तकनीक वस्तुतः जनतांत्रिक है।"[3]

कठोपनिषद के नचिकेता प्रसंग के आधार पर कुँवर जी का प्रबंधकाव्य 'आत्मजयी' सन् 1965 में प्रकाश में आया। इस कृति ने हिंदी साहित्य के एक मानक प्रबंधकाव्य के रूप में अखिल भारतीय स्तर पर मान्यता प्राप्त की है। मृत्यु संबंधी शाश्वत समस्या की व्याख्या का प्रयास इस कृति में किया गया है। नचिकेता का मानसिक संघर्ष वर्तमान मनुष्य की मनस्थितियों में पहचाना जा सकता है। पिता और पुत्र के बीच का मतभेद पुरानी और नयी पीढ़ी के बीच के संघर्ष का चित्र प्रस्तुत करता है । पुस्तक प्रकाशित होते ही, लेखक पर कई लेख लिखे गये, कृति पर पर्याप्त चर्चा चली। नन्ददुलारे वाजपेई ने लिखा -"यह कथा या आख्यान का शिल्प है, वह भी कुछ पुराना। काव्य शिल्प इसकी अपेक्षा नहीं रखता। यदि कुँवर नारायण ने इस काव्य का आरंभ नचिकेता की आत्महत्या के प्रयत्न से किया होता और आत्मबोध की उपलब्धि के साथ नचिकेता के चरित्र को दिखाया होता तो शिल्प की दृष्टि से ही नहीं, कदाचित वस्तु-उपस्थापना की दृष्टि से भी अधिक सुंदर और मूल्यवान वस्तु प्रस्तुत की जा सकती भी।"[4] वास्तविकता यह है कि 'आत्मजयी' वाजश्रवा-नचिकेता-यम संवाद की पुनः प्रस्तुति नहीं है, उस आख्यान का समकालीन संस्करण है। नन्दकिशोर नवल जैसे कुछ आलोचकों ने कुँवर नारायण को अस्तित्ववादी कहा है, मुख्यतः आत्मजयी के आधार पर । लेकिन के. सच्चिदानन्दन इसे संदेह की दृष्टि से देखते हैं। वे कहते हैं -

"मैं इससे इंकार नहीं करता कि कुँवर नारायण ने भी कई दूसरे कवियों की तरह जो पाँचवें दशक के उत्तरार्ध और छठे दशक में उभर कर सामने आए कीर्केगार्द, सात्र, मार्सेल और यास्पेरस को पढ़ा होगा और अस्तित्ववादी विचारधारा के प्रभाव में अस्थायी तौर पर निराशा, आशंका, स्वतंत्रता की चिंता और अनस्तित्व के विरुद्ध अस्तित्व के संघर्ष के साथ अपना तादात्म्य स्थापित किया होगा, तथापि स्वयं एक कवि के रूप में ऐसे वर्गीकरणों को मैं संदेह की दृष्टि से देखता रहा हूँ।"[5] दो विश्वयुद्धों से उद्भूत निराशा और अरक्षित भावना अस्तित्ववाद को व्यापकता दी। "अस्तित्ववाद की मान्यताओं में यह तथ्य गहराई से निहित है कि निराशा, पीड़ा, अकेलापन, आत्मनिर्वासन, शून्यता, संत्रास, मोहभंग, विद्रूपता, विडंबना, बेचैनी, मृत्युबोध इत्यादि अस्तित्ववाद के साथ अनिवार्यता जुड़े हैं।" ये बातें 'आत्मजयी' में मिलती नहीं। कवि ने नचिकेता के पुराकथात्मक पक्ष को आज के मनुष्य की जटिल मनस्थितियों को सही अभिव्यक्ति देने के साधन के रूप में इस्तेमाल किया है। इसे अस्तित्ववादी रचना कहना निरी मूर्खता ही मानी जाएगी। जीवन के प्रति दार्शनिक दृष्टिकोण और चिंतन से भी कुँवर जी की कृति 'आत्मजयी' ने राष्ट्रकवि दिनकर को चौंका दिया था। उनसे मिलने आए दिनकर ने एक युवक को अपने सामने देखकर पूछा – "तुम्हीं कुँवर नारायण हो?' 'जी', सुनने के बाद संदेहपूर्ण निगाह से उन्होंने कहा- "ये बताओ, जब तुमने अभी 'आत्मजयी' लिख डाली है तो बुढ़ापे में क्या लिखोगे? "आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी जी उनसे मिलने आए और कहा कि "बहुत अच्छा लिखा है तुमने।"

काफी अन्तराल के बाद सन् 1979 में इकहत्तर कविताओं का संकलन 'अपने सामने' प्रकाशित हुआ। कुँवर जी ने कभी भी किसी वाद, मत या विचारधारा को अपने लेखनीय कार्य का विकल्प नहीं बनाया। उनका विचार था – "साहित्य और राजनीति के बीच, मैं समझता हूँ, कभी भी गठबंधन का रिश्ता वांछनीय नहीं है।... बड़ा साहित्य न तो राजनीति का गुलाम रहा है, न ही उसका दुश्मन।"[6] लेकिन जहाँ भी उन्होंने अन्याय, शोषण, उत्पीड़न आदि को देखा उनकी कविता चुप नहीं रही। चाहे आपात्काल का समय हो, बाबरी मस्जिद के विध्वंस का समय या गुजरात की हिंसा का दौर एक विवेचक की दृष्टि से कवि ने अंकन किया है। उदाहरण देखिए

"हमेशा की तरह इस बार भी/पुलिस पहुँच गयी थी घटना स्थल पर/घटना के काफी बाद/ताकि इतिहास को सही सही लिखा जा सके/चश्मदीद गवाहों के बयानों के मुताबिक। /उन बूढ़े, जवान, बच्चों को जिन्होंने उत्साह से/चिता बनायी थी/उन लोगों को जिन्होंने कुछ बेबस इनसानों को/लपटों में झोंक झोक कर होली मनाई थी.../यह सब कहाँ हुआ? इसी देश में।" (काफी बाद अपने सामने)

सन् 1993 में 'कोई दूसरा नहीं' संकलन का प्रकाशन हुआ जिसमें कवि अधिक परिमार्जित और परिपक्व दिखाई देते हैं। समकालीन राजनीतिक और सामाजिक सच्चाई पर चुभती टिप्पणियाँ इस संग्रह की कविताओं में प्राप्त है। संकलन का संपूर्ण परिदृश्य भारतीय जनजीवन की त्रासदियों से भरा पड़ा है। सांप्रदायिक दंगा, मन्दिर-मस्जिद विवाद को निरन्तर बनाये रखने की कोशिश, जातीय द्रोह, धार्मिक उन्माद, क्षेत्रवाद आदि ने कवि की रचनात्मक संवेदना पर बेरहमी से आघात किया। मिथक और इतिहास के झरोखे से वर्तमान को देखनेवाले कवि के रूप में विख्यात कुँवर जी आध्यात्मिकता से ज़रा हट के सामाजिक प्रतिबद्धता की ओर उन्मुख दिखायी देते हैं। इन

कविताओं में अधिकांश की पृष्ठभूमि भारतीय जनजीवन की त्रासदियों से भरी पड़ी है। जनसेवा को छोड़कर राजनीति अपराधियों के साथ देने लगी। सांप्रदायिक दंगे, मन्दिर-मस्जिद विवाद को और तीव्र करने की कोशिश, क्षेत्रवाद का नये सिरे से पनप उठना, मजहबी पागलपन आदि ने पूरे देश के वातावरण को प्रदूषित किया था । 'महाभारत' कविता में तत्कालीन भारत की हालत का दुःखपूर्ण वर्णन देखिए-"न धर्मक्षेत्रे न कुरु क्षेत्रे

सीधे सीधे चुनाव क्षेत्रे-/जीत की प्रबल इच्छा से/इकट्ठा हुए महारथियों के/ढपोरशंखी नाद से/युद्ध का श्रीगणेश/दलों को दलदल में जूझ रहे/आठ धर्म अट्ठारह भाषाएँ अट्ठाईस प्रदेश...../ भारत से महाभारत होता हुआ एक देश।"(महाभारत-कोई दूसरा नहीं)

अपने दार्शनिक और वैचेरिक प्रत्ययों से अलग कवि ने बार बार समकालीनता से मुदभेड़ कर अपनी पक्षधरता जनता के प्रति प्रकट किया है। इस संकलन की कविता 'अयोध्या 1992' उत्तम उदाहरण है। देखिए-

'हे राम/जीवन एक कटु यथार्थ है/और तुम एक महाकाव्य.../अयोध्या इस समय तुम्हारी अयोध्या नहीं/योद्धाओं की लंका है,/'मानस' तुम्हारा 'चरित' नहीं/चुनाव का डंका है.../सविनय निवेदन है प्रभु कि लौट जाओ/किसी पुराण-किसी धर्मग्रन्थ में/सकुशल, सपत्नीक.../अब के जंगल वे जंगल नहीं/जिनमें घूमा करते थे वाल्मीकि!"(अयोध्या-1992 कोई दूसरा नहीं)

मानवता प्रेमी कवि का साहस बेजोड़ है। इस संकलन के लिए उन्हें साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त हुआ था।

'इन दिनों' (2002), 'हाशिए का गवाह' (2009) आदि बाद के संकलनों में भूमंडलीकरण, निजीकरण, बजारीकरण आदि के कारण समाज में आयी संवेदनहीनता की ओर इशारा करके उसका प्रतिपक्ष तैयार कर रहे हैं। संबंधों में आयी दरारें और दूरियों से बेचैन कवि मानवीयता के संबल से उन्हें बचाये रखना चाहते हैं। आरंभ से लेकर कुँवर जी मानवतावादी रहे और अंत तक जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण अपनाए रखा। विपरीत परिस्थितियों, घिनौनी करतूतें और मानवविरोधी आचरणों के बीच भी जीवन मूल्यों के प्रति उनकी कविताएँ आशावादी दृष्टिकोण को प्रकट करती हैं। कवि ने लिखा – "वैश्वीकरण का अर्थ भी यह नहीं होना चाहिए कि स्थानीय विशेषताएँ सपाट और निर्जीव हो जाए। विकास के अर्थ को हम केवल आर्थिक, औद्योगिक और व्यापारिक दृष्टि से ही नहीं परिभाषित कर सकते, ज़रूरी है कि हम उसे एक विशद मानवीय संदर्भ दें।" (इटली में 'मूविता' संस्था के कार्यक्रम में दिया गया वक्तव्य) कुँवर नारायण के अनुसार समष्टि का अर्थ संपूर्ण मानवता है जिसे देश-काल की सीमाओं में अवरुद्ध नहीं कर सकता। समाज के प्रति उनकी प्रतिश्रुति किसी विचारधारा से जुड़ी हुई नहीं हैं, मनुष्य मात्र के प्रति उनकी संवेदनशीलता से निसृत है।

नब्बे के बाद सारे विश्व में फैले खुले बाज़ार की होड का असर भारत में भी पड़ा, खूब पड़ा। भारत के बाज़ार विदेशी चीज़ों से भर गए, मगर भारत से निर्यात की मात्रा कम ही रही। बाज़ार बेकाबू हो गया । लोग पहले जरूरत की चीजें खरीदने के लिए बाज़ार जाते थे, अब ब्रांड की चीज़ लेने के लिए वहाँ जाने लगे। यह बाज़ार कुँवर जी की कविताओं में भी प्रतिध्वनित हुआ 'इन दिनों' की एक कविता में कवि लिखते हैं -

"बाज़ार एक ऐसी जगह है/जहाँ मैंने हमेशा पाया है/एक ऐसा अकेलापन जैसा मुझे/बड़े बड़े जंगलों में भी नहीं मिला/ और एक खुशी/कुछ कुछ सुकरात की तरह/कि इतनी ढेर-सी चीजें/जिनकी मुझे कोई ज़रूरत नहीं।"

आज के समाज में जितने सुकरात होंगे जिन्हें कवि की तरह चीज़ों की ज़रूरत न हो। और बाज़ार का स्वरूप भी इतना आक्रामक बन गया है कि ज़रूरत न होने पर भी ग्राहक माल खरीदने लाचार हो जाते हैं। सारा संसार बाज़ारवाद के कब्जे में है। कवि का रोष कविता में स्पष्ट है । भूमंडलीकरण के तहत पारिवारिक संबंध शिथिल हो गए, भाईचारा विघटित हो गया, दोस्ती का फिर क्या कहना? 'द्वारिका में सुदामा' एक ऐसी कविता है जिसमें प्राचीन मैत्री के हवाले कृष्ण की खोज में द्वारिका में आ पहुँचे सुदामा का चित्र खींचा गया है।

"बहुत भोले हो सुदामा, नहीं समझोगे इस कौतुक को/मत भूलो अपने गाँवों को/जिन के विश्वासों की धूप-छाँह में कहीं/ अभी भी बची है/एक जगमगाती द्वारिका/जिसमें रहता है कहीं/ तुम्हारा वह पुराना सखा/जिसके साथ बचपन में खेला करते थे,/और जो केवल एक खिलौना नहीं।" (हाशिए का गवाह)

अपना अंतिम काव्य संकलन 'सब इतना असमाप्त' में एक उदास कवि का दर्शन मिलता है जो पिछले कुछ दशकों से बढ़ती हुई भयावह सांप्रदायिकता से खिन्न हैं। चित्रकार एफ.एम हुसैन का निर्वासन कलबुर्गी की हत्या, गोरक्षा के नाम पर निरीह मानवों की हत्या आदि से विक्षुब्ध कवि मन इस संग्रह की कविता 'जितना ही खुश रहना चाहता हूँ' में प्रकट है।

'जितना ही खुश रहना चाहता हूँ/ उतनी ही उदास होती जाती है मेरी कविताएँ/विह्वल प्रार्थनाओं में बदल जाते हैं शब्द/नृशंस हत्याओं का रक्त/जल्दी सूखने से इनकार करता / उनकी चिनगारियाँ दूर तक पहुँचर्ती/हमें आक्रान्त करता/एक

आदिम अंधेरा/होता जाता है गहरा/और गहरा। (सब इतना असमाप्त)

'आत्मजयी' के बाद कुँवर जी के दो और प्रबंध काव्य है – 'वाजश्रवा के बहाने' तथा 'कुमार जीव' । 'आत्मजयी' हिंदी में ही नहीं, भारतीय भाषाओं में अपनी एक विशेष उपस्थिति दर्ज की है। इस काव्य की नींव जीवन और मृत्यु के अन्तर संबंध हैं। आधुनिक मनुष्य के द्वन्द्वग्रस्त मन का सही चित्रण काव्य में प्राप्त है। कुँवर नारायण अपनी रचनाशीलता में मिथकों के झरोखे से वर्तमान को देखने के पक्षपाती हैं। आधुनिक हिंदी कविता में मिथकों का सर्वाधिक सार्थक प्रयोग करने में कुँवर नारायण दक्ष है। 'आत्मजयी' में पिता और पुत्र का संवाद है वास्तव में बहस है। दो पीढ़ियों के बीच का यह तर्क पुराने और नये मूल्यों के बीच की टकराहट है। 'वाजश्रवा के बहाने' आत्मजयी की अगली कड़ी मानी जा सकती है। पिता और पुत्र के बीच का संघर्ष इस काव्य में थोड़ा ढीला पड़ जाता है। 'आत्मजयी' में जो पिता कोपान्ध है वह 'वाजश्रवा के बहाने' में संयमी लगता है। उसमें पश्चात्ताप जागरित होता है। एक प्रकार से यह पुरानी पीढ़ी का स्वीकार है। 'कुमार जीव' में यह द्वंद्व पूरा समाप्त हुआ दिखता है। 'आत्मजयी' और 'वाजश्रवा के बहाने के पात्र जहाँ औपनिषदिक है वहाँ 'कुमार जीव' ऐतिहासिक पात्र है। उन्होंने पाली और संस्कृत में लिखे बौद्ध ग्रंथों की चीनी भाषा में अनुवाद किया। कुँवर जी ने इस काव्य में पारिवारिक संबंधों की दृढ़ता और स्थिरता की ओर इशारा किया है।

यद्यपि कविता कुँवर नारायण की मूल विधा है उन्होंने कहानी, आलोचना और डायरी भी लिखी हैं। उनका एकमात्र कहानी संग्रह 'आकारों के आसपास' है जिसमें सत्रह कहानियाँ संग्रहीत हैं। हर कहानी प्रयोग है जिस कारण चालू मुहावरे की पकड़ में वे आती नहीं। इन कहानियों में यथार्थ और फँटसी के बीच लगातार आवाजाही है जिस कारण उनकी दुनिया एकदम विशिष्ट और आश्चर्यजनक बन गयी है। यह बड़ी सूक्ष्म प्रतीकात्मकतावाला संग्रह है। व्यंग्य, विद्रूप और विडंबनाओं के उचित प्रयोग के कारण कहानियाँ बहुत प्रभावशाली बनी हैं। वास्तव में कुँवरजी ने इस संग्रह में अनेक कथारूप आज़माए हैं और उनके द्वारा यथार्थ की जटिलताओं की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित करने का प्रयास किया है। इन कहानियों की रचनाशैली एकदम प्रयोगधर्मी है।

सन् 1993 में प्रकाशित 'आज और आज से पहले' उनके आलोचनात्मक निबंधों और टिप्पणियों का संकलन है। चार खंडों में विभक्त इस पुस्तक में कुल इक्यावन लेख हैं। इसके तीसरे खंड में प्रसाद, निराला, अज्ञेय, मुक्तिबोध, शमशेर, नेमिचन्द्र जैन और अशोक वाजपेई के गद्य पुस्तकों पर आलेख है। चौथे खंड में प्रेमचंद, यशपाल, अमृतलाल नागर, भगवती चरण वर्मा, अज्ञेय, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, निर्मलवर्मा तथा श्रीलाल शुक्ल के कथा साहित्य पर निबंध प्राप्त है। एक महान कवि की चार दशकों की विचार दृष्टि को समग्रता से देखने-समझने का अवसर यह ग्रंथ प्रदान करता है।

कुँवर नारायण ने अपनी प्रथम रचना से लेकर अंतिम कृति तक एक बृहत्तर मानवीय संदर्भ का समावेश करने का प्रयास किया है। भारतीय जड़ों के प्रति उनकी आसक्तिव प्रतिबद्धता की हर रचना गवाही देती है। उनकी रचनात्मकता उस मानसभूमि की उपज है जो एक लंबे अर्से तक भारतीय परिवेश में जीने से प्राप्त जीवन दृष्टि का परिणाम है। कुँवर जी भारतीय औपनिषदिक परंपरा के कवि है और हिंदी कविता में अलग स्थान के अधिकारी है। भारतीयता उनकी रचनाशीलता का अप्रतिम गुण है। अपनी कृतियों के ज़रिए उन्होंने परंपरा का विस्तार किया है। एक और उल्लेखनीय बात यह है कि उनकी भारतीयता का पश्चिम की संस्कृति के साथ कोई द्वंद्व नहीं है। 'आत्मजयी' और 'वाजश्रवा के बहाने' उपनिषद् परंपरा के आख्यान है तो 'कुमार जीव' बौद्ध परंपरा का स्वीकार है। कुँवर जी को केवल एक दार्शनिक और वैचारिक प्रत्ययों का कवि मानना सही नहीं होगा। उनके सभी काव्य संकलनों में ऐसी कई कविताएँ प्राप्त हैं जिनमें उन्होंने बार-बार समकालीनता से मुठभेड किया है। आपातकाल, अयोध्या केन्द्रित उग्र सांप्रदायिकता, भूमंडलीकरण के तहत उत्पन्न विसंगतियाँ और विडंबनाएँ सभी कभी के उग्र प्रहार के शिकार बनी हैं। वर्तमान से जब भी संघर्ष होता है कवि मिथकों की तरफ जाते हैं और बुनियादी प्रश्नों की व्याख्या उनसे करते हैं। तभी तो युवा कहानीकार और आलोचक गीत चतुर्वेदी ने उन्हें 'मिथिहास की कन्दराओं से निकले एक आधुनिक विद्रोही ऋषि' बताया ।

संदर्भ सूचीः

1. अंतिम उँचाई अपने सामने कुँवर नारायण
2. 'कुँवर नारायण संसार' सं. यतीन्द्र मिश्र अंतिम फ्लैप
3. 'कुँवर नारायण संसार' सं. यतीन्द्र मिश्र अंतिम फ्लैप
4. 'धर्मयुग' 6-20 अगस्त 1970
5. 'कुँवर नारायण उपस्थिति-2', सं यतीन्द्र मिश्र संस्करण 2002, पृष्ठ संख्या-377
6. 'कुँवर नारायण संसार' सं. यतीन्द्र मिश्र पृष्ठ संख्या-22
7. सबदविशेषः दः कुँवर नारायण नई निगाह में 25 नवंबर 2008

पूर्व विभागाध्यक्ष (हिंदी)

सरकारी विक्टोरिया कॉलेज, पालक्काट, केरल।

संस्मरण

किसी तीर्थ से कम नहीं होता था डॉ.रमानाथ त्रिपाठी जी का सान्निध्य

सीताराम गुप्ता

कुछ वर्ष पूर्व अर्थात् दिनांक 26 अगस्त 2019 को दोपहर के समय पत्नी ने अपना फोन मेरी ओर बढ़ाते हुए कहा, "वैशाली से त्रिपाठी जी का फोन है बात कीजिए।" मैं आश्चर्यचकित था कि त्रिपाठी जी ने फोन किया और वो भी आशा जी के नंबर पर। मैंने आशा जी से फोन लेकर त्रिपाठी जी को अत्यंत आदरपूर्वक नमस्कार किया और उनके स्वास्थ्य के विषय में बातचीत की। त्रिपाठी जी उस समय जीवन के 95 वर्ष पूर्ण कर चुके थे। अब वे अपने जीवन के शताब्दी वर्ष में प्रवेश कर चुके थे और शीघ्र ही सौवाँ जन्म दिवस मनाने जा रहे थे कि 27 फरवरी सन् 2024 की रात्रि में उनका देहावसान हो गया। मैं दिल्ली विश्वविद्यालय में त्रिपाठी जी का विद्यार्थी रहा हूँ। मैं ही क्या आधी दिल्ली उनकी पढ़ाई हुई है। जिससे बात करो पता लगता है कि त्रिपाठी जी का विद्यार्थी रहे हैं अथवा रही हैं।

कुछ वर्ष पूर्व की एक घटना याद आ गई। एक फोन आया। मैंने दाना माँझी की पत्नी की शवयात्रा विषयक एक कविता लिखी थी। उसी के बारे में था ये फोन। कहा, 'भई गुप्ता जी आपने बहुत भावपूर्ण कविता लिखी है बधाई!' मैंने धन्यवाद के उपरांत उनका परिचय जानना चाहा तो बोले, 'मैं रमानाथ त्रिपाठी बोल रहा हूँ वैशाली से।' मैंने उन्हें पुनः प्रणाम किया और बतलाया कि मैं उनका विद्यार्थी रह चुका हूँ। इसपर उन्होंने अत्यंत प्रसन्नता व्यक्त की और काफी देर तक बातें कीं। उन्होंने ये भी बतलाया कि अब दृष्टिदोष के कारण पढ़ने-लिखने में परेशानी होती है। इसके बावजूद त्रिपाठी जी खूब लिखते और पढ़ते ही नहीं थे सबसे संपर्क भी बनाए रखते थे। उनसे मिलने आने वालों का ताँता लगा रहता था।

वैसे तो हमारे यहाँ से त्रिपाठी जी के घर की दूरी बहुत कम है। वास्तव में पैदल का रास्ता ही है लेकिन उनके यहाँ जाने और मिलने का कोई सुअवसर नहीं मिल पाया। त्रिपाठी जी अनेक भाषाओं के विद्वान, विश्वप्रसिद्ध रामकथा मर्मज्ञ होने के साथ-साथ एक सहृय कवि और कथाकार भी थे। बेशक मैं उनसे नहीं मिल पाया लेकिन उनकी रचनाएँ अवश्य पढ़ता रहा हूँ। बेशक त्रिपाठी जी से कम बातें हुई हों लेकिन उनके बारे में बहुत बातें हुई हैं। कई बार दिल्ली और बाहर के लोगों से फोन पर बातें होती हैं तो बहुत से लोग बतलाते हैं कि वैशाली, पीतमपुरा में रमानाथ त्रिपाठी जी रहते हैं जो उनके शिक्षक रहे हैं।

घर पर मिलने आने वाले कई व्यक्ति भी प्रायः त्रिपाठी जी के बारे में खूब बातें करते हैं। अधिकांश लोग त्रिपाठी जी के यहाँ जाने के लिए तत्पर दिखलाई पड़ते हैं। एक बार केरल से डॉ. रंजीत 'रविशैलम' जी घर पधारे। वे वायुसेना में कार्यरत थे और हिंदी के विद्वान और रचनाकार भी। उन्होंने कुछ लिखने के लिए अपनी डायरी मुझे दी। मैंने डायरी का पिछला पन्ना खोलकर देखा तो पाया कि उस पर डॉ. रमानाथ त्रिपाठी जी का संदेश अंकित था। फिर तो डॉ. रंजीत 'रविशैलम' जी से भी त्रिपाठी जी के बारे में काफी देर तक बातें होती रहीं।

सुंदरम्जी तो जब भी मिलते हैं कहते हैं कि किसी दिन त्रिपाठी जी के यहाँ चलने का कार्यक्रम बनाया जाए। त्रिपाठी जी के विषय में खूब बातें होती हैं। कई वर्ष पुरानी बात है एक दिन कानपुर के डॉ. विजय त्रिपाठी जी से बात हो रही थी। उन्होंने बतलाया कि पीतमपुरा में मेरे चाचा डॉ. रमानाथ त्रिपाठी जी भी रहते हैं। फिर तो उनके बारे में खूब बातें हुई। जब मैंने डॉ. रमानाथ त्रिपाठी जी से विजय त्रिपाठी जी के बारे में चर्चा की तो उन्होंने बतलाया कि विजय के पिताजी और मैं कानपुर में एक ही कॉलेज में पढ़ाते थे और हमारे घर भी पास-पास थे। उनके बच्चे मुझे चाचा जी ही कहते थे। आजकल इस प्रकार के संबंध दुर्लभ हो गए हैं।

संयोग से नवंबर 2018 में एक दिन निशा जी (निशा निशांतः संपादक इंद्रप्रस्थ भारती) का फोन आया और उन्होंने मुझसे कहा कि आज शाम को त्रिपाठी जी के यहाँ जा रही हूँ आप भी चलिए। निशा जी भी उनकी विद्यार्थी रही हैं। त्रिपाठी जी पर डॉ क्यूमेंटरी बनाने के विषय में उनसे बात करनी थी। चार दशक के उपरांत त्रिपाठी जी से मिलने का ये अवसर कैसे छोड़ा जा सकता था? त्रिपाठी जी को निशा जी के आने की सूचना तो थी लेकिन मेरे आने की नहीं। मिलने पर अत्यंत प्रसन्न हुए और कहा कि आपके आने की जानकारी नहीं थी। जानकारी होती तो आपके लिए कुछ पुस्तकें निकाल कर रखता। मैंने बस इतना ही कहा कि मैं तीर्थस्थानों पर कम ही जाता हूँ लेकिन आज लगता है कि किसी तीर्थस्थान पर आ गया हूँ।

त्रिपाठी जी के पुत्र अजय रंजन जी व उनके पौत्र अनादि से भी भेंट हुई। अजय रंजन त्रिपाठी जी भी दिल्ली विश्वविद्यालय के सेंट स्टीफंस कॉलेज में प्रफेसर रहे हैं। संयोग से त्रिपाठी जी का पौत्र अनादि व मेरा पौत्र प्रशस्त एक ही विद्यालय में पढ़ते हैं। अनादि प्रशस्त से दो कक्षा आगे है। वैसे त्रिपाठी जी लगभग मेरी माँ की उम्र के थे। माता जी अर्थात् त्रिपाठी जी की सहधर्मिणी से भेंट न हो सकी क्योंकि वे अस्वस्थ थीं और अंदर थीं। निशा जी उनसे मिलने के लिए अंदर चली गई थीं। मैं संकोचवश अंदर नहीं जा पाया। वापसी में रास्ते में निशा जी ने बतलाया कि जब उन्हें मेरे भी आने के बारे में पता चला तो उन्होंने कहा कि वे मेरी रचनाएँ पढ़ती रहती हैं और पसंद करती हैं। ये मेरे लिए अत्यंत प्रसन्नता की बात थी। उनसे न मिल पाने पर अफसोस हुआ।

त्रिपाठी जी का आशा जी को फोन करने का भी एक कारण था। एक पत्रिका में आशा जी की एक रचना प्रकाशित हुई थी। इसी रचना को लेकर त्रिपाठी जी ने फोन किया था। वास्तव में रचना तो एक बहाना था। रचना के बारे में बात करने के बाद त्रिपाठी जी ने आशा जी से पूछा, 'अच्छा एक बात बतलाइए कि सीताराम गुप्ता जी से आपका क्या संबंध है?।' जब आशा जी ने बतलाया कि मैं उनकी पत्नी हूँ तो त्रिपाठी जी बोले, 'तब तो आप हमारी बहूरानी हैं क्योंकि सीताराम गुप्ता मेरे विद्यार्थी रहे हैं।' आशा जी ने पुनः त्रिपाठी जी को नमस्कार किया और उनसे बातें कीं। इसके बाद मुझसे बात करवाई। पत्रिका में आशा जी की रचना के साथ पता और फोन नंबर भी दिया गया था।

मैं आश्चर्यचकित था कि त्रिपाठी जी को मेरा पता याद था और पते के आधार पर ही उन्होंने आशा जी से संपर्क किया और उसे एक अत्यंत आत्मीय संबंध में परिवर्तित कर दिया। यह संतोष की बात थी कि इस अवस्था में भी उनकी स्मृति अक्षुण्ण थी। वैसे हमने जीवन में जितना कुल पढ़ा होगा उससे अधिक तो त्रिपाठी जी को कंठस्थ था। मुझे दिल्ली विश्वविद्यालय की सायंकालीन कक्षाओं की एक घटना याद आ रही है। डॉ. रमानाथ त्रिपाठी जी ने जैसे ही कक्षा में प्रवेश किया बिजली चली गई। उस समय मोबाइल वगैरह तो होते नहीं थे अतः चारों ओर गहन अंधकार व्याप्त हो गया। उस गहन अंधकार में ही त्रिपाठी जी ने पूछा, ' पिछली कक्षा में कहाँ तक किया था?'

पिछली कक्षा में कहाँ तक हो गया था ये बतलाने पर उन्होंने बिना रोशनी व बिना पुस्तक के आगे पढ़ाना प्रारंभ कर दिया। कारण स्पष्ट है और वो कारण है कि उन्हें सब कुछ कंठस्थ था। आज ऐसे अध्यापक अथवा प्राध्यापक कम ही मिलते हैं जिन्हें बहुत कुछ कंठस्थ हो। हमारे यहाँ गुरु -शिष्य के संबंधों को बहुत महत्त्व दिया जाता रहा है और इसे पारिवारिक संबंधों से भी अधिक महत्त्व दिया जाता रहा है लेकिन आजकल स्कूल-कॉलेजों व विश्वविद्यालयों में ऐसे संबंध समाप्त नहीं तो दुर्लभ अवश्य हो गए हैं। इसके बावजूद कुछ व्यक्ति हैं जो ऊपर से न सही मन से अब भी इस परंपरा को वास्तव में जीवित रखे हुए हैं। रमानाथ त्रिपाठी जी निस्संदेह उनमें से एक और सर्वोपरि थे।

पीतंपुरा, वैशाली
नई दिल्ली।

कविता

अनोखी ख्वाहिश

डॉ.बाबू.जे

दीप सारे बुझ जाते एक साथ
एक क्षण को ही, फैलती कमरे में
रोशनी क्षीरसागर बन कर;
बधाइयाँ भर जातीं तत्क्षण-
'हैप्पी बर्थडे टु यू"।
सत्तर का जन्मदिन रहने मुझे
विशेषः चार पैरों चलना शुरू
किया मैंने अब दो पैरों चलता
शरीर व मन के दर्द-पीड़ाओं का
थोक व्यापारी बन मैं आगे तीन
पैरों चलने लगूँ, हँसाती-रुलाती
यादें खिलती डालियाँ अंदर
रखता सूखा दरख्त मैं।
मज़बूत ताले पडे सन्दूक में
वन्द आदें अगरने के बनें सबक
तो भी मरकज़ी माँग मेरी कि
कल की अपेक्षा ज़्यादा पक्व
कल की अपेक्षा ज़्यादा संयमी
कल की अपेक्षा ज़्यादा शान्त
कल की अपेक्षा ज़्यादा विवेकी
बनाके भलाई का भव्य दीप
ले जाये मुझे आगे-आगे।

पूर्व अध्यक्ष, हिंदी विभाग
यूनिवर्सिटि कॉलेज, तिरुवनंतपुरं

दर ए बुतख़ाना बंद है औरतों की समस्याओं के पेशे नज़र

प्रो (डॉ) मनु

'बुतख़ाना' कहानी संचय की कुछ चुनिंदी दास्तानों में औरतों की बदतर शिकस्त हालतों का बयान किया गया है। 'मटमैला पानी', 'शर्त', और 'अपनी कोख' आदि दास्तानों की औरतों को बुतख़ाना जाके दुआ माँगने पर भी अपनी ज़िन्दगी की मसाइलों व तक़लीफ़ों से छुटकारा नहीं मिल जाएगा। तालीम के बिना औरत की कोई अहमियत बिलकुल नहीं है। अपने कुनबे से अपनी हक़ के लिए लड़ें। कहीं भी समौझता न करें। बुतख़ाने की चार दास्तानों में आनेवाले किरदारों की जिन्दगी को उकेरने से मालूम हो जाएगा कि वे मासूमियत के कठघरे में हैं। तक़दीर का खेल इन औरतों को सबर करना पड़ता है। साधना, पार्वती, सोनामाटी, फुलवा आदि किरदारों को कोई भी क़ारी अपनी ज़िन्दगी में भूल नहीं पायेगा। मगर सोनामाटी और फुलवा की ज़िन्दगी और भी छूनेवाली है। चाँद में दाग़ की तरह फ़ुलवा सामाजिक आईने में खड़ी है। शोध यह बताना चाहे कि नियति के खिलवाड़ के किरदार के तौर पर फ़ुलवे की शख्सियत को कोई भूल न पायेगा। फ़ुलवे की दास्ताँ सुनके कौन न रो पाये? अश्क़हीन आँखों से भी अश्क़ों की बारिश लगातार होगी। (Tears will also rain from tearless eyes.)

(कुंजी शब्द : अपनी कोख, साधना , बिलाव, सोनामाटी, मटमैला पानी, फुलवा, शर्त, पार्वती, जिन्सी तिजारत)

नासिरा शर्मा की दास्तानों के अहम् किरदार हयात ए औरत ही है। उनकी तहरीर ने औरत के रंजोगम को पैनी तरीक़े से साहित्य में उकेर दिया है। जदीद दौर की औरतों की माली हाल, उनकी पारिवारिक, सामाजिक समस्याओं को पैनी ढंग से उन्होंने अपनी रचनओं में इज़हार किया है। उन्होंने शादी शुदा, गैर शादी शुदा, कामकाजी, बूढ़ी औरतों की शक्लों का बयान किया है। 'बुतख़ाना' उनकी बहुचर्चित कहानी संचय है। औरतों से जुड़ी हुई कई समस्याओं का बयान इसमें हुआ है। फ़ारसी ज़ुबान में उनकी तालीम हुई थी, ईरान की ज़िन्दगी को हक़ीक़ती तौर पर उन्होंने देखा है, समझा है, भोगा है, इसलिए ईरान की ज़िन्दगी की झलक उनकी दास्तानों की ख़ासियत है। अपने कहानी साहित्य के बारे में नासिरा शर्मा की राय है कि सच्चाई यह है कि ना मैं हुदूदों को पहचानती हूँ। मैं तो केवल दो हाथ, दो पैर, दो कान, दो आंखें एक दिल और एक दिमाग वाले इंसान को पहचानती हूँ। जहाँ भी जिस सीमा, जिस परिधि में जीवन की संपूर्ण गरिमा के साथ मिल जाए, वहीं मेरी कहानी का जन्म होता है। उनकी कहानियों में 'भिन्न समाज के पात्र होते हुए भी समाज और पात्र जाने पहचाने लगते हैं समाज में नारी की भोग्य स्थिति को उभराकर उन्होंने पुरुष की शोषक वृत्ति की ओर संकेत किया है।' (1)

आज का दौर समस्याओं से भरा हुआ है। बढ़ती हुई आबादी के साथ साथ ये समस्याएँ और भी ख़ौफ़नाक बन जायेंगी। हर शख़्स हर रोज़ अपने वक़्त एवं मसाइल से संघर्षरत होते हुए दिखाई देता है। आज की सामाजी ज़िन्दगी में मर्दों का एक अहम मुकाम है। औरतें अपनी पूरी जिम्मेदारियों को निभाते हुए ज़ख़्मी हो जाती हैं। 'भारतीय नारी त्याग,असीम श्रद्धा और अमर आशावाद का प्रतीक है। परिवार में सब की सेवा करते हुए अपना सर्वस्व परिवार को समर्पित करता है।'(2) मुकाम मर्दों के होते हुए भी जदीद दौर के साहित्य के मरकज़ में औरतें ही हैं। आज माशरे में औरतों की आवाज़ें बुलंद हैं। इसकी आवाज़ को मज़बूत करने के लिए महिला संगठनों (तंज़ीम ए औरत), स्वयंसेवी संस्थाओं (तंज़ीम ए रज़ाकार), दानिशवरों तथा मीडिया का बहुत बड़ा हाथ रहा है। इसलिए आज मज़लूम औरतें अपनी ज़ख्मों को छिपाने की कोशिश नहीं करती हैं। वो समस्याओं के सामने डट जाती हैं और अब उनमें समस्याओं का सामना करने की ताकत मौजूद है। शादी का इदारा पाक व ख़ालिस रिश्तों का मंदिर है। इसमें पति पत्नी एक दूसरे के वादे निभाते हुए जीते हैं। यक़ीनन दोनों एक दूसरे का सहारा है। अपने पूरन ख्वाहिशों को अपने पसंदीदा तौर तरीके से निभानेवाले शौहर को ही औरत अपनी ज़िन्दगी में चाहती है। नासिरा जी ने 'अपनी कोख' दास्तान में साधना नामक नारी किरदार की शादी सम्बन्धी समस्याओं का ज़िकर किया है। साधना का ख़ानदान तालीम से ज़्यादा शादी को अहमियत देता है। वह पढ़कर ऐ.पी.एस ऑफिसर बनना चाहती है । लेकिन हर औरत को ससुराल पहुँचते ही अपनी पढ़ाई खत्म करनी पड़ती है। माशरे की बहुत सी औरतें शादी से पहले कुछ हासिल करने की उम्मीद रखती हैं । मगर शादी के बाद अपनी सारी उम्मीदें दम तोड़ देती हैं।

बलात्कार या इस्मत दरी किसी भी औरत के लिए ग़ैर इंसानी हरकत ही होती है। एक बार इस्मत दरी का शिकार बन

जाने पर औरत को अपनी दर्द भरी ज़िन्दगी माशरे में जीना एकदम मुश्किल है। इर्द गिर्द के माशरे उसे एकदम ऑखें घूर कर ही देखेंगे। इन चुभती आँखों से बचने के लिए वह खुदकुशी का सहारा लेती है। कानून उसके बचाव के लिए काम नहीं आएगा; क्योंकि अदालत से इन्साफ मिलने के लिए खूब वक़्त लग जाएगा। देर से मिलनेवाला हर इन्साफ बे इन्साफ है। शराबी शौहर अपने कुनबे को किस तरह बरबाद कर देता है, इसका दिल तोड़नेवाली वज़ाहत नासिरा जी ने अपनी 'बिलाव' दास्तान में किया है। सोनामाटी के अपने शराबी पति बलवीर बेटी मैना पर इस्मत दरी कर देता है। यह रिश्तेदार होने पर भी यह कोई सबर नहीं करेगा। यहाँ जो हादसा हुआ है, वह सोनमाटी की बर्दाश्त से बाहर है। रिश्ते नाते की अहमियत को भूलकर यहां जो कुछ हुआ है; इससे पूरा कुनबा टूट गया है। 'सोनामाटी ने माँग का सिंदूर तो उसी दिन पोंछकर चूड़ियां तोड़ ली थी, जिस दिन बलवीर ने अपनी औलाद को खोया था।'(3)

सोनामाटी मैना को नारी मुक्ति संस्था के लोगों के पास रखकर घर बार छोड़कर बेटी हीरा के साथ दूर किसी जगह चली जाती है। कुनबे पे लगी रुसवाई एवं बेइज़्ज़ती को वह इसी तरह भूलने की कोशिश करती है। 'नई जगह पर जाकर बसने से दो फायदे होंगे एक तो उसकी कहानी कोई नहीं जान पाएगा दूसरे बलवीर के लौटने के भय से मुक्तिमिल जाएगी।' (4) एक दिन सोनामाटी घर लौट आई तो देख लिया कि उसकी बेटी हीरा नंगी पड़ी है। वह बेहोश है या वह मर चुकी है? इसे समझने का होश उसमें नहीं रहा। किसी ने उसे अकेली देखकर बलात्कार किया होगा। मैना ने माँ से कहा कि इस खबर की रपट पुलिस को न दे। उसका कहना है 'तुम्हें मेरी सौगंध माँ, रिपोर्ट मत लिखवा। अपमान- दर-अपमान झेलने की उम्र हीरा को नहीं। मेरे और उसके साथ हुए अत्याचार में बड़ा फर्क है। बिना साबूत के मिली बदनामी की व्यथा अब मुझसे सहन नहीं होगी। तू मुझे कुछ भी कह ले, मगर कुछ अत्याचार कुछ सच्चाई है कडवे घूँट की तरह निगलनी पड़ेगी। हीरा को शायद अपने साथ किए गए जुल्म का पता भी नहीं है।'(5) मर्द की नज़र में औरत सिर्फ़ क़ाबिल ए इस्तेमाल की चीज़ है और जिस्मानी तौर पर उसकी कीमत नापी जाती है। इसलिए औरत पर इस्मत दरी करने पर भी मर्द के दिल में गुनाह के एहसास की पैदायशी बिलकुल नहीं होगी। मर्द और औरत एक सिक्के के दो पहलू की तरह एक दूसरे का पूरक है, जब तक मर्द यह न मानेगा तब तक औरत ए मसाइल का हल नहीं मिल जाएगा।

'मटमैला पानी' दास्तान का किरदार फुलवा भी इस्मत दरी का शिकार है। इस्मत दरी से होनेवाली रुसवाई मरने के बाद भी नयी पीढ़ी ले लेगी। अपने शौहर की मौत के बाद मदद के लिए आए अफ़सर की हिदायत पर बेसहारा फुलवा अपने बच्चे को लेकर एक आदमी के साथ चली गई। आधी रात वही आदमी शराब के नशे में उसकी इस्मत दरी कर देता है। 'चक्कर के बीच मटमैला पानी को बहते और उसमें अपने को डूबते देखा। घुटन, तड़प, बेबसी और हार जाने जैसी मनस्थिति में देने फुलवा अपने को पूरी तरह कैद पाया।' (6) इस्मत दरी के बाद हर औरत पूरी तरह टूट जायेगी, उसपे पड़नेवाली सख़्त बेइज़्ज़ती व तौहीन को धोना नामुमकिन है, उसकी मौजूदगी मिट जायेगी। फिर भी उसको इंसाफ नहीं मिलता है, उसके बचाव के लिए बहुत सारे समाजी व अदालती क़ानून मौजूद हैं मगर मुकदमा जीतना और जिताना खूब मुश्किल काम है। औरत को अहेरी की तरफ़ से और भी धमकियाँ सबर करनी पड़ेगी। मरते दम तक यह ज़ख्म न सूख जाएगी। इसलिए ही इस दास्तान की फुलवा खामोश बैठती है। 'फुलवा के लिए चख चुकी थी घर उजड़ने का अर्थ समझ चुकी थी वो इस शहर से भागकर जाए कहाँ? (7) वह अपने माहौल से खूब बाख़बर है और कोई चारा न मिलने की वजह समझौता भी कर लेती है कि उसे भी इस उमर में मदद लाज़िम है। फुलवा ने न चाहते हुए इस्मत दरी किए उस अधेड़ उम्र के बाहों में ही खुद को हवाला कर दिया। यह बेपसन्दीदा या बेलोश कुर्बानी एक मामूली औरत की बहुत बड़ी मजबूरी है। इस्मत दरी को लेकर समाज का नज़रिया बेहद बुरा है। अगर मज़लूम औरत इस्मत दरी के दंश से उतरना भी चाहे तो समाज वैसा नहीं होने देगा। शिकारी ख्याल यह है कि उसने औरत का सब कुछ लूट लिया है, इसे वह अपनी आन मान समझती है। वह हमेशा के लिए बेपाक हो जाती है और सामाजिक परिवेश में औरत जीने के लिए बे क़ाबिल बन जाती है। माशरे की इस बुरे रवैया से भयभीत होकर ही मैना अपनी माँ सोनामाटी से पुलिस को रपट देने की बात को रोक लेती है और फुलवा मजबूर होकर चुप बैठती है, खमोश हो जाती है।

बाल शुगल की तरह बाल विवाह हिंदुस्तानी औरती माशरे की लानत है, समाज का अभिशाप है, जो सदियों से चली आ रही है। कई बार माँ बाप यह लगातार सोचते हैं कि जल्दी ही लड़की की शादी हो जाने पर कुनबे का बोझ हल्का हो जाएगा। इसी सोच का नतीजा लड़की को भुगताना पडता है। 'भारत में बाल विवाह की प्रथा होने के कारण छोटे-छोटे बालक बालिकाओं का विवाह कर दिया जाता था और कई कन्याओं का बाल

विवाह हो जाती थी।'(8) बाल विवाह करना और करवा देने का सबब यह भी था कि अपनी लड़की हमेशा के लिए पराये घर की बहू हो जाए और लड़की के घरवाले लड़की के सभी मामलों से रिहाई हासिल कर सकें। फिर लड़की सोचती है कि मेरी बुनियाद शौहर का घर है। 'शर्त' कहानी की पार्वती इस बात की जीती जागती मिसाल है। गरीब मज़दूर माँ-बाप मालिकन के गैरेज में रहते हैं। मालिकन पार्वती तथा उसके भाई को स्कूल भेजने के लिए मुस्तैद हो गई तो बच्चों के पिताजी बताते हैं कि 'बीबीजी पार्वती के ससुराल वाले पढ़ाई के खिलाफ़ है। अगले साल वह तेरह की हो जाएगी, तब उसकी विदाई करनी होगी। कुछ देना भी पड़ेगा। हमारी मज़बूरी समझें, लड़की के बाप होने होकर हम उसके ससुर को चिढ़ा नहीं सकता है। वह निकट देहाती लोग है। हम शहर में आकर बदल गए, मगर यह सब पसंद नहीं करते हैं।' (9) इसमें समाजिक नारी आंदोलन की अक्कासी है। छोटी उमर में ही माता-पिता लड़कियों की शादी करवा देते हैं। ऐसे में लड़कियों की तालीम ए उम्मीद -अधूरी ही रह जाएगी।

तालीम ज्ञान की गंगोत्री है। तालीम की वजह इंसान की तहज़ीब, सलूक, बर्ताव, सदाचार, अनुशासन और दायित्व बोध आदि में तरक्की होनी चाहिए। ज़्यादातर लड़कियाँ बाल विवाह के चंगुल में फंसके तालीम से दूर हो जाती है। दरअसल यह उसके हक़ का इंकार है। तालीम औरत की तरक्की की मदद है, आगे बढ़ने की सीढ़ियाँ है, उम्मीद पूरा करने का क़दम है। तालीम के जरिए अपनी ज़िन्दगी की समस्याओं को दूर दराज़ में भगा नहीं पाये तो नारी तालीम से कोई फायदा नहीं है। 'शर्त' कहानी की पार्वती को पढ़ने का मौका मालिकिन द्वारा मिल जाता है। मगर लड़की के कुनबेवाले उसे रोकते हैं। इसलिए पार्वती ज़िन्दगी भर अनपढ़ रह जाती है। 'शर्त' कहानी में नासिरा शर्मा ने नारी तालीम की समस्या का बयाँ किया है। दास्तान का किरदार पार्वती है। अनपढ़ पार्वती ज़िन्दगी के तजुर्बों को समझ लेती है कि तालीम हासिल करना हर औरत का फ़र्ज़ है। इसलिए वह अपने बच्चों को पढ़ाने के लिए तैयार हो जाती है। नासिरा जी अपनी दास्तानों के ज़रिये समाज को यह सबक़ देती हैं कि - तालीम औरतों की बदहाली में कोई बदलाव नहीं लायी है ।

'अपनी कोख' दास्तान में नारी तालीम पर रोकधाम लगाने का दर्दनाक बयान है। दास्तान का किरदार साधना पढ़कर आई.पी.एस ऑफिसर बनना चाहती है। लेकिन उनके घर वालों के लिए शादी ही अहम बात थी। परिवार वालों का कहना है 'लड़की पैदा हुआ तो ब्याही तो हो जाएगी चाहे उसके अरमान आगे बढ़ने को है नौकरी करने को है मरने की हो या फिर आगे ले जीने के हो।' (10) साधना को उम्मीद थी कि उसके शौहर और ससुराल वाले उसकी ख़्वाहिश को मुकम्मल करने की मदद करेंगे लेकिन ऐसा नहीं हुआ । साधना की सोच है 'दूसरों का सपना पूरे करने में अपने को तबाह कर रही है।'(11) औरत की हालत ऐसी होती है कि परिवार वालों के लिए वह अपने ख़्वाब को भूलकर उन्हीं के लिए जीवन बिताये। लेकिन अगर कोई इन सब का विरोध कर के पढ़ाई के लिए आगे बढ़ती है तो समाज उसका खिल्ली उड़ायेगा। नारी को तालीम हासिल करने के लिए कई तरह की समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

पितृसत्तात्मक निज़ाम औरत की पैदायशी को कमतर व हेय मानकर उसको बरखाश्त कर देता है। घरवाले लड़की के जन्म से ख़ुशी के बदले आँसू बहाते हैं। हर कहीं से यह आवाज़ आ जाती है कि लड़कियों को ससुराल में बहुत कुछ सहना पड़ेगा, लेकिन वह ससुराल जाने से पहले उसको अपने घर में भी इस्मत दरी का शिकार बनना पड़ता है, उसकी पढ़ाई पर रोकधाम लगायी जाती है। ऐसी हालत में वह अपने घर में परायी लड़की बन जाती है और वह अपने रिश्तेदारों से नफ़रत भी करती है। वर्तमान की शिकस्त हालत यह है कि आज भी लड़की को भ्रूण में ही मार देने की परंपरा बरक़रार है। नासिरा शर्मा की 'अपनी कोख' दास्तान में इसकी गहरी अभिव्यक्ति हुई है। अपने घर के घेरे में ही औरतें खुद पिस रही है। मर्द का अहेरी शकल और औरत का शिकार शकल दोनों जदीद माशरे के लिए आन शान बान की बात नहीं है। औरत ज़रूर ही हर क़िस्म के शोषण का शिकार है।

'अपनी कोख' दास्तान में साधना की एक बच्ची है और वह एक बच्चे के इंतजार में है। दुबारा साधना हामिला हो जाती है और लडकी पैदा हो जाती है। तब उसकी सास अपना गुस्सा जताते हुए बताती है कि 'मुझे दूसरी पोती नहीं चाहिए बहू। सास उसे ऍबोर्रशन करने के लिए प्रेरित करती है लेकिन साधना तैयार नहीं हो जाती है। पर साधना सास को यह वादा देती है कि तीसरी बार एक लड़के को ही जन्म दे दूंगी। तीसरी बार भी साधना गर्भवती हो जाती है तीसरा बच्चा डॉक्टर के मुताबिक लड़का है। यह सुनकर साधना को कोई ख़ुशी नहीं होती है । डॉक्टर की यह गुफ्तगू उसके लिए झुनझुनी की बात नहीं बन जाती है। साधना सोचती है कि 'लड़का पैदा हुआ तो मेरी दोनों लड़कियों को निगल जाएगा। उसके आगे सास बेटियों से बर्ताव ठीक नहीं रखेगी और क्या पता संदीप भी बेटे पाकर बदल

जाए? क्या करूँ मैं? सास को एक खुशखबरी दूँ? संदीप को दिया वचन निभाउँ? क्या करूँ?' (12) 'लडके लड़कियों में भेद करने वाला यह समाज तब तक बलवान बना रहेगा जब तक नारी उसके इशारे पर चलती रहेगी। कोख उसकी है चाहे तो पैदा करें और न चाहे न पैदा करें। चयनकर्ता वही है। अगर मर्दों को पैदा करना बंद कर देता तो समाज का क्या होगा। जिसके ठेकेदार अपनी ही जननी के विरोध में हत्याओं का काफिला बना रहा है। कानून तो वह बनाता है, परित औरतों पर करते हैं और हम उसकी भागीदारी अपना मानसिक संतुलन खो संज्ञा शून्य बन जाती है और अपने ही विरोध में खड़ी हो जाती है।' (13) आज ज़रूरी हो गया कि हर औरत अपनी आजादी के लिए अपने में बदलाव लाए, अपने आप से लड़े, अपने कुनबे में बदलाव ला दे, अपनी ख्वाहिशों के मुताबिक़ ज़िन्दगी का सफर करे। इस दास्तान की एक ग़ैर तहरीरी सच्चाई यह है कि आखिर औरत कब तक दूसरों के फ़ैसले के मुताबिक़ ज़िन्दगी ख़र्च किया जाये? गर्भधारण, जन्म देना, गर्भपात उसका अपना हक़ है। नासिरा जी चाहें इन्हीं बातों से नारी समाज जग जाये ।

दलितों के जैसे औरत भी समाज के सब से हाशिए कृत या पसंदा - तबक़ा है तो औरत वर्ग में सबसे हाशिये कृत तबक़ा वेश्याओं का है। मजबूरी, गरीबी ठगी हुई लड़कियां वेश्या व्यवसाय या जिस्म फ़रोशी कारोबार में आती हैं तो दस बीस फ़ीसदी लड़कियाँ अपनी उम्मीद के मुताबिक़ ऊँचें दर्जे की ज़िन्दगी जीने के लिए रंडी बनने आती हैं । मज़बूरी और दर्दनाक दास्तान फुलवा समाज के पेशे नज़र रखती है। फुलवा पर ग़ुरबत का हमला उसे बेचैनी की खाड़ी या ख़लीज में धकेल देता है। बेसहारा, बेचारा औरत मजबूर होने के सिवा क्या कर सकती है? फुलवा ऐसी एक बेसहारा औरत है, उसके सामने ही उसका शौहर जहरीले साँप के डंसने से मर जाता है। मदद के लिए आए अफ़सर की हिदायत पर एक आदमी के साथ फुलवा अपने बच्चे को लेकर चली गई। उस आदमी ने उसे एक कमरे में टिका दिया। शराब के नशे में वह आदमी भी इस्मत दरी करता है। वह आदमी जिस्म फरोशी कारोबार का सिर्फ़ दलाल था। दलाल ने उसे जहां बसाया था वहाँ कोई न कोई आता है। मजबूर होकर फुलवा को जिस्म का फरोख्त करना पड़ता है। अब विद्रोह करके वह पूरन थक चुकी थी। उसका बेटा धीरे धीरे माँ की जिंदगी और मोहल्ले की आबोहवा समझने लगा है। शायद रुसवाई के नाते एक दिन उसने माँ से वही सवाल उठाया जिसका इंतज़ार फुलवा कर रही थी। सच्चाई जानकर लड़का ख़ुदकुशी कर लेता है। बेटे को पढ़ाकर एक ऊँचे दर्जे की ज़िन्दगी देना वह चाहती थी। जिसके लिए सभी रुस्वाई, फ़ज़ीहत, बेइज़्ज़ती सबर करके फुलवा ने ज़िन्दगी बितायी उसके चले जाने पर वह एकदम वाहिद हो जाती है, फिर पागल हो जाती है। 'बहुत बुरा होने वाला है संभाल जाओ बहुत बुरा करने वाला है मैं बता रही हूँ।'(14) सोच के परे के मंज़र का बयान, जो नासिरा जी ने इस दास्तान में उकेरा है वह कभी भूल जाने के क़ाबिल नहीं है। औरत को जिस्मी तिजारत बनाने के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाने का मार्मिक आह्वान भी इसमें किया गया है। किरदारों को शिद्दत के साथ उकेरने में नासिरा जी कामयाब हुई हैं ।

निष्कर्षतः कह सकते हैं कि बरसों से तहज़ीब के नाम पे, शादी के नाम पे नारी का शिकार हो रहा है। माशरे में औरतों के पास जब तक औरत रहेगी तब तक मर्दों की योरिश औरतों पर होती रहेगी। औरतों को अपनी ख्वाहिशों के मुताबिक़ जीने का हक़ इस सामाजी निज़ाम में नहीं है, क्योंकि मरकज़ में मर्द है। दास्तान में सिर्फ फुलवा ही नहीं, मगर मोहल्ले की कई और भी औरतें जिस्मी फ़रोख़्त का हिस्सा है, शिकार है।

संदर्भ ग्रंथ

1. ब्रह्मस्वरूप शर्मा, आधुनिक हिंदी साहित्य, पृ.104
2. सरला महेश्वरी, नारी प्रश्न, पृ.84 3.वही, पृ.71
4. वही, पृ.72
5. वही, पृ.75
6. वही, पृ.77
7. वही, पृ.78
8. गाँधीजी, महिलाओं से, पृ.132
9. नासिरा शर्मा, बुतखाना, पृ.129
10. नासिरा शर्मा, बुतखाना, पृ. 18
11. वही, पृ.20 12.वही, पृ.26 13.वही, पृ.23
14. नासिरा शर्मा, बुतखाना, पृ.83

विभागाध्यक्ष
केरल केंद्रीय विश्वविद्यालय, पेरिया, कासरगोड
डीन (भाषा एवं साहित्य) कण्णूर, विश्वविद्यालय

'हिंदी पढ़ना और पढ़ाना हमारा राष्ट्रीय कर्तव्य है'
-लाल बहादूर शास्त्री

प्रेमचंद का 'चिमटा'

डॉ.प्रभाकरन हेब्बार इल्लत

कलम के सिपाही के नाम से जाने वाले प्रेमचंद की लेखनी ने पंद्रह उपन्यास, तीन नाटक, सात बाल पुस्तकें, दस अनुवाद, तीन सौ से अधिक कहानियाँ और संपादकीय लेख, निबंध, भाषण, भूमिकाएँ, पत्राचार आदि के जरिए हिंदी में अपनी अलग पहचान बना ली है। प्रेमा, सेवासदन, वरदान, प्रेमाश्रम, रंगभूमि', कायाकल्प, निर्मला, प्रतिज्ञा, गबन, कर्मभूमि, गोदान और मंगलसूत्र (अपूर्ण) आपकी औपन्यासिक रचनाएँ हैं, तो आपकी कहानियाँ मानसरोवर (आठ खंड) नाम से प्रकाशित हैं। कर्बला, संग्राम, प्रेम की वेदी, (नाटक) हैं तो स्वराज के फायदे, कुछ विचार, साहित्य का उद्देश्य उनके (निबंध संग्रह) हैं। अनुवाद के क्षेत्र में भी आपने अपनी प्रतिभा दिखाई। अहंकार, सृष्टि का प्रारंभ, आजाद कथा, सुखदास, चांदी की डिबिया, हडताल न्याय, पिता के पत्र पुत्री के नाम इत्यादि इसके मिसाल हैं।

साहित्य को जीवन की आलोचना तथा मानवीय अनुभूतियों को तीव्रतर बनाने के साधन के रूप में स्वीकार करने वाले प्रेमचंद साहित्य का उद्देश्य शीर्षक अपने निबंध में लिखते हैं कि साहित्य की भाषा प्रौढ परिमार्जित एवं सुंदर होती है और उसमें दिल और दिमाग पर असर डालने का गुण होता है। साहित्य में यह गुण पूर्ण रूप से उसी अवस्था में उत्पन्न होता है, जब उसमें जीवन की सच्चाइयाँ और अनुभूतियाँ प्रकट की गई हो। आगे उनका कहना है कि यदि साहित्य सुरुचि नहीं जगाता है, आध्यात्मिक और मानसिक तृप्ति नहीं प्रदान करता है, हममें गति और शक्ति नहीं पैदा करता है, सौंदर्य प्रेम जाग्रत नहीं करता है और हममें सच्चा संकल्प और कठिनाइयों पर विजय पाने की सच्ची दृढ़ता न उत्पन्न करता है तो वह बेकार है। वह साहित्य कहलाने का अधिकारी नहीं है। साहित्य का फर्ज दलित, पीड़ित, वंचित व्यक्तिहो या समूह जो भी हो, की हिमायत या वकालत करना होता है। प्रेमचंद का कहना है कि साहित्य मानव के भीतर की न्याय, वृत्ति तथा सौंदर्यवृत्ति को जागृत करे। साथ ही वह अपनी बहुज्ञता, अपने विचारों की विस्तृति से पाठकों में जागृति पैदा करे, मानसिक परिधि को विस्तृत करे, दृष्टि को सूक्ष्म, गहरी और विस्तृत बनाए। इनसे पाठक को आध्यात्मिक आनंद और बल मिले व हमारा अंतकरण प्रकाशित हो उठे। वह हममें वफादारी, सच्चाई, सहानुभूति, न्याय, प्रियता, समता के भावों की पुष्टि करें। प्रेमचंद का आग्रह है कि साहित्य हमारे जीवन को स्वाभाविक और स्वाधीन बनाए, मन का संस्कार करे, हममें दृढ़ता और कर्मशक्ति उत्पन्न करे, जीवन की दुखावस्था की अनुभूति कराए। प्रेमचंद की राय हमेशा यही रही है कि साहित्यकार का लक्ष्य केवल महफिल सजाना और मनोरंजन का सामान जुटाना नहीं होता है। वह देशभक्ति और राजनीति के पीछे चलनेवाली सच्चाई मात्र नहीं, बल्कि उनके आगे मशाल दिखाती हुई चलने वाली सच्चाई है। सच्चा कलाकार स्वार्थमय जीवन का प्रेमी कभी नहीं हो सकता है, क्योंकि साहित्य में उच्च चिंतन रहता है, स्वाधीनता का भाव रहता है, सौंदर्य का सार व जीवन की सच्चाइयों का प्रकाश रहता है। वह हममें गति और बेचैनी पैदा करता है, वह सुलाने का काम नहीं करता है, क्योंकि ज्यादा सोना प्रेमचंद की राय में मृत्यु का लक्षण है। कुछ विचार में ही संकलित उपन्यास शीर्षक निबंध में अपनी उक्त साहित्यिक मान्यताओं को और स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि साहित्य में जो यथार्थवाद है, वह हमारी आँख खोल देता है तो आदर्शवाद हमें उठाकर किसी मनोरम स्थान में पहुँचा देता है। सच्चा कलमकार (साहित्यकार समाज का पथ, प्रदर्शक होता है, मनुष्यत्व का साधक होता है। पाठकों में सद्भावों का संचार करनेवाला होता है हमारी दृष्टि को व्यापक बनाने वाला होता है।

उपर्युक्त पंक्तियाँ लिखते समय मेरे मन में ईदगाह, नामक कहानी की यादें बहती रहती थीं। कहा के प्रारंभ में ईद के दिन की सुखानुभूति का जिक्र है। वह इस प्रकार रहा है। रमजान के पूरे तीस रोजों के बाद ईद आई है। कितना मनोहर, कितना सुहावना प्रभात है। वृक्षों पर कुछ अजीब हरियाली है, खेतों में कुछ अजीब रौनक है, आसमान पर कुछ अजीब लालिमा है। आज का सूर्य देखो, कितना प्यारा, कितना शीतल है मानो संसार को ईद की बधाई दे रहा है। गाँव में कितनी हलचल है। ईदगाह जाने की तैयारियाँ हो रही हैं। इसका कारण यह भी है कि ईद प्रेम का संदेश लेकर आता है। ईद के चाँद दिखाई पड़ने पर अगले दिन सुबह नहाकर, नए कपड़े पहनकर लोग मस्जिद और ईदगाह पर नमाज पढ़ने जाते हैं। आध्यात्मिक चश्मे से देखें तो ईद प्रेम खुशी के साथ खास दर्शन लेकर आती है। सब एकसाथ मिल जुलकर अल्लाह (ईश्वर) को धन्यवाद अदा करते हैं कि खुदा ने मानव को जीवन दान दिया, रोजा रखते हुए खान-पान तक को त्यागने की ताकत प्रदान की। कथानायक हामिद जब इमली के घने वृक्षों की छाया में ईदगाह देखी तो उसका मन भर जाता है। ईदगाह प्रेम का प्रतीक धारण कर कहानी में आती है। इस क्रम में ईदगाह में प्रवेश तो प्रेम की जगत में प्रवेश है। कहानी में यह बात कही गई है कि वहाँ कोई आदमी का धन और पद नहीं देखता है। इस्लाम की निगाह में सब बराबर हैं। ईदगाह की सामूहिक क्रियाओं से मानव के दिल में श्रद्धा, नर्व, आत्मानंद भर जाते हैं। उन क्रियाओं को देखकर लगता है कि भ्रतृत्व का एक सूत्र में समस्त आत्माएँ एक लड़ी में पिरोई हुई हैं। इस दार्शनिकता के बल पर कहानी में प्रेमचंद पात्रों के भीतर भाईचारे और साझेदारी की भावना को भर कर ही छोड़ देते हैं। कहानी पढ़ते हुए ऐसा लगता है कि ईद के पिछले दिन भी प्रकृति ईद के दिन जैसी ही रही होगी, पर ईद के दिन की सुहावना अनुभूति से भरा मन आसपास के परिवेश में भी समान अनुभूति का प्रसार कर जाता है। जीवन में गरीबी का आंतक एक तरफ छाया हुआ रहता है, पर ईद के दिन सबसे मिलना-जुलना होगा, खाना-पीना होगा, कपड़ा नया आएगा, खिलौने आएँगे, तोफा मिलेगा। खासकर बच्चों का मन वृंदावन हो जाता है। ईद की चहल-पहल के बाद जीवन फिर रूखा-सूखा हो ही जाएगा, वह तो अलग बात है। पर जीवन के उस रूखे-सूखे को ईद में जगह नहीं रहती है।

दादी अमीना और हामिद की जिंदगी के पक्षों को प्रेमचंद कहानी में बीच बीच में पिरो देते हैं। जिंदगी की कच्ची यथार्थता प्रेमचंद यूँ हमारे सामने रखते हैं। किसी के कुरते में बटन नहीं है, पड़ोस के घर से सुई तागा लेने दौडा जा रहा है। किसी के जूते कड़े हो गए हैं, उनमें तेल डालने के लिए तेली के घर भागा जाता है। यह वास्तव में जीवन की अभावग्रस्तता का कथात्मक विवरण है। इससे मुक्त होने की छटपटाहट गरीब लोग कैसे करते हैं, पंक्तियाँ बताती चली जाती हैं। जीवन में सुख दुख का अविरल खेलकूद चलता रहता है। कहानी के प्रारंभ से लेकर अंत तक यह अविरलता कहानी में दिखाई पड़ती है, पर गरीबी की तंगी के बीच सुख की चरमसीमा का अनुभव दादी अमीना को प्राप्त होता है। कहानी की अंतिम पंक्तियों में अमीना के चेहरे से होकर बहते आंसुओं की बूंदों में दुख की गर्मी नहीं रहती है, प्रेम की आर्द्रता और शीतलता अवश्य है। प्रेमचंद की प्रगल्भ भाषा पढ़कर उस वक्त पाठक मंत्रमुग्ध हो उठता है। प्रेम की अनुभूति कहानी में आगे के शब्दों में साकार होता हुआ दिखाई देता है, और अब एक बड़ी विचित्र बात हुई। हामिद के इस चिमटे से भी विचित्र। बच्चे हामिद ने बूढ़े हामिद का पार्ट खेला था। बुढिया अमीना बालिका अमीना बन गई। वह रोने लगी। दामन फैलाकर हामिद को दुआएँ देती जाती थी और आँसू की बड़ी बड़ी बूंदें गिराती जाती थी। हामिद इसका रहस्य क्या समझता। यहाँ जो मेटोमोरफोसिस चित्रित किया गया है, उसमें प्रेम की निरीहता की उत्तुंगता है। अमीना यहाँ छोटे बच्चों की तरह रोने लगती है, पर उस वक्त चार, पांच साल का बच्चा बिना रोए अत्यधिक परिपक्वता के साथ अपनी जिम्मेदारी निभा रहा है, और अपने विवेक का सच्चा परिचय दे रहा है। हामिद के हाथों दिया हुआ वह चिमटा अमीना की नज़रों में प्रेम की पवित्रता का प्रतीक अवश्य है, भले ही वह लोहे का एक टुकड़ा मात्र है। पाठक को अंत में लगता है कि कहानी का चिमटा आद्यंत नायकत्व ग्रहण करने वाला पात्र जैसा अनुभूत होता है, कहीं कहीं, कभी कभी प्रेमचंद चिमटा हामिद का वित्व संपूर्ण कहानी के कलेवर में रंगोली रचता है।

हामिद के हर रोज का तजुर्बा है कि रोटी बनाते वक्त दादी माँ की ऊँगलियाँ या हाथ जल जाते हैं। यह देखते हुए हामिद के मन में दुख का भार भरता जा रहा था। इसका पता अमीना को तनिक भी नहीं था। जब हामिद के मन में ईद के दिन दादी माँ के दुख के हल का एक रास्ता निकल आया तो वह अपने लिए खाने पीने के लिए दादी माँ ने जो तीन पैसे दे रखे थे, उससे एक चिमटा लेकर आता है ताकि रोटी सेकले वक्त हाथ आगे न जल जाए। हामिद की इस कार्रवाई से न हामिद अपने चिरंतन दुख से रिहा हो जाता है, बल्कि दादी माँ को भी हर रोज के दुख से मुक्त कर देता है। हम जानते हैं कि बच्चों का दिल खाने पीने की चीजें देखकर उछलने कुटने लगता है, पर अपनी दादी अमीना के लिए हामिद अपने लिए जो प्यारा है, उसको त्याग कर देता है। यही त्याग वास्तव में प्रेम की सच्ची कसौटी है। यही सच्ची मानवता का प्रमाण है, यही हृदय का प्रकाश एवं जीवन विकास है। अमीना खुद इस बात को लेकर चकित रह जाती है कि दूसरों को खिलौने लेते और मिठाई खाते देखकर इसका मन कितना ललचाया होगा? इतना जब्त इससे हुआ कैसे? वहाँ भी इसे अपनी बुढ़िया दादी की याद बनी रही। अमीना का मन गद्‌गद हो गया। इसके उत्तर में केवल इतना बताया जा सकता है कि अवश्य लालच गया होगा, पर अपने से बढ़कर एक नन्हे से बच्चे का मन दादी के लिए कुछ करने का दृढ संकल्प लेकर चलता था। गरीबी में जीवन काटने वाला हामिद जीवन में आर्थिक विषमताओं की वजह से अपनी अनेक निजी इच्छाओं या चाहतों या सुविधा, साधनों को मन ही मन नकार दिया होगा। दिल ही दिल न कहने की ताकत पहले से ही बचपन से एक मूल्य के रूप में उसके मन में विकसित हुआ होगा। उसके बल पर हामिद ऐसा महान कार्य कर सकने में सफल निकलता है। हामिद के इस कुरबान के पीछे विवेक है, अपनापन है, साहस है, दृढ संकल्प है, करुणा का प्रवाह है, रक्षा का भाव है, ममता है, दया है, मासूमियत है। बस, पाठक अपनी आत्मा से पूछता है कि हकीकत में हामिद के प्रेम में क्या-क्या नहीं रहता है।

प्रेमचंद आदर्शवादी होते हुए भी जीवन की कच्ची, मिट्टी से दूर नहीं रहते हैं, हमें मालूम है। जब प्रेमचंद यथार्थ का आख्यान करते हैं तो ऐसे अवसरों पर वर्ग विभक्त समाज का रूप सामने उभर कर प्रत्यक्ष होता है। कहानी में यह बताया हुआ है कि ईद के दिनों मेला चलता है। सभी लोग मेले में भाग लेने के लिए शहर जा रहे थे तो सड़क के दोनों ओर अमीरों के बगीचे हैं, अमीरों के घर, घरानों की पक्की चार दीवारियाँ बनी हुई हैं। बच्चों की आपसी बातचीत के माध्यम से यह भी पता चल जाता है कि शहर के रईसों के क्लब, घर में जादू होता है। वहाँ बड़े बड़े आदमी और मेमें बैट से खेलते हैं। यह सुनकर महमूद कहता है कि हमारी अम्मीजान यदि बैट से खेलेंगे तो हाथ काँपने लगेंगे। इसके उत्तर में मोहसिन कहता है, वे तो मनों आटा पीस डालती है। जरा सा बैट पकड लेंगी, तो हाथ काँपने लगेंगे? सैकड़ों घड़े पानी रोज़ निकालती है। किसी मेम को एक घड़ा पानी भरना पड़े तो आँखों तले अँधेरा आ जाए। ऐश से भरी जिंदगी के इस परिहास के साथ कहानी के पाठक के मन में हामिद के जीवन का परिदृश्य सामने आता है। कहानी दिखाती है कि समाज में कोठी में रहने वाले मेमें और मामा है, पर कोठरी में रहने वाले हामिद जैसे लोग भी बहुत हैं। इसके अलावा समाज को निगल लेने वाली अनैतिकता के, भ्रष्टता के उल्लेख कहानी में यत्र तत्र बिखरे पड़े हैं, भले ही वे बच्चों की कोमल भावनाओं के रूप में हो। पुलिस लाईन देखते ही मोहसिन कह उठता है। अजी हजरत, यही (पहरेदार) चोरी कराते हैं। शहर के जितने चोर डाकू हैं, सब इनसे मिले रहते हैं। रात को ये लोग चोरों से तो कहते हैं, चोरी करो और आप दूसरे मुहल्ले में जाकर जागते रहो। जागते रहो। पुकारते हैं। जभी इन लोगों के पास इतने रुपए आते हैं। मेरे मामूं एक थाने में कानिस्टबिल हैं। बीस रुपया महीना पाते हैं, लेकिन पचास रुपये घर भेजते हैं। अल्ला कसम। मैंने एक बार पूछा था कि मामू, आप इतने रुपये कहाँ से पाते हैं? हँसकर कहने लगे बेटा, अल्लाह देता है। फिर आप ही बोले हम लोग चाहे तो एक दिन में लाखों मार लाएँ। हम तो इतना ही लेते हैं, जिसमें अपनी बदनामी न हो और नौकरी न चली जाए। इस प्रकार की बतकही चलते वक्त भी न्याय का पक्ष हामिद लेता है, उसका विवेक पाप का पक्ष नहीं लेता है।

कहानी में बाल कथापात्रों के रूप में हामिद के अलावा महमूद, मोहसिन, सम्मी, नूर आदि आते हैं। हामिद को छोड़कर बाकी सबके पास पैसे बहुत हैं, जैसे महमूद के पास बारह पैसे हैं, मोहसिन के पास पंद्रह पैसे हैं, पर हामिद के पास सिर्फ तीन पैसे हैं। निगोडी हामिद पैसे का वजन तक नहीं जानता है। वह बच्चों के सामने नादान होकर पूछ बैठता है कि एक सौ तो पचास से ज्यादा होते हैं न कहानी के पात्र सम्मी और नूर के पास भी पैसे कम नहीं रहे हैं। इससे पता चलता है कि कहानी के बच्चे समाज के विभिन्न तबकों के प्रतिनिधि हैं, वे उसके अनुकूल खिलौनों की खरीदारी करते हैं। इससे इसका पता चल जाता है कि कथापात्रों की मानसिकता सामाजिक जीवन की संरचना के अनुरूप निर्धारित होता है। वे अपने दिन-ब-दिन के जीवन में उसी के मुताबिक व्यवहार कर दर्शाएँगे। इसलिए कहानी के बालकों के व्यवहारों को वर्गगत व्यवहार के रूप में देखना ही माकूल है। अर्थ का असंतुलित वितरण और उससे उत्पन्न जीवन विकट परिस्थिति को कथात्मक अंदाज में प्रेमचंद कहानी में कह जाते हैं साथ ही यह भी बताते हैं कि अर्थ के बल पर समाज के विविध संसाधनों पर कैसे सत्ताधारी वर्ग (विशेषकर अर्थसत्ता) अपना कब्जा स्थापित कर जाता है और उसका आनंद कैसे किया जा सकता है। अनगिनत पैसों से अमीर घराने के लोग खिलौने, मिठाई, बिगुल, गेंद आदि खरीदने की बात करते हैं, लेकिन अकिंचनता में रहते हुए भी हामिद प्रसन्न चित रहता है। हामिद के अब्बाजान और अम्मीजान गुजर गए हैं, पर वह समझता है कि अब्बाजान पैसा कमाने कहीं गए हुए हैं और अम्माजान अल्लाह मियाँ के घर से उसके लिए नियामतें लेकर आएँगी। बालक के मन में यह मिथक आशा की किरण बनकर रह जाती है, जीवन में सपना मिथक कभी दिए का काम कर जाता है। विषमता भरी जीवन चलाते हुए हामिद कल्पना के सहारे अपनी तंगी जीवन को खुशी खुशी से पार कर जाता है। ऐसे मिथक भी वास्तव में वर्गाधारित समाज का ही उत्पाद है। वर्ग विभक्त समाज में जो अंतर्विरोध दिखाई देते हैं, उसको छुपाने या कभी नशे के रूप में मिथकों का इस्तेमाल किया जाता है। कैसे प्रेमचंद जीवन की असंगतियों को पकड़ते हैं, देखते ही बनता है। कहानी में इसका भी पर्याप्त संकेत है कि हामिद के पिता हैजे की बजह से गुजर गए थे तो माँ पीली पीली होते- होते मिट्टी में मिल गई थी। इसकी संभावना भी रद्द नहीं की जा सकती है कि आर्थिक विषमता से ग्रस्त होकर इलाज न करवा सकने की वजह से गुज़र गई होंगी। कहानी इंगित करती है कि जीवन की सुविधाओं, वैभवों पर गरीब, कंगलों की कहाँ तक पहुँच होती है। 'गरीबदास' होते हुए भी मूल्यों की अमीरी हामिद के पास पर्याप्त मात्रा में है, अमीना के पास भी। आर्थिक विपन्नता से अमीना यहाँ तक की ईद को अभागी (निगाडी) कहती है। बीच-बीच में ऐसा लगता है कि कहानी के कलेवर पर स्टेतेस्कोप रखकर देखें तो जीवन के महीन स्पंदन नए नए आकार धक-धक करते हुए हमारे सामने उपस्थित होते जाएँगे।

कहानी में सुख दुख, प्यार वैभव अपनी चौकड़ी भरकर शब्दों के भीतर अपना खेल खेलते हैं। जैसे देखिए कि अपने पोते को लेकर अमीना बेबस हो उठती है कि चार-पाँच साल का बच्चा कैसे ईद हो आएगा तो हामिद तसल्ली देता है कि सबसे पहले मैं आपके पास ईदगाह से वापस पहुंच आऊँगा। पहले दुख की कालिमा, तुरत बाद सुख का उजाला। हामिद इतना खुश है, पूछिए मत कि वह ईदगाह दौड़े-दौड़े जा रहा है, जैसे उसके नन्हे नन्हे पैरों पर पर लग गए हों। वह ईदगाह पहुँच गया, नमाज़ खत्म हो गई, लोग आपस में गले मिलते गए। क्षण भर के अलौकिक आध्यात्मिक अनुभव से मुक्त होकर फिर दुनियादारी में प्रवेश कर गए। बात इतनी है कि धार्मिक आध्यात्मिक अनुष्ठान के बाद सब के सब मिठाई और खिलौने की दुकान में धावा करने लगे, बच्चे हिंडोलों पर झूलने लगे, घोड़ों और उँटों पर बैठने लगे, चर्खियों पर बैठकर चक्कर काटने लगे। पर कहानी का केंद्रीय पात्र हामिद दूर खड़ा रहा। तीन पैसे वाला हामिद उन सबका चक्कर नहीं लगा सकता है। चकरा- चकरी के उपरांत हामिद के सारे के सारे दोस्त खिलौने खरीदने के लिए दुकान की तरफ निकल पड़े। तब का चित्रण कहानी में इस प्रकार रहा है। इधर दुकानों की कतार लगी हुई है। तरह तरह के खिलौने हैं सिपाही और गुजरिया, राजा और वकील, वाह। कितने सुंदर खिलौने हैं। महमूद सिपाही लेता है, खाकी वर्दी और लाल पगडीवाला, कंधे पर बंदूक रखे हुए, मालूम होता है अभी कवायद किए चला आ रहा है। मोहसिन को भिश्ती पसंद आया। कमर झुकी हुई है, ऊपर मशक रखे हुए हैं। मशक का मुंह एक हाथ से मोहा पकडे हुए हैं। कितना प्रसन्न है। शायद कोई गीत गा रहा है। बस, मशक से पानी उड़ेला ही चाहता है। नूरे को वकील से प्रेम है। कैसी विद्वत्ता है उसके मुख पर। काल्रा घोगा, नीचे सफेद अचकन, अचकन के सामने की जेब में घड़ी, सुनहरी जंजीर, एक हाथ में कानून का पोथा लिए हुए। मालूम होता है, अभी किसी अदालत से जिरह या बहस किए चले आ रहे हैं।' पर हामिद के पास कुल तीन पैसे हैं। इतने महंगे खिलौने वह कैसे ले? वह यह समझता है कि खिलौना कहीं हाथ से छूट पड़े, तो चूर चूर हो जाए, जरा पानी पड़े तो सारा रंग धुल जाए, ऐसे खिलौने लेकर वह क्या करेगा, किस काम के मोहसिन दावा करता है कि उसका भिश्ती रोज पानी सांझ सवेरे ले आएगा, महमूद का सिपाही घर का पहरा करेगा, नूरे का वकील खूब मुकदमा लड़ेगा, सम्मी की धोबिन कपड़े धोएंगे। हामिद खिलौने से दूर, मिठाइयों (गुलाब जामुन, सोहन हलवा, रेवड़ी) से दूर। वह ललचाई आँखों से केवल देखता रहा। हामिद का नैतिक बल इतना चढ़ा हुआ है कि वह खिलौने-मिठाई की चाहत मन में रहते हुए उसपर झपट पड़ता नहीं, खास प्रकार का आत्म-नियंत्रण अपने लिए, दूसरों के लिए (दादी के लिए) रखता है। इसी बीच कहानी में इसका भी खुलासा है कि कैसे वर्गविभक्त समाज का एक तबका दूसरे तबके के साथ व्यवहार करता है। देखिए- हामिद, केवड़ी ले जा, कितनी खुशबूदार है। हामिद को संदेह हुआ, यह केवल क्रूल विनोद है, मोहसिन इतना उदार नहीं है, लेकिन यह जानकर भी वह उसके पास जाता है। मोहसिन दोने से एक रेवड़ी निकालकर हामिद की ओर बढ़ाता है। हामिद हाथ फैलाता है। मोहसिन रेवड़ी अपने मुंह में रख लेता है। महमूद, नूरे और सम्मी खूब तालियाँ बजा - बजाकर हंसते हैं। हामिद खिसिया जाता है। ऐसा व्यवहार बच्चे अपने हिसाब से नहीं करते हैं, अपने घर के परिवेश से अर्जित संस्कृति के बल पर करते हैं या करते होंगे। खुद बालक हामिद को लगता है कि

यह क्रूर विनोद है। मोहसिन के पास खूब पैसे हैं, अमीरी का भाव है, बाकी सब दोस्त उसके साथ अड़े खड़े रहते हैं। जब ऐसा अन्याय सामने होता है तो कोई मोहसिन का विरोध नहीं करता है, पर ताली बजाकर हँस उठते हैं और समर्थन करते हैं। हामिद के लिए मिठाई नेमत की चीज़ नहीं होती है, वह यह भी समझता है कि सेहत के लिए मिठाई अच्छी नहीं मानी जाती है। इसी बीच एक लोहे की दुकान दिखा तो हामिद उसपर घुस जाता है, एक चिमटा दिख गया और मोल भाव पूछ के तीन पैसे में एक चिमटा खरीद लेता है। वह इसलिए चिमटा खरीदता है, जिससे कमाई का उपयोग हो। हामिद ऐसा सोचता है कि मिट्टी के खिलौने जल्दी ही खराब हो जाएँगे। बस पल भर का संतोष मात्र खिलौना दे सकता है, मिठाई से तंदरुस्ती खराब हो उठेगी। लेकिन इस चिमटे से दादी की समस्या हल हो जाएगी। दादी के प्यार में खरीदे गए चिमटे का किस्सा गाँव में फैल जाएगा और दुआएँ हामिद के लिए सारे लोग देंगे। खिलौनेवालों तथा मिठाई खानेवालों की तारीफ़ की पुल नहीं बांधी जाएगी। हामिद यहाँ से लेकर कहानी में अपना भरपूर मिजाज दिखाता है, सब पर अपना रौब जमा देता है। वह चिमटा अब खिलौना नहीं रहा है। हामिद ने उसे इस तरह कंधे पर रखा मानो बंदूक है और वह शान से अकड़ता हुआ संगियों के पास आया। मोहसिन हामिद के खरीदे हुए चिमटे को देखकर उसे पागल कहता है तो हामिद कहता है कि जरा अपना मिश्ती जमीन पर गिरा दो। सारी पसलियाँ चूर चूर हो जाएँ। चिमटा हामिद के लिए सब कुछ है। वह खिलौना क्यों नहीं है? अभी कंधे पर रखा, बंदूक हो गई। हाथ में ले लिया, फकीरों का चिमटा हो गया, चाहूँ तो इससे मजीरे का काम ले सकता हूँ। एक चिमटा जमा दूँ, तो तुम लोगों के सारे खिलौनों की जान निकल जाए। तुम्हारे खिलौने कितना ही जोर लगाएँ मेरे चिमटे का बाल भी बांका नहीं कर सकते। मेरा बहादुर शेर है.... चिमटा। मेरा बहादुर चिमटा आग में, पानी में, आंधी में, तूफान में बराबर डटा खड़ा रहेगा। इस लोहे के चिमटे ने सबको मोहित कर डाला।

कहानीकार प्रेमचंद अपने पात्र हामिद में न्याय का बल तथा नीति की शक्ति भर देते हैं। कहानी में चिमटा वही साकार रूप में आता है। चिमटे के आगमन से कहानी के पात्र दो घुटों में बंट जाते हैं। एक और हामिद और दूसरी ओर बाकी सब। कहानी के पाठक को उस वक्त लगता है कि एक ओर नीति, न्याय खड़ा हो तो दूसरी ओर अनीति और अन्याय। एक ओर मिट्टी दूसरी ओर फौलाद। प्रेमचंद (हामिद) का फौलादी चिमटा जो बहादुरी के साथ आग में कूदता है, वह सदा, सदा अमर रहेगा। कहानी में यह हिस्सा मनोहर बन पड़ा है, जो बार, बार पढ़ने लायक है, अगर कोई शेर आ जाए, तो मिया भिश्ती के छक्के छूट जाएँ, मिया सिपाही मिट्टी की बंदूक छोड़कर भागे, वकील साहब की नानी मर जाए, चोगे में मुँह छिपाकर जमीन पर लेट जाएँ। मगर यह चिमटा, यह बहादुर, यह रुस्तमे हिंद लपककर शेर की गरदन पर सवार हो जाएगा और उसकी आंखें निकाल लेगा। खास बहस के बाद संधि हो गई, मन बदल गया तो मोहसिन अपना भिश्ती हामिद के हाथ देता है, और हामिद से चिमटा थोड़ी देर के लिए लेता है। चिमटा बारी बारी से सबके हाथ चला गया। सबके मन में चिमटे का सिक्का खूब जम गया है। महमूद की पंक्तियों में उसका एहसास पाठक को हो जाता है। कहानी की पक्तियाँ इस प्रकार है, अम्माँ ज़रूर कहेंगी कि मेले में यही मिट्टी के खिलौने तुम्हें मिले? 'तीन पैसों ही में तो उसे सब कुछ करना था और उन पैसों के इस उपयोग पर हामिद के लिए पछ्लावे की बिलकुल जरूरत न थी। फिर अब तो चिमटा रुस्तमे- हिंद है और खिलौनों का बादशाह। मेले वाले तो ग्यारह बजे तक गाँव वापस आए तो गाँव में धूम मच गई। मोहसिन के हाथों से भिश्ती गिर गई और वह सुरलोक सिधर गया। नूरे के वकील भी फौरन मृत्युलोक गया, महमूद का सिपाही भी बंदूक लिए जमीन पर गिर गया, पर अमर रहा चिमटा, बचा रहा मूक प्रेम (स्नेह), बचा रहा न्याय, बची रही नीति। प्रेम की प्रगल्भता रही, सद्भावना रही, त्याग की महिमा रही, आखिरकार विवेक की जीत हुई।

इस कहानी के भीतर एक विशिष्ट प्रकार के सौदर्यबोध का विस्तार हुआ है। प्रेमचंद अपने शब्द रूपी चाबी के माध्यम से जीवन के बंद ताले को बहुत आराम से खोल देते हैं। कहना यह चाहता हूँ कि भाषा का विचारधारात्मक प्रयोग यहाँ हुआ है। एक खास विचार से संचालित होकर प्रेमचंद जीवन के एक नियत स्थान में खड़े होकर उसके भीतर कार्यरत सत्तात्मक संबंधों को खोल देते हैं। यहाँ एक खास वर्ग के साथ की पक्षधरता या प्रतिबद्धता और सहानुभूति खुल जाती है। नूतन सौंदर्यबोध का राजनीतिक प्रयोग यहाँ किया गया है। मैं यह कहना चाहता हूँ कि कहानी पाठ के भीतर से जीवन के सूक्ष्म इतिहास को प्रेमचंद खोलते हैं। बच्चों के माध्यम से कही गई प्रस्तुत कहानी में समाज के वर्चस्वशील शक्तियों के कार्य पर्दाफाश हो जाते हैं। वर्ग के चरित्र को उद्घाटित करके शोषण के रूप को, उससे उत्पन्न विसंगति को कहानी समझाती है। मानव के कर्तृत्व का रु पायन किस प्रकार होता है, उसका सामाजिक प्रयोग किस प्रकार किया जाता है, उसे भी कहानी के शब्द सिखा देते है । श्रेणीबद्ध समाज के भीतर की असंगतियों को बेनकाब करने के साथ कहानीकार अंत में गाँधीवादी चेतना से प्रभावित होकर मन परिवर्तन के सिद्धांत को आत्मसात करते हुए सभी पात्रों को 'ईदगाह' के 'प्रेम-त्याग' का पवित्र-वेदी पर एक साथ खड़ा करते हैं, जीवन में सकारात्मक परिवर्तन लाते हैं। वे हमें उच्चतम लोकतंत्र की तरफ ले जाते हैं। जो भी हो, प्रस्तुत सुखांत कहानी में प्रेमचंद का चिमटा उसी प्रेम -त्याग पर आधृत जीवन व्यवस्था का सशक्त प्रतीक बन कर वाचक के हृदय में अपना स्थान ग्रहण कर अब भी जी रहा है।

संदर्भ सूची:

(1) प्रेमचंद, कुछ विचार, सरस्वती प्रेस, बनारस, 1945, पृ. 3-21, मुद्रित। (2) वही, 50-1 (3) प्रेमचंद, ईदगाह, मानससरोवर (खंड एक), http:// hindikosh.in. 30-46, ई पुस्तक (4) Democracy hopes to create people who love, are compassionate, caring, empathetic, involved, proactive and willing to make sacrifice. T.M. Krishna, Reshaping Art, Aleph Book Company, New Delhi, 2018, P. 105. Print.

प्रोफेसर, कालिकट विश्वविद्यालय
मलप्पुरम ज़िला, केरल।

हिंदी उपन्यासों में भारतीय समाज की दृष्टि और किन्नर समुदाय का जीवन संघर्ष

डॉ.नवनाथ गडेकर

शोध सारांशः

हिंदी उपन्यासों में भारतीय समाज की दृष्टि में किन्नर समुदाय का जीवन सदियों से उपेक्षित, बहिष्कृत, तिरस्कृत है। कोई भी परिवार अगर किन्नर संतान को अपने साथ घर में रखना चाहता है तो उस परिवार को समाज में इज्जत, मान, सम्मान नहीं मिलता इसी कारण वे उसे घर के बाहर जाने के लिए प्रेरित करते हैं। अपनी संतान मानकर अंत तक उसे अपने साथ रखने के लिए कोई भी परिवार तैयार नहीं है। भारतीय समाज में किन्नर के रूप में जन्म मिलना अभिशाप माना जाता है। दूसरी बार किन्नर के रूप में जन्म ना मिले यह कामना की जाती है। किन्नरों के जीवन संघर्ष पर लिखे गए उपन्यासों का अध्ययन करने के बाद यह पता चला कि उनका जीवन संघर्षों से भरा हुआ है। समाज में उनको अपना कहकर अपने पास रखनेवाला एक भी घटक नहीं है। उनको समाज की नजरों में सदियों से उपेक्षित, तिरस्कृत, बहिष्कृत के रूप में जीवन जीना पड़ रहा है।

बीज शब्दः

किन्नर, भारतीय, समाज, जननांग, उपेक्षित, बहिष्कृत, तिरस्कृत, वेदना, संघर्ष, मानवता आदि।

मूल आलेखः

इक्कीसवीं सदी में विविध विमर्शों पर साहित्यकारों ने लेखनी चलाकर उसे प्रस्तुत करने का काम किया है। विविध विमर्शों के तहत दलित विमर्श, स्त्री विमर्श, किसान विमर्श, वृद्ध विमर्श, बाल विमर्श के साथ-साथ किन्नर विमर्श को लेकर हिंदी साहित्य की विविध विधाओं में विपुल मात्रा में लिखा जा रहा है। भारतीय समाज में एक वंचित घटक है जो सदियों से अंधकार में जीवन जी रहा है वह है किन्नर अर्थात हिजड़ा। इस समुदाय को जननांग में दोष के कारण समाज से बहिष्कृत किया गया है। इस समुदाय की लिंग के आधार पर स्त्री या पुरुष के रूप में पहचान नहीं होती। इसी कारण उनको 15 अप्रैल, 2014 में मिली कानूनी मान्यता के अनुसार 'थर्ड जेंडर' या 'ट्रांसजेंडर' इस नाम से जाना जाता है। सरकारी दस्तावेजों में भी इनका उल्लेख वर्तमान दिनों में इसी नाम से हो रहा है। भारत में प्राचीन काल से इस विशेष वर्ग समुदाय का उल्लेख हुआ है। महाभारत जैसे श्रेष्ठ ग्रंथ में शिखंडी नामक किन्नर का उल्लेख मिलता है। अलाउद्दीन खिलजी के शासनकाल में एक मलिक गाफूर नाम का किन्नर था। इसने खिलजी के शासनकाल में अपनी अलग विशेष पहचान बनाई थी। वे प्राचीन भारत से लेकर आज तक उपेक्षित ही रहे हैं।

वर्तमान समय में जहाँ कहीं किन्नर समुदाय को लेकर साहित्य लिखा गया है वहाँ केवल मनोरंजन करनेवाले पात्र के रूप में उनका चित्रण हुआ है। उनको साहित्य में भी नायक के रूप में स्थान नहीं मिला। इक्कीसवीं सदी में किन्नर विमर्श हिंदी साहित्य में अपनी जड़ें मजबूत करता हुआ दिखता है। कई साहित्यकारों ने अपनी लेखनी के माध्यम से किन्नर समुदाय के जीवन संघर्ष का चित्रण अपनी रचनाओं में किया है। नीरजा माधव का 'यमदीप', डॉ.अनसुइया त्यागी का 'मैं भी औरत हूँ', महेंद्र भीष्म का 'किन्नर कथा' और 'मैं पायल' प्रदीप सौरभ का 'तीसरी ताली', निर्मला भुराड़िया का 'गुलाम मंडी', चित्रा मुद्गल का 'पोस्ट बॉक्स नं. 203', नालासोपारा, भगवंत अनमोल का जिंदगी 50-50 और डॉ.लता अग्रवाल का 'मंगलामुखी' आदि उपन्यासों के संपूर्ण कथानक में किन्नरों के जीवन संघर्ष, पीड़ा, दर्द, वेदना का चित्रण किया है। भारतीय समाज में उनके जीवन संघर्ष को स्थापित करने में उपन्यासकारों का बहुत बड़ा योगदान रहा है।

हिंदी साहित्य में किन्नरों के जीवन संघर्ष पर नीरजा माधव द्वारा लिखा हुआ 'यमदीप' पहला उपन्यास माना जाता है। इसमें लेखिका ने समाज से बहिष्कृत, तिरस्कृत, उपेक्षित किन्नर समुदाय के संघर्षमय जीवन और उनकी मानवता का भी चित्रण किया है। उपन्यास का शीर्षक प्रतीकात्मक है। भारतीय समाज में दीपावली का त्यौहार बड़े धूमधाम से मनाया जाता है। इस त्यौहार की पूर्व संध्या के समय घर के बाहर 'यम' के लिए दीप जलाया जाता है। यह दीप टीम-टीम कर प्रकाश देने का काम करता है परंतु यम के लिए जलाया गया दीप है ऐसा समझकर पलटकर उसे देखने के लिए किसी के लिए भी जाना उचित माना नहीं जाता। उसकी पूजा-अर्चना, आरती कुछ भी नहीं होती वह दीप होकर भी समाज की गलत धारणा के कारण तिरस्कृत है। इस प्रकार किसी के घर में किन्नर बच्चा अगर जन्म लेता है तो वह भी उसके माता-पिता, भाई-बहन आदि परिवारवालों और समाज की दृष्टि से उपेक्षित, बहिष्कृत हो जाता है। 'यमदीप' उपन्यास में भी नाजबीबी नामक एक किन्नर के जीवन संघर्ष का चित्रण किया है। एक परिवार में जब इसका जन्म हुआ तब उसके माँ-बाप बहुत खुश थे। उन्होंने उसका नाम नंदरानी रखा था। जैसे ही उनको पता चला कि अपना बच्चा हिजड़ा है तब से वे परेशान होते हैं। फिर भी माँ नंदरानी से बहुत प्यार करती है। वह पढ़ाई में बहुत तेज थी। आठवीं कक्षा में पढ़ते समय उसके शरीर पर दाढ़ी, मूँछ आ गए। इसी कारण वह परेशान हो गई पूरी तरह से दिल से टूट गई। समाज के लोग उसे देखकर हँसने लगे इसी कारण उसने स्कूल जाना छोड़ दिया। समाज के डर से माँ-

बाप भी परेशान है अब क्या करें? नंदरानी को एक दिन ऐसा लगता है कि यहाँ पडे रहने से कोई फायदा नहीं है। यहाँ केवल प्रताड़ना मिलनेवाली है यह सोचकर वह हिजड़ों की दुनिया में रहने के लिए चली जाती है। वहाँ जाने के बाद वह नंदरानी से नाजबीबी बन जाती है अर्थात उसका नाम नाजबीबी रखा जाता है। नीरजा माधव किन्नरों की दशा और दिशा के संदर्भ में यमदीप उपन्यास में कहती हैं, जन्म का बधावा गाने के लिए हिजड़े के समूह को प्रथम बार बहुत गहराई से देखा और महसूस किया एक अव्यक्त छटपटाहट और वेदना से भरी आँखें दिन का दोष क्या है प्रकृति के व्यवहार मजाक को ढूँढने और अभिशप्त जिंदगी जीने को मज़बूर क्यों है। यह लोग अपने परिवार गाँव से बिछड़कर एक असामान्य जीवन जीते हुए इन लोगों को क्या अपने माता-पिता, भाई-बहन, याद नहीं आते होंगे, परिवारवाले भी इसे बिछड़ता सामान्य जीवन जी पाते होंगे। कैसी होती है इनकी आंतरिक जिंदगी क्या हमारी तरह नहीं ऐसा तो नहीं होता होगा अन्यथा क्यों इनका भारी स्वभाव उतना कड़ा और खट्टा होता है। इनके खुरदुरे मूँछ, दाढ़ी से सराय चेहरे की तरह मेकअप के गहरे आवरण के पीछे यह अपने जीवन की किस बदरंगता को छुपाते फिरते हैं कौन लेता है इनके खाने-पीने और जीवन यापन का उत्तरदायित्व स्कूलों या सरकारी दफ्तरों के कुर्सियों पर क्यों नहीं बैठे दिखाई देते यह लोग ?1 किन्नरों का जीवन खतरनाक है, यह लेखिका के उपर्युक्त कथन से स्पष्ट होता है। एक मानव होकर भी उनको जीवन जीने के लिए संघर्ष करना पड़ता है। सभ्य समाज की तुलना में किन्नर समुदाय के लोगों में मानवीयता होती है। एक पागल स्त्री लड़की को जन्म देकर मर जाती है। उस लड़की को सभ्य समाज के लोग नाजायज संबंध से पैदा हुई औलाद समझकर संभालने के लिए तैयार नहीं है। नाजबीबी समाज ने ठुकराई हुई उस नाजायज लड़की को संभालने का भार अपने कंधों पर लेती है। नाजबीबी ने उस लड़की को बड़ी उदारता से अपनाया। इससे बड़ी मानवता क्या हो सकती है? इस संदर्भ में भारती अग्रवाल लिखती हैं, दैहिक दृष्टि से भिन्न समाज से तिरस्कृत तृतीय लिंग मानवीयता की मिसाल पेश करता है। मानव कहे जाने वाले लोग जिस सीमा पर आकर मानवीयता से किनारा कर लेते हैं वहाँ निरंतर अनदेखा किए जानेवाले किन्नर समाज की मानवीयता का पक्ष हमारे समक्ष खुलता है। नाजबीबी हो छैलू या फिर चमेली या महताब गुरु सभी का चरित्र गरिमामय उपस्थिति दर्ज करता है।2 इस प्रकार प्रस्तुत उपन्यास में लेखिका ने किन्नर समुदाय के लोगों की मानवीयता और उनके जीवन संघर्ष का विस्तृत रूप से चित्रण किया है।

किन्नरों के जीवन संघर्ष को लेकर लिखे गए उपन्यासों में डॉ.अनुसुइया त्यागी द्वारा लिखा 'मैं भी औरत हूँ'- बहुचर्चित है। इस उपन्यास की लेखिका स्त्री रोग एवं प्रसूति विशेषज्ञ है। इस उपन्यास में गाजियाबाद के नजदीक काजीपुरा ग्राम की रोशनी एवं मंजुला नामक दो बहनों की कहानी है। उनके परिवारवालों को भी मालूम नहीं था कि यह दोनों भी किन्नर हैं। रोशनी युवा अवस्था में पहुँचते ही एक दिन बलात्कार का शिकार हो जाती है। बलात्कारी लड़का रोशनी को हिजड़ा के रूप में देखकर हिजड़ा कहकर भाग जाता है। उस समय से रोशनी परेशान है। लेखिका ने रोशनी के मन में खड़े हुए कई प्रश्नों का जिक्र करते हुए लिखा है, रोशनी काँप उठी तब क्या उस लड़के ने जो कहा था वह सच है, वह लड़की नहीं है, वह औरत नहीं है, तब फिर मैं क्या कहूँ क्यों इसीलिए मुझे महामारी प्रारंभ नहीं हुई? क्या मेरी शादी नहीं हो पाएगी? क्या मैं कभी माँ नहीं बन पाउँगी? ओह क्या मैं नपुंसक हूँ पर फिर मेरी उपरी बनावट स्तन आदि तो ठीक है पर अंदर कुछ ठीक नहीं है, यह सब मुझे कौन बताएगा?[3] रोशनी को बलात्कारी लड़के की कही हुई बात खटकने लगती है। मंजुला और रोशनी की माँ अपने दोनों लड़कियों को मासिक स्त्राव शुरू नहीं हुआ था इसी कारण चिंतित है। वह मन ही मन सोचती है कि दोनों लड़कियों में से किसी को भी अभी तक मासिक स्त्राव आरंभ नहीं हुआ। रोशनी तो खैर अभी पंद्रह वर्ष की है पर मंजुला तो सत्रह की होकर अठारहवें में लगभग गई है।[4] मंजुला और रोशनी को मासिक स्त्राव प्रारंभ न होने के कारण उनकी माँ इलाज के बारे में सोचती है। एक दिन अपने पति और दोनों लड़कियों को लेकर वह गाजियाबाद के डॉक्टर रमन्ना के नर्सिंग होम में लेकर जाती है। वहाँ डॉक्टर अल्ट्रासाउंड के बाद बताती है कि बड़ी बेटी मंजुला के शरीर में भ्रूण आदि है और ऑपरेशन के द्वारा उसकी योनि को विकसित किया जा सकता है। वह पूर्ण रूप से स्त्री बन सकती है और विवाहोपरांत माँ भी बन सकती है। परंतु छोटी लड़की रोशनी के शरीर में भ्रूण नहीं है अतः वह भी योनि को विकसित करने के बाद स्त्री बन जाएगी परंतु माँ कभी भी नहीं बन पाएगी। डॉक्टर की सलाह लेकर दोनों को ऑपरेशन के द्वारा स्त्री बनाया जाता है। उनकी बड़ी लड़की मंजुला की शादी डॉ.विपिन के साथ हो जाती है और कुछ वर्ष के बाद उनको एक लड़का भी हो जाता है।

रोशनी स्त्री तो बन गई है परंतु पूर्ण स्त्री नहीं है। वह उच्च शिक्षित होकर पुणे की ग्लेनमार्क नामक कंपनी में सीईओ के रूप में नौकरी करने लगती है। उसका विवाह गुजराती युवक ओंकार पटेल के साथ हो जाता है। कुछ दिनों के बाद दोनों सोरोगेटेड मदर से एक बच्चा जनवाना चाहते हैं। एक मराठी 'इला' नामक स्त्री सोरोगेटेड मदर बनने के लिए तैयार हो जाती है, उसे भी कुछ रुपयों की आवश्यकता थी। एक दिन इला आठ महीने के गर्भ को लेकर भाग जाती है। अंत में वे एक अनाथालय से एक नवजात शिशु को गोद में लेते हैं। दोनों भी अपने रिश्तेदारों को इस बात का पता लगने नहीं देते। वे कहते हैं कि रोशनी ने ही इस बच्चे को जन्म दिया है, संयोग से उस बच्चे का चेहरा भी रोशनी से मिलता जुलता था। उसका नाम वे तेजस्विनी रख देते हैं दोनों भी उसको लाड प्यार से संभालते हैं और पढ़ाते भी हैं। उसका नंबर आईआईटी, दिल्ली में लगता

है। तेजस्विनी पूरे देश में द्वितीय स्थान पर आती है और मयंक सावंत पहले स्थान पर आता है। संयोग से दोनों में घनिष्ठ मित्रता होती है। मयंक की माँ को स्तन का कैंसर होने के कारण उसकी मृत्यु हो जाती है। रोशनी मयंक को अपने घर बुलाती है। इस समय मयंक अपनी माँ के द्वारा लिखी चिट्ठी का खुलासा करता है उस चिट्ठी के कारण पता चलता है कि मयंक रोशनी और ओंकार का ही बेटा है। वे उसे अपने पास रखकर उसकी पढ़ाई पूरी करते हैं। बाद में मयंक और तेजस्विनी का विवाह किया जाता है। इस प्रकार मयंक को अपना बेटा होते हुए भी दामाद के रूप में उनको स्वीकारना पड़ता है। लेखिका स्वयं एक स्त्री रोग विशेषज्ञ है, उन्होंने हिजड़ों के संदर्भ में बताया है कि किसी के घर में हिजड़ा जन्म लेता है तो घबराने की कोई बात नहीं है आधुनिक चिकित्सा पद्धति के द्वारा उपचार किया जा सकता है। प्रस्तुत उपन्यास का लेखन जन सामान्य को हिजड़ों की शारीरिक संरचना समझाने तथा उनके अवसादपूर्ण जीवन में जागृति लाने के उद्देश्य से किया गया है।

किन्नरों के जीवन को लेकर महेंद्र भीष्म ने 'किन्नर कथा' और 'मैं पायल' इन दो उपन्यासों का लेखन किया है। किन्नर कथा इस उपन्यास में बुंदेला के राजा जगतराज सिंह के घर में उनकी पत्नी आभासिंह दो लड़कियों को जन्म देती है। एक लड़की सामान्य होती है और दूसरी हिजड़े के रूप में जन्म लेती है। रानी आभासिंह के प्रसव के समय दासी निरंजना उनकी सेवा में नियुक्त है। लेखक दासी निरंजना की हुई मानसिक अवस्था का चित्रण करते हुए लिखते हैं, "काटा तो खून नहीं जैसी स्थिति इस समय निरंजना की हो रही थी।वह किंकर्तव्यविमूढ़ सी अभी-अभी संसार में आए उसे नवजात शिशु को देखती तो कभी पलंग पर मूर्छित रानी साहिबा के क्लांत मुख कमल को देखती। अन्य सेविकाओं की दृष्टि बचाकर उसने पुनः एक बार दोनों जुड़वा शिशुओं को अच्छे से देखकर टटोला। शक की कोई गुंजाइश नहीं थी। दोनों में से एक शिशु के जननांग विकसित थे। अपने चालीस साल के अनुभव में सैकड़ों बच्चे जनाए थे उसने, पर ऐसा अपूर्ण बच्चा पहली बार उसके सामने था, वह भी इतने बड़े आदमी का बच्चा।"[5] दोनों लड़कियों में से एक लड़की के जननांग में दोष होने के कारण दासी निरंजना परेशान है। रानी आभासिंह उसे एक दिन उपहार के रूप में कुछ देने लगती है तो उसे वह लेने के लिए नकार देती है। उसकी आंखों में पानी आ जाता है। दासी निरंजना की आँखों में आँसू देखकर रानी आभासिंह पूछती हैं कि क्यों रो रही हो सब कुछ ठीक-ठाक तो है न? इस समय निरंजना एक लंबी साँस लेकर अपने आसपास कमरे में किसी को न देखकर रानी को सच्चाई बताती है। निरंजना के मुँह से सच्चाई सुनकर रानी को बहुत दुःख होता है। रानी अपनी दासी निरंजना से यह वचन लेती है कि इसका भेद खुलना नहीं चाहिए।

एक दिन दोनों लड़कियाँ रूपा और सोना महल के छत पर बारिश की फुहार में खेल रही थी। पानी में भींकती हुई दोनों लड़कियाँ बीमार ना पड़े इसीलिए राजा दोनों बेटियों को अपनी गोद में लेकर सीढ़ियों से नीचे उतरता हुआ निरंजना देखती है। रानी भी उसी समय वहाँ आ जाती है। पिता की गोद से रूपा उतरकर भागती हुई जाकर रानी के सीने से लिपट गई परंतु सोना को नीचे उतारते समय उसका अंगवस्त्र नीचे खिसक जाता है और राजा की दृष्टि जननांग पर पड़ती है। अपने साथ भगवान ने धोखा किया है उसने हमारे घर में एक हिजड़े को जन्म दिया है इसी कारण राजा दुःखी हो जाता है। राजा अपने दीवान पंचम सिंह को बुलाकर रूपा को जान से मारने के लिए कहता है। आज तक दोनों लड़कियों को देखकर खुश रहने वाला राजा रूपा केवल किन्नर के रूप में जन्मने के कारण उसे मारने के लिए तैयार हुआ है। समाज में ऐसा ही है संतान जैसी भी हो वह उसे भगवान का आशीर्वाद समझ कर पालन-पोषण करने के लिए तैयार नहीं है। एक व्यापारी के घर में ताराचंद्र अग्रवाल का हिजड़े के रूप में जन्म होने के कारण अपने ही परिवारवालों से प्रताडित होना पड़ता है। तारा को अपने ही परिवार वालों से उपेक्षा झेलनी पड़ती है उसके अभिभावक उसे कहते हैं, "तू हिजड़ा है हिजड़ा हमारा तेरे से कोई नाता नहीं, तू हमारा कुछ नहीं लगता, भाग जा यहाँ से क्यों हमारा नाक काटने पर तुला है हिजड़ा कहीं का।"[6] इस प्रकार लड़का या लड़की को किस रूप में जन्म लेना यह उनके हाथ में नहीं है। जननांग में दोष युक्त संतान का अमीर परिवार में जन्म हो या गरीब दोनों जगह उसकी उपेक्षा ही होती है।

महेंद्र भीष्म का 'मैं पायल' यह उपन्यास किन्नर जीवन पर लिखा गया उपन्यास है। लेखक ने लखनउ की किन्नर गुरु पायल सिंह के जीवन संघर्ष का चित्रण इसमें किया है। राम बहादुर नामक एक व्यक्ति के क्षेत्रीय परिवार की कथा है। इस परिवार में एक लड़का राकेश का जन्म होता है और उसके बाद लगातार चार लड़कियों का जन्म होता है। पायल उनकी पाँचवी संतान है, वह किन्नर के रूप में इस परिवार में जन्म लेती है। इन छोटे बच्चों के अभिभावक राम बहादुर एक ट्रक ड्राइवर के रूप में काम करते हैं। हिजड़े के रूप में पायल के जन्म लेने के कारण वे उसे नहीं स्वीकारते। हमेशा उसे मारते रहते हैं। एक दिन उसे वे मरने तक मारते हैं। मार और मृत्यु के डर से पायल घर छोड़कर भाग जाती है। वह कानपुर, लखनउ में अलग-अलग जगह कभी लड़का बनकर तो कभी लड़की बनकर जीवन जीता है। पायल अपने पिता कैसा भेदभाव करते थे इसे लेकर कहती है, "हाईस्कूल में भैया दो बार फेल हो चुके थे फिर भी पिता जी हम बहनों से ज्यादा भैया को ही चाहते, उन्हीं का ज्यादा ध्यान रखते थे। जबकि हम बहिनें अपनी कक्षा में अच्छे अंकों के साथ उत्तीर्ण हो रहे थे।"[7] घर और बाहर भी पायल को उपेक्षा भरा जीवन जीना पड़ता है। सरकार भी इनकी और ध्यान नहीं देती और काम न मिलने के कारण उसको भीख माँगनी पड़ती है। लेखक ने पायल के मन में आए हुए इस प्रसंग को चित्रित करते हुए लिखा है, "भूख और प्यास पायल को

बेहाल किए हुए थी। भूख के मारे दम निकल रहा था। छत के ठेले के पास पहुँचने से मेरी भूख और बढ़ गई थी, मन हो रहा था कि जूठे दोने में बचीखुची चाट ही खा लूँ। मैं यह सोच रही थी कि मैंने देखा मेरी हम उम्र के दो बच्चे कुछ ना बोले बल्कि एक ने एक दोना मेरी तरफ बढ़ा दिया। दोने में मटर के कुछ दाने थे पर दही व मीठी चटनी लगी हुई थी, मैंने जीभ से दोना चाट लिया।"[8] इस प्रकार घर और बाहर समाज में भी उनको केवल किन्नर होने के कारण संघर्षमय जीवन जीना पड़ता है।

प्रदीप सौरभ के द्वारा लिखा गया 'तीसरी ताली' बहुचर्चित उपन्यास है। लेखक ने इस उपन्यास में किन्नरों के जीवन का विस्तृत चित्रण किया है। इस उपन्यास की कथा दिल्ली के एक हाउसिंग सोसाइटी से शुरू होकर तमिलनाडु में स्थित हिजड़ा के पवित्र स्थल कुवागम के मेले में जाकर समाप्त होती है। कहानी का प्रारंभ गौतम साहब के चरित्र से होता है। उनके घर बेटा हुआ है लेकिन वे हिजड़ों के तीसरी ताली बजाने के बाद भी दरवाजा नहीं खोलते। इसका कारण यह है कि उनका बेटा हिजड़ा है। अपने बेटे के जन्म पर वे खुशी मना नहीं सकते। समाज में ऐसे कई परिवार है जिनके घर हिजड़े का जन्म होने पर घर में मातम छा जाता है। किन्नर समुदाय की एक परंपरा यह है कि अधिकांश हिजड़े अपने जीवन काल में इस परंपरा से गुजरते हैं। वह परंपरा महाभारत से जुड़ी हुई है। तमिलनाडु के विल्लुपुरम में एक छोटा सा गाँव है 'कुवागम' यह हिजड़ों का तीर्थ स्थल है। देश के कोने-कोने से हिजड़े यहाँ आते हैं। यहाँ के कूठन द्वार मंदिर में जाकर हिजड़े एक दिन के लिए सुहागिन बनते हैं और फिर विधवा। मेले में आया हुआ हिजड़ा मेले के किसी भी पक्ष को छोड़ सकता है परंतु कथा सुनने का जो भाग है उसे छोड़ नहीं सकता। लेखक कुवागम यात्रा और हिजड़ों के रीति-रिवाज, प्रथा-परंपरा के संबंध में कहते है, "कथा के बाद अरावण की मूर्ति को रथ में पूरे गाँव में घुमाया जाता है और फिर उसे अग्नि को समर्पित करते हुए यह मान लिया जाता है कि उसका अंतिम संस्कार कर दिया गया है। इसके बाद सुहागिन बने सब हिजड़े विधवा बन जाते हैं, इस विश्वास के साथ कि स्वर्ग में रहकर रावण पूरे साल उनकी रक्षा करेंगे।"[9] इस प्रकार किन्नरों की प्रथा, परंपरा है उसे वे तोड़ भी नहीं सकते। जीवन जीने के लिए उनको ऐसी परंपरा से चली आई प्रथाओं को अपनाकर चलना ही पड़ता है।

उपन्यासकार ने राजनीति का भी चित्रण प्रस्तुत उपन्यास में किया है। स्थानीय सोसाइटी से लेकर राष्ट्रीय स्तर की राजनीति के दर्शन लेखक ने इस उपन्यास में किए हैं। उपन्यास में शबनम मौसी के हार का चित्रण किया है। वह एक चुनाव लड़ती है और सभ्य समाज उसे चुनकर आने नहीं देता। वह कहती है मुझे हराने के लिए मुर्गा, शराब और नोट लोगों को देने का काम किया। लिंग भेद के आधार पर प्रचार किया गया, जिसके कारण मैं चुनाव में हार गई। तथाकथित सभ्य समाज के सामंतवादी नेता अपने हाथों में सत्ता बनाए रखना चाहते हैं। अपने हाथ में वह सत्ता रखने के लिए किसी भी प्रकार का हथकंडा अपना सकते हैं। शबनम मौसी कहती है, "बस इतना ही चाहती हूँ कि लोग हिजड़ों के साथ सम्मान का व्यवहार करें। इसीलिए मैं फिर से राजनीति में सक्रिय होना चाहती हूँ। हमें लोगों के बीच जाकर बताना होगा कि हम असली हिजड़े नहीं हैं। असली हिजड़े तो वे हैं जो जनता के वोटों से संसद और विधानसभा में जाकर उन्हीं का खून चूसने की योजनाएँ बनाते हैं और अपना पेट भरते हैं। हमें अपनी पार्टी बनानी होगी। हमारी पार्टी का नाम होगा तीसरी ताली और नारा होगा नकली को परखा सब असली को परखो।"[10] इस प्रकार हिजड़े राजनीति में आकर इज्जत के साथ जीना चाहते हैं।

'गुलाम मंडी' इस उपन्यास की लेखिका निर्मला भुराड़िया है। उपन्यास की कथा का प्रारंभ जमनलाल के घर में सर्प दंश करवाते ग्राहकों से प्रारंभ होता है। वहाँ सभी लोग जीभ पर दंश नहीं लेते कोई हथेली पर कर पता है, कोई पैर के अंगूठे पर, तो कोई एड़ी पर। कल्याणी तो जीभ पर दंश लेना चाहती है वह भी कोब्रा का दंश इसका कारण यह है कि उसका दुःख कोब्रा के दंश में मिलकर खत्म हो जाए ऐसा उसे लगता है। उपन्यास की कथा पच्चीस भागों में विभक्त है मूल कथा कल्याणी और जानकी की है और उसके साथ-साथ अनेक उपकथाएँ चलती हैं। समाज में इनसे संबंधित विविध जो गलत धारणाएँ हैं उसका विवेचन उन्होंने इस उपन्यास में किया है। बचपन में ही बच्चों के मन में समाज के द्वारा गलत बातें बिठाई जाती हैं उसका विवेचन करते समय लेखिका कहती है, "कल्याणी ने फीकी मुस्कान दी। चेहरे पर थोड़ा डर भी था। उसने सोचा, उसने शायद ज्यादा ही हिम्मत कर ली है। तभी तो उन अनजान लोगों के घर आ गई है, जिनकी बिरादरी के बारे में वह कुछ जानती समझती नहीं और इनके बारे में उड़ती हुई जो बातें बचपन से वह सुन रही थी, उनमें से कुछ तो काफी डरावनी थीं। हिजड़े उठा ले जाएँगे, झोली में भरके छोटों का तो वे अंगभंग करके अपने दल में मिला लेंगे।"[11] इस प्रकार किन्नर समुदाय के लोगों को समाज में प्रचलित गलत धारणाओं का शिकार होना पड़ता है। किन्नर समुदाय को लेकर सिर्फ गलत धारणाएँ समाज में फैलाई जाती है। इसके कारण उनका समाज में तिरस्कार हो जाता है। उनके जीवन के सभी पहलुओं पर सभ्य समाज गहरा प्रतिघात करता है। इनको परिवार के साथ समाज भी स्वीकारता नहीं है। उनको शिक्षा से भी वंचित रहना पड़ता है। लेखिका ने अंगूरी के माध्यम से कहा है, "कोई भर्ती करता क्या पाठशाला में, पहले पूछते मेल की फीमेल। अपनी वो शर्मीला है ना छोटा बनके भर्ती हुई थी तो बहन जी ने एक दिन चड्डी उतरवा ली थी उसकी और जूते मारकर के स्कूल से निकलवा दिया था उसको। उमराव गुरु के कुनबे ने शरण दी उनको वरना भूखी मर जाती।"[12] सभ्य समाज का किन्नर समुदाय के प्रति नजरिया अमानवीय है। उन्होंने इस उपन्यास में ह्यूमन ट्रैफिकिंग, देह व्यापार के साथ उनके जीवन की अनेक समस्याओं को चित्रित किया है।

पोस्ट बॉक्स नं. 203, नाला सोपारा' इस उपन्यास की लेखिका चित्रा मुद्गल हैं। तृतीय प्रकृति अर्थात थर्ड जेंडर समुदाय की संवेदना को पत्राचार की शैली में प्रस्तुत करनेवाली नए कलेवर की यह रचना है। हिजड़ा पुत्र बिन्नी एवं उसकी माता के बीच पत्राचार के माध्यम से हिजड़ों से संबंधित व्यक्तिगत एवं सामाजिक सरोकारों को प्रस्तुत करनेवाला उच्च कोटि का उपन्यास है। विनोद उर्फ बिन्नी बचपन में अन्य सामान्य बच्चों जैसा ही था। वह पढ़ाई खेलकूद और शरारत में अव्वल था। धीरे-धीरे उसकी आंतरिक संरचना में बदलाव उसे महसूस होने लगता है। शारीरिक संरचना में वह आम बच्चों से भिन्न है। वह स्कूल की चारदिवारी से सटकर पँट के बटन खोलकर खड़ा होकर मूत्र विसर्जन नहीं करता। उसके माता-पिता अपना लड़का भी हिजड़ा है इसकी जानकारी किन्नर समुदाय से होने नहीं देते। एक दिन हिजड़ों का समुदाय उसे ढूँढकर निकलता है और अपने साथ ले जाते हैं। विनोद उर्फ बिन्नी हिजड़ों के समुदाय में जाने के कारण समाज के डर से उसके माता-पिताघर बदलते हैं। बिन्नी अपनी माँ का पता लगाकर उसके साथ पत्र व्यवहार करता रहता है। माँ भी चोरी-चोरी चुपके-चुपके उसे पत्र लिखती है। अपने लड़के के साथ पत्र व्यवहार के कारण माँ को हिजड़ों के जीवन की अनगिनत समस्याओं की जानकारी मिलती है। विनोद उर्फ बिन्नी और उसकी माँ एक दूसरे से जुदा होने के कारण एक दूसरे को बहुत चाहते हैं। एक साथ रहकर जो दिन निकाले हैं उसकी दोनों को बार-बार याद आती है। विनोद उर्फ बिन्नी अपनी माता-पिता के साथ बिताए हुए दिनों की याद करते हुए कहता है, "जून को मेरा जन्मदिन था। घर में सबका जन्मदिन तू धूमधाम से मनाया करती है। मेरा जन्म दिन मनाया था तूने, केसर की खीर बनाई थी, साथ में खंडवी ! तू हँस रही है न! अभी मैं इतना बड़ा हो गया हूँ। इस नर्क में रहकर असली उम्र से दोगुना और अंत में कैसे लिखूँ कि पप्पा को कहना मैं उन्हें खूब-खूब याद करता हूँ। उनके पास होता तो पढ़ाई से लौटकर उनकी किराने की दुकान पर बैठ उनका हाथ बँटाता जिस काम से मोटा भाई को घृणा है।"[13]

बिन्नी मेहनत करता है लोगों की गाड़ियाँ धोता है परंतु परंपरागत पेशे में नहीं आना चाहता।अपने समुदाय से छिपकर कोई बड़ा काम सीखने का प्रयास करता है क्योंकि अन्य किसी भी रूप में दूसरों पर निर्भर रहकर जीवन जीना ना पड़े। अपने समुदाय के लोगों के जीवन में आए हुए जीवन के विविध संदर्भ में वह कहता है, "जननांग विकलांगता बहुत बड़ा दोष है लेकिन इतना बड़ा भी नहीं कि तुम मान ले कि तुम धड़का मात्र वह निचला हिस्सा भर हो। मस्तिष्क नहीं हो, दिल नहीं हो, धड़कन नहीं हो, आँख नहीं हो तुम्हारे हाथ पैर नहीं हैं। सब वैसे ही हैं, जैसे औरों के हैं। यौन सुख लेने-देने से वंचित हो तुम वात्सल्य सुख से नहीं। बच्चे तुम पैदा नहीं कर सकते मगर पिता नहीं बन सकते, यह किसी ने नहीं समझने दिया तुम्हें। सुनो पहचानो! पहचानो! अपने श्रम पर जियो। मनोरंजन की दक्षिणा पर नहीं। हीराकत की दक्षिणा जहर है, जहर। तुम्हें मारने का जहर। तुम्हें समाज से बाहर करने का जहर।"[14] इस प्रकार माँ और बेटे के बीच का संवाद बहुत ही आत्मीयता के साथ होता है। पत्र शैली में लिखे हुए इस उपन्यास का ताना-बाना पत्रों के माध्यम से होता है।

अधिकतर भारतीय परिवार और समाज किन्नर समुदाय का स्वीकार करने को तैयार नहीं है। कुछ परिवार इस समाज से लड़ने की हिम्मत तो जुटाते हैं परंतु हार जाते हैं। भगवंत अनमोल का 'जिंदगी 50-50' इस उपन्यास में ऐसे ही एक कथा का समावेश है। उपन्यास में किन्नर मुखिया कस्तूरी कहती है, "पर एक बात नोट कर ले तिवारी। हिजड़े का बाप है तू हिजड़े का और इतना आसान नहीं है समाज में हिजड़े का बाप बनकर जीना, सुई की नोक पे रहना होता है। इसकी चुभन से तोरा पैर नहीं, तोरा शरीर ही नहीं, तेरी आत्मा तक तड़पेगी यह समाज तुझे जीने नहीं देगा1 या तू खुद मर जाएगा या फिर तंग आकर खुद चलते हुए उस बच्चों को हमारे यहाँ देने आएगा।"[15] डॉ. लता अग्रवाल ने 'मंगलामुखी' उपन्यास में किन्नर की पीड़ा, दर्द, वेदना का वर्णन किया है। लेखिका ने एक लड़के को प्रेम करने के बाद उस लड़की का जो वास्तव सामने आया उसे लेकर कहा है, "साली! धोखा करती है मेरे साथ, मैं ही पागल था तेरे रूप जाल में फँसकर समझ नहीं पाया, तू प्यार मोहब्बत के लिए नहीं बनी, तू मेरे क्या किसी मर्द के काम के लिए नहीं बनी।"[16] इस प्रकार मंगलामुखी इस उपन्यास में भी अन्य किन्नर जीवन पर लिखे गए उपन्यासों की तरह किन्नरों के जीवन का दुःख, पीड़ा, दर्द, वेदना, उपेक्षा का सजीव चित्रण लेखिका ने किया है।

निष्कर्ष

भारतीय समाज और किन्नर समुदाय के जीवन को लेकर लिखे गए उपन्यासों के संदर्भ में कहा जाता है कि किन्नरों का जीवन दर्द, वेदना, पीड़ा से भरा हुआ है। भले ही समाज का कोई घटक गरीब होगा परंतु वह इज्जत और सम्मान के साथ जीवन जीता है। भारतीय समाज के किसी भी व्यक्तिया स्त्री के जननांग में दोष रहने पर उसे उपेक्षित जीवन जीना पड़ता है। वह 'न घर का न घाट का' होता है। उसके परिवार वाले उसे अपने साथ रखना नहीं चाहते। घर के बाहर जाकर अपनी मर्जी से जीवन जीने के लिए मजबूर किया जाता है। सरकार भी किन्नर समुदाय की सुविधाओं की ओर ध्यान नहीं देती। सभ्य समाज में किन्नरों को लेकर मानवीय संवेदना कहीं भी दिखाई नहीं देती। इसी कारण किन्नर लोग परिवार और समाज से बहिष्कृत होकर संघर्ष करके जीवन जीते हैं। पढ़े लिखे लोगों को समाज के सामने आकर परंपरा से आई हुई धारणा को बदलने के लिए प्रयास करना चाहिए। उनके प्रयास के कारण ही वह समाज की मुख्य धारा में जुड़कर एक सामान्य व्यक्ति की तरह जीवन जी सकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. नीरजा माधव, यमदीप, सुनिल साहित्य सदन,नई दिल्ली, संस्करण, 2018, पृ.25
2. सं. डॉ. एम. फिरोज खान, थर्ड जेंडर पर केंद्रित हिंदी का उपन्यास यमदीप, विकास प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण, 2018, पृ.162
3. डॉ. अनुसुइया त्यागी, मैं भी औरत हूँ, परमेश्वरी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2005, पृ.17
4. डॉ. अनुसुइया त्यागी, मैं भी औरत हूँ, परमेश्वरी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2005, पृ.18
5. महेंद्र भीष्म, किन्नर कथा, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2010, पृ.15
6. महेंद्र भीष्म, किन्नर कथा, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2010, पृ.51
7. महेंद्र भीष्म, मैं पायल, अमन प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण, 2016, पृ.32
8. महेंद्र भीष्म, मैं पायल, अमन प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण, 2016, पृ.139
9. प्रदीप सौरभ, तीसरी ताली, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2018, पृ.189-190
10. प्रदीप सौरभ, तीसरी ताली, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2018, पृ.139
11. निर्मला भुराड़िया, गुलाम मंडी, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2014, पृ.12
12. निर्मला भुराड़िया, गुलाम मंडी, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2014, पृ.85
13. चित्रा मुद्गल, पोस्ट बॉक्स नं. 203, नालासोपारा, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2016, पृ.19
14. चित्रा मुद्गल, पोस्ट बॉक्स नं. 203, नाला सोपारा, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2016, पृ.50
15. भगवंत अनमोल, जिंदगी 50-50, राजपाल एण्डसन्स, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2017,पृ.47
16. डॉ. लता अग्रवाल,मंगलामुखी, विकास प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण, 2020, पृ.49

कविता

केरल हिंदी प्रचार सभा और हिंदी

डॉ.जे.रामचन्द्रन नायर

संसार भर में लोकप्रिय भाषा है देवनागरी,
सागर अंचल पार कर दक्षिण पधारी देवनागरी।
सफल प्रयत्न के सुफल ने हासिल की कामयाबी,
श्रेष्ठ हिन्दी प्रचार सभा की स्थापना
तिरुवनंतपुरम में हुई।।

अनेक कार्यकर्ता छात्रों का प्रयत्न हुआ सफल ,
अमर भाषा-साहित्य ने पिरोया कमल दल।
केरल हिंदी प्रचार सभा का इतिहास श्रेष्ठ नमूना।
दक्षिणी प्रांत में हिंदी का परचम लहराती संस्था।

देव भाषा फैलायेंगी भाई चारे की महिमा,
आधारशिला है हिंदी भाषा और प्रचारक।।

दक्षिणी प्रांत केरल हिंदी प्रचार सभा ने फैलायी
दक्षिण से उत्तर समूल देवभूमि में संस्कृति ।।
केरल ज्योति-भारत की ज्योति साहित्य का भंडार।
प्रचार सभा ने भाषाविदों का कर दिया उजागर।।

पूर्व अध्यक्ष एवं प्रोफेसर
हिंदी विभाग
महात्मा गाँधी महाविद्यालय
तिरुवननंतपुरम।

जापानी छात्रों की क्रूर-कथा बकौल शिंतारो इशिहारा के उपन्यास

डॉ. मुन्नी चौधरी

जापान के इतिहास में दूसरा विश्वयुद्ध एक ऐसी त्रासदी लेकर आया, जिसने जापानियों के शांत जीवन-शैली में उथल-पुथल मचा दिया। हिरोशिमा और नागासाकी पर किये गये अमेरिकी परमाणु हमले ने जापानियों को क्षणजीवी, अस्तित्ववादी, स्वकेंद्रित, व्यक्तिवादी व अपनों के प्रति ही क्रूर बना गया। हताशा से पतन के गर्त में जाने और जीने के प्रतिनिधि वहाँ के स्कूल व कालेज-यूनिवर्सिटी के विद्यार्थी थे। उनका यह क्रूर व विध्वंसक दौर लगभग बीस वर्षों तक रहा। लेकिन इन बीस वर्षों के उनके कुकृत्यों ने जापान के इतिहास को दागदार कर गया। स्कूल-कालेज का विद्यार्थी अपने ही लिए जी रहा था। दोस्त कब दुश्मन बनकर रौंद दे किसी को भी पता नहीं चलता था। इस दौर में सर्वाधिक उत्पीड़न स्त्रियों का हुआ। वह भोग्या मात्र बन गई थी। वह जिसका भी हाथ पकड़ती, वह कुछ देर कुलांचे मारकर फिर किसी और के पास चला जाता था। मानवीय संवेदना का ऐसा ह्रास जापान के इतिहास की पहली घटना थी।

मानवीयता के इस घोर क्रूर व बर्बर पक्ष को चित्रित करनेवाले लेखकों में सर्वाधिक उल्लेखनीय नाम शिंतारो इशिहारा का है। उन्होंने लगभग दो दर्जन किताबें लिखी, जिनमें 'ताइयो नो किसेत्सु' (1955) और 'शोकेई नो हेया' (1956) सबसे महत्वपूर्ण हैं। शिंतारो इशिहारा स्कूल के छात्र जीवन से ही लिखने लगे थे। सन् 1956 में विश्वविद्यालय में उनका ग्रेडुएशन था, उसी साल उन्हें उनके पहले उपन्यास 'ताइयो नो किसेत्सु' (भाड़े का मौसम) पर जापान का सर्वाधिक प्रतिष्ठित अकुतागावा सम्मान दिया गया था। उस समय उनकी उम्र लगभग चौबीस साल थी। इस आलेख में मैं शिंतारो इशिहारा के इन्हीं दो छोटे उपन्यासों पर केंद्रित रहूँगा। उपन्यासों की कथावस्तु के केंद्र में टोक्यो का जापानी विद्यार्थी वर्ग है। कथावस्तु इतनी सघन और चित्रात्मक है कि पाठक एक पल को हट नहीं पाता। मेरे लिए ये दोनों उपन्यास विलक्षण और प्रभावशाली हैं। प्रभावशाली इतने कि सत्रह साल पहले पढ़े गए इन उपन्यासों का हर संदर्भ मुझे याद है। मैं इसका कुछ भी भूल नहीं पाया और लगता है कि जब तक लिख न लूँ तब तक भूल भी नहीं पाउँ गा। दूसरी बात कि जापान की बर्बादी के 79वें साल 2024 में शांति का नोबेल पुरस्कार जापान को मिला है। यही वे बातें हैं, जिनके कारण मैं शिंतारो इशिहारा पर लिख रहा हूँ।

'क्रूर बनते छात्र' अटामिक हमले से भुट्टे की तरह जल-मर गये लाखों लोगों को देखकर व विश्वयुद्ध में मिली हार से हर जापानी युवा अपने जीवन से हताश व निराश हो चुका था। वह किंकर्तव्यविमूढ़ हो चुका था - क्या करे, न करे। रास्ते में जो कुछ भी कोई करता था, दूसरा भी उसमें शामिल हो जाया करता था, शराब के नशे में जब वे एक बड़ी उम्र के राहगीर से - जो उनके प्रतिद्वंद्वी स्कूल का छात्र भी रहा था - उलझने लगे तब उसने इन्हें डांटा। पर इन पर मस्ती सवार थी और उसने गुस्से में भरकर इनमें से एक को चांटा जड़ दिया। तभी साहारा आगे बढ़ा और उसके पेट पर जोर से प्रहार किया। आदमी चीखकर आगे झुका। उसके झुकते ही साहारा ने उसके मुंह पर एक घूंसा जमाया और वह लड़खड़ाकर पीछे दूर जा गिरा। लड़ाई बहुत जल्द खत्म हो गई, इससे साथियों को ज़रा निराशा भी हुई। लेकिन इस घटना के परिणामस्वरूप तात्सुया साहारा क्लब के स्थायी सदस्य के रूप में स्वीकार कर लिया गया।"[1] (ताइयो नो किसेत्सु, 74-75)। इस तरह का व्यवहार केवल दूसरों के प्रति था - ऐसा नहीं है। वे अपने माँ-बाप के प्रति भी वैसे ही क्रूर थे। एक लड़का अपनी माँ को इसलिए पीट देता है कि वह अपने लिए एक प्रेमी रख ली थी। तात्सुया तो अपने पिता के प्रति भी कठोर था। उसने अपने को महान बाक्सर साबित करने के लिए पिता के पेट में ऐसा घूंसा मारा कि उन्हें मुँह से खून गिरने लगा था और वे अस्पताल में भर्ती हो गए थे। उसने कभी पिता से माफी भी नहीं मांगी।

'दोस्ती का मतलब' युवकों में दोस्ती का मतलब था, उनके अपराध के कामों में सहयोगी होना, "उनमें दोस्ती का मतलब था अपराध के कार्यों में सहयोगी होना। अपने उद्दंडतापूर्ण और अनैतिक कार्यों से - जिनके लिए केवल उनकी जवानी को ही दोषी नहीं ठहराया जा सकता था - उनके बीच एक विशेष भाईचारा उत्पन्न हो गया था और ये काम मानो उन्हें गोंद की सख्ती से आपस में जोड़ने में सहायता करते थे।"[2] (ताइयो नो किसेत्सु, 89)। उल्लेखनीय बात है कि यह जापान का नया कल्चर विकसित हो रहा था, जो उनका अपना नहीं था, बल्कि अमेरिकी हमले और जापान की बरबादी से उपजा था। उनके लिए सचमुच यह बंजर भूमि थी, जिस पर वे खड़े थे। इसीलिए उपन्यासकार ने उस दौर को 'सान जेनेरेशोन' (सन जेनरेशन) का नाम दिया है, जिसके केंद्र में उद्दंडता, हिंसा और अनैतिकता थी और यही जापानी युवाओं के जीवन का आधार बन चुका था। यह जेनरेशन उद्दंड था, क्रूर था और बर्बर था।

उद्दंडता - तत्कालीन युवा अपने मन की करते थे। वे किसी की नहीं सुनते थे। वे मनमौजी थे, जिसमें नैतिकता नाम की कोई चीज नहीं होती थी। उसे उद्दंडता का नाम देना ही सही होगा, "लोग प्रतिरोध, दायित्व और नैतिकता की बातें करते हैं। मैं क्यों इनकी परवाह करूँ? दूसरे जो सोचते हैं, उससे मुझे क्या सरोकार! जो मैं चाहता हूँ, वही करूँ - मैं सिर्फ यही कर सकता हूँ।[3] (शोकेइ नो हेया, 15)। तत्कालीन जापानी युवकों का शगल था गाली देना, सिगरेट व शराब पीना, गुस्सा करना, पैसे छीनना, गलत धंधा करना, सेक्स, रिवाल्वर रखना और लड़ना। इसके लिए वहाँ के न्यू मून जैसे रेस्तरां माकूल जगहें थीं। पहले योंजी और कात्सुमी सभी प्रकार के उपद्रवों - शराबखोरी, औरतबाजी और मारपीट में साथ-साथ रहते थे, "एक बार बड़े दिन पर, जब वे हाईस्कूल की तीसरे साल में थे, वे कैबरे का मजा लेने एक होटल गए हुए थे। एक होस्टेस ने

उन्हें पहचाना और 'हैलो' करके वह उनकी मेज तक आई। वह जिस अमेरिकी सैनिक के साथ बैठी हुई थी, उसे यह बुरा लगा, और जब वह लौटी तो उसने उसे एक थप्पड़ मारा। योंजी ने यह देख लिया। उसने लपक कर सिपाही को धर पकड़ा और हॉल के बीचोंबीच खींचकर उसकी खासी मरम्मत की। दूसरा सिपाही पहले की सहायता के लिए उठा ही था कि कात्सुमी ने उसे दो लातें जमाईं और उसे भी जमीन पर ढेर कर दिया। इसके बाद योंजी और कात्सुमी ने बैंड को 'जिंगल बेल' गाना बजाने को कहा और दोनों ने धराशायी सिपाहियों के उपर खड़े होकर नाचना शुरू कर दिया। बाकी लोग भी, जो काफी नशे में थे 'ताल देते रहे'।[4] (वही, 23-24)।

दुश्मनी और बदले की भावना - युवा किसके दोस्त हैं, किसके दुश्मन - पता ही नहीं चलता था। वे पल-पल अपने विचारों में जीते थे, मरते थे और वह सब कुछ करते थे, जो उनके मन में आता था। कात्सुमी और योंजी पहले पक्के दोस्त थे। लेकिन कात्सुमी दुश्मन बन गया था, जबकि योंजी उसे अपना दोस्त ही मानता था। ताकेशिमा कात्सुमी का दुश्मन था, जो अब दोस्त बनकर योंजी का धन छीन लेता है। वादे के मुताबिक कात्सुमी योंजी के लूटे पैसे में से अपना हिस्सा मांगने शराबखाने जाता है। वहीं ताकेशिमा और उसके दल के सारे लोग बैठकर शराब पी रहे थे। वह जैसे ही तीस प्रतिशत हिस्सा मांगता है, ताकेशिमा के लोग उसे बुरी तरह पीटते हैं। कोई उसकी आंखों में शराब उड़ेल देता है तो कोई घूंसे मारकर जमीन पर गिरा देता है। कोई उसी के बेल्ट से उसके दोनों हाथ बांध देता है तो कोई पेट को घूंसे से रौंद देता है, "ताकेशिमा, जिसका व्यवहार पहले संयत था, अब पागलों की तरह उछल-कूद रहा था और हँस रहा था। वह उस लड़के की तरह खुश था, जो अपनी सेना का जनरल हो और दुश्मन जिसके पैरों तले पड़ा हो। बदले की भावना उसमें बच्चों जैसी थी, बड़ों से कहीं ज्यादा कठोर। अपने धराशायी शत्रु के सामने कूदता हुआ वह कभी उस पर घूंसे बरसाने लगता, कभी लातें चलाने लगता। उसने कात्सुमी के पेट पर भी लात जमाई और चूंकि इससे ज्यादा कष्ट होता दिखा, उसने और भी लातें जमाईं। कात्सुमी ने मुंह से बहुत-सा खून और थूक उगला और यह सब ताकेशिमा की सफेद कमीज पर छिटककर आ गिरा।"[5] (शोकेइ नो हेया, 30)

नशाखोरी- पूरा युवा वर्ग नशेड़ी बन चुका था। चाहे लड़का हो या लड़की - सभी बराबर थे। लड़कियाँ भी शराब, बीयर और सिगरेट लेती थीं और इस तरह वे भी लड़कों की बराबर नशा करती थीं, "अकिको की बड़ी-बड़ी आंखों और असामान्य चेहरे के सामने क्योको, दूसरी लड़की एकदम बच्ची लगती थी। उसने सिगरेट निकाली और ताकेदा से उसे सुलगवाकर पीने लगी, तो कात्सुमी उसे देखकर मुस्कराया। वह सिगरेट पीती हुई भी बच्ची ही लगती थी"[7] (शोकेइ नो हेया, 41)। शराब और पैसा उस वक्त बहुत ताकत थी। युवा इसी में उलझे हुए थे। शराबी औरतों के संबंध में ताकेदा की समझ बिलकुल स्पष्ट थी। उसकी दृष्टि में जो लड़की शराब पीये वह बिस्तर पर जाये बिना नहीं रह सकती। युवा जानते थे कि जिंदगी बहुत छोटी होती है। इसलिए वे हर हाल में भोग में लिप्त रहते थे। दरअसल, शराब के नशे में ही नये-नये और क्रिएटिव विचार आते हैं।

सेक्स - युवक औरतखोरी में लिप्त थे और युवतियाँ पुरुषखोरी में। दोनों भोग में लिप्त थे। वही उनका जीवन था। वे अभी और यहीं जी लेना चाहते थे। अगले दिन का इंतज़ार किसी को नहीं था। वे क्षणजीवी बन गये थे। युवक वर्जिन लड़की तलाशते थे तो लड़कियाँ हृष्ट-पुष्ट खिलाड़ी युवक। तात्सुया और एइको ऐसे ही थे। तात्सुया यौन सुख के लिए एइको के साथ बाक्सिंग प्लेयर बन जाता था, "तात्सुया को बाक्सिंग में जो मजा आता था, वही मजा उसे एइको के संपर्क में मिलता था। बाक्सिंग के रिंग में चोट खाकर गिर पड़ने पर उसे कष्टमय सुख की जो एक विशेष अनुभूति होती थी, कुछ वैसी ही अनुभूति उसे अपनी दोस्त एइको के साथ होती थी"[8] (ताइयो नो किसेत्सु, 73)। लेकिन व्यावहारिक जीवन में वह बेहद क्रूर और असंवेदनशील था। लड़कों की तलाश होती कि उन्हें वर्जिन लड़कियां ही मिलें। उन्हें पाने के लिए उनके पास जो कुछ भी होता था, उसे गिरवी रख देते थे। यहां तक कि कई दोस्त मिलकर मजा करने के लिए ढेर सारा पैसा इकट्ठा करते थे।

चांद का महत्व - तात्सुया और एइको समुद्र में जाकर उद्दाम वेग के साथ काम-सुख का आनन्द लेते हैं। आज उन दोनों को पहली बार असीम तृप्ति का अहसास हुआ था। आज की इस घटना से एइको को चांद की रोमांटिक शक्ति में यकीन हो आया। उल्लेखनीय है कि जापान में 'मून व्युविंग' को बहुत शिद्दत से महसूस किया जाता है। प्रेम और आनन्द के लिए चाँद देखना बहुत अच्छा होता है, "एइको ने चाँद को देखा और सोचा कि वह सचमुच किसी पुरुष को प्यार कर सकती है। उसके मन में इच्छा जगी कि चाँद उन दोनों के ऊपर सूर्य जैसी तेज रोशनी से चमकता रहे। पहली दफा उसे चांद की रोमांटिक शक्ति में विश्वास हुआ"[9] (ताइयो नो किसेत्सु, 105)। उल्लेखनीय है कि जापान में चाँद सर्वाधिक महत्व रखता है, जबकि सूरज कम। सूरज उद्दंड है, क्रूर है और बर्बर है।

पैसा, और पैसा - युवाओं में पैसे बनाने की होड़ लगी रहती थी। पैसा बनाओ - चाहे जैसे भी हो। पैसा बनाने की विविध योजनाओं में डांस पार्टी आयोजित करने की योजना सभी दृष्टियों से अच्छी रहती थी। लेकिन चिंता यह होती थी कि एकत्रित धन को दूसरे स्कूलों के छात्र छीन न लें, "काफी संख्या में टिकट बिकने और हॉल ठसाठस भर जाने पर भी एक बहुत बड़ी चिंता यह होती थी कि दूसरे स्कूलों के विद्यार्थी एकत्रित धन को छीनने का प्रयत्न न करें। अतः आयोजकों के लिए बहुत सफाई से सारा धन हटा देना आवश्यक होता था"[10] (शोकेइ नो हेया, 20)। लेकिन पैसे बनाने के लिए दुश्मन भी साथ हो लेते थे और दोस्त को भी लूट लेते थे। ताकेशिमा और कात्सुमी दोनों दुश्मन हैं और योंजी कात्सुमी का दोस्त है। लेकिन पैसे बनाने के लिए कात्सुमी ताकेशिमा के साथ मिलकर प्लान बनाता है और योंजी का सारा पैसा लूट लेते हैं। प्लान के मुताबिक ताकेशिमा पैसा छीनने में कामयाब हो जाता है।

'प्रेम' शब्द मजाक का सूचक - इस नये जमाने के लड़कों में 'प्यार' शब्द एक मजाक की तरह था। "उसके दोस्तों के

बीच भावनाओं और खास तौर पर प्यार को भौतिकतावादी दृष्टि से देखा जाता था - 'प्यार' शब्द का प्रयोग अक्सर तिरस्कार के भाव से ही किया जाता था। वे इसका प्रयोग उन लड़कों का मजाक उड़ाने या तंग करने के लिए करते, जिन्होंने औरत को अभी तक पाया नहीं था। उनमें यह रिमार्क अक्सर दिया जाता था: अमुक प्यार में पड़ गया है यानी उसे अभी तक कोई औरत मिली नहीं है"[11] (ताइयो नो किसेत्सु, 88)। युवकों की नजर में वे लड़की के लिए एक नया ड्रेस हैं और लड़की उनके लिए एक पुराना सूट। उल्लेखनीय है कि जापानी कल्चर में 'प्रेम' बहुत महत्व रखता है। वहां यदि किसी को मजाक में भी 'आई लव यू' कह देता है तो - जिसको कहा जाता है - वह वर्षों तक इंतजार करता है। इस दृष्टि से कुणाल बसु का 'द जापानिज वाइफ' (2008) उपन्यास देखा जा सकता है।

एक-दूसरे के लिए 'वस्तु' लड़का हो या लड़की - तब दोनों एक दूसरे के लिए 'वस्तु' मात्र थे। प्यार में साफगोई और हिम्मत दोनों जरूरी होते हैं, और कात्सुमी ने अकिको के साथ यही किया था। "जब मुझे कोई लड़की अच्छी लगती है, मैं उसे हासिल करने की कोशिश करता हूँ....प्यार की बातें करके अपना वक्त बरबाद नहीं करता" - कात्सुमी ने कहा। ..... अकिको एक क्षण रुकी और यह कहते हुए उसके गाल लाल हो आए, "अगर यह बात है तो मुझे भी यही पसंद है"[12] (शोकेइ नो हेया, 57)। चार महीने बाद कात्सुमी अकिको से अलग हो गया। उसने तर्क दिया कि उसमें अब कुछ भी नयापन नहीं है। उसमें अब उसकी दिलचस्पी खत्म हो गई है। वस्तु को पाकर सहजता से जी लेना ही जीवन का ध्येय व प्रेय था। कात्सुमी की दृष्टि में जब वह शराब के नशे में होता है तो उसे बस लड़की और मारपीट की ही सूझती है। उनकी नजर में भावनाओं को दबाने और फ्रस्ट्रेट होने से सहज जिंदगी बिताना अच्छा है। उसे बकवास में यकीन नहीं था। उसे कर्म करने और भोगने में यकीन था। तात्सुया की क्रूरता और निर्ममता दिनों-दिन बढ़ती ही चली जाती है। उसे एइको को सताकर अतीव खुशी होती और अपनी शक्ति पर अभिमान होता।

पिता न बनने की इच्छा - वे आनन्द के लिए रोज नई वस्तु रूपी लड़का-लड़की बदलते रहते थे। ऐसे में लड़की के लिए भी बता पाना मुश्किल था कि उसके पेट में पल रहा बच्चा किसका है। एइको प्रेग्नेंट हो जाती है और यह बात तात्सुया को बताती है तो वह यकीन नहीं करता। वह कई लड़कों का नाम बताता है, जिसके साथ उसके संबंध रहे हैं। वह भी इनकार नहीं करती। वह स्पष्ट शब्दों में कहती है कि उसके पेट में पलता बच्चा उसी का है। लेकिन ठीक से हिसाब लगाने पर वह भी गलत लगेगा, "ठीक हिसाब लगाने पर यह तुम्हें भी गलत लगेगा। अब पूरे तीन महीने हो चुके हैं।" "तो फिर पूछना क्या है, कर लो" तात्सुया ने उत्तर दिया। "लेकिन याद रखना, जो भी कष्ट है, तुम्हें ही झेलना होगा। और यह भी मत सोचना कि इससे हमारे संबंध ज्यादा समीप आ जायेंगे। बच्चे की मदद से स्त्रियाँ अक्सर आदमी को फँसाया करती हैं"[13] (ताइयो नो किसेत्सु, 119-20)। तब का लड़का नहीं चाहता था कि वह इतनी जल्दी बाप बने, जबकि आज लड़कियां नहीं चाहतीं कि वह बच्चे को जन्म दे। यही कारण है कि जापान आज जनसंख्या की कमी का सामना कर रहा है। घटती आबादी जापान की आज की सबसे बड़ी चिंता है।

यौन मनोविज्ञान में माहिर - युवा यौनिक सुख में लिप्त रहते थे। यही कारण है कि वे स्त्रियों को फँसाते थे, शराब व नशा कराते थे और फिर उन्हें असली मकसद पर ले आते थे। सेक्स करने से पहले युवा लोग जमकर नशा करते थे। नशे के बाद वे यौनानंद में लिप्त हो जाते थे - उपन्यासों में इसका भी वर्णन मिलता है। तास्सुया खुद नशे की हालत में 'औरत और मारपीट' पर केंद्रित रहता है। ताकेदा की नजर में शराब पीने वाली औरतों को सेक्स चाहिए ही होता है। शराबी औरतों के संबंध में ताकेदा की समझ बिलकुल स्पष्ट थी कि हर लड़की जो शराब पी-पिलाती है, बिस्तर पर जाएगी-ही-जाएगी। लड़के हर नई और वर्जिन लड़की को शराब पिलाते थे, वह भी जापानी साके। वे भी इसमें चढ़-बढ़ कर हिस्सा लेती थीं। बाद में लड़के उनकी शराब में नींद की गोलियां मिलाकर उन्हें नींद में ले आते थे और फिर उनके साथ यौन संबंध बनाते थे, "हम लड़कियों को खाली नहीं जाने देना चाहते, है न? तो जब तक वे शराब पीने में लगी हैं, हम कुछ गोलियां ले आयें"[14] (शोकेइ नो हेया, 42)। दरअसल, नशा के बाद ही उनकी बुद्धि चलती थी, नये विचार आते थे। यही कारण है कि लेखक का यौन मनोविज्ञान काबिल-ए-तारीफ है।

मौत को मात देती साहस - युवक बहुत साहसी थे। उन्हें मौत से डर नहीं लगता था। कात्सुमी इसका प्रतिनिधि चरित्र है। मौत को मात देती कात्सुमी का हुलिया देखकर अकिको की यादें ताजा हो जाती हैं और सोचती है, "क्या यह वही प्रतिरोध की भावना थी, किसी भी स्थिति में हार न मानने की वृत्ति थी, जिसने उसे कात्सुमी की ओर आकृष्ट किया था? जब उसने पहली बार उसे बिस्तर पर डाला था - और उसके बाद भी जब-जब डाला तब क्या मजाक उड़ाती-सी उसकी यह पागल दृष्टि ही उसे बरबस अपनी ओर नहीं खींचती थी"[15] (शोकेइ नो हेया, 62)। दरअसल, वे इतने संवेदनहीन हो गये थे कि उन्हें मौत से डर ही नहीं लगता था। यही वह उम्र भी है, जहां जांबाजी दिखाई जाती है। वे मरकर, मारकर, भोगकर, क्षणभर जीकर ही अपनी जांबाजी पेश कर रहे थे।

वहशीपन - मारने की स्थिति में युवक वहशीपन के हद से भी गुजर जाते थे। तेजुका और यामायोशी के साथ एक तीसरा लड़का भी वहाँ आ धमका है। इनके आने के बाद इशिकावा के दल के लोग कात्सुमी को तेजुका के हाथों में सौंप देते हैं। वे इन्हें कात्सुमी की हत्या के लिए उकसाते जाते हैं। कात्सुमी न देखते हुए भी खड़ा होने की कोशिश करता है। उसके बाद लोग फिर उसे बेरहमी से पीटते हैं, "किसी ने व्हिस्की का एक गिलास उसे दे मारा और उसकी आंखें फिर बेकार हो गईं। एक और लड़के ने उसे पीछे से लात जमायी। किसी और ने बोतल मेज़ पर पटककर फोड़ डाली और टूटी बोतल उसके पेट में घुसेड़ दी। खून चारों ओर फैल गया"[16] (शोकेइ नो हेया, 67)। वहशी युवकों की क्रूरता जारी रहती है। वहाँ का दृश्य हृदय विदारक है। दो लड़के कात्सुमी के पैर पकड़कर खींचते हुए पिछले दरवाजे से

वे उसे बाहर लाते हैं और गली में डाल देते हैं। फिर उसी के उपर पैर रखते हुए वे गली के अंधेरे में गायब हो जाते हैं। दरअसल, यह वहशीपन का दौर दो से तीन घंटे तक चलता है। इस बीच जो क्रूरता व बर्बरता का खेल खेला जाता है, वह अपने-आप में बेमिसाल है। बार खुला रहता है, शराब का दौर चलता रहता है और पिटाई अनवरत जारी रहती है। इन दो से तीन घंटों में अनेक लोग बुलाये जाते हैं, जो कात्सुमी के दुश्मन हैं और वे सभी वीभत्स तरीके से कात्सुमी को तड़पा-तड़पाकर मारते जाते हैं। अंत में, वे उसे कूड़े की तरह अंधेरी गली में फेंक कर चले जाते हैं।

उपन्यास का तकनीकी पक्ष - शिंतारो इशिहारा के उपन्यासों में अनेक प्रयोग देखने को मिलते हैं। लेकिन इस चौबीस वर्षीय लेखक ने अपनी लेखनी में अनेक ऐसे प्रयोग किये हैं, जो उसकी सफलता की कहानी कहते हैं। कुछ खास तकनीक, जो उन्होंने प्रयोग किये हैं, उद्धृत हैं

पात्र-परिचय - शिंतारो इशिहारा ने उपन्यास के शुरु में ही पात्रों का परिचय दिया है। यही प्रयोग 'कागी' में भी मिलता है। इस प्रयोग से पाठकों को पहले ही पता चल जाता है कि कौन क्या है, किसका दोस्त है, किसका दुश्मन है, कौन लड़की है, किस दल में कितने लोग हैं आदि-आदि। यह प्रयोग उपन्यास को हल्का बना देगा - ऐसा लगा था। लेकिन उपन्यास पढ़कर मुझे लगा कि पात्रों का परिचय दे देने से उपन्यास की प्रभावमयता में कोई बट्टा नहीं लगा है। लेखक ने इसलिए भी पात्र परिचय दिया होगा कि उसके पाठक बुद्धिजीवी नहीं थे, बल्कि वे विद्यार्थी थे, जो स्कूल, कालेज व यूनिवर्सिटियों में पढ़ रहे थे। उन्हें सही-सही व आसानी से समझ में आ जाये। इसी को ध्यान में रखकर लेखक ने ऐसा किया होगा। दूसरी बात कि लेखक भी नया था। पहले उपन्यास के प्रकाशन के वक्त उनकी उम्र मात्र चौबीस साल थी।

कथा का क्लाइमेक्स पक्ष सबसे पहले देना- उपन्यासकार ने कथा का संयोजन करते हुए क्लामेक्स के ठीक पहले का भाग सबसे पहले रखा है। बीच में कथा का आरम्भिक भाग है और अंत में क्लाइमेक्स है, जो धीरे-धीरे समाप्ति की ओर बढ़ता है। वास्तव में, यहाँ क्लाइमेक्स है ही नहीं, बल्कि एक साधारण अंत है, जिसकी स्वाभाविकता पाठक के मन-मस्तिष्क में पहले से ही बन जाती है। हालांकि कथा के इस साधारण अंत में पाठक की उत्सुकता भी खत्म हो जाती है। लेकिन उपन्यास का आरम्भ इतना प्रभावशाली है कि साधारण अंत में भी साधारणता का पता नहीं चलता और आरम्भिक प्रभावमयता आखिर तक बनी रहती है। पाठक के पास सोचने-समझने के लिए कुछ नहीं बचता।

युवा-सोच को उपन्यास के पहले ही हर्फ में अंकित करना - उपन्यास की मूल विशेषता, विचार व दर्शन को लेखक ने उपन्यास के शुरू होते ही अपने विशेष कथन के रूप में पेश कर दिया है। इससे उपन्यास का दर्शन व विचार पाठक को पहले ही मिल जाता है। यह लिखने का लेखक का उद्देश्य निश्चित रूप से अपने युवा पाठकों को सीधे आकर्षित करना था। निश्चित रूप से उपन्यास का जापानी पाठक अपने मनोनुकूल मनोवृत्ति को पाकर जितना खुश हुआ होगा, उतना और किसी चीज से नहीं। वह तत्कालीन पाठकों को खूब प्रभावित किया होगा, क्योंकि उसके पाठक लेखक के ही हमउम्र और कुछ तो उससे छोटे रहे होंगे। उन्हीं की मनोवृत्ति को ध्यान में रखकर लेखक ने इसका प्रयोग किया है। यही वजह है कि लेखक ने जिनकी बात लिखी है, उनका दर्शन पहले ही बता दिया है। इसी मनोवृत्ति ने लेखक को तत्कालीन युवाओं का असली हीरो बना गया था तथा उपन्यास द्वारा किशोर वय के पाठकों के बीच जाकर एक आदर्शात्मक दिशा देने का प्रयास किया गया होगा।

उपन्यास का विशेष पक्ष - शिंतारो के इन उपन्यासों में जो विशेष पक्ष है वह है उसके दर्शन। यह दर्शन इतना प्रभावी है कि युवा उसमें अलग से प्रवेश नहीं करता, बल्कि इस उम्र में युवा वही करते ही हैं। वह उम्र ही ऐसी है, जो उन्हें युवा बनाती है। यही युवा दर्शन इन उपन्यासों में ज्यों-का-त्यों उभरकर प्रस्तुत हो गया है। युवा दौर के दर्शन का ज्यों-का-त्यों वर्णन ही उपन्यासों के प्राण है। दरअसल, खुद लेखक भी युवा था। वह वही लिख रहा था, जिसे वह जी व देख रहा था। अपने आस-पास हर दिन जो घट रहा था - वह वही लिख रहा था यथा तथ्य। इन उपन्यासों में कल्पना का कोई पुट नहीं है। यही इन उपन्यासों की विशेषता है। वैसे भी, युवा युव-दर्शन व युव-जीवन में यूँ ही बहते हैं, जैसे कोई पहाड़ी नदी में बारिश का पानी उफनता हुआ बहता है बिना किसी सोचे-समझे। इस बहाव में जो कुछ रोड़ा बनता है वह टूट-फूटकर तुरंत बिखर जाता है।

साहस का अद्‌भुत उद्दाम वेग - इन उपन्यासों का एक बड़ा दर्शन है उद्दाम साहस, जिससे मौत भी डर जाता है। उस दौर का सारा साहित्य, कला व फिल्म - जो कुछ भी है, सबमें वही उद्दाम साहस मिलता है, जो मौत को भी मात देती है। उपन्यासों के सारे पात्र परिणाम की चिंता से मुक्तहैं। वे पुलिस से बचते ज़रूर दिखते हैं, लेकिन कोई और डर या खौफ उन्हें नहीं डिगाती। वे जो कुछ भी करते हैं पुलिस से बचकर करते हैं। उनका स्पष्ट कहना है कि पुलिस की गिरफ्त में न आओ। वे अमेरिकी सैनिक को भी ऐसे कुचल देते हैं, जैसे कोई खिलौना हो। यह दर्शन स्वाभाविक भी है। खुद लेखक व उसका भाई जिन फिल्मों के नायक हैं, उनमें झुंड-के-झुंड छात्र-छात्राएँ अनायास ही छत से कूद जाते हैं, किस को भी मार देते हैं, खुद को मार देते हैं, ऐसे जैसे वे कोई खेल खेल रहे हों - चिंता व परिणाम से मुक्त। यही तो युवापन है और यही इन उपन्यासों में दर्ज हो गया है। उपन्यासों में विचार व यथार्थ दोनों हावि हैं। यहां मौत और परिणाम के डर का एक कतरा भी मौजूद नहीं है। यही तो तरुणाई व युवा दर्शन है। अलबत्ता, लेखक अपने पहले उपन्यास के प्रकाशन के साथ ही टोक्यो के युवाओं में नायक बन गया था। उसका आदर्श युवाओं के सर चढ़कर बोल रहा था। यही उनका दर्शन था। तब लोग उसी में जीते-मरते थे।

अनुभव की गहराई व परिपक्वता - मात्र चौबीस साल की उम्र में लेखक जिन भावों व पक्षों को चित्रित करता है, उसका हर तह व रेशा उघाड़ कर प्रस्तुत कर देता है। चाहे सेक्स हो, शराब हो, लड़की हो या यौन मनोवृत्तियाँ हों - वह सभी में परिपक्व है। लेखक अपने भावों व विचारों की परिपक्वता का लोहा मनवा देता है। इतनी कम उम्र में उसके अनुभव की

प्रामाणिकता चौंका देती है। बाद में लेखक भी कुछ ऐसे काम करता है कि जापान एक नई दिशा को प्राप्त करता है।

प्यार के संदर्भ में उसका एक अनुभव में पगा कथन यहां उल्लेखनीय है, "आदमियों के लिए प्यार ऐसी भावना है, जिसे हर समय जाग्रत नहीं रखा जा सकता। जब शरीर से शरीर मिलता है, क्या तभी यह भावना सबसे ज्यादा जाग्रत नहीं होती? इस अवसर पर स्त्री और पुरुष पास आकर एकाकार हो जाते हैं और यह चेतना अवसर बीत जाने के बाद भी जाग्रत बनी रहती है "मानो आँख के द्वारा देखे गये दृश्य की शेष छाया हो, जो दृश्य समाप्त हो जाने के बाद भी कुछ देर तक वहाँ से हटती नहीं"[17] (ताइयो नो किसेत्सु, 105-6)।

लेखक इतना साहसी है कि वह अमेरिका को 'न' कहने की हिम्मत करता है। वह आगे चलकर जापान की अगुवाई करता है और अमेरिकी मित्र राष्ट्रों के हर फैसले को नकारता है। उसी का प्रतिफल है कि युवाओं में व्याप्त अमेरिकी प्रभाव को कुछेक वर्षों में ही जापानी कल्चर से विदा ले लेना पड़ता है। उसके विचारों ने जापान में एक सैलाब ला दिया था - चाहे कुकुरमुत्ते की तरह उग आयी प्रवृत्तियों का चित्रण हो या फिर उन प्रवृत्तियों को धो-पोंछना हो - वह सबमें अव्वल रहा है। उसी की देन थी कि जापान बहुत कम समय में दुनिया का सिरमौर बन सका, जिसमें जापानी जीवन-दर्शन अपने उद्दाम वेग से हिलोरें लेता रहा है।

उम्र बढ़ने के बाद लेखक अपनी लेखनी से खुद शर्मिंदा होता है। वह फैसला करता है कि उसकी लेखनी को हमेशा के लिए मिटा देना है, जिनमें तत्कालीन बीस वर्षों का यथार्थ चित्रण व लेखन था। वह सारे प्रकाशकों को उसकी सारी किताबें नष्ट करने का आदेश देता है तथा अनुवाद, प्रकाशन, प्रसारण व वितरण सब पर हमेशा के लिए प्रतिबंध लगा देता है। परिणामस्वरूप, तत्कालीन दौर की उसकी सारी किताबें नष्ट कर दी गई हैं। यहाँ तक कि उसकी किताबें जापानी भाषा में भी अब उपलब्ध नहीं हैं। हालांकि फिर भी कुछ किताबें अलग-अलग भाषाओं में उपलब्ध हैं, जैसा कि मुझे गूगल सर्च से पता चला। कुल मिलाकर, शिंतारो इशिहारा का व्यक्तित्व, कर्म और कृतित्व इतना विशाल है कि उन पर कई किताबें लिखी जा सकती हैं।

सन् 1945 से 1965 तक जापान के विश्वविद्यालयों, कालेजों तथा अन्य शैक्षिक संस्थानों में हिंसा, अपमान, बर्बरता व क्रूरता की वे जबरदस्त वारदातों हुईं, जो अपनी भयंकरता व क्रूरता के लिए संसार-भर में चर्चा का विषय बन गई। इशिहारा व उसके समकालीन लेखकों व कलाकारों ने अपनी कला के माध्यम से उसे खूब चित्रित किया और दुनिया में अपनी लेखनी का लोहा मनवाया। इशिहारा की रचनाएं तत्कालीन दौर के इतिहास की जीवंत दस्तावेज हैं। ऐसा कल्चर जापानी इतिहास में पहले कभी नहीं देखा गया था। बार, कैबरे, शराब, औरत, पोर्न आदि से ठसाठस भरे इस देश में इतनी सुरक्षितता आश्चर्य की बात है।

जापानी साहित्य गल्प नहीं होता। वह कल्पनाप्रसूत नहीं होता, बल्कि यथार्थ होता है। वे थोड़ा लिखते हैं, लेकिन जो लिखते हैं, वह बहुत यथार्थ और विशिष्ट साबित होता है। यही कारण है कि जापानी साहित्य संसार-भर के साहित्यों से भिन्न तथा विशिष्ट है। वहां का साहित्य चमत्कारिक रूप में नवीन और आकर्षक है तथा जीवन के नितांत नये आयाम व्यक्त करता है। चाहे हाकाई हो, अवज्ञा हो, कागी हो या फिर इशिहारा के ये दोनों उपन्यास।

और, अंत में। हिंदी अनुवादक ने लेखक की मूल भावना के उलट अनुवाद कर दिया है, विशेषकर ताइयो नो किसेत्सु का। इस उपन्यास में लेखक बताना चाहता है कि उसने जो नई प्रवृत्ति वहाँ पनपी है, वह भाड़े की है, अमेरिकी है। वह प्रवृत्ति जापान की अपनी नहीं है। उल्लेखनीय है कि उक्त दौर की सारी प्रवृत्तियाँ जापानियों की अपनी नहीं हैं, बल्कि अमेरिकियों की दी हुई हैं। इसलिए इस उपन्यास के टाइटल का सही अनुवाद होता - 'भाड़े का मौसम'। लेकिन अनुवादक ने अमेरिकी अंग्रेजी अनुवाद का ही हिंदी में अनुवाद किया है। अंग्रेजी में उपन्यास का अनुवाद 'सीजन आफ वायलेंस' है। हिंदी अनुवादक ने भी उसी को लिया है। इससे लेखक की मूल भावना खत्म हो गई है। सच में तो जापान की उक्त प्रवृत्ति का जनक अमेरिका है। उसके सैनिकों की क्रूर बर्बरता से जापान का इतिहास रक्त रंजित है। हताशा व निराशा में, किंकर्तव्यविमूढ़ता में तत्कालीन जापानी युवाओं ने उसी प्रवृत्ति को स्वीकार कर लिया था। वास्तव में, लेखक ने यही बताना चाहा है। उल्लेखनीय है कि लेखक अमेरिका का धुर विरोधी रहा है। इसके लिए उसने एक अन्य लेखक के साथ मिलकर 'वह जापान जो ना कह सकता है' नामक निबंध लिखा था। यही निबंध शिंतारो इशिहारा के राजनीतिक जीवन की सबसे मूल्यवान वस्तु है, जिसने जापान को साहस के साथ अमेरिका जैसे मित्र राष्ट्रों के हर फैसले को नकारने का साहस दिया था। इस आवाज को लेखक ने ताउम्र उठाया और पूरी दुनिया में अमेरिका के परमाणविक हथियारों के खिलाफ माहौल बनाया। विश्व में निशस्त्रीकरण इसी की देन है। इसके साथ ही, जापान ने अपनी बची-खुची ताकत के बल पर देश को खड़ा कर दुनिया को बता दिया कि वह अकेले अपने दम पर कुछ भी कर सकता है। यह जापानियों की अपनी जिजीविषा और महान विरासत को दर्शाता है।

संदर्भ सूची

1 इशिहारा, शिंतारो शोकेइ नो हेया (सजाघर अनु. महेंद्र कुलश्रेष्ठ), आलेख प्रकाशन, दिल्ली, 1977

2 इशिहारा, शिंतारो ताइयो नो किसेत्सु (हिंसा का मौसम), वही

एसोसिएट प्रोफेसर

हिंदी विभाग, नागालैंड विश्वविद्यालय

कोहिमा परिसर, मेरिमा, कोहिमा

नागालैंड 797004, मो-91-9871691727

ममता कालिया की 'प्रेम कहानी': बदलते सामाजिक परिदृश्य में प्रेम का द्वंद्व

डॉ श्रीजा.बी.आर

समकालीन हिंदी लेखन जगत की अग्रणी हस्ताक्षर है ममता कालिया। लेखिका के रूप में अपने को स्थापित करने के लिए उन्हें काफी संघर्ष करना पड़ा है। उनके साहित्य का प्रमुख उद्देश्य नारी की समस्याओं का अंकन कर उसे पुरुष के बराबर का स्थान देना है। ममता जी के लेखकीय व्यक्तित्व के निर्माण में परिवार की भूमिका तथा संस्कार प्रमुख है।

जिन महिला लेखिकाओं ने अपने जीवन में परिश्रम एवं संघर्ष के बल पर ख्याति प्राप्त की हैं, उनमें ममता कालिया का नाम अग्रिम पंक्तियों में गिना जाता है। लेखिका में परिश्रम करने की अद्‌भुत क्षमता है। उसके जीवन में आये उतार-चढ़ाव ने ही उसे परिश्रमी और संघर्षशील बनाया है। किसी भी साहित्यकार की रचनाओं के तह तक पहुँचने के लिए उनके व्यक्तित्व के प्रति अवगत होना नितांत जरूरी है। इस संदर्भ में डॉ कामिनी तिवारी का कथन सार्थक हैं 'किसी भी साहित्यकार के कृतित्व में उसका व्यक्तित्व प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में प्रतिबिंबित होना ही है। व्यक्तित्व में व्यक्ति की संवेदना उसके स्वभावगत संस्कार, परिवेशगत अनुभव किसी प्रसंग से उसके मन-मस्तिष्क पर होनेवाली क्रिया-प्रक्रियायें आदि समाहित रहती हैं। साहित्यकार के कृतित्व का सही परिप्रेक्ष्य में मूल्यांकन करने हेतु उसके व्यक्तित्व से अवगत होना समीचीन होता है।' इस दृष्टि से ममताजी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का आकलन अवलोकन यहाँ हुआ है।

ममता कालिया कृत एक प्रमुख लघु उपन्यास है 'प्रेम कहानी'। इस उपन्यास में प्रेम विवाह की समस्या का उल्लेख किया है। नारी प्रधान प्रस्तुत उपन्यास की नायिका है 'जया'। यह उपन्यास आत्मकथा शैली में लिखा गया है। उपन्यास के आरंभ में जया के पापा के तबादले की बात बताती है। जया के रेडियो स्टेशन में कार्यरत पिताजी का हर तीन साल में तबादला होना जरूरी है। इसका असर जया घर भी पहनी है। उसे भी अपनी बढ़ाई, सहेलियां और परिवारिक परिवेश हर तीन साल में बदलना पड़ता है। इस बार जया सपरिवार दिल्ली में रवाना हो जाती है। पडोसी दार के राशा से प्रभावित जया दिल्ली विश्वविद्यालय में एम. ए. करने का निर्णय लेती है। माँ-बाप के इच्छानुसार उसे हॉस्टल के बजाय माँ के दूर के रिश्तेदार के यहाँ ठहरनी पड़ती है।

वह चाचा के पास रहने लगती हैं। परंतु चाचा के यहाँ जगह की कमी होने के कारण सभी इसी घर में रहते हैं। चाचा एक रात अँधेरे का फायदा उठाकर जया के साथ दुव्यवहार करते है। इस घटना के कारण जया अब होस्टल में रहने लगती है। होस्टल में तह अपने आपको स्वतंत्र एवं स्वस्थ महसूस करती है। वह कॉलेज के कार्यकल 28/72 पूर्णतः तल्लीन हो जाती है। उसके कॉलेज में कई समितियाँ थीं। उन्हीं में से एक समिति 'सागर पार छात्र समिति' थी। उसकी सचिव जया बनती है।

यशा जया की सहेली थी। वह दिल्ली की रहनेवाली थी। उसकी एक सहेली थी फरीदा। फरीदा अपनी पढ़ाई होने के बाद अपने देश शिकागो में चली जाती है। फरीदा के भाई है मुहम्मद । मुहम्मद और यशा एक दूसरे से प्यार करते हैं। वह यशा के साथ विवाह भी करना चाहता है।

जया और गिनेश की मुलाकात कॉलेज में सागर-चार छात्र समिति के उद्‌घाटन के अवसर पर होती है। गिनेश अनिवासी भारतीय है। वह मॉरीशस से डॉक्टर की पढ़ाई के लिए दिल्ली आया है। अस्पताल में ही वह हाउस जॉब करता है। यहाँ दोनों एक दूसरे को प्रेम करता है। गिनेश को अपनी उच्च शिक्षा करने का मौका मिला। उसी समय गिनेश जया के जीवन साथी बनने का प्रस्ताव रखता है। जया गिनेश को होस्टल का नंबर दे देता है और वह उसे बताती है कि वह अभी तो घर जा रही है जुलाई में लौटेंगी।

सारा होस्टल धीरे-धीरे खाली कर देती है। यशा अपने मुहम्मद के खत के इंतजार में वहीं रुकी है। लेकिन जया अब रुक नहीं सकती इसलिए वह जाने की तैयारी कर लेती है। वह अभी निकल रही थी कि अचानक गिनेस का फोन मिलता है। वह उससे कहना है कि उसे अत्यन्त महत्वपूर्ण बात करनी है और वह अगली गाड़ी में ही चली आएँ। जया उसे मिलने चली जाती है। वह घर चली जाती है, वहाँ अपने माता-चिता के सामने वह इसी तरह का प्रस्ताव रखती है। उसके मम्मी-पापा उश घर बिगड़ जाते हैं। उसे काफी भला बुरा कहते है। यहां तक उसकी आगे की शिक्षा रोके देने की बात करते हैं। जब यशा उससे मिलने जाती है। उसकी गांचौकीदार की तरह वहां बैठ जाती है। लेकिन जया वहाँ से भागकर दिल्ली आती है और जब वह गिनेश के सामने खड़ी हो जाती है तो वह सिर्फ एक छोटा सा वाक्य कहता है- 'मैं जीत गया?'। इस तरह वे दोनों परिवारों की इच्छा के विरुद्ध शादी कर देता है। शादी करने के बाद हॉस्टल छोड़कर अस्पताल के अहाते में गिनेस के क्वार्टर में रहने का इंतजाम कर लेते हैं। वह बढ़ाई नहीं छोड़ी। छुट्टी लेकर वे गौरीशस चले जाते हैं। वहाँ जाने के बाद उसके घरवालों का व्यवहार देखकर वह खुश हो जाती है। उन दोनों का स्वाभाव फूलों से होता है। गाड़ी में बैठने से पहले उन्हें लड्डू खिलाया जाता है। रास्ते भर उसकी बहनें गाने गाती हैं। वहाँ का बाज़ार दिल्ली की याद दिला रहा था।

गिनेश उसे अपने चाय के बागान, बड़ी झील आदि दिखाता है। वहाँ के हनुमान जी का मंदिर देखकर उसे मथुरा का शिततताल याद आता है। उसे वहाँ गिनेस के दादा की समाधि दिखाई जाती है और उनके पूर्वजों ने कैसे आजादी प्राप्त की थी, यह उसे बताया जाता है। सब सुनकर वह स्तब्ध रह जाती है। गिनेस के घरताले चाहते थे कि हाउस सर्जनशीप के बाद गिनेस

को मॉरीशस में रहना चाहिए। लेकिन वह नहीं मानता और वे दोनों दिल्ली वापस आते हैं। वह पहले एस. डी. कर लेना चाहता है। प्रो. गुप्ता को एक प्रतिभाशाली छात्र के रूप में जाना जाता है। वह अब रेजिडेंड डॉक्टर की हैसियत से बी. एस अस्पताल में है। डॉ. गुप्ता 'बच्चों के जादूगर' कहे जाते थे। शाम पर उनके बंगले का अहाता और दिन भर उनके अस्पताल का बरामदा मरीजों से भरा रहता था। है। इलाज करने की फीस ले लेते थे। गिनेश की साथ उसका एक और साथी चक्रधर भी डॉ. गुप्ता के साथ देता था। वे दोनों ही डॉ गुप्ता के लालज का विरोध करते थे।

डॉ गुप्ता अपने विद्याथियों से काम करवा लेने में कुशल थे। एक दिन रात को चक्रधर और डॉक्टर ग्यारह बजे निकलने वाले ही थे कि एक व्यक्ति अपना छोटा बच्चा लेकर वहाँ आ जाता है। उनका बच्चा पिछले तीन घंटे से लगातार रो रहा था और सो नहीं पा रहा था। डॉ गुप्ता मुस्कान देते हैं और हँस कर आधा चमच ड्राइकलोरीयल सिरप पिला देते हैं। बच्चा चुप हो जाता है और वे माँ-बाप खुश होकर बीस की जगह चालीस रुमये दे देते हैं। चक्रधर इसका विरोध करता है। लेकिन डॉक्टर उसे चुप रहने के लिए कहते हैं। गिनेश उनकी इसी बात पर चिढ़ जाता है। गिनेश एक बार डॉ जुप्ता से गलत प्रिस्क्रिपशन के लिए झगड़ा भी करता है। तो वे उसे तमीज के अंदर रहने के लिए कहते हैं। गिनेस जया से सलाह करता है कि उस पढ़ाई का क्या मतलब है? जिसका जवाब जया के पास नहीं है।

शहर में मलेरिया फैला गया है। अच्छी कंपनी की जोलिया मैंगलाई काफी तादाद में जा चुकी हैं। लेकिन फिर भी गोलियों कम पड़ती है। घंटों लाईन में खडे असंतुष्ट रोजी चपरासी थे वो बहस करने लगते हैं। जिनेस भी चाहता है कि रोगियों के लिए दवा का तत्काल प्रबन्ध हो। परंतु डॉ गुप्त भी उन्हें राजनेताओं के पास जाने के लिए कहते हैं- 'तो इसका इलाज हम कहाँ से करें। जाएं ये गांधी टोपी वाले नेताओं के पास उनसे इलाज मांगे। उसने क्यों नहीं कुछ कहते, जिन्हें थे चुपचाप जाकर वोट पकड़ा आते हैं।' डॉक्टरों की स्वार्थी नीति यहाँ दिखाई देती हैं।

एक दिन जया और गिनेश बंगाली मार्केट में चले जाते हैं। वहाँ एक दुकान में यशा दिखाई देती है। दोनों ही खुश होते हैं। यशा जया को अपने पति से परिचय कराता देती है और यह बताती है कि उसका पति लोहे का व्यापारी है, तो जया आश्चर्य में डूब जाती है। यशा का वेश भूषा देखकर वे समझता है कि यह यशा बिलकुल खुश नहीं दिखाई दे रही है। यह देखकर गिनेश कहता है- 'शी सीम्स टू बी बोर्न फॉर ट्रेजिडी।' अब जया को अपनी माता-पिता की याद आती है।

डॉ. गुप्ता के दो पुत्र थे आकार और आधार । मिसेस गुप्ता हमेशा बच्चों के फोटो और चिट्ठियों उसे दिखाती है। कभी-कभी जब वे छुटिटयों में होस्टल से घर लौटते तो सभी मिलकर खुशी मनाते हैं और ढ़ेर सारी बातें करते थे। उन्हें पापा की व्यस्तता बुरी तरह खलती है। आकार तो कहता है 'और एक हैं, हमारा पापा ! जब देखो अस्पताल, क्लिनिक, विजिट फोन। हमें स्टेशन से लाने और स्टेशन छोड़ आने के अलावा जैसे उनका हमसे कोई मतलब नहीं।' वे दोनों बच्चे पापा के बारे में अक्सर शिकायत करते हैं। वे दोनों ही उन दोनों बच्चों को समझाने की कोशिश करते थे परंतु वे नहीं मानते थे।

डॉ. गुप्ता के पिता को दिल का दौरा पड़ने से वह हिण्डैन के पास के गाँव में चले जाते हैं। पिता के मिसेज, मिलने के बाद जल्दी से डॉ गुप्ता दिल्ली चले आते हैं। ताकि काम भी चलती और इलाज भी ठीक है। गिनेस इस संबंध में जया से चर्चा करते हैं और डॉक्टर गुप्ता के यहाँ न होने की वजह से रोज सात सौ रुपये का नुकसान हो रहा है। गिनेस ने अस्पताल के उत्तरदायित्व अच्छी तरह प्रबंधित किया है।

अचानक एक दिन अपने बच्चों के स्कूल से फोन आता है कि उनके दोनों बच्चे लापता है। डॉक्टर जी के साथ गिनेश और जया भी चल पड़ते हैं। वहाँ जाकर उन्हें पता चलता है कि ये दोनों बच्चों के बारे में कोई जानकारी नहीं। पूरे स्थान पर बच्चों को खोजा। ग्यारह दिन बाद वह हत्यार पकड़ा गया। यह वही आदमी था, जो एक बार एक मरीज बच्चे के बाप के रूप में सामने आ चुका था। स्कूटर का पहिया उस बच्चे के पेट को रौंदकर चला गया था। लेकिन डॉ.गुप्ता ने इसका इलाज नहीं किया। उन्होंने उसे पुलिस में रिपोर्ट दर्ज कराने के लिए कहा। डॉक्टर जी के इस विलम्ब की वजह से उसके बच्चे की मौत हो गयी। इसी का बदला चुकाने के लिए उसने यह नृशंस हत्याकाण्ड किया था।

इस स्तिथि में अस्थिर एवं निराश डॉ गुप्ता की जिम्मेदारी श्री गिनेस के कंधों पर आ पड़ता है। परिणामस्वरू प वह अस्पताल में दिन रात व्यस्त रहता है। डॉक्टरी को आदर्श रूप माननेवाला गिनेश पूरी लगन और निष्ठा के साथ मरीजों की सेवा में जुट जाता है। इधर जया घर में दिन-रात गहन अकेलेपन से तड़प उठती है। जिनेश की सफलता जया को असफलता का एहसास दिलाती है।

ममता कालिया द्वारा लिखी गयी 'प्रेम कहानी' लघु उपन्यास में प्रेम विवाह की असफलता से ज्यादा डाक्टरों के जीवन यथार्थ को चित्रित किया है। जया और जिनेस कहानी के दो समानांतर बिन्दु हैं। गिनेश केवल अपने व्यक्तिगत जीवन में ही सामाजिक रूढ़ियों को नहीं तोड़ता, बल्कि अपने डॉक्टर पेशे में रहकर भारतीय समाज के टूटे और आर्थिक रूप से असहाय लोगों के बराबर उत्कर्ष और संवेदनशील रहता है। उसके माध्यम से सरकारी अस्पताल में उच्चपदस्थ डाक्टरों की तानाशाही उनके द्वारा किया जा रहा मरीजों का शोषण, भारतीय अस्पताल में फैला भ्रष्टाचार, गरीबों की तड़प, दवाईयों का गबन आदि का पर्दाफाश करना भी लेखिका का उद्देश्य रहा है।

सह आचार्य, हिन्दी विभाग
महात्मागाँधी कॉलेज, तिरुवनन्तपुरम

धार्मिक एकता की गूँज आधुनिक हिंदी उपन्यासों के परिप्रेक्ष्य में - एक अनुशीलन

डॉ. गोपकुमार जी

भारतवर्ष सदियों से हिंदू-मुस्लिम-सिख ईसाई आदि अनेक आस्थाओं का संगम-स्थल रहा है, जहाँ प्रत्येक व्यक्ति स्वधर्म पर स्वाभाविक गर्व करता है और सहजीवन की परंपरा निभाता है। यह गौरव तभी लोक कल्याणकारी बनता है जब उसे विवेक और मर्यादा संचालित करें; किंतु यही भाव अंध-आस्था या अतिरंजित अभिमान का रूप ले ले तो सोच संकीर्ण हो जाती है, असहिष्णुता व द्वेष पनपते हैं, और सह-अस्तित्व की भावना पर विद्वेष, संघर्ष तथा विघटनकारी प्रवृत्तियाँ हावी हो जाती हैं- फलतः मानवीय संवेदना, सहृदयता व करुणा हाशिए पर चली जाती हैं और व्यक्ति धर्म की आड़ में पक्षपातपूर्ण दृष्टिकोण को ही सर्वस्व मान बैठता है।

इतिहास गवाह है कि ऐसी संकुचित दृष्टि सामाजिक सौहार्द के लिए घातक सिद्ध हुई है, और नब्बे के दशक के हिंदी उपन्यासकार इसी समकालीन यथार्थ को दर्पण-वत् उभारते हैं। वे दिखाते हैं कि जब धार्मिक आस्था कट्टरता व असहिष्णुता में बदलती है, तो न केवल सामाजिक ताना-बाना विदीर्ण होता है बल्कि व्यक्तियों के अंतर्मन पर भी गहरे, विषाक्त घाव अंकित हो जाते हैं। यह विमर्श साथ-साथ यह भी उजागर करता है कि औपनिवेशिक काल की 'फूट डालो और राज करो' नीति से बोए गए विष-बीज, स्वातंत्र्योत्तर भारत में निहित स्वार्थों व राजनीतिक हितों की खाद-पानी पाकर विशाल विष-वृक्ष बन चुके हैं, जिनकी घातक छाया में सांप्रदायिकता आज भी निरंतर फल-फूल रही है।

धार्मिक कट्टरता और उसके सामाजिक विखंडनकारी परिणामों का एक सशक्त चित्रण मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास 'इदन्नमम' में मिलता है। यहाँ बउ का चरित्र धार्मिक संकीर्णता की ग्रंथि से ग्रस्त प्रदर्शित किया गया है। विषम परिस्थितियों में चीफ साहब की मुस्लिम भगिनी अनवरी के गृह में आश्रय प्राप्त करने के ऊर्परांत भी, बउ अपने धार्मिक पूर्वाग्रहों के वशीभूत होकर उनके गृह में जल ग्रहण करने से भी स्वयं को विरत रखती हैं एवं अपना भोजन स्वयं निर्मित करती हैं। वे अपनी इस भावना को इन शब्दों में अभिव्यक्त करती हैं, "यही कि मुसलमानों के घर का खाना-पीना देखकर डुकरों हल्ला न कर दें। छुआछूत फैलाई तो दबी ढकी बात कितने दिन छिपेगी?"[1]

प्रस्तुत उपन्यास में अयोध्या प्रकरण के पश्चात् समाज में परिव्याप्त सांप्रदायिक तनाव का भी मार्मिक अंकन है। बाबरी मस्जिद विध्वंस के ऊर्परांत श्यामली ग्राम के हिंदुओं में धार्मिक कट्टरता का उन्माद उभरता है और वे प्रतिशोध की अग्नि में दग्ध हो उठते हैं: "चलो हम भी मारेंगे मुसलमान, काटेंगे उनके सिर, हाथ-पाँव। बस जिसके हाथ में जो आया ले-लेकर निकल पड़े नथू, पन्नी माते का मोंडा धनसिंह, अपने पिरकास लै लै लठ्ठ पहोंच गये चीफ साब के दुआरें। पल्ले पुरा के अर्जुन, भगवानसिंह, रामभरोसे हुनैं आ गये फरु आ लै-लै कें।"[2] इस सांप्रदायिक उन्माद की पराकाष्ठा के परिणामस्वरूप चीफ साहब के परिवार को ग्राम-त्याग हेतु विवश होना पड़ता है, जो दिखाता है कि कैसे संगठित घृणा व्यक्तिगत जीवन को तहस-नहस कर सकती है।

युवा पीढ़ि पर सांप्रदायिकता के दुष्प्रभाव और व्यक्तिगत संबंधों में इसकी घुसपैठ को रवीन्द्र वर्मा का उपन्यास 'निन्यानबे' मार्मिकता से चित्रित करता है। उपन्यास में के.के. एवं अलका का प्रणय-संबंध अंतर्जातीय होने के कारण सामाजिक अनुमोदन से वंचित रह जाता है एवं विवाह-सूत्र में परिणत नहीं हो पाता। अलका अपनी विवशता इन शब्दों में प्रकट करती है, "तुम कायस्थ हो हम ब्राह्मण हैं मेरी माँ तो इस प्रस्ताव पर ही अनशन कर देगी।"[3] इसी प्रकार बल्लो, उल्फत एवं सुजाता के विवाह-प्रसंगों में भी धार्मिक कट्टरता अवरोधक सिद्ध होती है।

कतिपय हिंदूवादी युवक मुस्लिम समुदाय को लांछित करने के कुत्सित उद्देश्य से सिद्दीकी नामक पात्र के ललाट पर बलपूर्वक गैरिक तिलक अंकित कर देते हैं। राम जन्मभूमि एवं बाबरी मस्जिद विवाद का गहन दुष्प्रभाव किशोरों के अपरिपक्व मानस पर भी अंकित होता है, जिसका ज्वलंत प्रमाण प्रिया के विद्यालय में खेला जाने वाला मंदिर-मस्जिद का क्रीड़ा-प्रसंग है। प्रिया इस संदर्भ में बताती है, ' 'इस खेल में पहले मिट्टी से एक मस्जिद बनाई जाती, फिर लात मार कर मस्जिद गिराई जाती और फिर ऐन उसी जगह एक मिट्टी के मंदिर का निर्माण होता... अगले दिन मंदिर की जगह धूल होती थी। लड़कियाँ फिर उसी जगह मस्जिद बनातीं, गिराती और फिर मंदिर बना देतीं जो गिर जाता।"[4] यह दर्शाता है कि कैसे सांप्रदायिक जहर अगली पीढ़ियों तक संक्रमित होता है। उपन्यास का एक प्रमुख चरित्र हरि, जो हिंदूवादी संगठन से संबद्ध है, अपने आवास पर भगवा ध्वज फहराकर एवं संपूर्ण आवास को गैरिक वर्ण से अनुरंजित कर अपनी धार्मिक संकीर्ण मानसिकता का निर्लज्ज प्रदर्शन करता है।

वीरेंद्र जैन के उपन्यास 'डूब' में धार्मिक संकुचितता के अनेक मार्मिक और विचलित करने वाले दृश्य उकेरे गए हैं, जो समाज में व्याप्त इस व्याधि की गहराई को दर्शाते हैं। उपन्यास में यह दर्शाया गया है कि कैसे धार्मिक और जातीय पूर्वाग्रह राजनीति को भी प्रभावित करते हैं। ठाकुर, मोती साव (बनिया) को गाँव का सरपंच बनाने के पक्ष में नहीं हैं, क्योंकि उनकी

दृष्टि में गाँव में यदुवंशी अहीर और रघुवंशी ठाकुरों की उपस्थिति में किसी बनिया का सरपंच बनना उनकी जाति और बिरादरी का अपमान है। वे अपनी इस भावना को व्यक्त करते हुए कहते हैं, "वो तो मोती साव का नाम सुनकर हमने यह सोची कि इस गाँव में इतने यदुवंशी अहीर मौजूद हैं, हम रघुवंशी ठाकुर मौजूद हैं, एक बनिया की यह मजाल ! और इस बनिया की करतूत तुम खुद भी तो देख रहे हो। उसे न तुम पर भरोसा है, न किसी और पर। उसे भरोसा है केवल अपने कलदार पर।..."[5] यह कथन राजनीतिक शक्ति के वितरण में धार्मिक और जातीय पूर्वाग्रहों की भूमिका को स्पष्ट करता है।

धार्मिक कट्टरता का एक और रूप अंतर्जातीय विवाह के विरोध में प्रकट होता है। मास्साव द्वारा अपनी बेटी यशस्वनी का विवाह रामदुलारे (जो उनकी दृष्टि में निम्न जाति के हैं) से करने के निर्णय का उनके रिश्तेदारों द्वारा घोर विरोध किया जाता है। वे इसे 'अधर्म' मानते हुए कहते हैं, "कैसी भी दशा रही हो मास्साव की, मगर यह तो अधर्म ही हुआ न कि रामदुलारे के साथ एक क्षत्रिय जाति की कन्या।"[6] यह घटना दर्शाती है कि व्यक्तिगत पसंद और प्रेम पर भी धार्मिक और जातीय रूढ़ियाँ किस प्रकार हावी रहती हैं।

इसके अतिरिक्त, बनिया समुदाय भी अपने धर्माभिमान के कारण अन्य, विशेषकर निम्न, जातियों के प्रति हेय दृष्टि रखता है। मँझले साव का अटू साव को दिया गया उपदेश इसका प्रमाण है: "तू यह बातें गाँव वालों को क्यों बताता है? शहर में छोड़ आया कर यह नए जमाने की नई नई बातें। तेरी बातों पर यकीन करके कल को किसी चमार या बसोर की मताई तेरी मताई के बगल में खड़ी होकर कुएँ से पानी भरेगी तब क्या अच्छा लगेगा? तेरी मताई फिर क्या कभी भी उस कुएँ का पानी पी सकेगी? तब जानता है क्या होगा? दिवाले (मंदिर) के कुएँ से पानी भरेंगे ये ओछी जाति वाले और तेरी मताई, काकी, आजी मील भर दूर जाएँगी पानी लेने।"[7] यह कथन समाज में व्याप्त गहरी जातिगत खाई और अस्पृश्यता की भावना को दर्शाता है।

इसी संकुचित सोच के कारण घूमा के घायल भाई को अदू साव द्वारा इलाज नहीं करने दिया जाता। अपनी खाट पर एक निम्न जाति के व्यक्ति को सोया हुआ देखकर उन्हें अपने धर्म का अपमान महसूस होता है और वे उसे डांटकर कहते हैं, "उठा अपने भाई को। तेरी इतनी हिम्मत कि हमारी खाट पर.... चल उठा और ले जा अपने टपरे में!"[8] यह प्रसंग दर्शाता है कि कैसे धार्मिक और जातीय पूर्वाग्रह मानवीय करुणा और संवेदना को भी कुचल देते हैं।

उपन्यास की शुरुआत में ही सांप्रदायिक हिंसा का भयावह रूप देखने को मिलता है। देश की स्वतंत्रता प्राप्ति के ऊर्परांत, लडैई गाँव में एक अफवाह के आधार पर कि "मुसलमानों के रहते आज़ादी का कोई अर्थ नहीं,"[9] गाँव के कट्टर हिंदुओं द्वारा मुसलमानों का नृशंस संहार किया जाता है। यह घटना दर्शाती है कि कैसे धार्मिक आधार पर घृणा फैलाकर अमानवीय कृत्य किए जा सकते हैं।

अंततः, लडैई गाँव के दिगंबर जैन समुदाय में धर्माभिमान इस कदर व्याप्त है कि वे अन्य देवों को 'कुदेव' मानते हैं। जब मोती साव 'पत्थर बब्बा' का दर्शन करते हैं, तो जैन समाज उन्हें अपनी बिरादरी से बहिष्कृत कर देता है। यह प्रसंग एक ही धर्म के भीतर व्याप्त संकीर्णता और असहिष्णुता को उजागर करता है। इन उदाहरणों से यह स्पष्ट होता है कि 'डूब' उपन्यास एक ऐसे सामाजिक और धार्मिक परिवेश का चित्रण करता है जो धार्मिक संकुचितता, जातीय भेदभाव और असहिष्णुता से बुरी तरह ग्रस्त है।

अलका सरावगी का उपन्यास 'कलिकथा' : वाया बाइपास धार्मिक संकीर्णता के विमर्श को औपनिवेशिक नीतियों की पृष्ठभूमि में मर्मस्पर्शी संवेदना के साथ प्रस्तुत करता है, जहाँ 'विभेद करो और शासन करो' की नीति धार्मिक वैमनस्य को और गहराती है। उपन्यास में हिंदू-मुस्लिम संघर्षों के दौरान अमोलक को लुंगीधारी हिंदुओं द्वारा बंदी बनाकर निर्वस्त्र कर उसका लिंग जांचना धर्म के नाम पर की गई पाशविकता का भयावह चित्र है, जो संकीर्णता की अमानवीय परिणति को उजागर करता है।

उपन्यास के पात्र किशोर बाबू सांप्रदायिक दंगों की विभीषिका का साक्षात्कार करते हैं, जहाँ 'कलकत्ता की सड़कों पर लाशें ही लाशें बिछी थीं। खून की नदी बह रही थी। सड़क पर छोटे-छोटे हिंदू मुस्लिम बच्चों की अतडियाँ बाहर दिख रही थीं।"[10] वे यह विचार करने को विवश होते हैं कि जब सहस्रों वर्षों में हिंदू-मुसलमान सह-अस्तित्व का पाठ नहीं सीख पाए तो भविष्य में यह कैसे संभव होगा, और देश का विभाजन ही एकमात्र श्रेयस्कर विकल्प प्रतीत होता है। उपन्यास यह भी रेखांकित करता है कि देश-विभाजन के ऊर्परांत भी धार्मिक संकीर्णता का शमन नहीं हुआ, जिसका एक ज्वलंत प्रमाण बाबरी मस्जिद का ध्वंस है। इसमें 'विश्व हिंदू परिषद' एवं 'राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ' जैसी संस्थाओं की भूमिका का भी उल्लेख प्राप्त होता है, जो सांप्रदायिकता के संस्थागत और राजनीतिक आयामों पर प्रकाश डालता है।

प्रभा खेतान के 'छिन्नमस्ता' में प्रिया की जननी जातिगत श्रेष्ठता-बोध और धार्मिक कट्टरता से इतनी ग्रस्त है कि वह तथाकथित निम्न जाति वालों को घर में घुसने तक नहीं देती, मेहतर के जाते ही पूरा घर शुद्ध कराया जाता है, पाचक न हो तो वह स्वयं भोजन बनाती है पर किसी और सेवक को रसोई में आने नहीं देती। यह व्यवहार व्यक्तिगत स्तर पर सांप्रदायिक और जातिवादी मानसिकता की गहराई उजागर करता है। इन उदाहरणों से जाहिर होता है कि स्वतंत्रता के बाद भक्तिभाव तो बढ़ा, किंतु अक्सर नकारात्मक, विघटनकारी रूप में; इसी पृष्ठभूमि में राही मासूम रज़ा का 'आधा गाँव' अहम हस्तक्षेप बनकर सामने आता है, जो दिखाता है कि स्वाधीनता-पूर्व ग्रामीण भारत

में हिंदू-मुस्लिम समुदायों के बीच कोई कठोर विभाजन रेखा नहीं थी और वे सहज सौहार्द के साथ जीते थे। इस तरह उपन्यासकार दोनों पाठों के माध्यम से साम्प्रदायिकता की जड़ें और उसकी वैकल्पिक मानवीयता-भरी सम्भावनाएँ एक साथ सामने रखते हैं।

राही मासूम रज़ा के अन्य उपन्यास 'टोपी शुक्ला' एवं 'हिम्मत जौनपुरी' भी हिंदू-मुस्लिम समस्या को यथार्थवादी एवं संवेदनशील परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करने का स्तुत्य प्रयास करते हैं। वस्तुतः राही का संपूर्ण कथा-साहित्य सांप्रदायिकता के विष के विरुद्ध एक अनवरत साहित्यिक प्रतिरोध के रूप में दृष्टिगोचर होता है। डॉ. प्रमिला अग्रवाल राही के उपन्यासों के संदर्भ में कहती हैं, "राही के उपन्यासों के विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि ये उपन्यास विभाजन के बाद पतनशील जीवनमूल्यों, अविश्वास और संदेह के माहौल में सच्चे, ईमानदार लोगों की मनोव्यथा का चित्रांकन करते हैं। मुस्लिम परिवारों का अन्तरंग इनमें खुलकर सामने आया है, साथ ही भारतीय मुसलमान की पीड़ा का मार्मिक चित्र भी इनमें प्रस्तुत है।"[11]

धर्म के नाम पर बुने प्रपंचों का सबसे बड़ा शिकार मध्यवर्ग होता है, जो भावनात्मक-आर्थिक शोषण के साथ-साथ धर्मगुरुओं की अंधश्रद्धा-प्रधान प्रपत्ति में फँसकर विवेकहीनता की गर्त में धकेला जाता है। भारत के धर्मनिरपेक्ष स्वरूप के बावजूद नागरिकों को समय-समय पर धर्म के नाम पर उपजी अमानवीय क्रूरताओं और विभीषिकाओं का सामना करना पड़ता है, और यह तब और भयावह हो उठती है जब धर्म अपनी उदारता और सहिष्णुता त्यागकर संकुचित, आत्म केन्द्रित परिधि में सिमट जाता है। किसी धर्म में जब नवीन विचार, तर्कसंगत विमर्श और संवाद के लिए अवकाश नहीं बचता तथा परंपरागत प्रतिपादनों को ही 'अंतिम सत्य' मानने की हठधर्मी अपेक्षा कर ली जाती है, तो वह स्वयं जीवंतता खोकर जड़ता को प्राप्त होता है और इसी अपरिवर्तनशील संकीर्णता से समाज में सांप्रदायिकता के विष-बीज पल्लवित-पुष्पित होने लगते हैं।

महान कथाशिल्पी प्रेमचंद ने 'ज़माना' पत्रिका में इस ज्वलंत समस्या पर गहन चिंता व्यक्त करते हुए लिखा था, "दुर्भाग्य से वर्तमान समय में धर्म विश्वासों के संस्कार का साधन नहीं, राजनीतिक स्वार्थ-सिद्धि का साधन बना लिया गया है। उसकी हैसियत पागलपन सी हो गई है जिसका वसूल है कि सब कुछ अपने लिए और दूसरों के लिए कुछ नहीं।"[12] यह मंतव्य आज भी अपनी प्रासंगिकता अक्षुण्ण बनाए हुए है। इसी क्रम में, प्रख्यात कथाकार कमलेश्वर ने धर्म की इस आत्मघाती प्रवृत्ति पर टिप्पणी करते हुए कहा है, "कोई धर्म अंतिम नहीं है। हर धर्म को अंततः मानव धर्म के साँचे में ढलना पड़ेगा और मानव हित के लिए उसे बदलना तथा स्वयं को परिष्कृत करना होगा। अंतिम सत्य किसी एक धर्म या मजहब के पास नहीं है। हर धर्म या मजहब को पूरा होने के लिए दूसरे धर्मों से कुछ न कुछ लेना पड़ेगा। यदि ऐसा नहीं होगा तो यह दुनिया और इसकी सभ्यता एक-दूसरे की पूरक न बनकर विरोधी ही बनी रहेंगी।"[13]

प्रेमचंद ने धार्मिक पहचान से ऊपर उठकर राष्ट्रीय एकता को ही भारत के उद्धार का एकमात्र मार्ग बताया। उन्होंने अपने निबंध गोलमेज़ परिषद में गोलमाल में लिखा "भारत का उद्धार अब इसी में है कि हम राष्ट्र-धर्म के उपासक बनें, विशेष अधिकारों के लिए न लड़कर, समान अधिकारों के लिए लड़ें। हिन्दू या मुसलमान, अछूत या ईसाई बनकर नहीं, भारतीय बनकर संयुक्त उन्नति की ओर अग्रसर हों, अन्यथा हिन्दू मुसलमान, अछूत और सिक्ख सब रसातल को चले जायेंगे।"[14]

निष्कर्ष : हिंदी उपन्यासों ने धार्मिक संकीर्णता और सांप्रदायिकता के विविध पक्षों को अत्यंत संवेदनशीलता व यथार्थ के साथ उजागर किया है। इन रचनाओं में यह स्पष्ट होता है कि जब धर्माभिमान अंधता और द्वेष में बदलता है, तो वह समाज और राष्ट्र के लिए विनाशकारी बन जाता है। औपनिवेशिक नीतियाँ, राजनीतिक स्वार्थ, धर्मगुरुओं का प्रभाव और मध्यवर्ग की उलझनें इस प्रवृत्ति को और भी जटिल बनाते हैं। विशेषतः नवें दशक के उपन्यास इस संकट के प्रति अधिक सजग हैं, जो दर्शाते हैं कि सांप्रदायिकता मानव-मूल्यों का ह्रास कर हिंसा और विघटन को बढ़ावा देती है। प्रेमचंद और कमलेश्वर जैसे लेखक धर्म को मानवता, सहिष्णुता और सेवा से जोड़ने का संदेश देते हैं। इन कृतियों के माध्यम से साहित्य न केवल समस्या को चित्रित करता है, बल्कि समरस और मानवीय समाज की ओर मार्ग भी सुझाता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. 'इदन्नमम', मैत्रेयी पुष्पा, 2009, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.सं -371
2. वही, पृ.सं-254
3. 'निन्यानबे', रवीन्द्र वर्मा, 1998, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. सं-97
4. वही, पृ.सं-171
5. 'डूब',वीरेंद्र जैन, 1991, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.सं -41
6. वही, पृ.सं-265
7. वही, पृ.सं-65-661
8. वही, पृ.सं -72
9. वही, पृ.सं-11
10. 'कलिकथा : वाया बाइपास', अलका सरावगी, 1998, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.सं- 168
11. 'भारत विभाजन और हिंदी कथा साहित्य', डॉ. प्रमीला अग्रवाल, 1992, जयभारती प्रकाशन, इलहाबाद, पृ.सं -34
12. 'मनुष्यता का अकाल', प्रेमचंद, ज़माना पत्रिका, फरवरी अंक, 19241
13. 'कितने पाकिस्तान', कमलेश्वर, 2007, राजपाल एंड सन्ज, दिल्ली, पृ.सं -21
14. 'गोल मेज़ परिषद में गोलमाल', प्रेमचंद, निबंध, अक्तूबर 1931

सह आचार्य, बी जे एम सरकारी कॉलेज
चवरा, कोल्लम, 9997069564

प्रकृति की कोमलता और मानवीय प्रवृत्ति को दर्शाती मुनि क्षमासागर की कविताएँ

डॉ. भरत

सारांश

मुनि क्षमासागर की कविताओं से गुजरते हुए भावुक कवि हृदय का परिचय मिलता हैं। एक तरफ वह मनुष्यता की बात करता है तो दूसरी तरफ प्रकृति की कोमलता को भी दर्शाते हैं। इन दोनों अवस्था में मनुष्य और प्रकृति के बीच के दर्शन को दिखाते हैं। इसके लिए वह बहुत ही सहज भाषा का उपयोग करते हैं। शब्दों का आडम्बर नहीं रचते। ऐसे सहज और सरल शब्द कहते हैं जो सीधा अंतरमन को उद्वेलित करता है। उनकी कविताओं में चिड़िया, नदी, समुद्र, सूरज, वृक्ष बार-बार आते हैं जिनसे बतियाते हुए कवि अपने मन को खोलते हैं तो कभी उनके मुख से बोलते मिलते हैं। ये कविताएँ सरल हैं, किन्तु सरलता गहरी है। ये कविताएँ सहज हैं, पर सहजता निर्मम है। ये परोक्ष में सन्देश भी कह जाती हैं, पर अपमान नहीं करतीं। कवि की सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि समकालीन जीवन-स्थितियों से, निराक्रोश मुठभेड़ करती है। इनकी कविताएँ एक दर्शन को रेखांकित करती हैं जो प्रकृति, मनुष्य, जीवन और मृत्यु के बीच झूलते मनुष्यता की गहन अभिव्यक्तिका दर्शन है। यह दर्शन तभी संभव है तो मनुष्य प्रकृति के निकट पहुँच सकेगा। इन्हीं की अभिव्यक्ति मुनि क्षमासागर की कविताओं में हैं।

बीज शब्द *:- प्रकृति, मनुष्यता, जीवन, दर्शन, समाज, अस्तित्व, अभिव्यक्ति, उपभोक्तावादी संस्कृति।*

मूल आलेख :-

मुनि क्षमासागर का काव्य संग्रह 'अपना घर' में उनकी चुनी हुई कविताएँ संकलित हैं। जैसे ही 'मुनि' शब्द जहन में गूँजता हैं तो एक छवि मन में उभरती हैं कि कोई दिगम्बर, कथावाचक व्यक्ति होंगे। लेकिन मुनि क्षमासागर की कविताओं से गुजरने के बाद एक भीगे हृदय वाले कवि का परिचय मिलता हैं। इसलिए डॉ. सरोजकुमार ने लिखा है- "मुनिश्री क्षमासागर की कविताओं को बिना पढ़े सोचा जा सकता है कि ये दिगंबर, वीतराग मुनि की संदेशबहुल नीति-कथाएँ होंगी, जिनमें सांसारिक जीवन की आसक्तियों/विकृतियों को रेखांकित किया गया होगा। पर ऐसा कतई नहीं है। इनमें वे अपनी आकाँक्षाओं और सपनों के शेष से साक्षात्कार की मुद्रा में उपस्थित हैं। ये ऐसे संवेदनशील कवि की भाषिक संरचनाएँ हैं, जो अनुभव सम्पन्न और विचार प्रवण तो है ही, निर्लिप्त भावुकतावश अपने विचारोद्वेलन की अनुगूँज जहाँ-तहाँ, कहीं भी और किसी भी बहाने सुन सकता है।"[1] अर्थात् कवि प्रकृति और मनुष्यता के बीच बन रही खाई को अपनी कविताओं के माध्यम से अभिव्यंजित करते हैं।

इस कविता संग्रह में करीब पचहत्तर से अधिक कविताएँ हैं। जो एक तरफ प्रकृति की कोमलता के रहस्य को खोलती हैं वहीं दूसरी तरफ मनुष्यता के उपभोगवादी और अहमवादी दृष्टि को रेखांकित करती हैं। इस संग्रह की पहली कविता 'अकिंचन' में कवि कहते है- "देने के लिए कृति की कोमलता के रहस्य को खोलती हैं वहीं दूसरी तरफ मनुष्यता के उपभोगवादी और अहमवादी दृष्टि को रेखांकित करती हैं। इस संग्रह की पहली कविता 'अकिंचन' में कवि कहते है- "देने के लिए/मेरे पास/ क्या है/ सिवाय इस अहसास के/ कि कोई/खाली हाथ/ लौट न जाए।"[2] 'अकिंचन' यानी की दरिद्र अर्थात् बहुत गरीब ऐसा व्यक्ति जिसकी माली हालत ठीक नहीं हैं। लेकिन उसके भीतर पूंजीवादी दौर में एक अभिलाषा है उसके दर से कोई खाली हाथ न जाए। कवि का यह विचार अवसरवादी युग में मनुष्यता को बचाए रखने की मार्मिक पहल है।

मनुष्य जितना ऊपर उठता जा रहा हैं उतना ही वह अपनी ज़मीन से कटता जा रहा है। एक तरफ वह नई उपलब्धियों को छू रहा है तो दूसरी तरफ अपनी ज़मीन से दूर होता जा रहा है। अपनी ज़मीन से जुड़े रहकर भी आकाश को छुआ जा सकता है। प्रकृति इसका सबसे बड़ा उदाहारण हैं। वह 'घोंसला' कविता में लिखते हैं- "मैंने चिड़िया को/घोंसला बनाते देखा है/मैंने उसे दाना चुगते/और झट से आकाश में/उड़ते देखा है/ मैं चाहता हूँ कि चिड़िया/मुझे भी यह सब सिखाए/कि किस तरह/जमीन से/जुड़े रहकर/आकाश में/उड़ा जा सकता है,/ कि किस तरह/असीम आकाश में/उड़ने का अहसास/ एक घोंसले में/रहकर भी/जीवित रखा जा सकता है।"[3]

प्रकृति ने मनुष्य को वह सभी कुछ बिना किसी भेदभाव के दिया है जो मनुष्य के लिए जीवनोपयोगी है। जिससे मनुष्य का जीवन संचार निर्बाध गति से चलता रहे। निसर्ग' कविता में कवि लिखते हैं- "सूरज ने कहा-अपने द्वार खोलो/ मेरी रोशनी/ तुम्हारी होगी/वृक्षों ने कहा-/ मेरे करीब बैठो/मेरी छाया/तुम्हारी होगी/नदियों ने कहा-/ मेरे किनारे आकर/हाथ बढ़ाओ/मेरी बहती धारा/तुम्हारी होगी/मैंने ऐसा ही किया/अब रोशनी मेरी है/छाया भी मेरी है/मेरे जीवन की धारा/निर्बाध बहती है।"[4] प्रकृति की मनुष्य से एक अभिलाषा भी है। बिना स्वार्थ के उसे प्रकृति के पास आना होगा। सूरज के लिए बंद दीवारों को खोलना होगा, वृक्षों के पास बैठना होगा, नदी के पास बैठकर उसकी लहरों का संगीत सुनना होगा। इन सभी के बाद ही मनुष्य निर्बाध गति से प्रकृति के साथ ताल-मेल बैठा सकता है।

प्रकृति विशाल है। उसका अस्तित्व मानवीय अस्तित्व से प्राचीन होने के साथ-साथ बहुत ताकतवर भी हैं। लेकिन वह

कभी इस महानता को बखान नहीं करती। बल्कि उसका गुण यह है कि वह झुकना जानती हैं। सामने वाले के अस्तित्व को स्वीकारती हैं। लेकिन मनुष्य में सामने वाले के अस्तित्व स्वीकारने का बोध नहीं हैं। वह अपने अहंकार में डुबा हुआ है। कवि 'भाई तुम महान हो' कविता में लिखते हैं- "मैंने आकाश से कहा/तुम बहुत ऊँचे हो/आकाश ने/मुस्कराकर कहा-तुम मुझसे भी/ ज्यादा ऊँचे हो/मैंने सागर से कहा-तुम बहुत गहरे हो/सागर ने/ लहराकर कहा-तुम मुझसे अधिक गहरे हो/मैंने आदमी से कहा-भाई तुम महान हो/आदमी झट से बोला-तुम ठीक कहते हो।"[5] जबकि जो मनुष्य का अहंकार है वह स्थाई नहीं हैं। वह वक्त के साथ मिट जाता है या प्रकृति उसे मिटा देती है। फिर भी वह मुर्दों की तरह अकड़ा बैठा है। 'रेत पर पैरों की छाप' कविता में वह उसे अभिव्यंजित करते हुए लिखते हैं- "नदी के किनारे/रेत पर पड़ी/ अपने पैरों की छाप,/ सोचा/लौटकर उठा लाऊँ/मुड़कर देखा, पाया/उठा ले गयीं हवाएँ/मेरी छाप अपने आप/अब मन को समझाता हूँ/ कि हवाएँ सब/ दुश्मनों की नहीं होतीं/ जो मिटाने आती हो/ हमारी छाप/असल में, अहं की रेत पर/बनी हमारी छाप/ मिट जाती है/ अपने - आप।"[6] यहाँ अस्तित्व समाप्ति की बात नहीं हैं बल्कि अहंकार समाप्ति की बात है। एक दिन लोग भूल जायेंगे, मनुष्यता के अहंकार के पद चिह्न प्रकृति धीरे-धीरे मिटा देंगी। फिर भी क्यों अहंकार से भर उठा है। वह सरल होना भूल गया है।

समाज जैसे-जैसे विकसित हो रहा है। एक तरफ जहाँ नई वैज्ञानिकता की तरफ निरन्तर खोज़ जारी हैं। सभी को समान सुविधा देने के लिए प्रयत्न हो रहा है। लेकिन व्यक्ति की अतिवादिता भी बढ़ती जा रही है। जहाँ एक तरफ किसी के पास आवश्यकता से अधिक चीजें हैं तो कहीं आवश्यकता से कम भी हैं। लेकिन प्रकृति में निवास करते जीव कभी अति का संग्रह नहीं करते हैं। 'प्रतिदान' कविता में कवि लिखता है- "चिड़िया ने/अपनी चोंच में/जितना समाया/उतना पिया/उतना ही लिया,/ सागर में जल/खेतों में दाना/बहुत था। चिड़िया ने /घोंसला बनाया इतना/जिसमें समा जाए/जीवन अपना/संसार बहुत बड़ा था।/चिड़िया ने रोज एक गीत गया/ऐसा जो/धरती और आकाश/ सब में समाया/चिड़िया ने सदा सिखाया/एक लेना /देना सवाया।"[7] प्रकृति जितना ज़रूरी हैं उतना ही ग्रहण करती है। लेकिन देते वक्त लेने से अधिक ही प्रदान करती हैं। उपभोक्तवादी संस्कृति से एक टकराहट दिखाई देती है। दूसरी तरफ असीम होकर भी खुद को नन्हीं आँखों में देखना उसकी महानता को दर्शाता है। 'सागर असीम होकर भी... कविता में लिखते हैं- "सागर के/ शांत जल में/जब भी कोई/ अपना प्रतिबिंब देखने/झुकता है, तब सागर भी/उन आँखों में/अपने को प्रतिबिम्बित होते/देख लेता है/तब सागर असीम होकर भी/सीमाओं में/समा जाता है।"[8] खुद के अस्तित्व का पता अपने से बड़ों के कदमों पर चलने से नहीं होता बल्कि छोटे या हाशिये पर खड़े व्यक्ति की आँखों में क्या छवि हैं आपकी, यह मनुष्य का कद तय करती है।

मनुष्य संसार में घूम लेता हैं। लेकिन कभी खुद की यात्रा नहीं करता। अपने भीतर नहीं जाता है। अब कवि खुद के भीतर की यात्राएँ करना चाहता हैं। पहला कदम और अंतिम कदम दोनों खुद की यात्रा के लिए ही होने चाहिए। कवि 'गन्तव्य' कविता में कहता है- "यात्रा पर निकला हूँ,/लोग बार-बार/पूछते हैं, कितना चलोगे?/मैं मुस्कराकर/आगे बढ़ जाता हूँ,/किससे कहूँ/कि कहीं तो नहीं जाना,/मुझे इस बार/अपने तक आना है।"[10]

किसी को उखाड़ने की प्रवृत्ति प्रकृति में नहीं दिखती हैं। उसमें बसाने की प्रवृत्ति हैं उजाड़ने की नहीं।'अनहोनी-1 कविता में कवि लिखते हैं- "तुमने सुना/कभी किसी वृक्ष ने/ अपनी शाखाओं पर बने/पक्षी के घोंसले/अपने ही हाथों तोड़कर/ नीचे फेंक दिये हों?/तुमने नहीं सुना,/ मैंने भी नहीं सुना/ ऐसा तो/किसी ने /कभी नहीं सुना।"[11] उजाडकर फेंकने का काम मनुष्य का हैं प्रकृति का नहीं।

हिन्दी कविताओं में बच्चों के मन की अभिव्यक्ति कम मिलती है। मुनि क्षमासागर ने बच्चों के मन की अभिव्यक्ति को मार्मिकता के साथ व्यक्त किया है। जैसा व्यवहार उनके साथ किया जाता है वह वैसा ही सीखते और करते हैं। 'मुखौटे' कविता में कवि कहते हैं- "अपने बच्चों को/डराने-धमकाने/ हमने कुछ/डरावने चेहरे/अपने लिए/बनवाये थे/बच्चे कुछ दिन/ डरते रहे/फिर असलियत जानकर/ हँसते रहे/अब बच्चे/बड़े हो गये हैं/ हमारे चेहरे लगाकर/ हमें ही डरा रहे हैं।"[12] कुछ समय में चेहरे पर बने मुखौटे बच्चे पहचान लेते हैं और जो देखकर सीखते हैं वही दोहराने लगते हैं।

जीवन को सरलता से जीना बहुत ज़रूरी हैं। सरलता का अर्थ बच्चों की तरह जीने से हैं। जिसमें जिज्ञासाएँ हैं। नई-नई उमंगें हैं। हर व्यक्ति के भीतर बच्चा होता है। लेकिन उसने अपने ऊपर समझदारी का जो बोझ लाद लिया है। भीतर का बच्चा कहीं खो गया है। 'चुप रह जाता हूँ' कविता में कवि लिखते हैं -"जब कभी/लगता है/कि तुमसे पूछूँ-बच्चों की तरह,/कि सूरज को/रोशनी कौन देता है/कि आकाश में इतना नीलापन/कहाँ से आता है,/कि सागर में/इतना पानी/कौन भर जाता है,/तब यह सोचकर/कि कहीं तुम हँसकर/टाल न दो/कि मैं बड़ा हो गया हूँ/मैं चुप रह जाता हूँ।"[13] बच्चों की तरह जिज्ञासु होने से समाज उसे स्वीकारने की जगह हँसने लगते हैं। उस सहजता को लोग नहीं समझ पाते बल्कि बचपन की और लौटना असल में मनुष्यता की तरफ लौटना है, प्रकृति की तरफ लौटना है। 'लोग हँसते हैं' कविता में कवि कहता है- "मैंने/ सूरज को बुलाया है/वृक्ष भी आएँगे/चिड़ियाँ भी आएगी/नदी और सागर/दोनों ने/आने को कहा है,/धरती और आकाश/ दोनों के नाम/ मैंने चिट्ठी लिख दी है,/कि हमारी/माटी की गुड़िया के/ब्याह में/सभी को आना है।/ लोग हँसते हैं/कहते हैं/ यह मेरा बचपना है।/ सचमुच प्रकृतिस्थ होना/बचपन में/लौटना है।"[14] कवि की चिंता यह भी है कि जैसे- जैसे हम बड़े होते

जाते हैं। अतिबौद्धिकता अपने उपर ओढ़ने लगते हैं हमारे सच झूठ होते जाते हैं और झूठ सच होने लगते हैं। 'झूठा सच' कविता में कवि कहते हैं -"बचपन के/जाने कितने सच/बड़े होने पर/ झूठ मालूम पड़ते हैं,/क्या सचमुच/बड़े होते-होते हम/सच को/ झूठ करते जाते हैं?"[15] यह अतिबौद्धिकता सच का अतिक्रमण हैं जिसे भवानी प्रसाद मिश्रा भी कुछ यूँ अभिव्यक्त करते हैं- "तुम बंजर हो जाओगे यदि इतने व्यवस्थित ढ़ँग से रहोगे/यदि इतने सोच समझकर बोलोगे चलोगे/कभी मन की नहीं कहोगे/सच को दबाकर झूठे प्रेम के गाने गाओगे/तो मैं तुमसे कहता हूँ तुम बंजर हो जाओगे।" इस बंजरपन से तभी बचा जा सकता हैं जब मनुष्य अपने भीतर के बच्चे को जिंदा रख सकें और समाज उस बचपन की सरलता को आत्मसात कर सके।

आपसी संबंधों में जो दीवारें बनती जा रही हैं। कवि बनती इन दीवारों के लिए चिंतित है। संबंधों के बीच खिड़की लगा देने से संबंधों की गहनता नहीं बनती। बल्कि संबंध आज औपचारिकता भर रह गए हैं। कवि 'खिड़की' कविता में लिखते हैं- "सम्बन्धों के बीच/ पहले/एक दीवार/हम खुद/खड़ी करते हैं/फिर उसमें/एक खिड़की लगाते हैं/पर जिंदगी-भर/करीब रहकर भी/हम खुलकर/कहाँ मिल पाते हैं ?"[16] घर का बंटवारा हो सकता है। जमीन, धन का हो सकता हैं। लेकिन मानवीय भावनाओं का हो जाने पर उस पीड़ा को वह कैसे व्यक्त करें। 'पीड़ा' कविता इसका बोध कराती है - "घर का/बँटवारा हो गया/जमीन-जायदाद/सब बँट गयी,/ अमराई और कुँआ भी/ आधे-आधे हो गये,/ अब मेरे हिस्से में मेरा/और उसके हिस्से में/उसका आकाश है।/ सवाल यह नहीं है/कि किसे कम मिला/और किसके हिस्से में/ज्यादा आया है,/मेरी पीड़ा/अपने ही/बँट जाने की है।"[17]

एक तरफ मुनि क्षमासागर मनुष्यता की बात करते हैं। वहीं दूसरी तरफ प्रकृति की कोमलता को भी दर्शाते हैं। इन दोनों अवस्था में मनुष्य और प्रकृति के बीच के दर्शन को वह दिखाते हैं। इसके लिए वह बहुत ही सहज भाषा का उपयोग करते हैं। शब्दों का आडम्बर नहीं रचते। ऐसे सहज और सरल शब्द कहते हैं जो सीधा अंतरमन को उद्वेलित करते हैं। इसलिए डॉ. सरोज कुमारी लिखती हैं- "इन कविताओं में चिड़िया, नदी, समुद्र, सूरज, वृक्ष बार-बार आते हैं जिनसे बतियाते हुए कवि अपने मन को खोलता आए कभी उनके मुख से बोलता मिलता है। ये कविताएँ सरल हैं, पर सरलता गहरी है। ये कविताएँ सहज हैं, पर सहजता निर्मम है। ये परोक्ष में सन्देश भी कह जाती हैं, पर अपमान नहीं करतीं। इन कवि की सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि समकालीन जीवन-स्थितियों से, निराक्रोश मुठभेड़ करती है।"[18] इनकी कविताएँ दर्शन को रेखांकित करती हैं जो प्रकृति, मनुष्य, जीवन और मृत्यु के बीच झूलते मनुष्यता की गहन अभिव्यक्ति है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. मुनि सागर, अपना घर, भारतीय ज्ञानपीठ।काशन, दिल्ली, चतुर्थ संस्करण-2018, पृष्ठ संख्या-पुस्तक के फ लेग पेज से।
2. मुनि सागर, अपना घर, भारतीय ज्ञानपीठ।काशन, दिल्ली, चतुर्थ संस्करण-2018, पृष्ठ संख्या-9
3. वही, पृष्ठ सं-12, 4.वही, पृष्ठ सं-16 5.वही,पृ सं-17
6. वही, पृष्ठ सं-83 7.वही, पृष्ठ सं-28 8.वही, पृष्ठ सं-49
9. वही, पृष्ठ सं-55 10.वही,पृष्ठ सं-36,11.वही,पृष्ठ सं-84
12. वही,पृष्ठ सं-14,13.वही, पृष्ठ सं-40,14.वही,पृष्ठ सं-87
15. वही, पृष्ठ सं.44, 16. वही,पृष्ठ सं-6917.वही,पृष्ठ सं-32
18. वही, पृष्ठ संख्या-पुस्तक के फ लैप पेज से

असिस्टेंट प्रोफेसर (हिंदी)
स्टाफ रूम, श्री अटल बिहारी वाजपेयी
गवर्मेंट आर्ट्स एंड कॉमर्स कॉलेज,वांकल
गुजरात, सुरत-384430

हाइकु

डॉ.रंजीत रविशैलम

(1) हिंदी लहर
जुड गए भारत
अब कहर।

(2) अधिक गर्मी
कर्म प्रतीक सूर्य
अकेलापन।

(3) गाँधी का राम
रामराज्य घोषणा
शुभ संकेत।

(4) जागा सूरज
छायी है उजाला
चिराग तले।

(5) प्रकृति माते
मानव ही को दे
उसकी मांग।

(6) प्रतियोगिता
अजीविका के लिए
संभाल प्राण।

संपादक, केरल ज्योति।

कमलेश्वर की कहानियों में आधुनिक नारी

डॉ.षेर्लिन

वर्तमान युग में, नारी के जीवन मूल्यों में तेजी से परिवर्तन हो रहा है । भारतीय परंपरा के अनुसार पत्नी को पति की अनुगामिनी मानी गयी है। मनमुटाव के बाद भी उनमें मेल दिखाई देता है। लेकिन आधुनिक युग ने इन सारे मूल्यों को अस्वीकार किया है। आधुनिक नारियों का एक वर्ग परंपरागत पत्नी के आवरण को तोड़कर अपनी वैयक्ति स्वतंत्रता, इच्छा एवं स्वाभिमान में ही जीने का प्रयत्न कर रही है। आधुनिक नारी शिक्षा, बुद्धि भाव और कार्य के बल पर, पुरुष के समान रूप में खुद को खड़ा करने के लिए प्रयत्नशील है। अब वह पुरुष प्रधान संस्कृति के अन्यायपूर्ण बंधन तोड़कर संसार के खुले प्रांगण में बुद्धि और श्रम के बल पर विचरण करना चाहती है।

कमलेश्वर जी ने भी अपनी कहानियों में आधुनिक नारी का चित्रण किया है जो अपने बलबूते पर समाज से डटकर सामना करती है। वह अपना एक स्वतंत्र अस्तित्व बना लेती है। पुराने मूल्यों की प्रति अनास्था और नए मूल्यों की प्रति आस्था, यह मानसिकता उसके परिवर्तित जीवन मूल्यों की ओर संकेत करती है। पाश्चात्य संस्कृति से कुप्रभावित कुछ ऐसी आधुनिक नारियों का एक वर्ग भी है जो भारतीय संस्कृति पर कलंक है। वे अपने सुख और भोग के लिए अपने पति को छोड़कर अलग-अलग पुरुषों से संबंध रखती है । आधुनिकता का मुखौटा पहनकर अपना काम निकाल लेती है। 'मेरा भारत महान' कहानी में भी एक आधुनिक नारी का चित्रण किया गया है जो अपने अपाहिज पति को छोड़कर दूसरी शादी कर लेती है। पुराने जमाने में पति अपाहिज, गरीब या मरीज बन जाये है तो पत्नी उसे छोड़कर नहीं जाती प्रत्युत वह पहले से भी अधिक लगन और प्रेम से पति की सेवा में जुड़ी रहती थी। लेकिन आधुनिक युग में ऐसा नही देखा जाता है। विवाह की बाद संयोगवश पति लंगड़ा या मरीज बन जाता है तो उसकी सेवा शुश्रूषा करने के बदले निरालंब और अपाहिज पति को छोड़कर चली जाती है क्योंकि भौतिक सुख के पीछे भागने वाली नारी को लंगड़ा पति एक बोझ बन जाता है। फिल्म प्रोड्यूसर अनिल की पत्नी हंसा अपनी इज्जत की रक्षा के बहाने अपाहिज पति को छोड़कर दूसरी शादी कर लेती है। अनिल की राय में "उसने डाइवोर्स ले लिया था। आखिर उसकी इज्जत का सवाल भी तो था "किसी दिन अगर मैं उसकी इज्जत न बचा पाता तो? वह मेरे लिए टोटली फैथफुल थी ..... इसलिए जरूरी कि वह मुझे तलाक दे और अपनी इज्जत की रक्षा करें।"[3] मेरा भारत महान कहानी भारतीय पति पत्नी संबंध की परंपरागत मूल्यों के लिए एक चुनौती है।

वर्तमान युग की स्त्री इतनी स्वतंत्र और स्वार्थमयी हो गई है कि अपने सुख के लिए पति को छोड़कर प्रेमी के साथ जाने में हिचकती नहीं है। पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति ने भारत की नारियों को इतना प्रभावित कर लिया है कि वह अपने अहं और अस्तित्व के बल पर केवल अपनी ही खुशी को अहमियत देती है। कमलेश्वर की कहानी 'दुखों के रास्ते' में ललिता अपनी खुशी के लिए बच्चों के भविष्य की चिंता किए बिना पति बलराज से तलाक लेकर प्रेमी वीरेंद्र के साथ रहती हैं। बलराज का ललिता और वीरेंद्र के रिश्ते को समझना और उसे मनाना आधुनिक युग के पुरुष के बदलते हुए दृष्टिकोण का परिचायक है। बलराज स्थिति को समझते हुए कहता है - "चूंकि वह तुम्हारे पास रहता है इसलिए तलाक मिलने में कोई दिक्कत नहीं होगी ,लेकिन बेहतर यही है कि हम आपसी रजामंदी से दरखवास्त दें। इसमें तुम्हें कोई नुकसान नहीं होगा और बाद में तुम वीरेंद्र को पति के रूप में लेकर रह सकती हो। तुम्हें सामाजिक स्वीकृति चाहिए वह तब तक नहीं मिल सकती जब तक मैं बीच से नहीं हटता। बेहतर यही है कि मैं हट जाऊँ।"[4]

'मेरा भारत महान' और 'दुखों के रास्ते' कहानी का अनिल और बलराज दोनों अपनी अपनी स्थिति से समझौता कर लेते हैं और अपनी पत्नियों के रास्ते से हट जाते हैं। प्राचीन भारतीय मूल्यों के अनुसार विवाहित स्त्री का अन्य पुरुष के बारे में सोचना तक कलंक माना जाता था। लेकिन पश्चिमी सभ्यता से प्रभावित आधुनिक विवाहित नारी स्वार्थी बन जाती है और अपने जीवन को अधिक सुखमय बनाने की कोशिश करती रहती है। इस प्रकार की सुख की प्राप्ति की दौड़ में अपने रास्ते में आने वाले कांटों को हटाने से वह हिचकती नहीं, चाहे वे अपने पति या बच्चे ही क्यों न हो। पुराने ज़माने में अगर पत्नी किसी परपुरुष से संबंध रखती है तो उसे अपने घर से ही नहीं समाज से भी बाहर कर दिया जाता था। लेकिन आजकल की औरतें अपने ही घर में अपने ही मुताबिक जीती है।

पुराने ज़माने में यदि पति की मृत्यु हो जाती है तो पत्नी अपनी सारी वैयक्तिक इच्छाओं से हटकर सिर्फ अपने बच्चों के लिए शेष ज़िंदगी बिताती थी। लेकिन इस भौतिक युग में रागात्मक संबंध धीमा पड़ गया है। फलतः आधुनिक युग में माँ-बाप और बच्चों के बीच नाम - मात्र का रिश्ता रह गया है। 'तलाश' कहानी की माँ अपनी सयानी बेटी सुमी की परवाह किए बिना अपनी वैयक्तिक इच्छाओं के अनुरूप जीवन यापन करती हैं। सुमी भी आधुनिक युग की समझदार लड़की है। इसलिए जब सुमी को मालूम होता है कि उसकी विधवा माँ एक पुरुष मित्र की मित्रता चाहती हैं तो वह नाराज़गी नहीं दिखाती। प्रत्युत्त वह खुद बहाना बनाकर पापा की यादों को समेटकर हॉस्टल चली जाती है क्योंकि आधुनिक जीवन मूल्यों में जीने वाली वह लड़की दूसरों की वैयक्तिक स्वातंत्र्य और इच्छाओं में दखल देना पसंद नहीं करती चाहे वह अपनी माता ही क्यों न हो।

इस तरह 'दुखों के रास्ते', 'मेरा भारत महान' और

'तलाश' कहानी में कमलेश्वर जी ने अति आधुनिक नारी का चित्रण किया है जो हमारे भारतीय परिवेश में हाल ही में प्रकट होने लगे हैं ।

'देवा की माँ' कहानी में हम एक ऐसी आधुनिक नारी का दर्शन कर सकते हैं जो बड़ी स्वाभिमानी है और परंपरागत मूल्यों को सिर आंखों पर बैठाये रख कर अपनी पत्नी कर्तव्य का पालन करती आती है । लेकिन जब उसको यह एहसास हो जाता है कि उसका पति उसे ही नहीं उसके बेटे को भी धोखा दे रहा है तब उसका रूप ही बदल जाता है। देव की माँ परंपरागत पत्नी के परदे से बाहर आ जाती है। जब उसका पति दूसरी शादी कर लेता है तब वह उसे कोसती नहीं बल्कि कहती है - "आदमी में वैसे भी खोट नहीं होती उसे कुरास्ता तो औरत ही डालती है। मैं तो घर में रहती थी। वह ड्यूटी पर दौड़ते रहते थे। महीनों बाद आना होता था वही वह मिल गई और उसने बहका दिया। औरत चाहे तो अच्छे भले आदमी को उलझाते कितनी देर लगती है मगर उन्होंने यह सब समझ - बूझकर ही किया होता तो भला यहाँ आते? और असल बात यही थी चाची की मैं उनसे घुल मिल ही नहीं पाई । ससुराल में रहते घर की भीड़ भाड़ और हया शर्म में कभी अपनेपन की बात ही नहीं कर पाई। उन्होंने मुझे जाना ही नहीं और अनजान में तो जो कर बैठे वह तो हो ही गया।[1] देवा की माँ के स्वाभिमान को उस समय उतना धक्का नहीं लगा था जब उसके पति ने दूसरी शादी की थी । मगर उस समय वह अत्यंत आहत हो जाती है जब उसका पति, पुत्र को जेल से छुड़ाने के लिए कुछ नहीं करता। राजनीतिक गतिविधियों में भाग लेने के कारण देवा गिरफ्तार हो जाता है। जब देवा को गिरफ्तारी की खबर देवा के पिता तक पहुँचाई जाती है तब वह उसे छुड़ाने के लिए या जमानत दिलवाने से इनकार कर देता है, तब देवा की माँ पूरी तरह टूट जाती है। देवा की माँ सोचती है - "वह अब तक किन परछाइयों पर विश्वास करती आई .... देवा के पिताजी पर.... पर वह कितनी बड़ी प्रवंचना थी.... कितना बड़ा धोखा वह देते आ रहे है। कितनी सफाई से सारी जिम्मेदारी टाल गए थे और कितनी खूबसूरती से उसके नारीत्व और पत्नीत्व को तृप्त कर गए थे .... इसीलिए कि वह कुछ और न सोच सके.... वह सिर्फ यही तो चाहते थे कि वह इसी तरह लंगडाती,घिसटती और अधूरी रहकर भी पति के आकाशी आदर्श की गरिमा में अपने को धन्य मानती रहे.... वह नीचे उतरकर धरती का स्पर्श न कर पाए।[2] पति की क्रूरता, हृदयशून्यता एवं निसंगता से भली भांति परिचित होने पर भारतीय परंपरा के विरुद्ध वह आधुनिक नारी अपना सिंदूर की डिबिया तुलसी के बिरवे में चढ़ा देती है और माथे का सिंदूर पोंछ देती है

साल भर बाद देवा जेल से छूटकर घर आता है। देवा की माँ जब देवा को खाना परोस रही थी तब देवा अपने पिताजी की बीमारी और अस्पताल में भर्ती होने की बात अपनी माँ से कहता है। सुबह उठकर जब देवा अपनी माँ से पिताजी को देखने का अनुरोध करता है तब देवा की माँ साफ इंकार कर देती है और जब देवा खुद पिताजी को देखने का आग्रह प्रकट करता है तब उसे भी न जाने का निर्देश देती है। 'देवा की माँ' कहानी में देवा की माँ एक आधुनिक नारी के रूप में सामने आती है जो दांपत्य के परंपरागत मूल्यों को छोड़कर उज्ज्वल भविष्य की ओर अग्रसर होती है ।

आज की नारी स्वाभिमानी होने के साथ-साथ किसी पर बोझ नहीं बनती और खुद अपनी जिंदगी जीने में काबिल हो गई है। कमलेश्वर की कहानी 'जो लिखा नहीं जाता' में तीसरे व्यक्तिकी उपस्थिति के कारण दांपत्य में आए तनाव को दर्शाया गया है। एक दिन सुदर्शना अपने पति महेंद्र की प्रेरणा से कॉलेज के साथी चंदर के साथ हुए अपने प्रेम की कहानी प्रस्तुत करती है। कुछ देर बाद दर्शना को महसूस होता है कि - "हम दोनों के बीच एक और कोई दूसरा अनजाने ही आ गया है....हम दोनों अनजाने ही एक दूसरे के स्पर्शों की परिधि से बाहर आ गए थे। तभी से वह तीसरा आदमी हम दोनों के बीच बराबर रहता है।"[5] शक्की स्वभाव होने के कारण वह अपने पति को छोड़ देती है। पति से बिछड़ने के बाद वह अपने पिता के साथ उनके घर रहती है। पाँच साल तक वह अपने पिता के साथ रहती है। पिता की मृत्यु के अवसर पर महेंद्र और चंदर दोनों सुदर्शना से मिलने आते हैं। दोनों उसे स्वीकार करने के लिए सहमत थे। लेकिन वह किसी के साथ नहीं जाती। वह फिर अकेले ही अपनी जिंदगी बिताती है ।

कमलेश्वर जी ने अपने कहानी साहित्य में नारी का एक नया आधुनिक रूप ही दर्शाया है जो विभिन्न परिस्थितियों से जूझकर विभिन्न रूप धारण कर लेती है। पुराने जमाने में स्त्री, पुरुष को आँख उठाकर तक नहीं देखती थी। शादी के बाद पराए पुरुष को मन में लाना तक पाप समझी जाती थी। वही,आज की आधुनिक नारी अपनी इच्छा अनुसार शादी करती है, जब उसका मन ऊब जाता है तब वह अपने पति या प्रेमी को छोड़ देती, पराये मर्द से संबंध स्थापित करने में ही हिचकती नहीं। आजकल नर - नारी में समान अधिकार है। पहले पहल पुरुष, स्त्री को धोखा देते थे। आजकल स्त्री पुरुष को धोखा देने में अव्वल है। कमलेश्वर जी ने अपने कहानी-साहित्य में एक ओर आधुनिक, आदर्श और स्वाभिमानी स्त्री का चित्रण किया है तो दूसरी ओर अर्थ और वासना के पीछे भागने वाली आधुनिक नारी का भी चित्रण किया है जो समाज या समाज के मूल्यों की परवाह किए बिना बिंदास अपना जीवन व्यतीत करती हैं ।

संदर्भ

1. चर्चित कहानियां -कमलेश्वर - संस्करण -2005, पृ.56
2. वही पृ.60
3. इतने अच्छे दिन -मेरा भारत महान -कमलेश्वर- पृ.72
4. चर्चित कहानियाँ - कमलेश्वर - पृ.153
5. वही पृ.40

सह आचार्या, सरकारी संस्कृत महाविद्यालय, तिरुवनंतपुरम

आलोचना का नया द्वार खोलता काव्य-कोश: छायावादी काव्य-कोश

डॉ. महेद्र प्रसाद कुशवाहा

वर्ष 2023 के लिए 14 वॉ अयोध्या प्रसाद खत्री सम्मान हिंदी के प्रसिद्ध आलोचक और कोशकार पति-पत्नी द्वय प्रोफेसर कमलेश वर्मा और डॉ.सुचिता वर्मा को दिया गया है। पुरस्कार के लिए यह चयन पुरस्कार की तीन सदस्यीय समिति ने किया है जिसमें प्रो.रवीन्द्र कुमार रवि, श्री ब्रम्हानंद ठाकुर और वीरेंद्र नंदा जी शामिल थे। यह हिंदी का प्रतिष्ठित सम्मान है। इनके पहले कृष्ण बलदेव वैद, अखिलेश, शेखर जोशी, डॉ. तुलसी राम, डॉ.रोज केरकेट्टा, अनिल यादव, सुधीर विद्यार्थी, डॉ. विनय कुमार, पंकज बिष्ट, वॉल्टर भेगरा तरुण, निदा नवाज, डॉ.जोराम यालाम एवं सुरेन्द्र मनन जैसे प्रतिष्ठित साहित्य सेवकों को यह सम्मान मिल चुका है। देर से ही सही हिंदी साहित्य जगत ने प्रोफेसर कमलेश वर्मा और डॉ. सुचिता वर्मा के काम की नोटिस की है। इससे विश्वास जगा है कि अभी भी चुपचाप काम करने वाले लोगों की कद्र करने वाले लोग इस जहाँ में बचे हुए हैं। लगन और मेहनत से ईमानदारीपूर्वक काम करने की ज़ज्बा यदि आप में है तो देर भले लग जाय लेकिन आपके काम की सराहना करने वाले लोग आपको अवश्य मिल जायेंगे ।

विगत 17 वर्षों से 'प्रसाद काव्य-कोश', 'निराला काव्य-कोश' और 'छायावादी काव्य-कोश' के निर्माण में लगे हुए कमलेश वर्मा और सुचिता वमा का यह सम्मान इसका प्रमाण है। इसे ही केंद्रित कर मुजफ्फरपुर (बिहार) की अयोध्या प्रसाद खत्री स्मृति-समिति ने 16 नवम्बर, 2023 को मुजफ्फपुर में समारोह आयोजित कर 'अयोध्या प्रसाद खत्री सम्मान से सम्मानित किया। संस्था का यह निर्णय सराहनीय और स्वागत योग्य है।

प्रोफेसर कमलेश वर्मा और डॉ. सुचिता वर्मा दोनों ने अपनी उच्च शिक्षा जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली से ग्रहण की है जहाँ उन्हें प्रो. नामवर सिंह, प्रो. मैनेजर पाण्डेय, प्रो. पुरुषोत्तम अग्रवाल, प्रो. वीरभारत तलवार जैसे उच्च कोटि के विद्वान अध्यापकों से पढ़ने-गुनने और लिखने की विद्या को सीखने का सौभाग्य मिला है। इसे कोई भी व्यक्ति उनके व्यवहार और लेखन दोनों में बहुत आसानी से देख सकता है। वे इन बड़े गुरुओं के योग्य शिष्य हैं। उन्होंने अपने सार्थक लेखन से हिंदी में कुछ नया जोड़ने का सार्थक प्रयास किया है।

उपर्युक्त तीनों काव्य-कोश हिंदी काव्य-कोश निर्माण को नई उँचाई प्रदान करते हैं। इसके निर्माण की प्रक्रिया बहुत दिलचस्प है। 17 वर्ष पहले कमलेश जी ने जब इसकी शुरुआत की थी तब उन्हें भी इस बात का अंदाज़ नहीं रहा होगा कि आने वाले दिनों में उनकी यह योजना यह रूप ग्रहण कर लेगी। इसकी रचना प्रक्रिया के आरंभ में उनका ध्यान इस बात पर गया था कि छायावादी कविताएँ क्लासिक कविताएँ हैं। हम सब जानते हैं कि क्लासिक रचनाएँ बहुआयामी और बहुअर्थी होती हैं। ऐसी रचनाओं का यह सामर्थ्य होता है कि ये अपने भीतर कई अर्थ ग्रहण किये रहती हैं। इसी के साथ अर्थ के भटकाव की संभावना भी ऐसी रचनाओं के साथ बहुत रहती है। इसी भटकाव को कम करने और छायावादी कविता को आने वाली पीढ़ी को आसानी से समझाने के उद्देश्य से ही उन्होंने इसकी शुरुआत की थी। इस काम में ज्यों-ज्यों वे आगे बढ़ते गए, कोश अपना आकार ग्रहण करता गया और आज यह छायावादी कविता को समझने के लिए एक तरह से अनिवार्य ग्रंथ बनता जा रहा है। 'छायावादी काव्य-कोश के अंतर्गत इन्होंने छायावाद के नाम से एक तरह से रूढ़ हो गए कवि प्रसाद, निराला, पन्त और महादेवी की कविताओं को लिया है। अपने गहन शोध के आधार पर उन्होंने उपर्युक्त चारों कवियों की छायावादी कविताओं के आधार पर यह कोश तैयार किया है। इसमें लगभग 12664 प्रविष्टियाँ हैं जिनमें से 4599 प्रविष्टियाँ प्रसाद की कविताओं से, 3648 प्रविष्टियाँ निराला की कविताओं से, 2224 महादेवी की कविताओं से और 2193 प्रविष्टियाँ महादेवी की कविताओं से ली गई हैं। ध्यान से देखने पर पता चलता है कि प्रसाद की प्रविष्टियाँ इसमें सबसे अधिक हैं। इससे हमें यह आसानी से पता चल जाता है कि छायावादी कविता के विस्तार में सर्वाधिक योगदान प्रसाद का है और सबसे कम महादेवी का। इस शब्दकोश की खासियत है कि छायावादी कविताओं को पढ़ते हुए शब्दों के अर्थ तक पहुँचने की प्रक्रिया को यह हमारे लिए बहुत आसान बना देता है। इसके माध्यम से छायावादी कविता का सुलझा हुआ अर्थ कर पाना हमारे लिए बहुत सहज हो जाता है । आम तौर पर काव्य-कोश में शब्दों के अर्थ दे दिए जाते हैं, पर इसमें अर्थ के साथ-साथ हमें यह भी देखने के लिए मिलता है कि किसी शब्द को कवि ने अन्य कहाँ-कहाँ और किस रूप में प्रयोग किया है। इतना ही नहीं उस कवि के समकालीन कवियों ने उक्त शब्द को किस प्रकार से प्रयोग किया है, इसका भी विस्तृत विवरण इस कोश में हमें मिल जाता है।

जाहिर है इससे कविता के साथ-साथ कवि की दृष्टि को समझने में भी हमें मदद मिलती है। इस तरह से देखें तो आलोचना का एक नया परिदृश्य इसके माध्यम से उपस्थित होता है, रचनाओं को देखने की नूतन दृष्टि हमे यह काव्यकोश देता है। लौनी काव्य-कोशों से कोशकार ने पाँच कॉलम के माध्यम से शब्दों को विवेचित किया है- शब्द, काव्य-पंक्ति, अर्थ, ग्रंथावली, और स्रोत/संदर्भ । 'शब्द' के अंतर्गत छायावादी कविता में प्रयुक्त सामासिक पद, अर्थ की कठिनाई और विशिष्ट अर्थों में प्रयुक्त शब्दों को आधार बनाया गया है। 'काव्य-पंक्ति' के अंतर्गत उक्त शब्द को किस-किस कवि ने अपनी कविता की किन-किन पंक्तियों में उक्त शब्द का प्रयोग किया है, इसका विवरण है। 'अर्थ' के अंतर्गत उक्त शब्द का अर्थ कविता की पंक्तियों के हिसाब से दिया गया है। 'ग्रंथावली' के अंतर्गत इसका उल्लेख किया गया है कि उक्त काव्य पंक्तिरचनाकार की

ग्रंथावली के किस भाग में है। और 'स्रोत / संदर्भ' के अंतर्गत काव्य-पंक्ति से जुड़े संदर्भ को रखा गया है ताकि पाठक यह आसानी से पता लगा सके कि उक्त शब्द या काव्य-पंक्ति किस कविता से है और वह कविता कवि के किस संग्रह में है।

हम सभी जानते हैं कि छायावादी कवियों के शब्द प्रयोग पर नामवर सिंह, रामविलास शर्मा, मुक्तिबोध, रामस्वरूप चतुर्वेदी आदि आलोचकों ने समय-समय पर टिप्पणियाँ की हैं। उन टिप्पणियों की सीमा रही है कि उनकी परिधि कुछ ही शब्दों तक सीमित रही है जबकि छायावादी कवियों की शब्द-संपदा विपुल है। कोशकार ने अपने कठोर परिश्रम और लगन से छायावादी कवियों की विपुल शब्द-संपदा को इसमें विवेचित-विश्लेषित किया है। इस विश्लेषण के क्रम में अपने अग्रज आलोचकों की गलतियों का वे प्रमाण सहित परिमार्जन भी करते हैं। देखा जाय तो यह इस शब्द कोश की एक तरह से बड़ी विशेषता है। छायावादी काव्य-कोश की एक और बड़ी विशेषता यह भी है कि पहली बार किसी कोशकार ने कवियों के बीच किसी शब्द के प्रयोग के अनुपात को भी हमारे सामने उपस्थित किया है अर्थात् इसमें कोशकार ने छायावादी कवियों द्वारा प्रयुक्त किसी शब्द के अनुपात को दिखाया है। इससे हमें आसानी से यह पता चल जाता है कि किसी खास शब्द को किस कवि ने कितनी बार अपने काव्य-जीवन में प्रयोग किया है।

मेरी दृष्टि में प्रो. कमलेश वर्मा और डॉ. सुचिता वर्मा कृत छायावादी-काव्यकोश की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं

1. छायावाद को आधुनिक हिंदी कविता का स्वर्णयुग कहा जाता है। इस तरह से हिंदी कविता का क्लासिक रूप देखने के लिए हमें यहाँ मिलता है। समय के व्यतीत होने के साथ-साथ क्लासिक रचनाओं के अर्थ ग्रहण में कई बार बहुत दिक्कतें आती हैं। इसके फलस्वरूप कविता के अर्थ से अनर्थ होने की संभावना रहती है। ऐसी दिक्कतें रचनाओं को पाठकों से दूर ले जाती हैं। अपभ्रंश काव्य और आदिकालीन काव्य इसके उदाहरण हैं। अपभ्रंश काव्य तो हमारे अध्ययन-अध्यापन में वैकल्पिक हो ही गए हैं, वह दिन दूर नहीं जिस दिन आदिकालीन काव्य को भी हम वैकल्पिक प्रश्न-पत्र के रूप में पढ़ने-पढ़ाने लगे। इसी तरह ज्यों-ज्यों समय बीतेगा छायावादी काव्य को समझना पाठकों के लिए बहुत आसान नहीं रह जाएगा। अभी तो महज सौ साल हुए हैं छायावादी कविता के, पर कविता के अर्थ ग्रहण में पाठकों को दुरूहता का बोध होने लगा है। ढंग से इन कविताओं को पढ़ने-पढ़ाने वाले लोगों की संख्या में लगातार कमी आ रही है। ऐसे में यह काव्यकोश पाठकों-अध्येताओं को कविता में प्रयुक्त शब्दों का सही संदर्भ उपलब्ध कराते हुए कविता के प्रति पाठकों की रुचि विकसित करता है।

2. मेरी जानकारी में अपनी पद्धति में हिंदी का यह पहला काव्यकोश है जिसमें न केवल शब्दों के अर्थ दिए गए हैं बल्कि वह शब्द उस कवि के अलावा उनके समकालीन और किस कवि ने किस संदर्भ में इस्तेमाल किया है, इसका पूरा विवरण उपलब्ध कराता है।

3. यह काव्यकोश हमें यह भी अवसर उपलब्ध कराता है कि हम इसके माध्यम से कवियों की प्रवृति की जाँच कर सकें।

4. कवियों के महत्त्व को समझने में हमें यह काव्यकोश मदद करता है। इसके अध्ययन से हमारी पुरानी चली आ रही कई धारणाएँ टूटती हैं जैसे महादेवी को लेकर आम पाठक की धारणा है कि महादेवी ने स्त्रियों के दुःख को लेकर बहुत लिखा है। लेकिन यह काव्यकोश हमें बताता है कि महादेवी की कविताएँ जेंडर बेस्ड नहीं हैं। उनकी कविताओं का प्रेम महज स्त्री-पुरुष का प्रेम नहीं है बल्कि सम्पूर्ण जगत का प्रेम है। यह काव्यकोश हमें बताता है कि अपनी किसी कविता में महादेवी ने पुरुष, स्त्री, नारी जैसे शब्दों का प्रयोग नहीं किया है। काम, रति, वासना जो प्रेम के घटक तत्त्व माने जाते हैं, इसका प्रयोग महादेवी ने अपनी कविताओं में नहीं किया है। इसके साथ-साथ हमें यह काव्यकोश यह भी बताता है कि प्रेम के ऐसे स्वरूप के चित्रण में छायावादी कवियों में सबसे आगे प्रसाद हैं।

5. आमतौर पर हम महादेवी को रहस्यवाद से जोड़ते रहे हैं लेकिन इस काव्यकोश के अध्ययन के उपरांत हमें यह पता चलता है कि महादेवी ने अपनी कविता में ईश्वर, अध्यात्म आदि शब्दों का प्रयोग नहीं किया है। इसलिए महज रहस्यवादी कवि कहकर महादेवी को खारिज नहीं किया जा सकता। अतः महादेवी को लेकर हमें अपनी धारणाओं और मान्यताओं पर पुनर्विचार की ज़रूरत है।

6. यह काव्यकोश हमें कविता में शब्दों की संख्यात्मक स्थिति को समझने में सहायता करता है। आज तक हिंदी आलोचना में शब्द प्रयोग को प्रमुखता प्रदान करते हुए कवियों के मूल्यांकन की हमारी कोई परंपरा नहीं रही है। फुटकल कुछ प्रयास दिख सकते हैं, पर गंभीरता से हमने इस पर काम नहीं किया है। यह काव्यकोश हमें इस दिशा में आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करता है। मेरा मानना है कि इससे निश्चित रूप से आलोचना की हमारी दृष्टि विकसित होगी और हिंदी आलोचना समृद्ध होगी ।

7. अभी तक की हिंदी आलोचना ने आचार्य रामचंद्र शुक्ल और छायावाद के बीच एक तरह का विरोधी रिश्ता दिखाया है। यह काव्यकोश हमें यह अवसर उपलब्ध कराता है कि हम छायावाद और आचार्य रामचंद्र शुक्ल के रिश्तों की जाँच करें। विगत जुलाई महीने में काशी हिंदू विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग की ओर से 'कामायनी' पर एक अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी आयोजित हुई थी, जिसमें प्रो. कमलेश वर्मा ने इस काव्यकोश का सहारा लेकर छायावादी कवियों और आचार्य रामचंद्र शुक्ल की आलोचना में प्रयुक्त 'हृदय' से बनने वाले शब्दों का आंकड़ा प्रस्तुत किया था। इसके आधार पर उनका कहना था कि जिस तरह से 'हृदय' से बने शब्दों का प्रयोग छायावादी कवि प्रमुखता से करते हैं उसी तरह अपनी आलोचना में आचार्य शुक्ल करते हैं। ऐसे ही और बहुत शब्द हैं जो छायावादी कवियों और आचार्य शुक्ल को समान रूप से पसंद है। यह बहुत दिलचस्प आंकड़ा है। इसके आधार पर कहा जा सकता है कि यदि गंभीरता से छायावादी कवियों और आचार्य रामचंद्र शुक्ल के शब्द प्रयोग को साथ

रखकर विवेचन-विश्लेषण किया जाय तो हमारा उपर्युक्त भ्रम टूट सकता है। यह काव्यकोश हमें अपनी आलोचना को इस दिशा में भी आगे बढ़ाने के लिए प्रेरित करता है।

8. हिंदी के प्रमुख स्वातंत्र्योतर आलोचकों ने अपनी दृष्टि से समय-समय छायावाद और छायावादी कवियों पर विचार किया है। कई बार तथ्यों की पूरी जानकारी के अभाव में वे छायावादी कवियों के शब्द-प्रयोगों के बारे में कुछ ऐसी बातें भी वे लिख गए हैं तो तथ्यात्मक रूप से सही नहीं है। इसका मुख्य कारण यही रहा है कि आज तक चारों छायावादी कवियों द्वारा प्रयुक्त शब्दों को एक साथ किसी कोश में व्यवस्थित तरीके से विवेचित-विश्लेषित करने का प्रयास नहीं किया गया था। ऐसे में कुछ शब्द-प्रयोगों को देखकर उनकी जो धारणा बनी, वही उन्होंने कहा है। अब जब कोश तैयार हो गया है और उसके आधार पर जब हम उसे देखते हैं तो वह सही नहीं दीखता है। छायावादी काव्य-कोश की भूमिका में नामवर सिंह, रामविलास शर्मा, मुक्तिबोध, रामस्वरूप चतुर्वेदी आदि आलोचकों की ऐसी कई मान्यताओं का सप्रमाण खंडन और संशोधन कोशकार ने किया है। इससे हिंदी आलोचना को नई दिशा मिली है।

9. आखिर हम कह सकते हैं कि यह काव्य-कोश पाठकों-विद्यार्थियों को आधुनिक हिंदी कविता के अर्थों को खोलने का संस्कार देता है। दुर्भाग्य से हम ऐसे समय में जी रहे हैं जिसमें कविता को ढंग से समझाने वाले आध्यापकों और आलोचकों की संख्या बहुत कम हो गई है। ऐसे में यह काव्य-कोश हमारे लिए उम्मीद की किरण बनकर हमारे सामने आता है और हमारे भीतर कविता की समझ का विश्वास भरता है। यह छायावादी कविता को पढ़ने और पढ़ाने वाले विद्यार्थियों-अध्यापकों के लिए एक कुशल आचार्य की तरह मददगार है।

इस तरह से देखा जाय तो इस सम्मान ने इस दिशा में काम करने के लिए प्रोफेसर कमलेश वर्मा और सुचिता वर्मा का उत्साहवर्धन किया है। यह कार्य हिंदी की कविताओं को ठीक से समझने के लिए बहुत ज़रूरी है। इससे हिंदी के साथ-साथ हिंदी के साहित्यकारों की श्री-वृद्धि होगी। इधर बीच प्रोफेसर कमलेश वर्मा और डॉ. सुचिता वर्मा निराला काव्य-कोश, प्रसाद काव्य-कोश, महादेवी काव्य-कोश के निर्माण विस्तार देने में तो लगे ही हैं। उन्होंने आचार्य रामचंद्र शुक्ल आलोचना कोश बनाने का संकल्प भी लिया है। इस दिशा में उनका कार्य प्रगति पर है। यह निश्चय ही हम सब के लिए सुखद है। जब यह कार्य पूर्ण होकर हमारे बीच आएगा तो वह अपने तरह का अनोखा कार्य होगा, ऐसा मुझे पूर्ण विश्वास है।

संदर्भ सूची

छायावादी काव्य-कोश, कमलेश वर्मा सुचिता वर्मा, द मार्जिनलाइज्ड पब्लिकेशन, इग्नू रोड दिल्ली

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
मोबाइलः 933384491

लघुकथा

बुरी नज़र

डॉ.जी.गोपीनाथन

नारायणन की आँखें बुरी हैं। उसके देखने पर बुरा असर होता है। यह गाँव के सब लोग जानते थे; कई प्रमाण भी थे। एक बार पड़ोसी वासुदेव के नारियल के पेड़ पर भरे नारियल को देखकर नारायणन ने कहा, 'अरे, बहुत नारियल लगे हैं इस बार।' कहते हैं, तभी नारियल एक-एक करके झड़ने लगे। अपने दोस्त कुंजन के बेटे को देखकर नारायणन ने कहा, 'अरे, तुम तो बहुत बड़े हो गए। सेहत कितनी अच्छी बन गई है!' कहते हैं, लड़का उसी दिन से बीमार पड़ गया। काफी झाड़-फूंक करने के बाद बच गया। इन सब घटनाओं के कारण गाँववाले नारायणन से बहुत डरते हैं और कोशिश करते हैं कि उसकी नजर के सामने न पड़ें। कई लड़के तो उसको देखकर या तो कहीं छिप जाते हैं अथवा भाग जाते हैं। खेत में धान या सब्जी खूब उगे या कोई नया घर बन जाय तो लोग बुरी नजर से बचने के लिए बदसूरत पुतले बनाकर खड़ा करते हैं, या पुरानी हाँड़ी पर चूने के निशान बनाकर टाँगते हैं। कुछ लोग नारायणन को पीछे से गाली भी देते हैं; क्योंकि लोगों का विश्वास है कि ऐसा करने से बुरी नजर का असर कुछ कम हो जाता है।

तभी वह महान् घटना घटी। नारायणन का बेटा शेखरन गाय पालने का शौकीन था। मगर गायों को अपने पिताजी की नजर से बचाने के लिए आले में नारियल के पत्ते की टट्टी टाँक रखता था। उसकी चहेती गाय इस बार बछड़ा देने वाली थी। शेखरन का अपने पिताजी को सख्त आदेश था कि उस ओर न जाएँ और गाय को न देखें। लेकिन नारायणन गाय को देखना चाहता था और आखिर टट्टी हटाकर गाय को देख ही लिया। तभी उसके मुँह से निकला, 'अरे, गाय कितनी मोटी हो गई है! दूध भी इस बार खूब निकलेगा।' फिर देखते क्या हैं कि गाय चित पड़ी है। घर के लोग नमक-मिर्च लेकर झाड़-फूंक कर रहे हैं और नारायणन को गालियों से भुना रहे हैं।

लेकिन इस घटना के बाद लोगों ने देखा कि नारायणन की नजर या वाणी में अकस्मात् वह पुराना असर नहीं रह गया। इस बात से नारायणन बड़ा कुंठित रहने लगा और उसे लग रहा था जैसे उसका अस्तित्व ही खतरे में पड़ गया हो।

पूर्व कुलपति
अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय
वर्धा।

भारतीय ज्ञान सम्पदा के आलोक में हिन्दी जैन साहित्य

श्री.घनश्याम कुमार / डॉ. धर्मेन्द्र प्रताप सिंह

भारतीय ज्ञान सम्पदा अत्यंत विशाल है जिसके भीतर दर्शन, धर्म, नीति, संस्कृति, साहित्य आदि समाहित हो जाते हैं। वेद, उपनिषद, बौद्ध-जैन दर्शन आदि इसके मूल में विद्यमान हैं। सभी के दार्शनिक मतों का आदर्श रूप भारतीय ज्ञान सम्पदा के रूप में हमारे सामने उपलब्ध है जिसका लक्ष्य सर्व-कल्याण है। यह सभी जीवों के प्रति प्रेम और करुणा का संदेश देता है। वेद से निसृत दर्शन के अतिरिक्त बौद्ध और जैन दो स्वतंत्र दर्शन भारतीय ज्ञान सम्पदा की श्रीवृद्धि करते हैं। वैदिक धर्म दुनिया के सबसे प्राचीन धर्मों में से एक है। समय के साथ इसमें नाना प्रकार की कुरीतियाँ पैदा हो गयी जिसके कारण जैन धर्म और बौद्ध धर्म को फैलने की जगह मिली। ये भारतीय ज्ञान सम्पदा के महत्वपूर्ण अंग के रूप में प्रतिष्ठित हो चुके हैं। वैदिक धर्म के प्रचार के लिए जिस प्रकार वेद और उपनिषद की रचना हुई ठीक उसी प्रकार जैनियों ने भी अपने धर्म के प्रचार-प्रसार हेतु साहित्य का सृजन किया। यह साहित्य बाद के जैन धर्म को मनाने वाले रचनाकारों के लिए आधार बना, जिसका ध्येय है- सत्य, अहिंसा और तपस्या। जैन धर्म के पहले तीर्थंकर ऋषभदेव तो अंतिम महावीर स्वामी हुए। इसकी प्राचीनता को लेकर विद्वान एक मत के विश्वासी नहीं हैं; फिर भी ईसा पूर्व चार सौ के पूर्वार्ध तक के समय को सबने स्वीकारा है। जैन दर्शन को लेकर यह बात उल्लेखनीय है कि - "जिसके द्वारा देखा जावे अर्थात् जीवन व जीवन-विकास का ज्ञान प्राप्त किया जावे, उसे दर्शन (Philosophy) कहते हैं। युक्तिपूर्वक तत्त्व-ज्ञान को प्राप्त करने के प्रयत्न को ही दर्शन कहते हैं। दर्शन में आत्मा, परलोक, विश्व, ईश्वर आदि गूढ़ विषयों को समझने का प्रयत्न किया जाता है। धर्म में आत्मा को परमात्मा बनने का मार्ग बताया जाता है। धर्म प्रवर्तकों ने केवल आचार-रूप धर्म का ही उपयोग नहीं किया है, अपितु स्वभाव-रूप धर्म का भी उपदेश दिया है, जिसे दर्शन कहा जाता है। जिनेन्द्र भगवान के द्वारा प्रतिपादित दर्शन ही जैन दर्शन है। छः द्रव्य, सात तत्त्व, नौ पदार्थ आदि का इसमें मुख्यतया वर्णन है। जैन धर्म आत्मा, परमात्मा व पुनर्जन्म में विश्वास करता है।"[1]

आत्मा, परमात्मा, पुनर्जन्म, सत्य, अहिंसा आदि मुख्य और महत्वपूर्ण बातों का सम्मिश्रण ही भारतीय ज्ञान परंपरा का सार तत्व है। इसके आधार पर ही हजारों साहित्यिक गतिविधियों को सुचारु रूप से संपादित किया गया है और धार्मिक, भक्ति आदि के आधार रूप में उनका सहारा लिया गया है। जैन साहित्य ने भारतीय धर्म और दर्शन को बहुत गहरे से प्रभावित किया है। भारत एक धर्मनिरपेक्ष देश रहा है और यहाँ की पुण्य भूमि पर अनेक मत-मतांतर और धर्म-दर्शन पुष्पित-पल्लवित हुए। इसने सभी को पूरी आत्मीयता के साथ स्वीकार किया। भारत की संस्कृति सामासिक संस्कृति रही है, जिसमें सभी धर्म और संप्रदाय को जगह मिली, चाहे वह इस्लाम हो, सिख हो, ईसाई हो या बौद्ध धर्म को मानने वाले। जनमानस ने इससे चेतना ग्रहण की और अपनी इच्छानुसार इन धार्मिक सिद्धांतों के उच्चादर्शों को ग्रहण किया तथा समय-समय पर इसमें परिवर्तन किया। जैन साहित्य में जैनियों के धार्मिक सिद्धांत और जैन तीर्थंकर की जीवन गाथाएँ, जीवनादर्श और मानव आदर्श, सर्व धर्म समभाव, अहिंसा आदि का प्रचार-प्रसार होता रहा है। जैन धर्म की हिन्दी में उपस्थिति छठीं-सातवीं शताब्दी आते-आते तेज हो जाती है। हिन्दी साहित्य में जिसकी जड़े बहुत गहरी हैं। 8वीं से 13वीं शताब्दी में इसे हिन्दी साहित्य में जगह मिलती है और भक्तिकाल की पूर्वपीठिका की महत्वपूर्ण कड़ी बनती है। हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में हज़ार वर्ष से अधिक का समय व्यतीत हो चुका है। समय के साथ जैन साहित्य के योगदान की पुनर्मूल्यांकन आवश्यक है। हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन की जो प्रामाणिक, सारगर्भित तथा वैज्ञानिक दस्तावेज़ उपलब्ध है, उसकी शुरुआत ही जैन कवियों से होती है। कहने का तात्पर्य अपभ्रंश साहित्य में हिन्दी साहित्य के कुछ अंश तथा अपभ्रंश के रचनाकर जैन धर्म को मानने वाले हैं। प्रायः हिन्दी के विद्वान हिन्दी साहित्य की शुरु आत हेतु अपभ्रंश तक जाते हैं। भाषाई स्तर पर हिन्दी का शुरु आती साहित्य धर्मनिरपेक्ष रहा है। उसी का प्रतिफलन है कि सभी धर्मों की रचनाएँ अथवा अन्य भाषा के शब्दों की उपस्थिति हिन्दी में बहुतायतता से पाये जाते हैं। भारतीय ज्ञान परंपरा में संस्कृत और पालि दो ऐसी भाषा रही, जिस पर ख़ास धर्मों का अधिकार रहा। पालि के बाद की भाषा अपभ्रंश, अवहट्ट के रूप में काफ़ी परिवर्तन देखने को मिलती है। भाषाओं के रूप में यह परिवर्तन लोक मानस से जा जुड़ती है। इसके परिणाम स्वरूप धर्म का चोला छोड़ कर भाषा एक निश्चित परिदृश को लिए हुए आती है, जिसमें रहने वाले रचनाकर का संबंध भले अलग-अलग संप्रदायों से हो पर साहित्य रचना; उस भौगोलिक क्षेत्र की भाषा में ही हुआ। यहीं से भाषा, कबीर के दोहे- 'संस्कृत है कूप जल/ भाखा बहता नीर' के समान हो गई। लेखन में जब अपभ्रंश का दौर था, तो रचनाकार चाहे वह किसी भी धर्म को मानने वाला क्यों न हो? अपभ्रंश को प्रयोग में लाते थे। लेखक, कवि, रचनाकार का कोई धर्म नहीं होता पर भाषा अपने क्षेत्र की होती है जहाँ वह रहता है।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने जैन रचनाकार के महत्व

को लेकर लिखा हैं कि- "दसवीं शताब्दी से पहले की जो रचनाएँ निस्संदिग्ध रूप से'हिन्दी रचनाएँ' मानी जाती हैं, उनमें प्रायः सबकी प्रामाणिकता संदिग्ध है, और किसी प्रकार उनके मूल रूप का पता लग भी जाय, तो भी वे मूल मध्य-देश के किनारे पर पड़े हुए प्रदेशों की रचनाएँ हैं। परंतु इन जैन आचार्यों और कवियों की रचनाएँ निस्संदेह मूल रूप में और प्रामाणिक रूप में सुरक्षित हैं। उनके अध्ययन से तत्कालीन साहित्यिक परिस्थिति पर जो भी प्रकाश पड़ता है, वह वास्तविक और विश्वसनीय है। इस दृष्टि से जैन रचनाओं का महत्व बहुत अधिक है। ये हमें लोकभाषा के काव्य-रूपों को समझने में सहायता पहुँचाती हैं और साथ ही उस काल की भाषागत अवस्थाओं और प्रवृतियों को समझने की कुंजी भी देती हैं।"[2] हिन्दी साहित्य के आदिकाल की भाषा, काव्य रूप आदि को समझने के लिए जैन कवियों की रचनाओं का महत्व तो है ही, साथ ही उसके भाषा में सूक्ष्म परिवर्तन का अनुशीलन भी हैं। उपर्युक्त उद्धरण से जो प्रमुख बातें निकलती हैं वह है जैन रचनाकारों का मध्य-देश क्षेत्र से बाहर रहकर लिखना। यह प्रक्रिया अनवरत चल रही है। इनके भाषा में हिन्दी के प्राचीन रूप भी देखने को मिलते हैं। हिन्दी में रचित जो ग्रंथ/ काव्य अपभ्रंश के कवि के मिलते हैं उनमें पहला नाम 'स्वयंभू देव' का है। इनको लेकर डॉ. रामकुमार वर्मा लिखते हैं कि- "इन्होंने अपने ग्रंथ'पउम चरिउ' (पद्म चरित्र- जैन रामायण) में ऐसी अपभ्रंश भाषा का प्रयोग किया है जिसमें प्राचीन हिन्दी का रूप इंगित है।"[3] आदिकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल और आधुनिक काल में भी अनेकों जैन मत के रचनाकार हिन्दी में कविता लिख रहे हैं। आदिकालीन जैन कवियों को हिन्दी साहित्य के सभी आलोचकों ने अपने इतिहास में जगह दी है। डॉ. रामकुमार वर्मा ने भी 'हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' में प्रथम अध्याय का नाम 'पहला प्रकरण' 'संधिकाल' सिद्ध-साहित्य : जैन-साहित्य (सं. 750-1200) ही रख दिया।"[4] परंतु बाद के काल-खंडों में उनके महत्व व रचनाओं का उल्लेख्य कम हो जाता है। भक्तिकाल में मुख्यतः दो धारा जो देखने को मिलती है, उनमें निर्गुण व सगुण प्रमुख रूप से साहित्य में प्रतिष्ठित हुआ। यह जैन के मतानुसार भी तर्कसंगत है। जैन धर्म के मूल में सत्य, अहिंसा, मोक्ष, पूनर्जन्म आदि के सिद्धान्त हैं, जो भारतीय ज्ञान सम्पदा में शुरु आत से मौजूद है। इस हेतु भी रचना विधान के आंतरिक पहलू और शैली का आपस में मिलन हो जाता है।

हिन्दी साहित्य में जो परंपरा रासो-काव्य, चरित-काव्य, फागु-काव्य आदि देखने को मिलती है, वह जैन साहित्य से निकली हुई है। इन साहित्य में उपदेश को स्थान मिला हुआ था।"पश्चमी क्षेत्र में जैन साधुओं ने अपने मत का प्रचार हिन्दी कविता के माध्यम से किया। इन कवियों की रचनाएँ आचार, रास, फागु, चरित आदि विभिन्न शैलियों में मिलती है। आचार-शैली के जैन-काव्यों में घटनाओं के स्थान पर उपदेशात्मकता को प्रधानता दी गयी है। फागु और चरितकाव्य शैली की सामान्यता के लिए प्रसिद्ध हैं।"[5] अपभ्रंश के प्रमुख कवि जो जैन दर्शन को आधार बनाकर राम व अन्य नायकों के ऊपर अपनी रचना प्रस्तुत करते हैं, निम्न हैं- 'स्वयंभू','पुष्पदंत','हरिषेण', 'धानपाल' आदि हैं। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी जैन कवियों द्वारा रचित पंद्रहवीं शताब्दी तक के कुछ चरितकाव्य का जिक्र करते हैं- "करकंडुचरिउ (बारहवीं शती), सुदर्शनचरिउ (ग्यारहवीं शती), पञ्जुण्णचरिउ और सुकुमारलचरीउ (तेरहवीं शती), नेमिनाहचरिउ और पुरोशलचरिउ (पंद्रहवीं शती), इत्यादि।"[6] इन चरित्र काव्यों को आधार बनाकर हीं भक्तिक्कालीन कवियों ने अपने इष्ट की उपासना की। जैन कवि जोइन्दु, रामसिंह आदि द्वारा रचित दोहों के ग्रंथ को भक्तिक्कालीन कवियों ने हू-ब-हू रचा है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी आगे लिखते हैं कि- "इन दोहों का स्वर नाथ योगियों से इतना अधिक मिलते हैं, कि इनमें से अधिकांश पर से यदि जैन विशेषण हटा दिया जाय, तो यह समझना कठिन हो जाएगा कि ये निर्गुण-मार्गियों के दोहे नहीं हैं। भाषा भाव शैली आदि की दृष्टि से ये दोहे निर्गुणिया साधकों की श्रेणी में आते है।"[7] निर्गुण मत की अवधारणा में जैनियों द्वारा रचित व प्रेषित संदेश सटीक जान पड़ता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'जसहरचरिउ' के एक दोहे - "बिणु धवलेण सयडु किं हल्लइ। बिणु जीवेण देहु किं चल्लइ।/ बिणु जीवेण मोक्ख को पावइ। तुम्हारिसु किं अप्पइ आवइ।। चौपाई दोहे की यह परंपरा हम आगे चलकर सूफियों की प्रेम कहानियों में, तुलसी के श्रीरामचरितमानस में तथा छत्रप्रकाश, ब्रजविलास, सबलसिंह चौहान के महाभारत इत्यादि अनेक आख्यान काव्यों में पाते हैं।"[8] सगुण राम को लेकर जो जैनियों ने कल्पना की, तो अपने मत के अनुसार उनको तथा उनके व्यक्तित्व को रूपायित किया और उनका बखान भी। यह दिखने की ज़रूरत नहीं है कि भक्तिकालीन कवियों के ऊर्पिर जैनियों का खूब नहीं तो आंशिक प्रभाव है। "कबीर, मीराबाई, सूरदास, तुलसीदास आदि संतों ने जिस प्रकार समग्र देश में भक्ति एवं अध्यात्म की भावधारा प्रवाहित कर दी थी उसी प्रकार जैन संतों ने भी अपने प्रवचनों एवं साहित्य सम्पदा द्वारा भक्ति तथा ज्ञान समन्वित नैतिक एवं आध्यात्मिक जागरण का शंखनाद फूँका था। किन्तु ऐसे संतों के बारे में एक ही स्थान पर उपलब्ध सामग्री का अभी तक अभाव ही रहा है।"[9] यह बात हमें हिन्दी साहित्य के इतिहास ग्रन्थों में भी देखने को मिलती है। छिटपुट उल्लेख मात्र से काम चलाया गया।

जैन साहित्य का विकास अधिकतर धर्म के तले हुआ है। उनको न तो किसी राजा के संरक्षण की जरूरत थी न ही किसी खूबसूरत परियों के आलंबन की। उनके धर्म का आधार

ही इन परकीय बहाव से परे था। इसका प्रतिफलन ही उनके साहित्य को सामाजिक, लौकिक व भाषा के आधार पर परखने को बाध्य करती है, जबकि हमने उसे धर्म के आधार पर परखा और बाद के हिन्दी साहित्य से अलविदा कर दिया। भक्तिकालीन हिन्दी कवियों में एक ख़ास बात थी राजसत्ता के संरक्षण से मुक्ति, जो जैनियों के पास पहले से मौजूद थी। यह मौजूदगी भी उनके साहित्य को व्यापक व सारगर्भित आधार प्रदान करने का कार्य करती है। हम जानते हैं कि स्वतंत्र चेतना द्वारा सृजित/रचित साहित्य की धार अलग ही होती है, जो जैनियों के साहित्य में परिलक्षित होती है। वर्तमान में बहुत से जैन आचार्यों के उपदेश को कड़वे बचन कह कर प्रकाशित किए जा रहे हैं जो उपदेशात्मक होते हैं।

हिन्दी में जब भक्तिकाल के लेखन का दौर आया तब यहाँ की जनता शासन से पीड़ित हो चुकी थी। आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक सभी स्तर पर उनका शोषण जारी था, तो साहित्यिकों ने धर्म का नया व मौलिक और समन्वयवादी रूप खोजा। इससे सभी धर्मों के अच्छे व सुंदर रूप को मिलाकर एक वर्ग निर्गुण भक्तिमें रमा, तो दूसरा अपने धर्म को आधार बनाकर लिखने को तैयार हुआ। जैन धर्मावलम्बी रचनाकारों में हरीविजयसूरी, उपाध्याय शांतिचन्द्र, स्वरगच्छीय जिनचन्द्रसूरी, विजयसेनसूरी, जिनसिंहसूरी व अन्य। अपने धार्मिक उद्देश्य के अनुरूप सामान्य जन की परेशानी को और उनके निवारण हेतु रचनाओं के सृजन का काम किया। सत्रहवीं व अठारहवीं शती के कुछ प्रमुख जैन कवि हैं - 'शुभचन्द्र भट्टारक','सुमति सागर', 'विनयसमुद्र', 'आनंदवर्धन सूरि', 'भट्टारक महीचन्द्र','जिनराजसूरि', 'हैमसागर','जिनहर्ष', 'लक्ष्मीवल्लभ, 'ऋषभसागर','हंसरात्न', 'किशनदास' आदि।"[10] इन कवियों की रचनाओं में भक्तिकालीन हिन्दी रचनाओं के सारे गुण मौजूद हैं। केवल भाषा इनकी मध्यदेश के इतर की लोक से संबद्ध है। इनकी भाषा में गुजराती, राजस्थानी के साथ-साथ हिन्दी के शब्दों की भरमार है। इनकी भाषा को लेकर शुक्ल हरीश लिखते हैं कि "गुजराती और हिन्दी में अत्यंत साम्य है। इसी भाषा को लेकर प्रारम्भ से ही अनेक जैनगूर्जर कवि हिन्दी भाषा की आकर्षित हुए और अपनी मातृभाषा के साथ-साथ खड़ीबोली, ब्रजभाषा, डिंगल आदि में भी काव्य-रचनाएँ करने लगे।"[11]

भारत की पूरी अवधारणा हीं पंथ निरपेक्ष की रही है। शुरुआती दौर से पूरे भारत में सभी धर्मों का प्रचार-प्रसार हुआ। जिस क्षेत्र में जो धर्म गया वहाँ की जन सुलभ भाषा का प्रयोग बेझिझक करने में कोई संकोच नहीं किया। इसका प्रभाव हम देख सकते हैं कि केरल में हिन्दी कवियों की चर्चा, तो उत्तर भारत में दक्षिण के कवियों का प्रभाव होते हुए भी, भाषा में अपने क्षेत्र की शब्दावली का उपयोग किया। सबको भाषा के लिए अपने क्षेत्र पर निर्भर रहना पड़ा। उसी तरह जैन कवियों ने भी हिन्दी के साथ अपने लोक की भाषा का प्रयोग किया। जैन दर्शन की मान्यताएँ भारतीय जनमानस में प्रेम और भाईचारे के भाव जागृत कर जीवों के प्रति सहिष्णुता का संदेश देती है।

संदर्भ सूची :

1. https://vidyasagar.guru/jain-dharm/, दिनांक-12/03/2025
2. हिन्दी साहित्य : उद्‌भव और विकास, राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, चौबीसवाँ संस्करण-2021, पृष्ठ- 25
3. डॉ. रामकुमार वर्मा, हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, आठवाँ संस्करण-2010, पृष्ठ-69
4. लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, आठवाँ संस्करण-2010, पृष्ठ-46
5. संपा. डॉ. नगेन्द्र और डॉ. हरदयाल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, मयूर पेपरबैक्स, इंदिरापुरम, नई दिल्ली, उन्नचासवां पुनर्मुद्रण-2015, पृष्ठ-60
6. हिन्दी साहित्य : उद्‌भव और विकास, राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, चौबीसवाँ संस्करण-2021, पृष्ठ-26
7. वही पृष्ठ-27
8. रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, आठवाँ संस्करण, पुनरावृत्ति-2017, पृष्ठ-3,4
9. डॉ. हरिप्रसाद गजानन शुक्ल हरीश, गुर्जर जैन कवियों की हिन्दी साहित्य को देन, जवाहर पुस्तकालय, मथुरा, संस्करण-1976
10. वही
11. वही, पृष्ठ-61

1. **घनश्याम कुमार**
शोधार्थी, हिंदी विभाग
केरल केन्द्रीय विश्वविद्यालय
कासरगोड, केरल

2.डॉ. धर्मेन्द्र प्रताप सिंह
सहायक आचार्य
घनश्याम कुमार, शोधार्थी
हिन्दी विभाग, केरल केन्द्रीय विश्वविद्यालय
कासरगोड, केरल-671325

'भाषा के क्षेत्र में घृणा नहीं, प्रेम और सौहार्द का स्थान रहा करता है।'

- का.ना.सुब्रह्मण्यम

समकालीन हिंदी कविता : अवधारणा एवं जन सरोकार

ब्रजेश कुमार चौधरी

भारत के लिए पचास का दशक आज़ादी के उल्लास, उमंग एवं उत्साह का दशक था, तो साठ का उस उत्साह के शनैः शनैः अवसान का। विभाजन एवं उस दौरान हुई भयानक हिंसा के कारण आजादी का जश्न फीका पड़ गया था। साहित्य के क्षेत्र में इसे मोहभंग का दशक कहा जाता है। फिर भी नई व्यवस्था और नई सरकार से जनता को काफी उम्मीदें थीं। स्वतंत्रता, समानता और रामराज्य की उम्मीद लिए जब जनता अपनी मीठी नींद से जागी तो उसके आँखों में अंगारे थे। 1962 ई. में चीन एवं 1965 ई. में पाकिस्तान के साथ युद्ध ने स्थितियों को और बदतर बनाया। सत्ताधारी दल की लोकप्रियता धीरे-धीरे कम होने लगी। जनता का असंतोष विभिन्न जन आंदोलनों के माध्यम से व्यक्त होने लगा। इस मोहभंग की दूसरी दिशा आधारभूत परिवर्तन की वह प्रबल कामना थी, जो नक्सलबाड़ी आंदोलन एवं तेलंगाना के कृषक विद्रोह के रूप में प्रकट हुई।

1967 के चुनावों में अनेक प्रान्तों में सत्तारूढ़ दल की हार से बढ़ते हुए जन असंतोष को राजनीतिक शक्ल मिलनी शुरू हुई, जिसके परिणामस्वरूप विभिन्न राज्यों में विरोधी दलों की संयुक्त सरकारें बनीं। सातवें दशक के उत्तरार्द्ध में हुई राजनीतिक घटनाओं का असर कवियों और बुद्धिजीवियों के मन-मस्तिष्क पर भी पड़ा। नक्सलबाड़ी के किसान विद्रोह के प्रभाव से साहित्यिक क्षेत्र में होने वाले ऐतिहासिक परिवर्तन को रेखांकित करते हुए प्रसिद्ध समालोचक डॉ. नामवर सिंह ने लिखा है कि- "सन् 1967 के बाद सही है कि एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुआ और आक्रोश को एक स्पष्ट राजनीतिक दिशा मिली, जिसका संबंध नक्सलबाड़ी आंदोलन से है। ....दिशाहीन व्यवस्था विरोध का अंत हो गया और स्पष्ट राजनीतिक चेतना आयी...उस आंदोलन के दौरान नगरोन्मुख हिंदी साहित्य ग्रामोन्मुख किया गया, जो बहुत बड़ी देन है। सन् 1967-68 के बाद यह तो कम-से-कम हुआ ही कि ऐसे क्षुब्ध, जीवंत और जागरूक लेखकों को अपनी जमीन, अपने ग्रामीण समाज की याद आयी और यहीं से साहित्य निश्चित रूप से एक नया मोड़ लेता नजर आता है।"[1] इन सब का असर हिंदी कवियों पर भी पड़ा। इस तरह 1967 ई. के बाद से साठोत्तरी कविता की प्रवृत्तियाँ छीजने लगती हैं, निषेधात्मकता की प्रवृत्ति कुंद पड़ जाती है एवं कविता का सरोकार व्यापक जन से जुड़ता है। इस तरह 'समकालीन हिंदी कविता' के रूप में हिंदी कविता एक नई करवट लेती है।

समकालीन कविता हिंदी कविता के विविध काव्य-आंदोलनों में से एक महत्त्वपूर्ण काव्य-आंदोलन है। 'समकालीन कविता' में प्रयुक्त 'समकालीन' शब्द अंग्रेजी के 'कांटेम्परेरी' के समानार्थी शब्द के रूप में व्यवहृत हुआ है। राजेश जोशी समकालीनता की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए एवं इसका निर्धारण करते हुए कहते हैं- "समकालीनता के पद का निर्धारण मुझे लगता है समय को विभाजित करने वाली ऐतिहासिक घटनाओं के संदर्भ में ही किया जाना चाहिए। लेकिन अक्सर अपनी सुविधा के अनुसार इस पद का उपयोग बहुत ही मनमाने ढंग से कर लिया जाता है। अपनी सुविधा से उसका विस्तार या संकुचन कर लिया जाता है, इस तरह अमूर्तन समकालीनता को एक अमूर्त पद बना देते हैं।"[2] रोहिताश्व समकालीनता की अवधारणा को युगबोध से ही नहीं विश्वबोध से भी जोड़ते हैं- 'समकालीन भावना के अन्तर्गत ही वैश्विक चिंतन-सृजन का दाय हमारा दाय बन जाता है। साम्राज्यवादी, पूँजीवादी या सामंतवादी व्यवस्थाओं से तीसरी दुनिया के देशों- वियतनाम, कोरिया, क्यूबा, निकारागुआ, अलसल्वाडोर और उपनिवेशी अफ्रिकन देशों के मानवीय हकों का संघर्ष हमारा ही संघर्ष बन जाता है।"[3] इस दायरे को वे बाहर ही नहीं, भीतर भी विस्तृत करते हैं। इस तरह एक काल-विशेष से संबद्ध होने के बावजूद समकालीनता का दायरा सिमट गया हो, ऐसा नहीं कहा जा सकता। समकालीनता की समझ का मतलब केवल वर्तमान की समझ नहीं है। रघुवीर सहाय ने 'समकालीनता को बहुत ही व्यापक अर्थ में परिभाषित किया है। उन्होंने कहा है- "मेरी दृष्टि में समकालीनता मानव-भविष्य के प्रति पक्षधरता का दूसरा नाम है।..... मनुष्य की प्रतिभा और सामर्थ्य की अनंत संभावनाओं का द्वार अपने अनुभव के लिए खुला रखकर सप्रयत्न उसके वर्तमान को बदलने में जो संलग्न होता है, वहीं समकालीनता का धर्म-निर्वाह करता है।"[4] अतः समकालीन कविता अपने समय की जीवंत समस्याओं की समझ और सक्रिय हिस्सेदारी की जागरूक कविता है। इसका तात्पर्य यह है कि समकालीनता उस समय एवं समाज विशेष के प्रति उत्तरदायी होने की माँग करती है। व्यक्ति की जिंदगी में आई विसंगतियों-असंगतियों का पर्दाफाश कर, उसके भीतर से अनुभवों द्वारा यथार्थ की खोज 'समकालीनता' है। कुल मिलाकर हिंदी की समकालीन कविता विद्रोह की कविता है, वह विद्रोह कहीं भले पूर्णतया प्रकट हो, कहीं दबा हुआ हो या कहीं व्यंग्य के रूप में उद्घाटित हो। इस प्रकार स्पष्ट है कि समकालीन कविता अपने समय की प्रवृत्तियों को पहचानकर और व्यक्ति एवं समाज की विषय स्थितियों से अवगत होकर गहरी संवेदनशीलता के साथ युगबोध को अभिव्यक्त करती है। समकालीन कविता का असली आधार यथार्थ है। जीवन की विसंगतियों को इसने विशेष महत्त्व दिया है।

समकालीन कविता अपने युग एवं परिवेश से संपृक्त है। समकालीन कवियों की कविताओं का केंद्र बिंदु जन-साधारण है। समकालीन कवियों का सरोकार अर्थात उनकी जवाबदेही आम जन के प्रति है, सर्वहारा वर्ग के प्रति है। उनकी कविताओं

में यह आम जन कौन है? यह वही आम जन है, जो खेतों में हल चलाता है, स्टेशनों पर बोझ ढोता है, तो कहीं रिक्शा चलाता है। यह वही आम जन है, जो किसी दिन बीमार हो जाए तो, दवा के साथ-साथ उस दिन के भोजन की भी चिंता करनी पड़ती है। यह आम जन अपने मत से किसी को 'ख़ास' तो बनाता है, लेकिन इसके बावजूद उसके जीवन में कुछ ख़ास नहीं हो पाता। समकालीन कविता में आम आदमी की स्थिति पर टिप्पणी करते हुए नगेन्द्र लिखते हैं - "इस दौर की कविता की मुख्य चिंता आम आदमी की जिंदगी का सुख-दुख, उसका संघर्ष ही है। जैसे बहुत से कवि प्रगतिवादी खेमे में शरीक हुए बिना प्रगतिवादी कविताएँ लिखते रहे, उसी प्रकार समकालीन दौर में किसी भी खेमे में भर्ती हुए बिना बहुत से कवि आम आदमी की जिंदगी का यथार्थ रूपायित कर रहे हैं।"[5] समकालीन कविता की यह विशेषता है की वह किसी भी सामाजिक-राजनीतिक व्यवस्था के विरोध में अगर खड़ी है तो उसे बदल देने के लक्ष्य से, इसलिए इस कविता को जनचेतना की कविता कहा जाता है। जनचेतना की कविता या जनता के साहित्य के संदर्भ में मुक्तिबोध के विचार जो 'जनता का साहित्य किसे कहते हैं' शीर्षक निबंध में संकलित है, वह उल्लेखनीय है। इस निबंध में मुक्तिबोध लिखते हैं- "जनता के साहित्य से अर्थ है, ऐसा साहित्य जो जनता के जीवन-मूल्यों को, जनता के जीवनादर्शों को प्रतिष्ठापित करता हो।"[6] आगे मुक्तिबोध जन साहित्य को स्पष्ट करते हुए कहते हैं- "जनता के मानसिक परिष्कार, उसके आदर्श और मनोरंजन से लेकर क्रांतिपथ की तरफ मोड़ने वाला, प्राकृतिक शोभा और प्रेम, शोषण और सत्ता के घमंड को चूर करने वाला, स्वतंत्रता और मुक्ति-गीतों को अभिव्यक्ति देने वाला, ये सभी कोटियाँ जनवादी काव्य हो सकते हैं, बशर्ते वह मन को मानवीय, जन को 'व्यापकजन' बना सके और जनता को मुक्तिपथ पर अग्रसर कर सके।"[7] इस प्रकार हम कह सकते हैं कि समकालीन कविता अभाव व संघर्षरत जीवन जीने वालों का एक बड़ा कैनवास तैयार करती है।

समकालीन कवियों में धूमिल एक महत्त्वपूर्ण कवि हैं। उनकी कविताओं में आम वर्ग के प्रति प्रतिबद्धता दृष्टिगोचर होती है। देश की आजादी के बाद रामराज्य के जो सपने भारतीय जन मानस ने देखे थे, उससे जनता को मोहभंग होने लगा। धूमिल ने इस मोहभंग को अपनी कविता के माध्यम से व्यक्त किया है- "बीस साल बाद/ मेरे चेहरे में/वे आँखें वापस लौट आई हैं/ जिनसे मैंने पहली बार जंगल देखा है।"[8] धूमिल उद्धृत पंक्तियों में आजाद भारत की व्यवस्था को जंगल का नाम देते हैं, क्योंकि जनता ने अपने नेताओं और सरकार से जो उम्मीदें की थी, वे पूरे नहीं हुए। यहाँ तक की जीवन की मूलभूत आवश्कताओं- रोटी, कपड़ा, मकान भी सभी को सुलभ नहीं था। धूमिल ने अपनी एक और कविता 'शहर में सूर्यास्त' में मोहभंग के स्वर को अभिव्यक्ति दी है- "मैंने भी इस देश को/ एक जवान आदमी की/ रंगीन इच्छाओं की पूरी गहराई से/ प्यार किया था/ मगर अब, अतीत में अपना चेहरा/ देखने के लिए/ शीशे की धूल झाड़ना बेकार है।"[9] तात्पर्य यह कि कवि का मोहभंग अतीत से भी हुआ है और वर्तमान से भी। बीतते समय के साथ-साथ जनता से किये गये लुभावने वादे जनता को अवसाद एवं पीड़ा से भरने का काम करने लगे, कारण सत्तारूढ़ दल की कथनी और करनी में भारी अंतर था ।

भारत जैसे विशाल देश में जहां के अलग-अलग भू-भागों पर अलग-अलग जातियाँ हैं, अलग-अलग भाषाएँ भी प्रचलित हैं। जब साम्राज्यवादी अंग्रेजों का भारत पर प्रभुत्व था, उन्होंने अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए भारत की भाषाओं को दबाये रखा, भाषा के नाम पर दंगे करवाये जाते रहे, विभिन्न भाषा-भाषियों के मध्य भाषाई आधार पर शत्रुता के भाव पैदा किये गये। स्वतंत्रता के बाद भी भाषाई राजनीति का दौर जारी है, जिसकी ओर संकेत करते हुए धूमिल ने अपनी कविता 'भाषा की रात' में लिखते हैं- "चंद चालाक लोगों ने/ (जिनकी नरभक्षी जीभ ने पसीने का स्वाद चख लिया है)/ बहस के लिए/ भूख की जगह/ भाषा को रख दिया है।"[10]

समकालीन कवियों में सर्वेश्वर का महत्त्वपूर्ण स्थान है। सर्वेश्वर की कविताओं में जनचेतना लोकजीवन से संपृक्त होकर अभिव्यक्त हुई है। उन्होंने 'खिड़की' कविता में देश की राजनीतिक व्यवस्था पर व्यंग्य किया है- "लोकतंत्र को जूते की तरह लाठी में लटकाये/ भागे जा रहे हैं सभी / सीना फुलाये।"[11] तो वहीं 'भेड़िया' शीर्षक कविता में जनता को एकजूट होकर लड़ने की बात कही है- "इतिहास के जंगल में/ हर बार भेड़िया माँद से निकाला जायेगा/ आदमी साहस से एक होकर/ मशाल लिए खड़ा होगा।"[12]

कवि रमेश चन्द्र शाह ने अपनी कविता 'हरिश्चन्द्र आओ' में आम आदमी के अस्तित्व एवं अपनी अस्मिता के बचाए रखने के संघर्ष को व्यंजित किया है। कविता में कवि ने आम आदमी की तुलना 'घास' से की है, जिसे कोई बोता तो नहीं है, लेकिन रौंदने के लिए सभी तैयार रहते हैं। उसी तरह से आम आदमी का जीवन होता है; उसके प्रति किसी की सहानुभूति नहीं होती, लेकिन उसका शोषण सभी करना चाहते हैं- "मैं घास की तरह जन्मा/और बढ़ा/ मुझे किसी ने नहीं बोया/ सभी ने रौंदा/ सभी ने चरा।"[13]

भूमंडलीकरण के कारण लोगों के जीवन शैली में काफी परिवर्तन देखने को मिला है। न सिर्फ शहरों में बल्कि गाँवों के लोगों के जीवन शैली में बदलाव घटित हुआ है। जब से वहाँ का चेहरा शहरी होने लगा है, तब से वहाँ के खान-पान, वेश-भूषा, रीति-रिवाजों में काफी हद तक परिवर्तन नजर आया है। सांस्कृतिक विरासत के रूप में जो मूल्यवान चीजें हमें अपने पुरखों से मिली थीं, आज लोगों के लिए उनका कोई मूल्य नहीं है, ये आज लुप्त होने के कगार पर दिखाई दे रही है। कवि कुमार कृष्ण की कविता 'खूबसूरत घर' की निम्नलिखित पंक्तियाँ

द्रष्टव्य हैं- "खूबसूरत घरों में नहीं रहते/ पीतल के लोटे, काँसे के कटोरे/ मिट्टी के घड़े, खील- बताशे/ वहाँ नहीं रहती गंगाजल की बोतल/ गीता, रामायण/ राधा-कृष्ण-शिव के कैलेण्डर/ खूबसूरत घरों में/ उगे रहते हैं तमाम तरह के विदेशी फूल/ खूबसूरत घरों में नहीं उगता तुलसी का पौधा।"[14]

भूमंडलीकरण के दौर में संवादहीनता की स्थिति देखने को मिल रही है, आत्मीयता खत्म होती जा रही है। 'साठ बरस का आदमी' कविता की ये पंक्तियां दृष्टव्य हैं- "कितनी अजीब बात है/ वह आदमी हमें दिखाना चाहता है/ पिकनिक की तस्वीरें/ गुनगुनाना चाहता है झूले का गीत/ सुनाना चाहता है नौका विहार/ हम जल्दी से पी लेना चाहते हैं/ उसकी गर्म-गर्म चाय।"[15] कवि ने आलोच्य कविता में सांप्रतिक समय की समस्या की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया है कि कैसे हम धीरे-धीरे एक दुसरे से कटते जा रहे हैं। आज हमारे पास दुसरे को सुनने के लिए समय नहीं है। हम व्यक्ति केंद्रित होते जा रहे हैं।

समाज में मूल्यों के ह्रास होने के कारण आज आपसी सम्बन्धों का ताना-बाना भी टूटता नजर आ रहा है; तालमेल खत्म हो रहा है, जिससे समाज में असंतुलन की स्थिति पैदा हो गयी है। आज व्यक्ति जिन परिस्थितियों में जी रहा है, उसमें वह अपने समाज से कटकर एकदम अकेला हो गया है। यान्त्रिक युग में लोग यन्त्र की तरह दिन-रात काम में इतने व्यस्त हैं कि उन्हें एक-दूसरे से दो शब्द कहने-सुनने की फुर्सत तक नहीं है। यही कारण है कि आज अजनबीपन बढ़ा है और आत्मीयता में कमी आई है तथा सम्बन्धों का विघटन हो रहा है। कुमार अंबुज की कविता-पुस्तक 'अनंतिम' की कविता 'माँ अतिथि है' में संबंधों के विघटन को देखा जा सकता है- "माँ धीरे-धीरे चली गयी है इतनी दूर/ कि उसके सबसे स्मरणीय और चमकदार/ रूप के लिए/ लौटना होता है कई साल पहले के वक्त में/ मैं चाहूँ तो भी नहीं रोक सकता माँ को जाने से/ दूर-दूर तक नहीं बची रह गयी है मुझमें अबोधता/ धीर-धीरे मैं खुद चला आया हूँ माँ से इतनी दूर/ कि मेरे घर में अब/ माँ एक अतिथि है।"[16]

आज एकल परिवार की यह स्थिति है कि अगर सभी को काम से बाहर जाना पड़े तो घर अकेला ही छोड़ना पड़ता है। यदि कोई सदस्य घर से बाहर जाये तो घर में रहने वालों को घर काटने को दौड़ता है, यानी अकेलेपन को भोगने को मजबूर होना पड़ता है। संयुक्त परिवार में आपसी सामंजस्य और आत्मीयता की जो भावना मौजूद थी, वह आज देखने को नहीं मिलती। आज तो सुख-दुःख में शरीक होने के लिए भी किसी के पास समय नहीं है, इसी को व्यक्त करते हुए कवि राजेश जोशी अपनी कविता 'संयुक्त परिवार' में कहते हैं- "कम हो रहा है मिलना-जुलना/ कम हो रही है लोगों की जान-पहचान/ सुख-दुःख में भी पहले की तरह इकट्ठे नहीं होते लोग/ तार से आ जाती है बधाई और शोक सन्देश।"[17] आज संयुक्त परिवार का विघटन तो हुआ ही है पर साथ ही व्यक्ति आत्मकेन्द्रित होकर परिवेश से भी कट रहा है, जिसे समाज के लिए स्वस्थ स्थिति नहीं कह सकते। आज अहं के बढ़ने तथा रिश्तों के विघटन के कारण अकेलेपन, अजनबीपन की स्थिति यहाँ तक पैदा हो गयी है कि व्यक्ति अपनों से, अपने समाज से कटकर एकदम अकेला होता जा रहा है- "बाबा को जानता था सारा शहर/ पिता को भी चार मोहल्ले के लोग जानते थे/ मुझे नहीं जानता मेरा पड़ोसी मेरे नाम से/ अब सिर्फ एलबम में रहते हैं/ परिवार के सारे लोग एक साथ।"[18]

वैश्वीकरण ने 'ग्लोबल विलेज' की संकल्पना को पूरा किया तो वहीं व्यक्ति को उसके समाज, गाँव, साहित्य, संस्कृति पे दूर करता गया। यानि बाज़ार ने जिस आदमी को अपदस्थ किया है, समकालीन कवि उसे कविता के बाद पुनः स्थापित करना चाहता है। इस संदर्भ में विनोद कुमार शुक्ल की ये पंक्तियाँ उल्लेखनीय हैं- "मैं व्यक्ति को नहीं जानता था/ हताशा को जानता था/ इसीलिए मैं उस व्यक्ति के पास गया/ मैंने हाथ बढ़ाया/ मेरा हाथ पकड़कर/वह खड़ा हुआ।"[19]

किसी भी देश का भविष्य युवा एवं नन्हीं पीढ़ी पर टिका होता है। ये ही आगे चलकर न सिर्फ देश को आगे बढ़ाते हैं, बल्कि उसे सजाते-सँवारते भी हैं। लेकिन यही बच्चे बचपन से ही काम में लग जाएं, शिक्षा-दीक्षा से महरूम रह जाएं, तो फिर यह चिंता की बात है। राजेश जोशी अपनी चर्चित कविता 'बच्चे काम पर जा रहे हैं' में इस समस्या को सामने रखते हैं- "कुहरे से ढँकी सड़क पर बच्चे काम पर जा रहे हैं/ सुबह सुबह/ बच्चे काम पर जा रहे हैं/ हमारे समय की सबसे भयानक पंक्ति है यह/ भयानक है इसे विवरण की तरह लिखा जाना/ लिखा जाना चाहिए इसे सवाल की तरह/ काम पर क्यों जा रहे हैं बच्चे?"[20] कवि ने इस कविता में उस सामाजिक-आर्थिक विडंबना की ओर संकेत किया है, जिसमें बच्चे से उसका बचपन छीन लिया जाता है।

उपर्युक्त विवेचन से समकालीन हिंदी कवि और उनकी कविताओं की जनपक्षधरता स्पष्ट होती है। व्यापक जन सरोकार के विविध आयामों को इन कवियों ने अपनी कविता में स्थान दिया है; चाहे वे किसान हो, खेतिहर मजदूर हो या शहरी क्षेत्र में कार्यरत मजदूर, काम पर जाते छोटे-छोटे बच्चे हो या अकेलेपन से त्रस्त वृद्ध। इस दौर की कविता की मुख्य चिंता आम आदमी की जिंदगी का सुख-दुःख, उसका संघर्ष ही है। समकालीन कविता में जनांदोलनों की न सिर्फ अभिव्यक्ति हुई है, बल्कि इस काल के जनवादी कवियों ने जनता को अपनी कविताओं के माध्यम से शोषणकारी व्यवस्था के विरुद्ध आंदोलन करने की प्रेरणा भी दी है। नक्सलबाड़ी और तेलंगाना के किसान विद्रोह, 1968-70 का भाषाई आंदोलन एवं 1974 का संपूर्ण क्रांति आंदोलन इस बात का सबूत है कि जनता अब अपने ऊपर हो रहे अत्याचारों को मूक होकर नहीं देख रही है, बल्कि उसका आक्रोश अब उसे सड़कों पर संगठित आंदोलन के रूप में भी देखने को मिल रहा है। इस युग के कवियों ने व्यापक जन के प्रति अपनी प्रतिबद्धता प्रकट की, उसी के सुख- दुःख, कठिनाईयों को अभिव्यक्त किया एवं आम जन मानस की बेहतरी के लिए

अपनी लेखनी चलाई। समकालीन कवियों की कविताओं के केंद्र में व्यापक जन समुदाय है, जिसकी बानगी हमें उस दौर की कविताओं में देखने को मिलती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. सं. कुमार संभव, परिवेश, आपातकालोत्तर अंक।
2. राजेश जोशी, समकालीनता और साहित्य, राजकमल प्रकाशन, पृ.-35
3. रोहिताश्व, समकालीन कविता और सौन्दर्य-बोध, वाणी प्रकाशन, पृ.-15-16
4. नंदकिशोर नवल, समकालीन काव्य यात्रा, पृ.- 8
5. नगेन्द्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, पृ.- 642
6. मुक्तिबोध, नये साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, राधाकृष्ण प्रकाशन, पृ.-76
7. वही, पृ.-76
8. सं. रत्नशंकर पाण्डेय, धूमिल समग्र-1, राजकमल पेपरबैक्स, पृ.-46
9. वही, पृ.-71
10. वही, पृ.-104
11. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, खिड़की
12. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, भेड़िया
13. रमेशचंद्र शाह, हरिश्चंद्र आओ, पृ.-28
14. कुमार कृष्ण, खूबसूरत घर
15. कुमार कृष्ण, साठ बरस का आदमी
16. कुमार अम्बुज, माँ अतिथि है
17. राजेश जोशी, दो पंक्तियों के बीच, पृ.-54
18. वही, पृ.-54
19. विनोद कुमार शुक्ल, अतिरिक्त नहीं, वाणी प्रकाशन,पृ.-13
20. राजेश जोशी, बच्चे काम पर जा रहे हैं ।

सहायक प्राध्यापक
हिंदी विभाग, दार्जिलिंग गवर्नमेंट कॉलेज

'दुनिया से कह दो,
गाँधी अंग्रेज़ी नहीं जानता'
- महात्मा गाँधी

लघुकथा

भैरव का ताड़

डॉ.जी.गोपीनाथन

ताड़ का वह पेड़ देखने में बड़ा भयानक लगता था। कई कारणों से वह पेड़ गाँव में चर्चा का विषय था। पहली बात यह थी कि उसपर कोई चढ़ता नहीं था। चढ़ना आसान भी नहीं था, क्योंकि पीपल और अन्य कुछ पेड़ भी उससे लगे हुए थे और वे सब पेड़ मिलकर ताड़ को भयावना आकार देते थे। शायद कई पीढ़ियों से वह पेड़ वहाँ खड़ा था। उसे लोग दैवी मानते थे और इसलिए उसे काटने की बात कोई सोच भी नहीं सकता था। लोगों में यह धारणा फैली हुई थी कि भैरव तथा अन्य भूतात्माएँ उसपर निवास करती हैं। हर शुक्रवार को ताड़ के पेड़ से कोई ज्योति निकलकर कुछ दूर स्थित सर्प देवता के झुरमुट की ओर जाती है, ऐसी किंवदंतियाँ प्रचलित थीं। शंकु जैसे बुजुर्ग का कहना है कि किसी भूतात्मा को हाथ में जलता मशाल लिये उसने निकट से देखा था। जो भी हो, परंपरा से लोगों की यह धारणा थी कि ऐसे पेड़ों को नहीं काटना चाहिए। स्थानीय लोगों के लिए वह पेड़ श्रद्धा का विषय था और किसी-किसी दिन वे वहाँ दीप जलाते और पूजा करते थे।

तभी नटराजन नामक कपड़े के एक धनी व्यापारी ने गाँव में आकर जंगलनुमा पूरी जमीन को खरीद लिया। असल में नटराजन पक्का व्यापारी था। उसकी पहली ही नजर कई पेड़ों पर पड़ी। उनमें वह ताड़ का पेड़ भी था। इस समाचार से गाँव में सनसनी फैल गई। कुछ लोगों ने साहस करके शहर में स्थित नटराजन के घर जाकर बताया कि कम-से-कम उस पवित्र ताड़ के पेड़ को नहीं काटें। बल्कि यह भी सुझाव दिया कि उसकी आराधना करें तो उसकी भलाई होगी। लेकिन कुछ खास तरह का सोफा बनाने के लिए नटराजन को उस ताड़ के पेड़ की लकड़ी चाहिए थी। ताड़ की इतनी अच्छी लकड़ी कहीं नहीं मिलेगी, यही उसका विचार था। उसने साफ मना कर दिया। कहते हैं, जब वह ताड़ का पेड़ काटा गया तो लकड़ी एक भयानक आवाज के साथ गिर पड़ी, जैसे कोई चिल्ला रहा हो। लकड़ी से बढ़ई सोफा भी बनाने लगे। पर लोगों को अचंभा तब हुआ जब उसपर बैठने के लिए नटराजन नहीं रहे। लोग एक-दूसरे से पूछते थे, 'क्या सचमुच वह भैरव का ताड़ था? क्या सचमुच पेड़ों पर देवता बसते हैं?'

(साहित्य-अमृत से साभार)

पूर्व कुलपति
अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा।

भूमंडलीकरण और हिंदी सिनेमा का प्रभाव

प्रोफ(डॉ) मंजू ए

शोध-सार

भूमंडलीकरण ने हिंदी सिनेमा को अंतर्राष्ट्रीय बाजार में पहुँचाने का मौका दिया है। यहाँ स्थानीय और अंतर्राष्ट्रीय विचारों का मिलन जिससे नए और विभिन्न विचारों के सह सिनेमा बन रही हैं। भूमंडलीकरण ने समाज में हो रहे परिवर्तनों को ध्यान में रखते हुए हिंदी सिनेमा के किरदारों और कहानियों को भी परिवर्तित किया है। यह समाज में हो रहे सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तनों को दर्शकों के सामने प्रस्तुत करने का एक माध्यम बन रहा है। भूमंडलीकरण ने विशेष प्रदर्शन की परंपरा को बढ़ावा दिया है, जिससे हिंदी सिनेमा ने अपनी गुणवत्ता और अनूठेपन को साबित करने का मौका प्राप्त किया है। सिनेमा ने दर्शक को वैभव एवं विलासितापूर्ण जीवन का दिवास्वप्न दिखाकर उपभोग के लिए प्रेरित किया है।

भूमंडलीकरण का अर्थ है। एक समृद्धि या विकास की प्रक्रिया जो समाज, अर्थव्यवस्था और सांस्कृतिक बदलाव को सूचित करती है। आज वैश्विक स्तर पर पूंजीवाद को रोकने वाली महाशक्ति ख़त्म हो चुकी है और भूमंडलीकरण के रूप में पूंजीवाद ने सम्पूर्ण विश्व पर अधिकार स्थापित करने का श्रम आरम्भ कर दिया है। विकासशील देशों में प्राकृतिक एवं मानव संसाधन प्रबल मात्रा में प्राप्त होने से उसे हड़पकर और उन्हें ग्लोबल उपभोक्ता बनाने के लिए संचार माध्यमों का उपयोग करते हैं। जवरीमलल पारख का कहना है-' जब जनसंचार माध्यम पूंजी पर आश्रित होता है, तो वह दो तरह की सीमाओं में अपने को कैद कर लेता है। एक, वह पूँजीवाद के विचारात्मक वर्चस्व में काम करता है। दूसरा, वह जनता की चेतना को कम से कम छेड़े बिना उसमें सकारात्मक बदलाव की गंभीर कोशिश किये बिना अपने को गतिशील, लचीला और प्रासंगिक बनाये रखने की कोशिश करता है।'[1] भूमंडलीकरण हिंदी सिनेमा को एक नए दौर में ले जा रहा है, जिसमें नई और आधुनिक कथाएँ, विचारशीलता, और सामाजिक समस्याओं पर ध्यान केंद्रित हो रहा है। इसके परिणामस्वरूप, दर्शक न सिर्फ आनंद ले रहे हैं, बल्कि उन्हें समाज में चुनौतियों और समस्याओं को समझने की क्षमता भी मिल रही है।

हिंदी फ़िल्मों में भूमंडलीकरण का प्रभाव उनकी कल्पना, तकनीकी उन्नति, और साहित्यिक गुणधर्म की दिशा में दिखाई देता है। दर्शकों को विशेष रूप से उनके समय के साथ चलने वाले मुद्दों और परिवर्तनों के साथ जोड़ने का प्रयास किया जा रहा है, जिससे सिनेमा एक सकारात्मक रूप से समाज से जुड़ा हुआ रहता है।सिनेमा का अपना एक विशिष्ट चरित्र है। इस सन्दर्भ में जवरीमल्ल पारख का कथन हैं- "सिनेमा ऐसी वस्तुओं का उत्पाद कर रही है जिनका असर मनुष्य के बौद्धिक और सांस्कृतिक जीवन पर पड़ता है। इन बौद्धिक और सांस्कृतिक जीवन का गहरा सम्बन्ध राजनीतिक और सामाजिक जीवन से होता है।"[2]

भूमंडलीकरण और हिंदी फ़िल्में एक-दूसरे के साथ मिलकर सामाजिक, सांस्कृतिक, और आर्थिक परिवर्तनों को प्रोत्साहित कर रही हैं, जिससे दर्शकों को न केवल मनोरंजन का अनुभव हो रहा है, बल्कि उन्हें आत्म-समर्थन और समाज में सकारात्मक परिवर्तन की भी भावना हो रही है।

भूमंडलीकरण ने हिंदी सिनेमा को स्थानीय और अंतरराष्ट्रीय मनुष्यों के बीच समर्थन बढ़ाने में मदद की है। विभिन्न भूमिकाओं में चमकते कलाकारों के माध्यम से विभिन्न सांस्कृतिक पृष्ठभूमियों का परिचय हुआ है और लोगों को अन्य धाराओं को समझने में मदद मिल रही है।

हिंदी फिल्मों में नारी चरित्रों की बढ़ती महत्ता भी दिखाई देती है, जो समाज में बदलाव की ओर संकेत करती हैं। नई दिशाओं में बढ़ती महिला आत्मनिर्भरता और सामाजिक समस्याओं पर उनके प्रभाव को दर्शाने का प्रयास हो रहा है।साथ ही, हिंदी सिनेमा ने विभिन्न जनश्रुतियों और क्षेत्रों के साथ मिलकर कला को एक विशेष सांस्कृतिक मीडियम बनाए रखा है, जिससे दर्शकों को विभिन्न अनुभवों का सामंजस्य रखने का अवसर मिलता है।

इसके अलावा, हिंदी सिनेमा ने समाज में जागरूकता फैलाने का माध्यम बनाया है, जिससे विभिन्न समस्याओं पर चर्चा हो रही है और लोगों को समझाया जा रहा है कि कैसे वे अपनी आवश्यकताओं और दुनियावी चुनौतियों का सामना कर सकते हैं। भूमंडलीकरण के परिणामस्वरूप हिंदी सिनेमा में भाषा, संगीत, और विशेष प्रौद्योगिकी का उपयोग भी सुधार हो रहा है। नए और विभिन्न ध्वनि, छवि सृष्टि, और संगीत के संसाधनों का अनुसरण करके, सिनेमाग्राफर्स और संगीतकारों ने नए आयाम तय किए हैं, जिससे दर्शकों को नई और रोचक अनुभवों का आनंद लेने का मौका मिलता है।

इसके अलावा, सामाजिक मीडिया और डिजिटल प्लेटफॉर्म्स के प्रभाव से हिंदी सिनेमा ने नए तरीके से अपने दर्शकों के साथ संवाद करने का लाभ उठाया है। इंटरनेट के माध्यम से चर्चाएं हो रही हैं, जिससे सिनेमा के प्रभाव को बढ़ावा मिल रहा है और फिल्मों का सामाजिक परिवर्तन में एक अद्वितीय योगदान हो रहा है।

इस प्रकार, भूमंडलीकरण ने हिंदी सिनेमा को सिर्फ एक मनोरंजन माध्यम से बाहर निकालकर उसे समाज में सकारात्मक परिवर्तन का हिस्सा बना दिया है, जिससे विचारों का एक नया और गहरा समर्थन मिल रहा है। सच्चिदानंद सिन्हा का कथन है-' दरअसल नई संचार क्रांति से 'ग्लोबल विलेज' बनने की बजाय संसार 'संसार ग्लोबल सुपर मार्किट' बन गया है।"[3]

हिंदी सिनेमा में भूमंडलीकरण के कुछ उदाहरण:

1. कला और विशेष प्रौद्योगिकी में सुधर- जैसे 'बाहुबली' या 'गुलाब सीताबो' 2. समाजशास्त्रीय सिनेमा- 'पद्मावत' या 'शुभ मंगल सावधान' 3. महिला सशक्तिकरण - 'पाधायी' या 'मुंबई महिला' 4. सामाजिक मुद्दों पर चर्चा - 'टैक्सीवाला' या 'दंगल' 5. डिजिटल प्लेटफॉर्म्स पर पहुँच - 'लूडो' या 'आई अम वोमन' आदि फ़िल्में भूमंडलीकरण के प्रभावों से मुख्यतः प्रेरित रहे।

भूमंडलीकरण के प्रभाव से हिंदी सिनेमा में भी आप्रवासी भारतीयों की कहानी लिखकर सिनेमा बनाया जा रहा है जैसे - आ अब लौट चलें, रावण, कभी अलविदा न कहना, राजनीति आदि। भूमंडलीकरण के कारण माध्यम वर्ग के जीवन में बनावट और कृत्रिमता आ गयी है, जिसका असर हिंदी सिनेमा में देख सकते हैं। भूमंडलीकरण के कारण हमारे समाज में एक खुलापन आ गया है। जिसका प्रतिबिम्ब सिनेमा में देख सकते हैं, आज सिनेमा का निर्माण एक व्यापर बन चुका है और सिनेमा के निर्माता इससे बहुत पैसे कमा रहे हैं। सिनेमा अपने निर्माण से लेकर प्रदर्शन तक पैसों पर ही चलता है, इसलिए इसका नियंत्रण पूंजीवादी करते हैं। दर्शक को अधिकाधिक उपयोग के लिए प्रेरित करता है। जवरीमल्ल पारख का कथन हैं: "आमतौर पर माध्यम पर नियंत्रण करने वालों के हित इसी में होते है कि उसके उपभोक्त अपनी अभिरुचियों का विकास ऐसी दिशा में न करें जो उनके वर्गीय हितों में बाधक हो। इसलिए वह ऐसे कार्यक्रमों की प्रस्तुति को ज्यादा प्रोत्साहित करता है जो तत्कालीन रूप से प्रेक्षक को आनंद प्रदान करने वाला है, जो उसके जीवन सम्बन्धी मूलियों को कम से कम आहत करें और जो उसे दुनिया के प्रति विवेकपूर्ण ढंग से सोचने का मौका न दे।'[4]

भारत में ही नहीं बल्कि इसका प्रदर्शन विदेशों में भी हो रहा है। जिससे आज सभी एक दूसरे से बेहतर ढंग से जुड़े रहते हैं। उसके बारे में सुधीश पचौरी का कथन है-'भले ही एक विश्व समाज न बना हो, लेकिन सब एक दूसरे से ज्यादा घनीभूत ढंग से जुड़े हैं और अन्तनिर्भरता बढ़ी है।'[5]

भूमंडलीकरण और सिनेमा के बीच सम्बन्ध में कुछ मुख्य पहलुएँ इस प्रकार से है:

1.सांस्कृतिक आपसी अनुबंध: भूमंडलीकरण विभिन्न सांस्कृतिकों और समृद्धियों को सीधे संपर्क में लाया है और इसका सबसे अच्छा माध्यम है सिनेमा। सिनेमा विभिन्न भाषाओं, सांस्कृतिक परम्पराओं और लोक कलाओं को एक स्थान पर समन्वय कर प्रस्तुत करने का माध्यम बनता है।

2.भाषा और संवाद: सिनेमा भूमंडलीकरण का माध्यम है जो अलग-अलग भाषाओं के लोगों को समझौते और संवादों के माध्यम से जोड़ता है। यह लोगों को एक दूसरे के सांस्कृतिक सम्बन्ध को समझने में मदद करता है और एक नई दृष्टिकोण प्रदान करता है।

3.अंतरराष्ट्रीय पहुँच : भूमंडलीकरण ने सिनेमा को अंतर्राष्ट्रीय दर्शकों तक पहुँचाने का मौका दिया है। अब एक देश की फ़िल्में नहीं, बल्कि विभिन्न देशों की फ़िल्में भी लोगों के बीच आपसी विवादों की दिशा में परिवर्तन ला रही है।

4. सामाजिक मुद्दों पर चर्चा : फ़िल्में भूमंडलीकरण के माध्यम से सामाजिक मुद्दों, जैसे कि जेंडर, जातिवाद और विभिन्न समस्याओं पर चर्चा करती है। सिनेमा लोगों को समाज में बदलाव की दिशा में सोचने पर प्रेरित करता है और समाज में जागरूकता बढ़ाता है।

5. कला और सांस्कृतिक विनिमय: सिनेमा के माध्यम से भूमंडलीकरण का एक अनूठा पहलु है कला और सांस्कृतिक विनिमय का विकास, विभिन्न कला सृष्टि, संगीत और नृत्य रूपों के माध्यम से भूमंडलीकरण ने विश्व भर में भिन्न सांस्कृतिकों को एक दूसरे के साथ मिलाकर एक सामूहिक सांस्कृतिक अनुभव को बढ़ावा दिया है।

इन प्रभावों के साथ, सिनेमा भूमंडलीकरण का एक शक्तिशाली माध्यम बना है जो लोगों को एक दूसरे के साथ जोड़ने, सांस्कृतिक विविधता को समझने और समृद्धि में सहायक होने में मदद कर रहा है। इस प्रकार, भूमंडलीकरण ने हिंदी सिनेमा को सिर्फ एक मनोरंजन माध्यम से बाहर निकालकर उसे समाज में सकारात्मक परिवर्तन का हिस्सा बना दिया है, जिससे विचारों का एक नया और गहरा समर्थन मिल रहा है। हिंदी सिनेमा सभी परिस्थितियों पर अपना प्रभाव डालकर पूर्ण रूप से बाजार में अपने आप को मज़बूत बना लिया है। जिसका प्रभाव भारत के लोगों के जीवन में भी बहुत पड़ा है। भूमंडलीकरण ने हिंदी सिनेमा का प्रचार-प्रसार करवाया है और साथ में उसे एक पैसे कमाने का एक स्रोत के रूप में बदल दिया है।

सन्दर्भ

1. संदृ अभयकुमार दुबे : भारत का भूमंडलीकरण, पृ 438-440
2. जवरीमल्ल पारख : जनसंचार माध्यमों का वैचारिक परिप्रेक्ष्य, पृ 45
3 सच्चिदानंद सिन्हा : भूमंडलीकरण कि चुनौतियाँ, भूमिका
4. जवरीमल्ल पारख : जनसंचार माध्यमों का वैचारिक परिप्रेक्ष्य, पृ 240
5. सुधीश पचौरी : भूमंडलीकरण और उत्तर सांस्कृतिक विमर्श भूमिका, पृ 10

विभागाध्यक्षा
हिंदी विभाग
एस. एन. वनिता कॉलेज,
कोल्लम, केरल

छत्तीसगढ़ के दुर्ग-राजनांदगाँव उच्चभूमि में जनजातियों के साक्षरता स्तर में गत्यात्मक परिवर्तन प्रतिरूप (1991-2011)

डॉ. खेमचंद एवं डॉ. मधु

शोध सरांश : प्रस्तुत शोध पत्र छत्तीसगढ़ के दुर्ग-राजनांदगाँव उच्चभूमि में जनजातियों के साक्षरता स्तर में गत्यात्मक परिवर्तन प्रतिरूप (1991-2011) से संबंधित है। जनजातियों के साक्षरता स्तर में गत्यात्मक परिवर्तन प्रतिरूप वर्ष 1991 से 2011 का अध्ययन किया गया है। वर्ष 1991 में साक्षर संख्या 137795 (45.45%) जिसमें पुरुष साक्षर संख्या 95684 (69.44%) एवं महिला साक्षर संख्या 42111 (30.56%) है। विकासखंडवार में सबसे अधिकतम साक्षरता दर अंबागढ़ चैकी विकासखंड में 54.29% है, जिसमें पुरुष साक्षरता दर 73.96% एवं महिला साक्षरता दर 26.63% है तथा न्यूनतम साक्षरता दर मानपुर विकासखंड में 39.26% है, जिसमें पुरुष साक्षरता दर 74.76% एवं महिला साक्षरता दर 25.24% है। वर्ष 2001 में साक्षर संख्या 235020 (66.57%) जिसमें पुरुष साक्षर संख्या 130128 (55.37%) एवं महिला साक्षर संख्या 104892 (44.63%) है। विकासखंडवार में अधिकतम साक्षरता दर मोहला में 78.07% जिसमें पुरुष साक्षरता दर 53.83% एवं महिला साक्षरता दर 46.17% है तथा न्यूनतम साक्षरता दर अंबागढ़ चैकी में 67.83% जिसमें पुरुष साक्षरता दर 53.46% एवं महिला साक्षरता दर 46.54% है। वर्ष 2011 में साक्षर संख्या 273892 (66.36%) जिसमें पुरुष साक्षर संख्या 151794 (55.42%) एवं महिला साक्षर संख्या 122098 (44.58%) है। विकासखंडवार में अधिकतम साक्षरता दर मोहला में 74.98% जिसमें पुरुष साक्षरता दर 55.86% एवं महिला साक्षरता दर 44.14% है तथा न्यूनतम साक्षरता दर अंबागढ़ चैकी में 67.30% जिसमें पुरुष साक्षरता दर 54.50% एवं महिला साक्षरता दर 45.50% है। अध्ययन से स्पष्ट है कि साक्षरता दर में गत्यात्मक परिवर्तन 1991 में 45.45% एवं 2001 में 66.57% तथा 2011 में 66.36% है जिसमें स्पष्ट रूप से गत्यात्मक परिवर्तन देखने को मिला है।

शब्द कुंजी - साक्षरता, जनजातीय, गत्यात्मक, परिवर्तन एवं प्रतिरूप।

प्रस्तावना : प्रस्तुत शोध पत्र में जनजातियों के साक्षरता स्तर में गत्यात्मक परिवर्तन प्रतिरूप वर्ष 1991 से 2011 का अध्ययन किया गया है। भारत हमेशा विभिन्न क्षेत्रों में बदलावों की भूमिका रहा है और बदलाव शुरू होने के बाद से प्रत्येक खंड में विकास देखा गया है। इसी प्रकार, शिक्षा प्रणाली में भी प्रारंभिक युग से कई बदलाव हुए हैं। हम पेड़ों के नीचे या खुले मैदान में अध्ययन करने से लेकर विशाल, अच्छी तरह से स्थापित कक्षाओं में आए हैं और अब पूरी दुनिया को एक सीखने की जगह में बदल दिया है जहाँ हर अनुभाग हमें अवधारणाओं और संचालन की बेहतर समझ रखने के लिए प्रशिक्षित करता है। शिक्षा प्रणाली, पाठ्यक्रम और सीखने के तरीके में हुए विकास ने इस प्रक्रिया को पहले की तुलना में बहुत आसान बना दिया है (पूजा बोस, 2023)।

एनईपी 2020 का अनावरण देश में एक नई शैक्षिक प्रणाली स्थापित करने के लक्ष्य के साथ किया गया था, जब छात्रों की चल रही शिक्षा की गारंटी के लिए तत्काल तकनीकी कार्य की आवश्यकता थी। उस समय के बाद से किसी ने भी पीछे मुड़कर नहीं देखा। स्कूलों में ऑनलाइन शिक्षा लागू करने से लेकर उच्च शिक्षा कार्यक्रम ऑनलाइन दिए जाने तक, शिक्षा क्षेत्र काफी आगे बढ़ चुका है। एनईपी के अनुसार, जिसका लक्ष्य 2030 तक माध्यमिक शिक्षा के माध्यम से प्री-स्कूल में विद्यार्थियों के लिए 100% सकल नामांकन अनुपात हासिल करना है, भारत जल्द ही ज्ञान उत्पादन के मामले में अन्य सभी देशों से आगे निकल जाएगा।

अध्ययन का उद्देश्य : प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य छत्तीसगढ़ के दुर्ग-राजनांदगाँव उच्चभूमि में जनजातियों के साक्षरता स्तर में गत्यात्मकता परिवर्तन प्रतिरूप (1991-2011) का आंकलन तथा सुझाव प्रस्तुत करना है।

आँकड़ों के स्त्रोत एवं विधि तंत्र : प्रस्तुत शोध पत्र का अध्ययन द्वितीयक आँकड़ों पर आधारित है। आँकड़ों के संकलन हेतु सात विकासखण्डों के जिला सांख्यकीय उत्तर पुस्तिका, जिला जनगणना पुस्तिका (1991-2011) का उपयोग किया गया है।

अध्ययन क्षेत्र : अध्ययन क्षेत्र छत्तीसगढ़ राज्य के दुर्ग-राजनांदगाँव उच्चभूमि भौगोलिक दृष्टि से शिवनाथ बेसिन का दक्षिणी भाग है। यह उच्चभूमि 20007 से 21006 उत्तरी अक्षांश एवं 80024 से 81038 पूर्वी देशान्तर के मध्य स्थित है। क्षेत्र का विस्तार 5517.17 वर्ग किलोमीटर है। इस उच्चभूमि की समुद्र सतह से औसत उँचाई 500 मीटर तथा वन क्षेत्र 40.67% है। महानदी अपवाह तंत्र तथा गोदावरी तंत्र प्रमुख है। जिसके अन्तर्गत सात विकासखण्ड शामिल है, इसमें राजनांदगाँव जिले के तीन विकासखण्ड-अम्बागढ़ चैकी, मोहला, मानपुर, तथा बालोद जिले के चार विकासखण्ड-डौण्डी, डौण्डी लोहारा, बालोद एवं गुरूर सम्मिलित है। 2011 जनगणना अनुसार अध्ययन क्षेत्र का साक्षरता दर 69.16% है, जिसमें अनुसूचित जनजाति का 62.69% एवं अनुसूचित जाति का 56.27% है। ग्रामीण 8,03,438 एवं नगरीय जनसंख्या 1,01,922 है। जनसंख्या 12.38%, जनसंख्या घनत्व 164 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी., लिंगानुपात 1026 स्त्री प्रति हजार एवं परिवहन क्षेत्र में राज्य

सड़क मार्ग-06 (अन्तागढ़-मानपुर-भानुप्रतापपुर-नरहरपुर-दुधावा) एवं मार्ग-07 (कबीरधाम-राजनांदगाँव-मानपुर) तथा जिला सड़क मार्ग (दुर्ग-दल्लीराजहरा) प्रमुख है।

जनजातियों के साक्षरता स्तर में गत्यात्मक परिवर्तन प्रतिरूप : दुर्ग-राजनांदगाँव उच्चभूमि के अन्तर्गत जनजातियों के साक्षरता स्तर में गत्यात्मक परिवर्तन प्रतिरूप वर्ष 1991 से 2011 है।

साक्षरता प्रारूप, 1991 : क्षेत्र के जनजातियों में वर्ष 1991 में साक्षर संख्या 137795 (45.45%) जिसमें पुरुष साक्षर संख्या 95684 (69.44%) एवं महिला साक्षर संख्या 42111 (30.56%) है । विकासखंडवार में सबसे अधिकतम साक्षरता दर अंबागढ़ चैकी विकासखंड में 54.29% है, जिसमें पुरुष साक्षरता दर 73.96% एवं महिला साक्षरता दर 26.63% है तथा न्यूनतम साक्षरता दर मानपुर विकासखंड में 39.26% है, जिसमें पुरुष साक्षरता दर 74.76% एवं महिला साक्षरता दर 25.24% है। दुर्ग-राजनांदगाँव उच्चभूमि में साक्षरता प्रतिरूप वर्ष 1991 में अंबागढ़ चैकी, डौण्डी एवं बालोद में 45% से अधिक है, मोहला, डौण्डी लोहारा एवं गुरुर में 42% से अधिक है तथा एक मात्र विकासखंड मानपुर में 40% से भी कम है। लिंगानुसार साक्षरता दर तीन विकासखंड मानपुर, अंबागढ़ चैकी एवं मोहला में पुरुष साक्षरता दर 72% से अधिक है तथा दो विकासखंड डौण्डी 67.96% एवं डौण्डी लोहारा में 67.06% से अधिक पुरुष साक्षरता दर है। गुरूर एवं बालोद में 65% से भी कम पुरुष साक्षरता है। वहीं पर दूसरी ओर दो विकासखंड बालोद एवं गुरुर में महिला साक्षरता दर 35% से अधिक है तथा दो विकासखंड डौण्डी लोहारा एवं डौण्डी में महिला साक्षरता 33% से कम है तथा तीन विकासखंड मोहला, अंबागढ़ चैकी एवं मानपुर में 28% से भी कम महिला साक्षरता है।

साक्षरता प्रारूप, 2001 : क्षेत्र के जनजातियों में वर्ष 2001 में साक्षर संख्या 235020 (66.57%) जिसमें पुरुष साक्षर संख्या 130128 (55.37%) एवं महिला साक्षर संख्या 104892 (44.63%) है। विकासखंडवार में अधिकतम साक्षरता दर मोहला में 78.07% जिसमें पुरुष साक्षरता दर 53.83% एवं महिला साक्षरता दर 46.17% है तथा न्यूनतम साक्षरता दर अंबागढ़ चैकी में 67.83% जिसमें पुरुष साक्षरता दर 53.46 एवं महिला साक्षरता दर 46.54% है। मानपुर में साक्षरता दर 75.06% जिसमें पुरुष 54.97% एवं महिला 45.03%, बालोद में साक्षरता दर 70.15% जिसमें पुरुष 55.67% एवं महिला 44.33%, डौण्डी लोहारा में साक्षरता दर 76% जिसमें पुरुष 55.48% एवं महिला 44.52%, गुरुर में साक्षरता दर 71.04% जिसमें पुरुष 57.22% एवं महिला 42.78% तथा डौण्डी में साक्षरता दर 75.24% जिसमें पुरुष 57.13% एवं महिला 42.87% है।

साक्षरता प्रारूप, 2011 : क्षेत्र के जनजातियों में वर्ष 2011 में साक्षर संख्या 273892 (66.36%) जिसमें पुरुष साक्षर संख्या 151794 (55.42%) एवं महिला साक्षर संख्या 122098 (44.58%) है। विकासखंडवार में अधिकतम साक्षरता दर मोहला में 74.98% जिसमें पुरुष साक्षरता दर 55.86% एवं महिला साक्षरता दर 44.14% है तथा न्यूनतम साक्षरता दर अंबागढ़ चैकी में 67.30% जिसमें पुरुष साक्षरता दर 54.50% एवं महिला साक्षरता दर 45.50% है। मानपुर में साक्षरता दर 70.49% जिसमें पुरुष 56.23% एवं महिला 43.77%, बालोद में साक्षरता दर 70.62ऽ जिसमें पुरुष 54.03% एवं महिला 45.70%, डौण्डी लोहारा में साक्षरता दर 67.71% जिसमें पुरुष 55.83% एवं महिला 44.17%, गुरु र में साक्षरता दर 68.90% जिसमें पुरुष 54.90% एवं महिला 45.10% तथा डौण्डी में साक्षरता दर 67.80% जिसमें पुरुष 55.33% एवं महिला 44.67% है । इस प्रकार स्पष्ट है कि जनजातियों में साक्षरता का अनुपात पुरुषों की तुलना में महिलाओं में बहुत ही कम है।

निष्कर्ष

जनजातियों के साक्षरता स्तर में गत्यात्मक परिवर्तन प्रतिरूप वर्ष 1991 से 2011 का अध्ययन किया गया है। वर्ष 1991 में साक्षर संख्या 137795 (45.45%) जिसमें पुरुष साक्षर संख्या 95684 (69.44%) एवं महिला साक्षर संख्या 42111 (30.56%) है। विकासखंडवार में सबसे अधिकतम साक्षरता दर अंबागढ़ चैकी विकासखंड में 54.29% है, जिसमें पुरुष साक्षरता दर 73.96% एवं महिला साक्षरता दर 26.63% है तथा न्यूनतम साक्षरता दर मानपुर विकासखंड में 39.26% है, जिसमें पुरुष साक्षरता दर 74.76% एवं महिला साक्षरता दर 25.24% है। वर्ष 2001 में साक्षर संख्या 235020 (66.57%) जिसमें पुरुष साक्षर संख्या 130128 (55.37%) एवं महिला साक्षर संख्या 104892 (44.63%) है। विकासखंडवार में अधिकतम साक्षरता दर मोहला में 78.07 जिसमें पुरुष साक्षरता दर 53.83% एवं महिला साक्षरता दर 46.17% है तथा न्यूनतम साक्षरता दर अंबागढ़ चैकी में 67.83% जिसमें पुरुष साक्षरता दर 53.46% एवं महिला साक्षरता दर 46.54% है। वर्ष 2011 में साक्षर संख्या 273892 (66.36%) जिसमें पुरुष साक्षर संख्या 151794 (55.42%) एवं महिला साक्षर संख्या 122098 (44.58%) है। विकासखंडवार में अधिकतम साक्षरता दर मोहला में 74.98% जिसमें पुरुष साक्षरता दर 55.86% एवं महिला साक्षरता दर 44.14% है तथा न्यूनतम साक्षरता दर अंबागढ़ चैकी में 67.30% जिसमें पुरुष साक्षरता दर 54.50% एवं महिला साक्षरता दर 45.50% है। अध्ययन से स्पष्ट है कि साक्षरता दर में गत्यात्मक परिवर्तन 1991 में 45.45% एवं 2001 में 66.57% तथा 2011 में 66.36% है जिसमें स्पष्ट रूप से गत्यात्मक परिवर्तन देखने को मिला है। इस प्रकार स्पष्ट है कि जनजातियों में साक्षरता का अनुपात पुरुषों की तुलना में महिलाओं में बहुत ही कम है। अतः स्पष्ट है कि दुर्ग-राजनांदगाँव उच्चभूमि के जनजातियों के साक्षरता स्तर में गत्यात्मक परिवर्तन प्रतिरूप (1991-2011) का अध्ययन किया है।

सुझाव

दुर्ग-राजनांदगाँव उच्चभूमि के जनजातियों के साक्षरता स्तर में गत्यात्मक परिवर्तन प्रतिरूप 1991-2011 के अध्ययन से यह आवश्यक हो जाता है कि शैक्षणिक विकास की समस्या को कैसे दूर करें। जनजाति की समस्याओं का समाधान केवल एकल उपाय से संभव नहीं है। वर्तमान में जनजातियों की समस्याओं के समाधान और उनके विकास के लिए हालांकि, कुछ महत्वपूर्ण कदम निम्नलिखित है - शिक्षा का विकास, गरीबी दूर करके, शिक्षा के प्रति प्रेरणा जागृत करना, मार्गदर्शन का विकास, सामाजिक समस्याओं को दूर करके, आर्थिक पिछड़ापन, व्यावहारिक शिक्षा, स्वास्थ्य संबंधित, विकास कार्यक्रम, शैक्षणिक उपलब्ध सुविधा एवं शिक्षक-विद्यार्थी में उचित संबंध। अतः जनजातियों में शैक्षणिक विकास के लिए शिक्षा को सर्वोपरी महत्वपूर्ण विषय अनिवार्य बना दिया जाना चाहिए।

सन्दर्भ सूची

1. Census of India (2011) : Chhattisgarh District Census Handbook, Durg Series-23, Part XII-A, Directorate of Census Operations Chhattisgarh.
2. Census of India (2011) : Chhattisgarh District Census Handbook, Rajnandgaon Series-23, Part XII-A, Directorate of Census Operations Chhattisgarh.
3. Census of India (2001) : Chhattisgarh District Census Handbook, Durg Series-23, Part XII-A&B, Directorate of Census Operations Chhattisgarh.
4. Census of India (2001) : Chhattisgarh District Census Handbook, Rajnandgaon Series- 23, Part XII-A&B, Directorate of Census Operations Chhattisgarh.
5. Census of India (1991) : Madhya Pradesh District Census Handbook, Durg Series-13,Part XII-A&B, Directorate of Census Operations Chhattisgarh.
6. Census of India (1991) : Madhya Pradesh District Census Handbook, Rajnandgaon Series-13, Part XII-A&B, Directorate of Census Operations Chhattisgarh.
7. खेमचंद एवं टिके सिंह (2022) : "दुर्ग-राजनांदगाँव उच्चभूमि में अनुसूचित जनजातियों में शाला त्याग के आर्थिक कारण एवं साक्षरता स्तर । शोध संचार बुलेटिन In International Bilingual Peer Reviewed Refereed Research Journal, Vol.-12, Issue- 47, July-Sept. pp. 42-47.
8. खेमचंद एवं टिके सिंह (2023): छत्तीसगढ़ के दुर्ग-राजनांदगाँव उच्चभूमि में जनजातियों में साक्षरता प्रतिरूप। केरल ज्योति Journal, Vol.-4, Issue-60, September. pp. 37-40.
9. खेमचंद (2024): छत्तीसगढ़ के दुर्ग-राजनांदगाँव उच्चभूमि में जनजातियों शैक्षिक गत्यात्मकताः एक भौगोलिक विश्लेषण। अप्रकाशित शोध-प्रबंध, पं. रवि. शु. वि. वि. रायपुर (छ. ग.).
10. खेमचंद एवं मधु (2025) :छत्तीसगढ़ के दुर्ग-राजनांदगाँव उच्चभूमि में ग्रामीण-नगरीय जनजातियों में साक्षरता दर का परिवर्तन प्रतिरूप (1991-2011), शोध संचार बुलेटिन In International Bilingual Peer Reviewed Refereed Research Journal, Vol.-15, Issue- 58, April- June. pp. 41-45.
11. खेमचंद (2025) : छत्तीसगढ़ के दुर्ग-राजनांदगाँव उच्चभूमि में जनजातियों के साक्षरता विकास स्तर, शोध सरोवर पत्रिकाएँ Vol.-9, Issue- 35, July. pp. 22-25.
12. खेमचंद (2025) : छत्तीसगढ़ के दुर्ग-राजनांदगाँव उच्चभूमि में जनजातियों के शैक्षणिक अधोसंरचना, द्विभाषी राष्ट्रसेवक शोध पत्रिकाएँ Vol.-4, Issue-75, July. pp. 40-45.

भूगोल अध्ययनशाला,
पं.रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय
रायपुर(छ.ग)

डॉ.मधु
अतिथि व्याख्याता
मुखराम नागे महाविद्यालय नगरी
जिला-धमतरी (छ.ग)

'छिन्नमस्ता' की सांस्कृतिक बहुस्वरता

नीरदा मरिया कुरियन

भारतीय संस्कृति में मंदिरों और मठों का प्रमुख स्थान है। भारत का प्राचीन इतिहास मंदिरों से जुड़ा हुआ है। भारतीय साहित्य सांस्कृतिक प्रभाव से युक्त साहित्य है। मंदिरों के धार्मिक,सांस्कृतिक परम्पराएँ, वहाँ के प्राकृतिक परिवेश और मंदिरों पर आश्रित रोज़मर्रा जीवन बितानेवाले लोगों के जीवन के आधार पर सार्थक साहित्य का सृजन हो सकता है। ऐसा साहित्य हमें प्राचीन इतिहास, शिल्पकला, चित्रकला, लोककथा, लोक-गाथा, लोक विश्वास और सामाजिक परंपरा और उनके विभिन्न तथ्यों से अवगत कराते है। खोजी मन और अधिक श्रम साधना से युक्त साहित्यकार ही अतीत की गहराई में जाकर श्रेष्ठ साहित्य का निर्माण कर सकते है।

असमिया साहित्य की मशहूर लेखिका है डॉ.इन्दिरा गोस्वामी। पूरा नाम है मामोनी रायसम गोस्वामी। उन्होंने असम में स्थित देवीपीठ कामाख्या के इतिहास और लोक-गाथाओं को आधार बनाकर 'छिन्नमस्ता भानूदरो' नामक उपन्यास की रचना की है। असमिया पाठक समाज में इस उपन्यास को एक असाधारण सृष्टि माना गया है। इसका हिंदी रूपांतर है 'छिन्नमस्ता'।

भारत के उत्तर-पूर्वी राज्य असम में स्थित सबसे बड़ी शक्तिपीठ कामाख्या की पृष्टभूमि पर लिखा गया उपन्यास है 'छिन्नमस्ता'। नीलाचल पर्वत के बीचों-बीच स्थित कामाख्या मन्दिर गुवाहाटी से करीब आठ किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। प्रचलित कथा के अनुसार शिव की पहली पत्नी दक्षराज की बेटी सती पिता के राजदरबार में अपने पति पर लगाए लांछन को सह न सकी और अग्निकुण्ड में कूदकर आत्महत्या कर ली। इस बात का पता करते ही भगवान् शिव भी वहाँ पहुँचे और सती का शव लेकर तांडव करने लगे। सभी देवताओं ने भगवान् विष्णु से इसे रोकने का अनुरोध किया। विष्णु ने अपने सुदर्शन चक्र से सती के देह को खण्ड-खण्ड कर दिया। जिन स्थानों पर सती के अंग गिरे वे सभी स्थान शक्तिपीठ बने। जहाँ सती की योनी और गर्भ आकर गिरे थे, आज उस स्थान पर कामाख्या मंदिर स्थित है।

कामरूपी कामाख्या की परम्परा और लोक-कथाओं का गहराई से गंभीर अध्ययन करके ही इन्दिराजी इस उपन्यास की रचना की है। डॉ.प्रफुल्ल करकी की राय में "इस पुस्तक में कामाख्या मंदिर का एक परिपूर्ण चित्र अंकित किया गया है। यहाँ की पूजा अर्चना के विभिन्न रूप, आचार-नीति, लोक-विश्वास, लोक-गाथा, देवीपीठ के साथ जुड़ी हुई किंवदन्तियाँ, देवीपीठ का इतिहास, यहाँ की धार्मिक परंपरा आदि को कथानक का रूप दिया गया है।"[1] सन 1921 से 1932 तक की घटनाएँ इस उपन्यास का आधार है।

उपन्यास के प्रमुख पात्र है - जटाधारी संन्यासी,डरथी ब्राउन नामक अंग्रेज़ महिला, जटाधारी का शिष्य रत्नधर, किशोर बालिका विधिबाला आदि।

उपन्यास में मुख्य भूमिका कामाख्या मंदिर की है। इस शक्तिपीठ में चलते रहनेवाले बलि विधान ही उपन्यास की मुख्य हिस्सा है। ऐसा कहा जाता है कि पहले इस शक्तिपीठ में नरबलि होती थी। अंग्रेजों के राज में इसे बंद कर दिया गया। लेकिन मंदिर के अंदरूनी बातों में अंग्रेज़ों ने कभी दखल नहीं दिया। मंदिर का सारा काम पुजारियों के हाथों में ही था इसलिए पक्षियों, बकरों आदि की बलि दी जाती है। इस शक्तिपीठ का आँगन हमेशा खून से रंगा रहता है। लोगों का विश्वास है कि पशु बलि से मनोकामना पूर्ण हो जाएँगें।

खून की धाराओं को रोककर बलिप्रथा का विरोध करना ही उपन्यास का नायक जटाधारी का मक्सद है। छिन्नमस्ता के यह संन्यासी ज़ोर देकर बोलते रहते हैं - 'माँ छिन्नमस्ता माँ, तुम रक्तवस्त्र उतार दो।' वह देवी की पूजा रक्त से नहीं फूलों से करने का आह्वान देते है। रक्त को त्यागकर फूलों की पंखुड़ियों से जिसमें मनुष्य हृदय छुपा रहता है। माता की पूजा करने को लोगों को प्रेरित करता है। गुरुकुल के छात्रों के साथ अन्य भक्त भी देवी पर फूल चढ़ाने के पक्ष में है। भक्त लोग एक साथ कहते है - "जिस हृदय में हर समय फूलों की खुशबू रहती है वह मृत्यु के यात्री को भी वापस ला सकता है। रक्त को त्याग दो। फूलों से देवी माँ की पूजा करो।"[2] आगे वे कहते है "दो भैसों के खून से मिले पुण्य से ज़्यादा आशीर्वाद पुष्प अर्पण से प्राप्त होगा।"[3] जटाधारी के शब्दों में "माँ कामाख्या चाहती है कि उनकी सृष्टि की हुई और जन्म दिया हुआ हर प्राणी ज़िंदा रहे, खुश रहे और सुरक्षित रहे।"[4] कुछ लोग इसका विरोध करते है। अलग अलग विचारवाले लोग आपस में टकराते है जिसमें एक दल जीवप्रेमी और उदार नज़र आते है तो दूसरा दल पुराने संस्कारों से घिरा, हिंस्र और पराश्रित दीखते है। यह टकराहट ही उपन्यास का मूल विषय है।

बलि प्रथा समर्थक दल में मुख्य है सिरमुंडा संन्यासी जो जटाधारी को धिक्कारते है। वह पशुबलि ही नहीं, बंद हुआ नरबलि भी वापस लाना चाहते है। उनके अनुसार "नरबलि बंद होने के कारण ही आज देश के लोगों की यह हालत हुई है। अंग्रेज़ों ने देश पर कब्ज़ा कर लिया है। जो नरबलि के लिए तैयार रहता है वह पापमुक्त होता है।"[5] निरक्षर अज्ञान लोगों को बहकाने में यह दल सफल हो जाते है। लेकिन पढ़ी लिखी युवा पीढ़ी उसके वश में आनेवाली नहीं है। सिरमुंडा संन्यासी जब उनसे कहते है कि बलि विधान बंद करने से तुम लोगों के खून से वधस्थल डूब जायेगा, तब छात्रों ने एक साथ उत्तर दिया कि "ज़रूर रत पड़े तो हम लोग अपना रक्तदान करेंगे, लेकिन दूसरे प्राणियों की बलि नहीं होने देंगे।"[6]

युवा पीढ़ी जटाधारी के पक्ष में है। वह बलिप्रथा रोकने के कई उपाय सोचते है और लोगों से दस्तखत इकट्ठा करके गोरे साहब से सहायता माँगना चाहते हैं। बलि विरोधी स्वर उपन्यास के अन्य पात्रों में भी ज़ोरों पर है। विधिबाला का कथन इसका उदाहरण है। जब रत्नधर शास्त्रों के सम्बन्ध में पूछते है तब उसका उत्तर इसकी गवाही देती है। - "जो शास्त्र ऐसे विधान देते है कि जानवरों की बलि हो " मुझे नहीं पढ़ना है। संस्कृत को देवभाषा कहा जाता है, इसके बावजूद मैं वैसा शास्त्र नहीं पढ़ूँगी।"[7] विधिबाला का ब्याह होने के लिए पिता एक भैंसे को बलि चढ़ाना चाहता है लकिन विधिबाला इसका कठोर विरोध करती है। रत्नधर भी बलि चढाने लाये पशुओं को मुक्त कराके अपना विरोध प्रकट करते है।

बलि प्रथा जैसे अन्ध विश्वास और कुसंस्कार को रोकने की बात साहित्य में लाना बहुत नाज़ुक विषय है। धर्म से सम्बंधित विषय होने के कारण लेखिका ने शास्त्रों और प्रमाणों का सहारा लिया है। उपन्यास में उद्धृत संस्कृत पक्तियाँ इसका परिचायक हैं -

'नीलोत्पल - सहस्रेण यस्तु मालां प्रयच्छति।/अदुर्गायाःपूजया चैव तस्य पुष्पफल ऋणु।।/वर्षकोटिसहस्रानी वर्षकोटिशतानिच।/ देव्या अनुचरो भूत्वा रुद्रलोक महिराते।।'

यानी जो देवी भक्तएक हज़ार नीलकमल से देवी पूजा करता है वह सौ करोड़ एक हज़ार साल देवी का सेवक बनकर रुद्रलोक में निवास करता है।

कामाख्या मंदिर की रीति-नीति से लेखिका परिचित है। मंदिर में एक रिवाज़ है कि देवी जब रजस्वला होती है तब मंदिर के कपाट बंद रखते है। तीन-चार दिनों के लिए रक्तवर्ण के वस्त्र से देवी का गुप्तांग ढँककर रखा जाता है। इन वस्त्रों के टुकड़ों को भक्त अपनी मनोकामनाएँ पूर्ण करने के लिए तावीज़ में डालकर पहनते है। इस प्रकार के रीति-रिवाज़ों से परिचित होने के लिए लेखिका कामाख्या मंदिर में दीर्घकाल रहने का कष्ट उठाया है। इंदिराजी खुद उपन्यास की भूमिका में लिखती है - "इस उपन्यास की रचना अनेक तथ्यों को संग्रह करने और मंदिर में दीर्घकाल तक रहकर अनुभव प्राप्त करने के बाद की गयी है।"[8]

मासिक धर्म, एक स्त्री की पहचान है। यह उसे पूर्ण स्त्रीत्व प्रदान करता है। लेकिन फिर भी हमारे समाज में रजस्वला स्त्री को अपवित्र माना जाता है। महीने के जिन दिनों में वह मासिका चक्र के अंतर्गत आती है, उसे किसी भी पवित्र कार्य में शामिल नहीं होने दिया जाता। उसे किसी भी धार्मिक स्थल पर जाने की मनाही होती है। लेकिन विडम्बना देखिए कि एक और तो हमारा समाज रजस्वला स्त्री को अपवित्र मानते है, वहीं दूसरी ओर मासिक धर्म के दौरान कामाख्या देवी को सबसे पवित्र होने का दर्जा देता है, 'बहते रक्त की देवी' भी कहा जाता है।

भक्तों का मानना है कि हर साल जून के महीने में कामाख्या देवी रजस्वला होती है और उनके बहते रक्त से पूरी ब्रह्मपुत्र नदी का रंग लाल हो जाता है। इस लाल पानी को भक्तों में बाँटते है। इस दौरान तीन दिनों तक मंदिर बंद हो जाता है। फिर धूमधाम से खोलते है तब अम्बूवाची पर्व मनाते है। देवी की रजस्वला होने की बात पूरी तरह आस्था से जुड़ी है। लोगों का कहना है कि पर्व के दौरान ब्रह्मपुत्र नदी में प्रचुर मात्रा में सिन्दूर डाला जाता है जिसकी वजह से नदी लाल हो जाती है। कुछ तो यह भी कहते है कि यह नदी बेजुबान जानवरों की बलि के दौरान उनके बहते हुए रक्त से लाल होती है। जानवरों की बलि होती है मगर इस मंदिर में कभी मादा पशु की बलि नहीं दी जाती।

तथ्य चाहे जो भी हो कामाख्या देवी की आराधना कर लोग स्त्रीत्व की आराधना करते है। इंदिरा गोस्वामिजी इन विश्वासों को हमारे सामने रखकर स्त्री के महत्त्व की उद्घोषणा करते है। प्राचीन संस्कृति से जोड़कर विडम्बनाओं से युक्त रीति-रिवाज़ों को प्रस्तुत कर उन्होंने अपनी रचना को उत्कृष्ट बनाई है।

वर्षों से चली आ रही बलि प्रथा का विरोध करना ही उपन्यास का उद्देश्य है। साथ ही साथ तत्कालीन समाज का यथार्थ चित्र भी उभरकर सामने आता है। किशोर-बालिका विधिबाला के जीवन में घटित घटनाएँ पाठकों के मन में सहानुभूति भर देती हैं। पुराने संस्कारों को माननेवाला विधिबाला के पिता एक बूढ़े, शादीशुदा और पहली पत्नी से हुए बच्चों वाले आदमी के साथ उसकी शादी कराना चाहता है। विधिबाला अपने मनोबल से इसका विरोध करने की कोशिश करती है लेकिन पिता उसपर ज़बरदस्ती करता है। लेखिका ने विधिबाला के साथ की गयी इस ज़बरदस्ती की तुलना पशुबलि से की है। दुखी विधिबाला कामाख्या में उभारी पूजा के लिए आए वेश्याओं के साथ भाग जाती है। एक महीने से कुछ न खाने और न पीने के वजह से वह मृत्यु को स्वीकारती है।

अंग्रेजी महिला डरथी ब्राउन भी अनेक मुश्किलों से गुज़रती है। कॉटन कॉलेज के अध्यापक रोबर्ट ब्राउन की पत्नी डरथी के बच्चे नहीं है। उसी के इलाज के लिए वह इंग्लैंड गयी थी। वापस आने पर उसे पता चला कि उसके पति के साथ एक खासी जनजाति की महिला का नाजायज़ सम्बन्ध है। डरथी का स्वाभिमानी मन दुखी हो उठा। मन की शान्ति के लिए वह छिन्नमस्ता के संन्यासी के आश्रम में चली जाती है और बलि प्रथा विरोधी दल के साथ जुडती है। पति के अनुरोध के बावजूद वह अपने घर लौटती नहीं। संन्यासी के साथ एक सुन्दर विदेशी युवती के सम्बन्ध को लेकर कई चर्चाएँ लोगों के बीच होती हैं।

डरथी पर बदमाशों ने हमला किया और बलात्कार की कोशिश भी की। फिर डरथी जटाधारी के साथ बलि प्रथा रोकने के लिए जनमत जुटाने के लिए कामाख्या से दूर चली जाती है। डरथी ब्राउन और जटाधारी का सम्बन्ध एक प्रकार का आध्यात्मिक सम्बन्ध है। वह जटाधारी से कहती है - "मैं रहूँगी, मैं हमेशा तुम्हारी छाया बनकर रहूँगी। हमारा सम्बन्ध दुनिया में एक अनूठा सम्बन्ध है, एक श्रेष्ठ सम्बन्ध है।"[9] बाद में डरथी और संन्यासी

के वापस आने पर डरथी का पति उसे गोली मारकर उसकी हत्या करती है।

उपन्यास की हर घटना बलि प्रथा विरोध को ज़ोर देती है। अंत में जटाधारी ने सबके सामने चाकू उठाकर अपनी नाभि के नीचेवाले हिस्से से एक टुकड़ा मांस काट दिया। साथ ही साथ सारे नवयुवक भी अपनी देह से मांस काटने लगे। नवयुवकों के रक्त की पूरी गन्दगी ब्रह्मपुत्र में निकला। सुबह एक नया सूर्योदय हुआ। फिर कहीं खून के धब्बे किसी ने नहीं देखा।

भारतीय साहित्य में समाज को जागरूक करने वाली रचनाओं में सबसे महत्वपूर्ण है 'छिन्नमस्ता'। पशु बलि के विरोध में आवाज़ उठाने वाले साहित्यकारों में इंदिरा गोस्वामी का स्थान अद्वितीय है। उनकी साहस पूर्ण कोशिश को जनता का समर्थन भी मिला है। अपने वक्तव्य के समर्थन के लिए इंदिराजी ने कालिका पुराण जैसे शास्त्रों के अंशों को भी उदृत किया है। धार्मिक परम्पराओं के प्रति उनकी विचारों में कहीं उग्ररूप नहीं दिखाई देता और किसी की भी धार्मिक भावनाओं को उन्होंने आघात भी नहीं पहुँचाया है।

इंदिरा गोस्वामी का उपन्यास 'छिन्नमस्ता' गरीबी, निरक्षरता, अज्ञान, कुसंस्कार, अंधविश्वासों और पुराने संस्कारों से घिरे कामाख्या के जनजीवन का दस्तावेज़ है। हिंसा और अहिंसा रूपी दो विचारधाराओं के टकरावों के बीच दम घुटनेवाली आम जनता का प्रतिरोध व्यक्तकरने में लेखिका एकदम सफल दिखाती है। जटाधारी और नवयुवक का प्रतिरोध है - अंत में शरीर से मांस काटकर खून बहाना। विधिबाला का प्रतिरोध है - वेश्याओं के साथ भाग जाना। रत्नधर का प्रतिरोध है - बलि देने लाये भैंसा या बकरे को मुक्त कराना।

विषय की गहराई तथा अतीत और वर्तमान के अनुभवों की समग्रता से भरपूर 'छिन्नमस्ता' अपनी सर्जनात्मकता, समाज चेतना और मानवीय मूल्यों की सहज अभिव्यक्ति के कारण निस्संदेह एक सार्थक और महत्वपूर्ण उपन्यास है। समकालीन उपन्यास साहित्य में अपनी सांस्कृतिक और सामाजिक बहुस्वरता बनाए रखने में यह उपन्यास सक्षम दीखते है। इस उपन्यास को पढने से आधुनिक युग में भी चल रहे पुराने रीति-रिवाज़ों की ओर ऑंखें खोलने की प्रेरणा मिलता है। इस बात में कोई तर्क नहीं है कि इंदिरा गोस्वामी का 'छिन्नमस्ता' प्रतिरोध का रंग खून के रंग में रंगा हुआ उपन्यास है।

सन्दर्भ

1.डॉ. प्रफुल्ल करकी, प्रस्तुति, छिन्नमस्ता।
2.छिन्नमस्ता, इंदिरा गोस्वामी, पृ.सं,137
3.वही पृ.सं.138, 4.वही. पृ.सं.157
5. वही पृ.सं. 67, 6. वही पृ.सं. 66, 7. वही पृ.सं.111
8. इंदिरा गोस्वामी, भूमिका, छिन्नमस्ता।
9. इंदिरा गोस्वामी, छिन्नमस्ता, पृ.सं.121

सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग
न्यूमेन महाविद्यालय, तोडुपुष़ा, इडुक्की जिला।

कविता

ईश्वर से एक प्रार्थना

रघुवीर शर्मा

हफ्ते भर गुजर गए हैं
और साफ रहा है मौसम पूरे सप्ताह
न धुँआधार बारिश, न तूफानी मौसम
और बच्चे लगातार गए हैं स्कूल।

हफ्ते भर गुज़र गए हैं
और खाली रहा यह सप्ताह हादसों से
अकेली लड़की घर लौटकर आई है
रात में सोये परदेसी की पोटली
सुबह अपनी जगह पर मिली है।

हफ्ते भर गुजर गए हैं
और शून्य रहा यह हफ्ता कविताओं से
यूं ही नहीं लिखना चाहता है
एक कवि कोई कविता।
हे ईश्वर!
दुनिया ऐसे ही चलती रहे और कभी नहीं लिखनी
पड़ी मुझे एक भी कविता।

एक पुरानी कविता

पूछना चाहता हूँ मैं
किसने दिया था जहर सुकरात को?
मारी थी गोली गांधी को
और चढ़ाया था सूली पर ईसा को
और चुप रह जाते हो तुम
मैं स्वयं भी कहाँ बोल पाता हूँ
दरअसल हर युग में
ऐसे हर कार्य में
संदिग्ध रही है हमारी और तुम्हारी भूमिका।

उपनिदेशक
राजभाषा विभागगृहमंत्रालय।

'वे वहाँ कैद है' उपन्यास में अभिव्यक्त धर्मनिरपेक्षता की प्रतिरोधी संस्कृति

डॉ सिन्धु ए

प्राचीन काल से ही भारतीय समाज बहुलतावादी रहा। बहुलतावादी समाज में जीवन की सुगम गति के लिए सहिष्णुता एवं संभावना की आवश्यकता है। सभ्यता के विकास में भाषा संप्रदाय और संस्कार के साथ धर्म की उपेक्षा मुमकिन नहीं है। सभी धर्म मानवीयता की बात करते हैं और मनुष्य को आस्था प्रदान करता है। यह आस्था मनुष्य को संकीर्णताओं की ओर व्यापक मानव धर्मिता की ओर ले जाती है। 'धर्म तो मनुष्य को बेहतर इंसान बनने, उसके मानवीय गुणों का विकास करने, उसे सभ्य और सुसंस्कृत बनाने की प्रेरणा देता है, दृष्टि की विशालता देता है, इंसान को जोड़ने की, उसे दूसरों के खून का प्यासा बनाने की प्रेरणा कहाँ देता है? '(भीष्म साहनी, आज के अतीत, 292) इस प्रकार सभ्यता के विकास के दौरान धर्म का आशय सामाजिक और नैतिक आदेशों से संबंधित रहा। यह धर्म समय के साथ अपने को परिवर्तित एवं परिमार्जित करते हुए सदैव जीवित रहनेवाले मानवीय मूल्यों पर आधारित ही रहे।

वर्तमान समाज में चल रहे सारे संघर्षों के केंद्र में धर्म को घसीटा जाता है। पराधीन और स्वाधीन भारत की सबसे बड़ी समस्या धर्म का राजनीतिकरण है। आधुनिक दौर में जब राजनीति धर्म में हस्ताक्षर करने लगे तब धर्म सांप्रदायिकता का रूप धारण करने लगे। यानी धर्म को सांप्रदायिक बनानेवाला तत्व संकीर्ण राजनीति है। शंभूनाथ लिखते हैं कि 'कोई भी धर्म को जब राजनैतिक सिक्का बना दिया जाता है, तब स्वाभाविक है कि वह रिड्यूस्ड हो जाता है। धर्म जब व्यक्तिगत आस्था की दुनिया से बाहर निकलकर राजनीति में प्रवेश करता है वह दुशासन का रूप धारण कर राजनीति को द्रौपदी बना देता है।' (संस्कृत की उत्तर कथा, 128) उपनिवेशी शक्तियों ने धर्म को दुशासन का रूप प्रदान किया। उन्होंने अपने आर्थिक एवं राजनीतिक लाभ के लिए बहुतधर्मी समाज का फायदा उठाया और धर्म को राजनीति से जोड़ा। राजाराम बहादुर लिखते हैं कि 'सांप्रदायिकता की एक आधुनिक प्रवृत्ति है और उसकी जड़ें आधुनिक औपनिवेशिक सामाजिक आर्थिक और राजनीतिक संरचना में मौजूद है।' (धर्मसता और प्रतिरोध की संस्कृति, 224)

उपनिवेशकालीन भारत में ही धर्म का सांप्रदायीकरण शुरु हुआ था। विश्वउपनिवेशित समाज में भी यह एक सच्चाई बनकर उपस्थित है। बी आर नंदा लिखते हैं कि यद्यपि अंग्रेज़ अपने राजनैतिक सता को बनाए रखने में असफल रहे फिर भी भारत में सांप्रदायिकता की समस्या को हमेशा के लिए बनाए रखने में कामयाबी हासिल की।' (गांधी एण्ड टोन्डी फस्ट सेनच्वरी, 193) यानी धर्म का राजनीतिकरण केवल इतिहास नहीं, वर्तमान भी है। स्वाधीन भारत में धर्म का राजनीति में हस्ताक्षर और राजनीति का धर्म में हस्ताक्षर दोनों सच्चाई है।

प्रियंवद का 1994 में लिखा गया का उपन्यास है 'वे वहां कैद हैं'। भारत के सांप्रदायिक समस्या पर और धर्म के राजनीतिकरण पर यह उपन्यास विमर्श प्रस्तुत करता है। इस उपन्यास का केंद्र पात्र दादू है। दादू इतिहास के प्रोफेसर हैं। उनके दो शिष्य हैं चिन्मय और अविनाश और उनकी दो बेटियाँ प्रातू और कादंबरी भी है। दादू की पत्नी एनी उनकी मृत्यु हो चुकी है। सुक्खी बाबू, गुठ्ली और मसूद भी उपन्यास में आ जाते है। उन्नीस सौ चौरानवे के समय तक आते देश में सांप्रदायिकता की समस्या स्वाधीन भारत में खुलकर दृश्यमान हो रहे थे। बाबरी मस्जिद कांड से यह देश में प्रकट हो चुका था। उपन्यास साप्रदायिकता की राजनीति को पर्दाफाश करने और उसको प्रतिरोध करने की माँग को आगे रखता है।

दादू अपने विद्यार्थियों से इतिहास को तीसरी आंखों से देखने को कहते हैं। अविनाश तीसरी आँखों से इतिहास को देख पाता है। लेकिन चिन्मय देश को हिन्दू राष्ट्र बनाना चाहता है। वह उपनिवेशी शक्तियों द्वारा भारत के समाज में थोपे हिन्दू मुसलमान संघर्ष के शिकार है। चिन्मय दादू से कहता है 'सारी राजनीति, सामाजिक संरचना, विकास, युद्ध, निर्माण क्या था सर सिवाएं धर्म के? हमारा इतिहास धर्म के बगैर है क्या? कितनी गंदी लडाइयाँ कितने सालों तक हुई हैं धर्म के नाम पर। ब्राह्मणों, बौध्दों तांत्रिकों मुस्लमों सिखों न जाने कितने। पाँच हजार सालों से यह जमीन धर्म का गंदा अखाड़ बनी रही। हम इन्हीं के वंशज हैं सर, यही खून आज भी हमारे नसों में है....।' धार्मिक राष्ट्र की मांग करने वाला चिन्मय सभी सामाजिक पहचानों पर धर्म का मुखौटा लगा देता है। वह इतिहास के सभी लड़ाइयों को धार्मिक लड़ाई का रंग देकर उन्हें धार्मिक लड़ाई सिद्ध करना चाहता है। वह अतीत को सांप्रदायिक दृष्टि से

आंकता है और वर्तमान समाज में भी इसी परंपरा को ढूँढ निकालने का प्रयास करता है। लेकिन अतीत को तीसरी आँखों से देखने पर यह मालूम हो जाएगा कि सभी दंगे एवं युद्ध सत्ता के नाम पर ही हुए हैं। यह युद्ध हिंदू राजाओं और मुसलमान राजाओं के बीच नहीं केवल राजाओं के बीच हुए है। सत्ताधारी अपनी आवश्यकता के अनुसार धार्मिक भावनाओं को इस्तेमाल करके आम जनता को भड़काते रहे। सदियों से चली आ रही इस राजनीति से अवगत दादू, हिंदुओं की शक्ति दिखाने के लिए आह्वान किए गए हड़ताल के दिन अपने घर में माइक लगाने के लिए आए लड़कों को रोकते हुए कहता है तुम हमेशा सीढ़ियाँ रहे हो और सीढ़ियाँ खुद कहीं नहीं जाती। केवल दूसरे लोग उसपर पॉव रखकर ऊपर जाते हैं। आज भी तुम वही हो सबसे नीचे की सीढ़ियाँ जो सिर्फ इस्तेमाल होती हैं। 'लोगों की धार्मिक भावनाओं पर पाँव रखकर ही राजनीतिक वर्ग सत्ता तक पहुँचते हैं। ये सीढ़ियाँ शासक वर्गों को पाँव रखने के लिए मात्र होती हैं। दल में काम करने वाले लड़कों के संबंध में उपन्यास बताता है कि वह सब लड़के दिल में किसी प्रतिबद्धता या वैचारिक भावना के कारण नहीं थे। बल्कि वह दल को अपने अपराधी कार्य के ऊपर एक कवच की तरह इस्तेमाल करते थे।'

राजनीति अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिए अनुकूल परिस्थिति का निर्माण कर सांप्रदायिकता का विष फैला देता है। इस राजनीति के संबंध में अविनाश चिन्मय से कहता है कि हम एक ऐसी दुनिया में जीवित है जिसका नियंत्रण सचमुच कुछ देवताओं के हाथ में है, ये देवताएँ अंतरिक्ष में नहीं धरती के अपने हैं पर वैसे ही उनकी तरह ये देवताएँ भी अमर हैं जिससे यह हमारे जीवन को नियंत्रित करते हैं और इस व्यवस्था पर इनका संपूर्ण अधिकार होता है। जिसे कोई भी, खतरा होने पर यह संगठित हो जाते हैं। कोई उनकी देवत्व की सता को चुनौती देते हैं तो उनका नाश कर देते हैं।' धरती की यह देवताएँ राजनीतिज्ञ हैं जो धन एवं अधिकार के बल पर स्थित हैं। अपनी आवश्यकता के अनुसार रंग बदलने वाले यह वर्ग ही समाज का नियंत्रण करता है। दादू इसे समझने की बात चिन्मय से कहता रहता है। इतिहास को नई दृष्टि प्रदान करने की बात वे करते हैं।

उपनिवेशी दौर से शुरू हुई सांप्रदायिकता का रुख स्वाधीन भारत में सांप्रदायिक राष्ट्रवाद बन गया। स्वाधीनता आंदोलन के दौर में सांप्रदायिक शक्तियाँ सांस्कृतिक राष्ट्रवाद को राजनीतिक अभियान का रूप देने में असफल रहे। लेकिन वे स्वाधीन भारत में सांप्रदायिकता के इस रुख को बड़ी कुशलता के साथ विस्तार कर और यूरोप की राष्ट्रीय युक्ति को स्वीकारते हुए सांस्कृतिक राष्ट्र निर्माण की माँग करते रहे। चिन्मय, जो हिंदू राष्ट्र निर्माण का प्रयास करता है, कहता है कि 'अभी हम राष्ट्र है ही नहीं। बनने की प्रक्रिया में भी नहीं। सौ मील के क्षेत्र में हम एक नहीं है। भाषा, भोजन, वस्त्र, धर्म और विचार किसी भी स्तर पर ये सब एक होना होगा। तब हम कह सकते हैं कि हम एक राष्ट्र हैं। वह एक राष्ट्र हो सकता है सिर्फ हिंदू राष्ट्र की धारणा पर।' यहाँ चिन्मय हिंदू संस्कृति पर अधिष्ठित राष्ट्र के निर्माण का प्रयास करता है।

भौगोलिक तौर पर, भाषाई तौर पर और धार्मिक तौर पर विभिन्न जातियों की अलग-अलग संस्कृतियाँ होती हैं। ये सारी संस्कृतियाँ मिलकर ही राष्ट्रीय संस्कृति बनती है। विविध धर्म और उससे बनने वाली साझी संस्कृति को राष्ट्र की संस्कृति के रूप में स्वीकारने के लिए चिन्मय तैयार नहीं हो पाता। उनके लिए राष्ट्रीय संस्कृति का अर्थ एक भाषा, एक धर्म, एक न्याय पर आधारित है। सभी तत्त्वों का एकीकरण हिंदू राष्ट्र निर्माण से ही संभव हो पाएगा और तभी भारत एक राष्ट्र का दर्जा हासिल करेगी यही सांस्कृतिक राष्ट्रवादी का कहना है। भारत की संस्कृति का आधार किसी एक धर्म नहीं। सभी धर्म के भीतर विभिन्न जातियों की अलग-अलग संस्कृतियाँ होती हैं। सांस्कृतिक राष्ट्रवादियों इन संस्कृतियों के स्थान पर विशेष संस्कृति को प्रतिष्ठित करने का प्रयास करते हैं, जो बहुसंख्यकों की सांप्रदायिक संस्कृति है। यानी राष्ट्र की सांस्कृतिक विविधता पर बहुसंख्यकों की संस्कृति का वर्चस्व स्थापित करने का प्रयास वे करते रहते हैं। उपन्यास में गुठली अपना हिंदू होना देश के अधिकारी होने के रूप में समझ लेता है। इसीलिए मसूद का देश में छाती तानकर चलना वह बर्दाश्त नहीं कर पाता। उसके शब्दों में 'मसूद जैसे लोग हमारे सामने छाती तानकर घूमते हैं, हमारे ही देश में। हमको लगता है जैसे हम आज भी बाबर और औरंगसेब के राज्य में है।' इन शब्दों के पीछे दो तरह की मानसिकताएँ काम करती हैं। एक तो भारत को हिंदू राष्ट्र के रूप में स्थापित करने की फासीवादी प्रवृत्ति और दूसरी भारत के मध्यकालीन इतिहास को, जो मुगलशासकों का काल रहा, हिंदुओं पर हुए अत्याचार के काल के रूप में स्थापित करना।

धर्मनिरपेक्षता ऐतिहासिक तौर पर विकसित हुई सांस्कृतिक प्रक्रिया है। देश की बहुक्षेत्रीय, बहुभाषिक और बहुधार्मिक सामाजिक संरचना को देखकर धर्मनिरपेक्षता को राष्ट्रीय चरित्र के रूप में स्वीकारा था। लेकिन पराधीन देश में ही भय और घृणा की राजनीति को फैलाने में उपनिवेशी शक्तियाँ सक्षम हो चुके थी। इसके आधार पर ही देश को विभाजित भी किया गया था।

स्वाधीन भारत में भी भय और घृणा को कायम रखने में राजनीतिक शक्तियां कोशिश करते रहे। नतीजा यह निकला कि राजनीतिक शक्तियाँ अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिए इस राजनीति का इस्तेमाल करते रहे। उपन्यास राजनीति की इस खेल को लिखता है। चिन्मय के शब्दों में यह भय बहुत आवश्यक है क्योंकि यही समाधान है। सत्ता शासन व्यवस्था कुछ भी नहीं चल सकते, यदि आधार भय न हो। विभाजन के दौर में भारत पर बहुसंख्यकों के अधिकार की बात उड़ा कर मुसलमानों में भय उत्पन्न किया गया था। चिन्मय हिंदू राष्ट्र निर्माण के लिए इस भय को भड़काना अनिवार्य मानता है।

घृणा और भय की राजनीति मानवता को नष्ट कर देता है। मानवता विहीन मनुष्य हिंसात्मक बन जाता है। इंसानियत खोए मनुष्य में सांप्रदायिकता का बीज बोया जाता है। चिन्मय अविनाश से कहता है कि 'बुनियादी तौर पर हिंदू हिंसक नहीं होता। करुणा होती हैं उनके मन में। आजकल वे जान बूझकर माँस खाने लगी है ताकि हिंसा का मुकाबला हिंसा से कर सके। फॉसीवादी राष्ट्र निर्माण के लिए घृणा पर अधिष्ठित संस्कृति का निर्माण आवश्यक था। इसके लिए देश के मुसलमान को राष्ट्र के साथ विश्वासघात करने वाले अल्पसंख्यकों के रूप में स्थापित किया गया। विभाजन के दौर में ही यह अवधारणा देश में फैला दी गई थी। पाकिस्तान से हमारा जो विद्वेष भरा रुख है वह इस अवधारणा पर आधारित है। गुठली अविनाश से कहता है- 'पाकिस्तान तो अपना दुश्मन है हम सब जानते हैं। मसूद तो हमारे मुल्क में रहते हैं। यहाँ का दाना पानी ग्रहण करते हैं....यह तो उसका देश है- दुश्मन के लिए उसे ऐसे क्या करना चाहिए विभाजन के साथ देश के मुसलमान को शंका की दृष्टि से देखे जाने लगे थे। शत्रु से दिल का रिश्ता रखनेवालों को अपने ही देश से विश्वासधात करनेवाले समुदाय के रूप में स्थापित किया गया। विभाजन के साथ देश के हिंदू और मुसलमानों में जो दूरी पैदा किए गए इसी दूरी को बनाए रखने का प्रयास सांप्रदायिक शक्तियाँ करती रहीं। विभाजन केवल दो राष्ट्र की सीमाओं का ही निर्धारण नहीं था ना ही मुसलमान और हिंदुओं का देशांतरण।

विभाजन ने देश के सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनीतिक स्तर पर बहुत अधिक प्रभाव डाला था। हिंदू मुसलमानों को मुसलमान के रूप में और मुसलमान हिंदू को हिंदू के रूप में देखने की जो भावना है इसे पैदा करने में राजनीतिक शक्तियाँ सफल होती रहीं। उपन्यास में गुठली हर मुसलमान को इसी दृष्टि से देखता है। वह अविनाश से कहता है-'आप नाराज मत होइएगा, पर सच तो यह है कि इस देश के हर मुसलमान मसूद है। वह पाकिस्तान की रेडियो को सुनता है और उसकी बात को सच मानता है।। मसूद भारत में अपने को असुरक्षित मानते हैं। पाकिस्तान का सपना देखता रहता है।' गुठली के मन में हिंदू के प्रति जो भावना है, वही भावना मुसलमान के प्रति मसूद में भी दिखाई देता हैं। लेकिन मसूद के पाकिस्तान के प्रति निष्ठा को देश के हर मुसलमान की निष्ठा के रूप में सामान्यीकरण करने का प्रयास गुठली करता है, जिस तरह विभाजन की मांग को देश के सारे मुसलमान की मांग के रूप में करार दिया गया था। देश विभाजन की जिम्मेदारी का बोझ अनजाने ही झेलनेवाले मुसलमान अपने भीतर अपराध बोध का अनुभव करते रहते हैं। अविनाश अपने नल के नीचे पानी पीनेवाले आदमी से उसकी पहचान पूछने पर वह बड़े अपराधबोध से 'मैं मुसलमान हूँ' जवाब देता है। इस अपराधबोध को सभी मुसलमानों में उत्पन्न कराना सांप्रदायिक शक्तियों का लक्ष्य है। ऐसे आदमियों पर ही वे अपना अधिकार स्थापित कर सकते हैं और उन्हें अपनी इच्छा के अनुसार मोड सकते हैं। यह अपराधबोध और घृणा ने ही अल्पसंख्यक सांप्रदायिकता को भड़काया था।

सांप्रदायिकता के अंधेरे ने मानवीय पहचान को टुकरा दिया। व्यक्तिकी पहचान केवल उसका धर्म बन गया। सड़क पर हुए एक्सीडेंट के संबंध में लड़का इस प्रकार बयान देता है 'एक हिंदू मरा पड़ा है एक सिख ने गाड़ी चढ़ा दी।' भय और घृणा में पलनेवाले समाज में सूद और गुठली व्यक्तिनहीं बल्कि मुसलमान और हिंदू होंगे ही। समय और पीढियों के वर्तन के साथ धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र में धर्म संकीर्ण बनता जा रहा है। इस संकीर्णतओं के कारण दमी आदमी के रूप में नहीं 'मसूद' और 'गुठली' के नाम से पहचाने जाते हैं। हिंदुओं के प्रति मौजूद घृणा मसूद के मन में पाकिस्तान के प्रति मोह उत्पन्न कराता है। वह पाकिस्तान के सपनों के साथ जुड़ने का प्रयास करता रहता है। अपनी जड़ें पाकिस्तान में जमाना वह चाहता है क्योंकि बुनियादी तौर पर उसे हिंदुओं से नफरत है। उपन्यास लिखता है 'उधर शहर के साथ धीरे-धीरे मसूद भी बड़ा हो रहा था और उसके अंदर का भरा पूरा पाकिस्तान भी।' मसूद का ताउ विभाजन के समय पाकिस्तान चला गया था। उसके पिता मुल्क प्रेम के कारण भारत में ही रह जाता है। उपन्यास बताता है कि 'अपने बॉप से ज्यादा वह अपने ताउ को समझदार मानता था।' पिता के मुल्क प्रेम को बेवकूफी माननेवाला मसूद राष्ट्र के भी ऊपर धर्म को स्थापित करने का प्रयास करता है।

बहुलतावादी समाज में जनतांत्रिक व्यवस्था का एकमात्र

सूत्र धर्म निरपेक्षता का है। भारत के राष्ट्रीय अस्तित्व और आधुनिक विकास के लिए यह जरूरी है। 1947 देश में उपस्थित सारी समस्याओं का समाधान देश विभाजन और पाकिस्तान के निर्माण को मान लिया था। लेकिन देश में आज भी सांप्रदायिकता और सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का मसाला जोरों से चल रहा है। सांस्कृतिक राष्ट्रवादियों एक धर्म पर अधिष्ठित राष्ट्र निर्माण को सारी समस्याओं के समाधान के रूप में देखते हैं। देश में उपस्थित सभी समस्याओं का समाधान इसी में वे ढूंढते हैं। चिन्मय इसी विश्वास के साथ अविनाश से कहता है कि 'संभव है एक बार पूरा देश अस्थिरता में डूब जाए पर उसी से फिर जन्म लेगा एक दीर्घ स्थिर और निश्चित रूप हिंदू राष्ट्र का जो इस देश की मुक्ति है। सारी समस्याओं का समाधान हो।' इसीलिए चिन्मय हिंदू राष्ट्र की स्थापना करना चाहता है। दादू और अविनाश इसका प्रतिरोध करते हैं। दादू चिन्मय को चेतावनी देते हुए कहता है कि 'धर्म या जातीय महानता का उन्माद सिर्फ एक बर्बर तानाशाही में खत्म होता है जिसे कुछ मूर्ख लोग या मूर्ख पुस्तक नियंत्रित करते हैं।' धर्म के आधार पर बने राष्ट्र धर्म में निहित सभी अंधविश्वासों और अनाचारों को उसी तरह अपना लेगा। ऐसे राष्ट्र में युद्ध, घृणा, हिंसा आदि हमेशा मौजूद होंगे। दादू की बेटी कादंबरी ने अपने जर्नलिज्म कोर्स के दौरान कई देशों में भ्रमण किया है। उन सभी धार्मिक देशों में उसे यही दिखाई दिया। वहाँ के बच्चे खिलौने का चित्र नहीं बल्कि युद्ध के औजारों का चित्र खींचते हैं। वह दादू को लिखते हैं 'चारों ओर खून और लोहा बिल्कुल देवताओं की तरह पूजा जाने लगा है। कैसी दुनिया हो गई है यह? तुम लोग क्या ऐसे ही लगुलुहानी दुनिया रचना चाहती थी।' धर्म के नाम पर लड़कर हासिल किए पाकिस्तान की हालत पर उससे भिन्न नहीं, जहाँ तानाशाही ही अक्सर चलती आई है।

धर्म हमेशा राजनीतिक मोहरा ही रहा। राजनीतिक गतिविधियाँ देश के धर्मनिरपेक्ष मूल्यों को लुप्त कर रहा है। राजनीतिक और सांप्रदायिक शक्तियों के गढ़-जोड़ ने राष्ट्र में फासीवाद की समस्या को खड़ा कर दिया है। जनतांत्रिक देश को फासीवादी देश में तब्दील किया जा रहा है। इस विभीषण से मुक्त होने के लिए राष्ट्र वैकल्पिक रास्ते को तलाशते हैं। ऐसे माहौल में दादू गांधी के धार्मिक दृष्टिकोण को राष्ट्र के सम्मुख रखता है। दादू प्राइम मिनिस्टर को चिट्ठी लिखता है कि 'मिस्टर प्राइम मिनिस्टर अभी बताना है कि अंधेरा एक बार फिर चारों तरफ से बढ़ रहे हैं। एक टुकड़ा मेरे घर की मुंडेरों तक भी आया। प्रात् तौ डर गई बिलकुल मुझसे चिपकर पूछने लगी- अब क्या होगा? सन 1947 में मैंने भी ऐसे भय से काँपते हुए पूछा था अब क्या होगा? अपनी पीड़ा भरी आँखों से देखते हुए बापू ने कहा था अपने अंदर की लौ को और तेज करो। मैं तब से यही करता आ रहा हूँ। जब कभी अंधेरे बढ़ाते हैं अपने अंदर की लौ को बढ़ा लेता हूँ। जीवन की मोमबती दोनों सिरे से जलाकर। एक बार फिर वही अंधेरे हैं, बहुत रोशनी भी नहीं रह गयी है। पर आप जानते हैं प्राइम मिनिस्टर कि इतिहास में अंधेरे ने कभी किसी लौ को जय नहीं किया है। आप पर यह सिद्ध करने का दायित्व आ गया है।' दादू गांधी के धार्मिक दृष्टिकोण को अपनाते हुए स्वयं को हमेशा सांप्रदायिक भावना से मुक्त रखा साथ ही देश को भी इसी दृष्टिकोण को अपनाने का आहवान देता है।

वैश्वीकरण की प्रक्रिया के साथ देश सामना करनेवाली समस्या सांप्रदायिकता और सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का है। उपनिवेशी दौर से चली आ रही इस समस्या का विकराल रूप वर्तमान समय में दिखाई देते है। भारत की संस्कृति के ऊपर धर्म सापेक्ष संस्कृति हावी हो रही है। उसका नतीजा यह निकल रहा है कि बहुलतावादी समाज में लोकतांत्रिक व्यवस्था खतरे में पड़ गयी है और देश फासीवादी राष्ट्र में तब्दील हो रहा है। ऐसे माहौल में 'वे वहाँ कैद है' उपन्यास इस समस्या को गंभीरता से उजागर करता है। प्रियंवद गांधी के धर्म संबंधी दृष्टिकोण को दादू के माध्यम से अपनाते हुए इतिहास को नई सिरे से देखने की बात करता है। इस समस्या से मुक्ति के औजार के रूप में गांधी के धार्मिक दृष्टिकोण को राष्ट्र के सम्मुख रखता है। इसके जरिए सांप्रदायिकता और सांस्कृति राष्ट्रवाद का प्रतिरोध कर धर्मनिरपेक्षता के मूल्यों को बरकरार रखने का प्रयास उपन्यास करता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूचि

1. प्रियंवद, वे वहाँ कैद हैं, नेशनल पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
2. भीष्म साहनी, 2003 आज के अतीत, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
3. राजाराम भादू, 2003, धर्मसत्ता और प्रतिरोध की संस्कृति, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
4. शंभूनाथ, 2000 संस्कृति की उत्तरकथा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
5. R Nanda, 1995, Mahathma Gandhi 125 years, New age international publishers, New Delhi

असो.प्रोफेसर, हिंदी विभाग, पय्यन्नूर कॉलेज
एडाट.पी.ओ, पय्यन्नूर, कण्णूर-670327

अस्तित्व की तलाश के आइने में 'कुलभूषण का नाम दर्ज कीजिए' उपन्यास

मिनी.एन

समकालीन हिंदी साहित्य के महत्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं अलका सरावगी। इनकी पहला उपन्यास 'कलिकथा-वाया बईपास' साहित्य जगत में काफी चर्चित। अलका जी द्वारा रचित एक और महत्वपूर्ण उपन्यास है' कुलभूषण का नाम दर्ज कीजिए'। इस उपन्यास का पहला संस्करण 2020 में वाणी प्रकाशन से हुआ।

विभाजन पर आधारित 'कुलभूषण का नाम दर्ज कीजिए' उपन्यास में विभाजन का क्षेत्र भारत और बांग्लादेश है। इसमें मुख्य पात्र के रूप में आते हैं कुलभूषण और श्यामा धोबी। कुलभूषण एक पत्रकार को साक्षात्कार देते हुए अपनी बीती हुई जिंदगी को याद करता है। इन यादों के ज़रिए यानी पत्रकार को प्रदत्त जवाबो की ज़रिए उपन्यास आगे बढ़ता है।

उपन्यास का कथा-परिवेश हैं पूर्वी पाकिस्तान की कुष्टिया। वहाँ कुलभूषण जैन अपने परिवार के साथ रहता है। वहाँ पिता का अच्च्छा खासा कारोबार भी है। एक नामी मारवाड़ी जैनी परिवार है कुलभूषण का। परिवार में माँ-बाप और दो भाई भी है एक बहन भी है। जो अपने रूप सौंदर्य के कारण 'बड़े घर की बहू' बन गई। परिवार के सबसे छोटा है कुलभूषण। ज्यादातर लोग उन्हें भूषण बाबू कहते हैं। कुलभूषण उसके सारे भाई बहनों से अलग था, क्योंकि उसका रंग मटमैला था, एकदम काला कलूटा है। इसलिए परिवार में अलग तथा कभी कभी अकेला। किशोरावस्था में उसको अकेलापन महसूस होने लगी। उसी समय उसकी मुलाकात श्यामा धोबी से हुई। श्यामा धोबी उन दिनों अपने बाप के साथ कुलभूषण के घर में धोने के कपड़े लेने आने लगा था। वे लोग भी पाकिस्तान की कुष्टिया में रहते थे। उपन्यास में कहा गया है कि श्यामा इतना बदसूरत व्यक्ति है उतना हंसमुख भी है। उन्होंने ही कुलभूषण को 'भूलने के बटन' के बारे में बताया था। यह 'भूलने के बटन' के कारण कुलभूषण अपने सारी दुखों को, अनेक कष्टताओं को भूलकर जिंदगी में आगे बढ़ता है।

भारत विभाजन के बाद पूर्वी पाकिस्तान में धार्मिक भेदभाव उत्पन्न हुआ। बंगाली हिंदू-मुसलमान के बीच कोई भेदभाव न था, फिर भी पश्चिमी पाकिस्तान से आए मुसलमान और सरकारी अफसर वहाँ के हिन्दुओं के कान फूँककर दंगे को भडका देते थे। इस कारण से हिंदू भयभीत हुए। कई रईस हिंदू परिवार पूर्वी पाकिस्तान से चुपके चुपके पलायन कर कलकत्ता में आकर बस गए थे। कुलभूषण के पिता संपत्ति मोह के कारण कुष्टिया छोड़ने के लिए तैयार नहीं थे। कुलभूषण के दोनों भाई पहले कलकत्ता आकर रहने लगे थे। इसीलिए दंगे के डर से कुलभूषण और उनकी माँ को कलकता की ढकापट्टी में भेज दिया, जहाँ उनके भाईं रहते हैं। पहले से कुलभूषण और भाई के साथ लगाव नहीं था, उसी तरह हर बार उसे

चोरी का इल्जाम सहना पड़ता है। भाभी के हार चुराने की इल्जाम लगाते वक्त कुलभूषण घर छोड़ देता है, दंडकारण्य तक ले जाती है।

फिर एक तलाश अनिल मुखर्जी के लिए। जिन्होंने पूर्वी पाकिस्तान से दंगे के कारण भागकर आ बसे। अनिल मुखर्जी की तलाश कुलभूषण को रेलवे स्टेशन तथा वहाँ से पूर्वी पाकिस्तान में हुए दंगों से जान बचाकर आई हिंदुओं के रेफ्यूजी कैम्प तक ले जाती हैं। रेलवे स्टेशन से कैम्प तक की यात्रा विभाजन की त्रासदी का दस्तावेज़ है। "पूरे रास्ते सुनी हुई कहानियों से निकलकर लूटपाट करते लोग, आग की लपटों से बचकर भागते लोग, पेट में छूरा मारने से खून के फव्वारे छोड़ते लोग, बलात्कार की जातियाँ औरतें, उठाकर ले गयी लड़कियाँ और औरतें, मारकर नदी में फेंके गए बच्चों ने कुलभूषण के दिल और दिमाग को सुन्न कर दिया था।" (पृ-139) कुलभूषण अनिल मुखर्जी का पलायन का कारण उनके बेटा श्रीकांत से सुनता है। अनिल मुखर्जी तया उनका परिवार सांप्रदायिक दंगों का शिकार हो गया। उनकी बेटी और भतीजी बलात्कार का शिकार हो गई। इससे अनिल मुखर्जी की चौदह साल की बेटी अपना मानसिक संतुलन खो बैठती है।

अगला मुख्य पात्र हैं रमाकांत। जो पूर्वी पाकिस्तान से जान बचाकर परिवार के साथ भागकर आया था। भागने के कारण रमाकांत के शब्दों में इस तरह है- "मेरी बीवी की इज्जत बचाने के लिए। मेरे दुर्भाग्य से वह बहुत सुन्दर थी। पाँच साल पहले अयूब खान का मिलिट्री शासन आने के बाद पाकिस्तान में रहते उसे बचाना संभव नहीं था। दो बार मेरे पड़ोसी ने, जो 'ईस्ट बंगाल रेजिमेंट' में काम करता था, मेरे घर पर हमला करवाया। उसके बाद में रातोंरात निकल गया। वरना मेरी बीवी की इज्जत तो जाती ही। दोनों बच्चे अनाथ हो जाते।" (144)

रमाकांत ने अपनी पत्नी को बचाने के लिए पूर्वी पाकिस्तान छोड़ दिया लेकिन आज उनकी बेटी को मिलिटरी लोग बुरी नज़र से देखते हैं। शिक्षा पाने के समय कैंप में बच्चे ने भीख मांगकर रहे थे। कभी कभी ऐसा लगता है कैंप के जीवन से अच्छा है पूर्व पाकिस्तान में मरना।

'श्यामा धोबी रिक्शा वाला' और 'यह कोई रूपकथा नहीं: मार्च 1971' जैसे उपन्यास के दो अध्याय श्यामा धोबी की जीवनकथा है, साथ ही साथ पूर्वी पाकिस्तान को बांग्लादेश बन जाने के पहले की दर्द कहानी भी है। श्यामा जाति का धोबी होता है, रिक्शा चलाती हैं। एक विधवा मुस्लिम औरत अमला पत्नी और बेटी थी मल्ली।

भारत विभाजन के बाद पाकिस्तान के दो भाग यानी पश्चिमी पाकिस्तान और पूर्वी पाकिस्तान के बीच एक अलगाव था। पाकिस्तान के अफसर और नेता लोग बंगाली मुसलमानों को नजरअंदाज कर रहे थे, उसे दबा कर रखते थे। इसका परिणाम था मुक्तिबाहिनी नामक संगठन। इस संगठन के जरिए बंगाल मुसलमान की मांग था पाकिस्तान मुक्त बांग्लादेश इससे क्षुब्ध होकर पाकिस्तानी अफसरों ने पूर्वी पाकिस्तान में सुबह सुबह कर्फ्यू लगा दिया। "इन लोगों को एकदम बेरहमी से अधिक-से-अधिक बंगालियों को मारने और अधिक से अधिक बंगाली औरतों का बलात्कार काने का ऑर्डर है ताकि बाकी सारे लोग डरकर सहम जाये। ढाका में इन्होंने एक रात में हजारों निहत्थे लोगों को गोली मारी। किसी को नहीं छोड़ा- बच्चा, बूढ़ा औरत जो सामने दिखा, उसे मारते गये। ढाका के आकाश पर चील, कौए और गिद्ध मंडरा रहे हैं। लाशों से सड़कें पटी हुई हैं" (पृ-174) विभाजन से उत्पन्न सांप्रदायिक दंगे एक जाति और धर्मों पर केंद्रित नहीं है। विभाजन साम्प्रदायिकता की आग में तेल की तरह है। "सारी बस्ती जलाकर राख कर दी उन लोगों ने। जो जवान आदमी मिला, उसे गोली मार दी और जिसे नहीं मारा, उसे पूछताछ के लिए उठाकर ले गई। हमारे इलाके से सारे जवान औरतों को उठाकर ले गये। किसी को नहीं छोड़ा दरिंदों ने। हमने पाकिस्तान का झंडा बस्ती पर फहराया पर उससे कोई फर्क नहीं पड़ा। कौन-कौन मुक्तयोद्धा है यहाँ पूछते रहें और गोली मारते रहे। हिन्दू मुसलमान किसी को नहीं छोड़ा।" (पृ-182) विभाजन से करोड़ों की जिंदगी बर्बाद हो गयी। स्त्रियाँ विभाजन त्रासदी के अधिकतर शिकार हैं। इस उपन्यास में भी विभाजन के दौरान स्त्री शोषण बहुत ही बारीकी से व्यक्त किया वे लोग बंगालियों की नस्ल को खत्म करना चाहते हैं। इसलिए सब जवान औरतों को उठा कर ले जा रहे हैं। सारी जवान बंगाली औरतों को ट्रक में भेड़ बकरियों की तरह भरकर कैम्प में ले गये हैं। पाकिस्तान मिलिटरी के सामने बच्चे-बूढ़े, गरीब-अमीर, हिंदू-मुसलमान में कोई फर्क नहीं थे। वे लोग ज्यादा से ज्यादा लोगों को मार देना चाहते हैं ताकि बाकी सारे लोगों की हिम्मत टूट जाए। इसके लिए पाकिस्तान मिलिटरी एक रात में हजारों निहत्थे लोगों को गोली मार पूर्व पाकिस्तान के अनेक स्त्रियों के साथ श्यामा की पत्नी अमला भी पाकिस्तानी मिलटेड की बर्बरता का शिकार हो जाती है। श्यामा सब के मना करने के बावजूद अमला को छुड़ाने के लिए गया। अंत मे श्यामा और अमला ने एक साथ मृत्यु को स्वीकार किया।

उपन्यास विभाजन के साथ-साथ कुलभूषण के अस्तित्व की तलाश की कहानी भी है। यहाँ कुलभूषण नामी जैनी परिवार का हिस्सा है। लेकिन अपनी ज़िंदगी को आगे बढ़ाने के लिए 'भूषण बाबू' को बस कंडक्टरी करनी पड़ी, 'गोपालचंद्र दास' का किरदार भी जीना पड़ा। कुलभूषण को ये सब जिंदगी को आगे बढ़ानेवाली बात है लेकिन परिवारवालों के लिए ऐसा नहीं था। इसलिए भूषण बड़े भाई के घर में 'सुपरवाइज़र का काम करता है। अब वे तो नौकर नहीं, परिवार का अंग है लेकिन घर का सारा काम तो करना पड़ता है। इसलिए वह सारा काम देते वक्त दो बार कहता है- 'क्यों नहीं करेंगे? क्योंकि एक बार काम सौंपनेवालो के लिए, दूसरी बार अपनी आप के लिए। परिवार से उन्हें इज्जत नहीं मिली। कुलभूषण के नाम में 'कुल' है, फिर भी परिवार वालों के बीच वह आवारा, घोर यह सब है। वह जिंदगी में यहाँ वहाँ भटकता रहा। अपने आप में कोई नहीं। अस्तित्व की तलाश उनकी समस्या है।

इस तरह देखा जा सकता है कि उपन्यास विभाजन पर आधारित है। फिर भी समकालीन सहित्य का विभिन्न पहलु इसमें देखा जा सकता है। 'भूलने की बटन' के जरिए लेखिका ये भी सूचित करना चाहती है भूलने के बटन होने पर सभी को 'सब' भुलाया नहीं जा सकता है। फिर भी हर व्यक्ति जिंदा रखने के लिए, सिर्फ आगे बढ़ने के लिए सारी भयावह घटनाओं को, दर्दनाक अनुभवों को, दुःखों को, मन में दबा कर आगे बढ़ रही है-कुलभूषण की तरह। कुलभूषण, श्यामा आदि पात्रों के साथ साथ रीमा, अमला, प्रशांत, विनायक, मल्ली, गोबिंदो जैसे अनेक व्यक्तित्व उपन्यास की ख्याति बढ़ाते हैं। सचमुच 'कुलभूषण का नाम दर्ज कीजिए' उपन्यास समाज के हर पहलुओं पर स्पर्श करने वाला महत्वपूर्ण रचना है।

आधार/सहायक

कुलभूषण का नाम दर्ज कीजिए-अलका सरावगी, वाणी प्रकाशन, प्र.सं-2020

राजकीय महिला महाविद्यालय
त्रिवेंद्रम, केरल

'साहित्य राष्ट्र और युग का प्रतिनिधि तथा निर्माता है'

- भगवतीचरण वर्मा

वैवाहिक संबंधों का विघटन सन्दर्भ - मन्नू भण्डारी के उपन्यास

ममता देवी

सारांश

भारतीय समाज में परिवार महत्वपूर्ण इकाई है और परिवार की आधारशिला होते हैं वैवाहिक संबंध। परंपरा अनुसार पति-पत्नी संबंध को भारतीय संस्कृति में जन्म-जन्माँतर का संबंध माना जाता है किन्तु वर्तमान परिवेश में दाम्पत्य जीवन की यह अवधारणा निरर्थक साबित हो रही है। जिसके कई कारण हैं। भारतीय परिवारों में स्त्री प्राचीन समय से गृहिणी के रूप में रहते हुए पति की सत्ता तथा अधिकारों के अधीन रही है। परन्तु वर्तमान की परिवर्तित परिस्थितियों में शिक्षा प्राप्त कर स्त्री अपने अधिकारों के प्रति सजग हुई है। आर्थिक आत्मनिर्भरता प्राप्त कर वह स्वयं को पुरुष के बराबर समझती है तथा वैवाहिक जीवन में पति के अन्याय का विरोध करती है। रूढ़िवादी मानसिकता का पुरुष इसे सहन नही कर पाता जिससे वैवाहिक जीवन में तनाव और मनमुटाव आरंभ हो जाता है। अहं भावना, मतैक्य का अभाव, अनैतिक संबंध, विश्वास जैसे कारणों से वैवाहिक संबंध विघटन की भेंट चढ़ रहे हैं। इन संबंधों के विघटन से परिवार नामक संस्था की नींव हिल रही है जो समाज के लिए हितकारी नहीं है। हिन्दी साहित्य जगत की महत्वपूर्ण लेखिका मन्नू भण्डारी ने मध्यवर्गीय परिवेश में व्याप्त विसंगतियों तथा जटिलताओं को अपने उपन्यासों में बखूबी उकेरते हुए वैवाहिक संबंधों के विघटन को भी बड़ी गहराई से उजागर किया है। वे अपने पात्रों के माध्यम से दाम्पत्य जीवन में विघटन उत्पन्न करने वाले सभी कारकों को उनके परिणामों सहित चित्रित करने में सफल रही है।

बीज शब्द - वैवाहिक संबंध, विघटन, दाम्पत्य, पति-पत्नी, मन्नू भण्डारी, उपन्यास

प्रस्तावना

स्त्री और पुरुष समाज के आधारभूत स्तंभ है। इनके सम्मिलन से ही सृष्टि का विकास संभव है। इन दोनों में परस्पर यौन आकर्षण एक नैसर्गिक भावना है। इनकी इसी भावना को नियंत्रित करने के लिए विवाह संस्था का निर्माण हुआ। विवाह द्वारा ही स्त्री-पुरुष को दाम्पत्य जीवन में प्रवेश करने की सामाजिक स्वीकृति मिलती है। वैवाहिक संबंधों के द्वारा सन्तानोत्पत्ति से परिवार का निर्माण होता है और यही परिवार समाज की आधारभूत इकाई बनता है। वर्तमान समय विशृंखलता तथा विघटन का समय है। परिवर्तित होती स्थितियों के व्यापक प्रभाव के परिणामस्वरूप भारतीय परिवार विघटन की भेंट चढ़ रहे हैं। स्त्री-पुरुष के वैवाहिक संबंध भी इस विघटन से अछूते नहीं हैं। इसी कारण वैवाहिक संबंध विच्छेद एक सामान्य बात हो गई है।

वैवाहिक संबंधों के बिखरने की व्यथा स्वतत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य में प्रमुख रूप से चित्रित हुई है। मधुरेश का कथन है - "स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कथा-साहित्य की एक विशेष उपलब्धि जो काफी हद तक उसके पूर्ववर्ती रूप से उसे अलगाती भी है, स्त्री-पुरुष संबन्धों को बड़ी गहराई और बेबाकी से विष्लेषित करना रही है। संबंधों के इस विष्लेषण में संबंधों का विघटन भी शामिल रहा है और इसलिए पति-पत्नी के बीच संबंध-विच्छेद को आधार बनाकर काफी कुछ लिखा गया।"[1] मन्नू भण्डारी 'नई कहानी' आंदोलन की प्रमुख रचनाकार रही हैं जिन्होंने साहित्य की लगभग सभी विधाओं पर लेखनी चलाकर अपनी बहुमुखी प्रतिभा का परिचय दिया है। उन्होंने अपने उपन्यास 'अपना बंटी' तथा राजेन्द्र यादव के साथ सह-लेखन में लिखे गए उपन्यास 'एक इंच मुस्कान' में वैवहिक संबंधों के विघटन, इसके पीछे के कारण, प्रभाव तथा सामाजिक संबंधों की जटिल संरचनाओं को बड़े प्रभावशाली ढंग से उकेरा है।

वर्तमान परिवेश में मनुष्य की आत्म केन्द्रिता ने उसके अहं को बढ़ावा दिया है। लगभग हर व्यक्ति स्वयं को दूसरे से श्रेष्ठ सिद्ध करने में लगा हुआ है। पति-पत्नी के संबंधों में अहं भावना नाकरात्मक प्रभाव डालती है। परंपरागत रूप से वैवहिक जीवन में पुरुष का अहं ही हावी रहता आया है। किन्तु आज स्त्री शिक्षा प्राप्त कर आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होकर अपने स्वतंत्र व्यक्तित्त्व का निर्माण कर रही है। वह वैवाहिक जीवन में अपने स्वतंत्र निर्णय ले रही है। जिससे परंपरावादी तथा रूढ़िवादी पुरुष की अहं भावना विचलित होती है क्योंकि अपने अहं की संतुष्टि के लिए वह चाहता है कि स्त्री उसके अधीन रहे। इस पर डॉ. हरबंश कौर कहती है कि "पुरुष वर्ग अपने अहं-भाव के कारण नारी को पराधीन बनाकर अपने अहं की तुष्टि करना चाहता है।"[2] इस अहं भावना के कारण पति-पत्नी के संबंधों में बिखराव आ रहा है।

मन्नू भण्डारी ने पति-पत्नी के मध्य अहं की टकराहट को अपने उपन्यास 'अपना बंटी' में बखूबी दर्शाया है। उपन्यास में पति अजय किसी सरकारी विभाग में क्षेत्रीय प्रबंधक और पत्नी शकुन कॉलेज की प्रिंसिपल है। उनकी एक संतान बंटी है। शकुन एक स्वतंत्र व्यक्तित्व की महिला है जिसे अजय का पुरुष अहं स्वीकार नहीं करता। इस कारण उनके संबंध तनावपूर्ण रहते हैं। अजय की अहंवादी मानसिकता वकील चाचा के इस कथन से उजागर होती हैं - "तुम जानती हो, अजय बहुत इगोइस्ट भी है और बहुत पजेसिव भी। अपने-आपको पूरी तरह समाप्त करके ही तुम उसे पा सको तो पा सको, अपने को बचाए रखकर तो उसे खोना ही पड़ेगा।"[3] हमारे समाज में विवाहित स्त्री से यही उपेक्षा की जाती है कि वह अपने व्यक्तित्त्व को पति के व्यक्तित्त्व में विलीन कर दे।

पढ़ी-लिखी, सुशिक्षित शकुन अपने वैवाहिक जीवन में परंपरागत पति-पत्नी संबंधों की बजाय आधुनिक मूल्यों और जीवन पद्धति को आत्मसात् करते हुए पति के साथ मैत्रीपूर्ण संबंध रखना चाहती है। लेकिन रूढ़िवादी मानसिकता से ग्रस्त अजय इसे स्वीकार नहीं करता और हमेशा शकुन को ही गलत ठहराता रहता है - "सारी ज़िंदगी शकुन को, शकुन के हर काम

को, उसके सोचने और रवैये को गलत ही सिद्ध करता रहा है। शकुन बहुत स्वतंत्र है। शकुन बहुत डॉमिनेटिंग है, शकुन यह है, शकुन वह है ..."[4] पत्नी का स्वतंत्र रवैया पति को अपने स्वामित्व में हस्तक्षेप लगता है। आधुनिकता तथा नए विचारों का आवरण पहने परंपरागत रूढ़ियों से ग्रस्त पति अपनी पत्नी की स्वतंत्रता, आत्मनिर्भरता को सहन नहीं कर पाता है। उनका दाम्पत्य संबंध तनावग्रस्त होकर विघटन की ओर बढ़ने लगता है।

वैवाहिक जीवन में पति-पत्नी को एक-दूसरे का सहयोग करते हुए अपने साथी के व्यक्तित्व विकास में सहायता करनी चाहिए। लेकिन जब उनके संबंधों में तनाव, अलगाव घर कर जाता है तो वे एक-दूसरे के प्रतिद्वंद्वी बन जाते हैं। अपने अहं में आकर वे एक-दूसरे को अपमानित करने की प्रतिस्पर्धा में जुट जाते हैं। विष्णुकांत शास्त्री के अनुसार - "पति-पत्नी जब एक-दूसरे के पूरक होने के बदले एक-दूसरे को प्रतिस्पर्धी के रूप में ग्रहण करें तो परिवार कैसे चल सकता है।"[5] 'आपका बंटी' में पति अजय के पुरुषवादी अहं के चलते उच्च शिक्षित, आत्मनिर्भर शकुन में भी अहं जागृत हो जाता है और वह हमेशा स्वयं को श्रेष्ठ साबित करने में लगी रहती है - "सात वर्षों में विभागाध्यक्ष से प्रिंसिपल हो जाने के पीछे कहीं अपने को बढ़ाने से ज्यादा अजय को गिराने की आकांक्षा थी।"[6] पति-पत्नी में ऐसी प्रतिस्पर्धा तथा द्वेष की भावना उनके वैवाहिक संबंध के लिए घातक सिद्ध होती है। अपने परस्पर अहं के कारण वे एक-दूसरे को कष्ट पहुँचाने के लिए तत्पर रहते हैं। कोई भी अपने संबंध को बचाने के लिए झुकना नही चाहता -"समझौते का प्रयत्न भी दोनां में एक अंडरस्टैंडिग पैदा करने की इच्छा से नहीं होता था, वरन् एक-दूसरे को पराजित करके अपने अनुकूल बना लेने की आकांक्षा से।"[7] उनकी यह अहंवादी आकांक्षा उनके दाम्पत्य जीवन को विषाक्त कर देती है। उनका वैवाहिक जीवन उनके अहं की भेंट चढ़ जाता है। दोनों संबंध विच्छेद कर लेते हैं जिसका सबसे अधिक कुप्रभाव उनके बेटे बंटी पर पड़ता है। वर्तमान समय में दम्पति अपने-अपने अहं की टकराहट में अपनी भावी पीढ़ी के हितों को भी नजरांदाज कर रहे हैं।

पति-पत्नी का एक-दूसरे के प्रति पूर्ण समर्पण, एकनिष्ठा ही उनके वैवाहिक जीवन की खुशहाली का आधार है, डॉ. नीलम गुप्ता के अनुसार - "संस्कारों से पति-पत्नी एक-दूसरे पर एकाधिकार चाहते हैं। जहाँ-कहीं इस एकाधिकार में खरोंच आती है, स्थिति विस्फोटक हो उठती है।"[8] विवाहोपरान्त दोनों में से कोई भी किसी तीसरे व्यक्ति के प्रति आकर्षण रखता है तो यह उनके दाम्पत्य सबंधों के लिए विघटनकारी साबित होता है। अब तक हमारे पितृसत्तात्मक समाज में पुरुष पत्नी के अतिरिक्त अन्य स्त्रियों से संबंध रखते रहे हैं। जिसका पति पर आश्रित पत्नी चाहकर भी विरोध नहीं कर पाती थी। परन्तु वर्तमान युग में शिक्षित आत्मनिर्भर स्त्री अपने स्वाभिमान के प्रति सचेत हुई है। वह अपने वैवाहिक जीवन में तीसरे का हस्तक्षेप बर्दाश्त नहीं करती। ऐसी परिस्थिति में पति-पत्नी संबंध में तनाव, घुटन, संत्रास उत्पन्न हो जाता है और उनके संबंध विघटित होते-होते पूर्णतः विच्छेद हो जाते हैं।

'एक इंच मुस्कान' उपन्यास में रंजना अपने परिजनों के विरुद्ध जाकर लेखक अमर से प्रेम विवाह करती है। लेकिन विवाह के कुछ समय पश्चात ही अमर अपनी पाठिका अमला के प्रति आकर्षित होने लगता है -"मैं उससे दूर रहता हूँ पर मन जैसे हमेशा उसी के साथ रहता है - लगता है, वह मेरे व्यक्तित्व का, मेरी आत्मा का अभिन्न अंग है।"[9] किसी अन्य स्त्री के प्रति पति की इतनी आत्मीयता को रंजना सहन नहीं कर पाती और वह इसका विरोध करती है -"तुम साफ-साफ क्यों नहीं कह देते कि तुम अमला से प्यार करने लगे हो - इसलिए अब मैं तुम्हें अच्छी नहीं लगती ... यह घर अच्छा नहीं लगता, कुछ भी अच्छा नहीं लगता?"[10] अमर पत्नी के विरोध के बावजूद अमला से मिलना जुलना जारी रखता है। इससे पूर्ण रूप से पति को समर्पित रंजना का हृदय आहत होता है और उनके वैवाहिक जीवन में दूरियाँ आने लगती हैं - "मैं क्या समझती नहीं हूँ अमर ... दोनो के बीच की दीवार तुम दोनो का दुःख एक ही है और वह शायद मैं। मुझे तोड़ क्यों नहीं फेंकते अमर?"[11] वह अपने वैवाहिक जीवन में अमला की उपस्थिति स्वीकार नहीं करती। उनके संबंध में तनाव घुटन उत्पन्न हो जाती है। शिक्षित आत्मनिर्भर रंजना दूसरे शहर में नौकरी प्राप्त कर पति को हमेशा के लिए छोड़कर चली जाती है। वैवाहिक जीवन में तीसरे व्यक्ति की उपस्थिति पति-पत्नी के मध्य ऐसी दूरियाँ उत्पन्न करती हैं जो संबंध के विघटन का कारण बनती है।

निष्कर्ष - अतः मन्नू भण्डारी ने अपने उपन्यासों में दाम्पत्य जीवन के विघटन के कारकों को दर्शाते हुए पाठकों को इसके कुप्रभाव के प्रति सचेत किया है। पति-पत्नी के स्वस्थ संबंधों पर ही भावी पीढ़ी का विकास टिका हुआ होता है। इस कारण उन्हें आपसी सामंजस्य बनाते हुए अपने वैवाहिक जीवन को सफल बनाने का प्रयास करना चाहिए।

संदर्भ सूची

1. (सं.) अरोड़ा, सुधा, मन्नू भण्डारीः सृजन के शिखर, नई दिल्लीः किताबघर प्रकाशन, 2012, पृ. 306
2. कौर, हरबंश (डॉ.), महिला लेखिकाओं के उपन्यासों में नारी, कानपुरः विद्या प्रकाशन, 2010, पृ. 293
3. भण्डारी, मन्नू, आपका बंटी, दिल्लीः राधा कृष्ण प्रकाशन, 2021, पृ. 115
4. वही, पृ. 112
5. (सं.) अरोड़ा, सुधा, मन्नू भण्डारीः सृजन के शिखर, नई दिल्लीः किताबघर प्रकाशन, 2012, पृ. 301
6. भण्डारी, मन्नू, आपका बंटी, दिल्लीः राधा कृष्ण प्रकाशन, 2021, पृ. 38
7. वही, पृ. 37
8. गुप्ता, नीलम (डॉ.), हिन्दी लेखिकाओं के उपन्यासों में सामाजिक तनाव, जम्मूः साहित्य संगम पब्लिकेषन, 1985, पृ. 38
9. भण्डारी, मन्नू और यादव, राजेन्द्र, एक इंच मुस्कान, दिल्लीः राजपाल एण्ड सन्ज, 1963, पृ. 242
10. वही, पृ. 198
11. वही, पृ. 200

शोधार्थी, हिन्दी विभाग
जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू - 180006

असम का लोकप्रिय त्यौहार "बिहू"

डॉ. संगीता कुमारी पासी / डॉ. माधुर्य पेगु

मौसम तथा ऋतुओं के परिवर्तन से मनुष्य के अन्तर्मन में भी निरन्तर परिवर्तन परिलक्षित होता है। यही कारण है कि भारत में अलग-अलग ऋतुओं को मद्देनजर रखते हुए भिन्न-भिन्न त्यौहार मनाये जाने की परम्परा सदियों से चलती आ रही है। हमारे देश के अलग-अलग भू-भागों में प्रकृति के फलस्वरूप त्यौहारों के स्वरूप में भी भिन्नता दृष्टिगत होती है। भारतवर्ष के उत्तर-पूर्वांचल में स्थित असम प्रदेश में निवास करने वाले लोगों को असमिया कहा जाता है। अनेकानेक भाषा-भाषी अथवा जनगोष्ठियों के लोग मिलकर ही असमिया जाति का निर्माण करते हैं। असम राज्य में अनेक त्यौहार बड़े धूम-धाम से मनाये जाते हैं। इन त्यौहारों में कुछ धर्ममूलक त्यौहार होते हैं तो कुछ धर्म निरपेक्ष। असम में मनाया जाने वाला ऐसा ही एक अनूठा त्यौहार है 'बिहू', जिसे धर्मनिरपेक्ष तथा सर्वात्मक रूप से मनाया जाता है। फसली त्यौहार होने के कारण 'बिहू' पूरे वर्ष में तीन फसलों के साथ जुड़ा हुआ होता है।

'बिहू' त्यौहार को 'असम का जातीय उत्सव' माना जाता है। आज के वैश्वीकरण के इस युग में हम सभी समय के साथ आगे बढ़ते हुए एक-दूसरे से आगे निकल जाना चाहते हैं, जिसके परिणामस्वरूप हम अपने रीति-रिवाज, सभ्यता-संस्कृति, संगीत-साहित्य, आचार-विचार, रहन-सहन से दूर होते हुए दूसरे देशों की सभ्यता-संस्कृति को अपना रहे हैं। आधुनिकीकरण के इस समय में इन विषयों पर उच्चस्तरीय चर्चा निःसंदेह एक संवेदनशील विषय है," 'बिहू' शब्द डिमासा लोगों की भाषा से लिया गया है, जो कि प्राचीन काल से ही एक कृषि समुदाय रहा है। उनके सर्वोच्च देवता ब्राई शिबराई या पिता शिबराई हैं। मौसम की पहली फसल को अपनी शांति और समृद्धि की कामना करते हुए ब्राई शिबराई के नाम पर अर्पित किया जाता है। 'बिहू' शब्द को 'विषुव' अर्थात् 'बिच्छू' शब्द से भी जुड़ा हुआ माना जाता है। यह पर्व मकर संक्रान्ति से आरंभ होता है, जब सूर्य पृथ्वी की मकर रेखा के सामने होता है। 'बिहू' मनाने का कारण चाहे जो भी हो, इतना तो सच है कि तीन अलग-अलग प्रकार की आर्थिक अवस्थाओं के अनुसार ही असम में तीन प्रकार से 'बिहू' मनाये जाते हैं।"[1]

असम प्रदेश को अच्छी तरह से जानने-पहचानने हेतु यहाँ के प्राकृतिक परिवेश, लोकसंस्कृति, लोकोत्सव को जानना अत्यन्त आवश्यक है। प्राकृतिक छटाओं से घिरा असम राज्य दर्शन के लिए शोभायमान होने के साथ-साथ, यह प्रदेश संस्कृति, कला एवं प्रेम-स्नेह में भी बहुत धनी है। सच्चे अर्थों में यदि असम प्रदेश को 'स्वप्नों का स्वर्ग' कहा जाए तो अतिश्योक्ति न होगी। भारतीय सभ्यता व संस्कृति में नववर्ष का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। देश के प्रायः सभी क्षेत्रों में नववर्ष बड़े ही धूम-धाम से हर्षोल्लास के साथ मनाया जाता है। लोकमंगल तथा लोकरंजन की भावना से मनाया जाने वाला त्यौहार 'बिहू' आज देश-दुनिया में सर्वत्र प्रसिद्ध है। 'बिहू' पर्व को सांस्कृतिक समन्वय एवं प्रेम का प्रतीक माना जाता है।

'बिहू' असम तथा असमिया जनमानस के हृदय का स्पंदन है। यह त्यौहार बैशाख महीने के आगमन से पहले असमवासियों के तन-मन को खुशी, उमंग, आनन्द और उल्लास से स्पंदित करने लगता है। 'बिहू' का प्रमुख आधार है कृषि। इसलिए इसे कृषि उत्सव कहा जाता है। असम में कृषियों में प्रमुख है धान की खेती। साल भर की प्रमुख खेती धान का मौसम शुरू होता है बैशाख महीने से। उसकी कटाई शुरू होती है कार्तिक महीने से तथा समेटने का अन्तिम समय है माघ की संक्रान्ति। असम पहले से ही कृषि प्रधान प्रदेश रहा है। अतः इसमें कोई सन्देह नहीं कि कृषि से जुड़े हुए उत्सव का महत्त्व सर्वोपरि होता है। 'बिहू' के अवसर पर खेत का शुभारंभ करना, गाय-बैलों को महत्त्व प्रदान करना, लहलहाते खेत में दीपक को जलाना तथा खेत की सफलता पर बंधु-बांधवों को खाना खिलाना, आनन्द-लूटना आदि इसकी प्रवृतियाँ हैं।"[2] इस आधार पर असम राज्य के लोकप्रिय उत्सव 'बिहू' को तीन भागों में बाँट सकते हैं-

(क) बहाग 'बिहू' या रंगाली 'बिहू' (ख) काति 'बिहू' या कंगाली 'बिहू' (ग) माघ 'बिहू' या भोगाली 'बिहू' (क) बहाग 'बिहू' या रंगाली 'बिहू' : असम प्रदेश का नववर्ष है बहाग या बैशाख 'बिहू'। यह त्यौहार विषुव संक्रान्ति के दिन बड़े हर्षोल्लास के साथ मनाया जाता है। चैत्र मास के आरम्भ होने के पहले से ही असमीया समाज के जनमानस बच्चे, बूढ़े, स्त्री-पुरुष रंगाली 'बिहू' की तैयारियों में जुट जाते हैं। यही वह समय है जब असमिया नववर्ष का शुभारंभ होता है। पेड़-पौधे नये पत्ते एवं फूलों से लद जाते हैं। चिडियाँ चहचहाने लगती हैं। चारों ओर खुशी, उल्लास, आनंद का वातावरण होता है। रंगाली का अर्थ है आनंदमय होना। रंगाली 'बिहू' का त्यौहार वसंत ऋतु के आगमन की खुशी को प्रकट करने हेतु मनाया जाता है। रंगाली 'बिहू' बैशाख महीने की पहली तारीख में प्रारम्भ होकर सात दिनों तक रहता है। खुशियों के त्यौहार रंगाली 'बिहू' को हर तबके के लोग मिलकर बड़े धूम-धाम से भव्यता के साथ मनाते हैं। वसन्त के आगमन से शस्य-श्यामला धरती विभिन्न रंग-बिरंगे फूलों से भर जाती है। कोयल कूहकने लगती हैं। जो मानों सबको निमंत्रण दे रही है कि उदासी छोड़कर रंगाली 'बिहू' मनाओं। चैत्र मास की संक्रान्ति के दिन से ही 'बिहू' त्यौहार आरम्भ हो जाता है, इस दिन को 'उरूका' कहा जाता है। रंगाली 'बिहू' के पहले दिन को गरु 'बिहू' अर्थात् गाय 'बिहू' कहा जाता है। गरु 'बिहू' यानि-गाय 'बिहू' के दिन गाय-बैलों की पूजा की जाती है। इस दिन गाय बैलों की सींग में सरसों का तेल और

उनके शरीर पर पीसी हुई उरद, हल्दी लगाकर दिघलती के डाल और पत्ते से सहला कर नदी, झील तथा तलाब में ले जाकर नहलाया जाता है। गाय-बैलों को नहला कर इन्हें कद्दू-बैंगन खिलाते तथा कद्दू-बैंगन की माला पहनाकर लड़के-युवक गाते हैं-

"कद्दू खा बैंगन खा, दिन-दिन बढ़ता जा,/माँ छोटा, बाप छोटा, तू बन मोटा-ताजा।"[3]

इस प्रकार गाय-बैलों की पूजा कर खेतों में चरने हेतु छोड़ दिया जाता है। शाम को गोशाले को साफ-सुथरा करके उन्हें नया पगहा पहनाया जाता हैं और बाद में धूप-धूना जलाये जाने का रिवाज है। गाय-बैलों को पहनाया जाने वाला पगहा घास और पत्ते से पारम्परिक रूप से निर्मित होता है। दूसरे दिन को 'मानुह' 'बिहू' अर्थात् आदमी 'बिहू' कहा जाता है। इस दिन लोग नहा-धोकर मंदिर में दीप जलाते हैं। गुरुजनों तथा बड़े जनों का आशीर्वाद लिया जाता है। उन्हें विभिन्न पीठा, चिवड़ा, दही, गुड़, लड्डू, मिठाई, पकवान आदि खाने-खिलाने का प्रचलन सदियों से चलता आ रहा है। परम्परा के अनुसार इस दिन माँ-बहनें अपने पिता-पुत्र तथा भाई को 'बिहूवान' (गमछा) भेट करती हैं। यह 'बिहू'वान आशीर्वाद और स्नेह का प्रतीक है। 'बिहू' के आरम्भ होते ही युवक-युवतियाँ मिलकर 'हुचरि' और 'बिहू' गाते और नृत्य करते दिखाई देते हैं। गाँव के प्रत्येक घर में 'हुचरि गीत' गाया जाता है साथ ही मैदान में, बडग़द पेड़ के नीचे और नदी के तट पर भी 'बिहू' गीत गाया और नाचा जाता है। आजकल असम प्रदेश के गाँवों तथा शहरों में 'बिहू' मंच का आयोजन किया जाता है। जहाँ 'बिहूनृत्य' और 'बिहूगीत' के साथ-साथ 'बिहू कोंवरी' और 'बिहूराणी' आदि प्रतियोगिताएँ भी आयोजित होती हैं। 'बिहू' का एक और आकर्षण, इस दिन होने वाली भैंसों की लड़ाई, हाथी की लड़ाई व मल्लयुद्ध की भी प्रतियोगिताएँ प्रमुख हैं।

(ख) काति 'बिहू' या कंगाली 'बिहू' : यह 'बिहू' का त्यौहार कार्तिक महीने में मनाया जाता है। असम प्रदेश के लोग आषाढ़-श्रावण के महीने में एक विशेष प्रकार का धान लगाते हैं जिसे 'शालि धान' के नाम से जाना जाता है। आश्विन-कार्तिक की संक्रान्ति में कीट-पतंगों से खेत की सुरक्षा के लिए खेत-खलिहानों (मैदान), 'भँरालघर' (धान रखने का भण्डार) और तुलसी के पौधें के नीचे दीया जलाकर अच्छी फसल की प्रार्थना करते हुए माँ लक्ष्मी की पूजा-अर्चना की जाती है। "कार्तिक महीने में असम में वर्षा होती रहती है, कभी-कभी बाढ़ से असम के गाँव के लोग तबाह हो जाते हैं। बरसात के इस मौसम में विविध कीट-पतंगों का जन्म होता है। आज किसानों के पास विविध कीटनाशक दवाएँ हैं, पर एक समय था जब असम के किसानों के पास ऐसा साधन नहीं था, जिससे फसलों की सुरक्षा कर सकें। इसलिए संभवतः यहाँ के लोग कीट-पतंगों को मारने-जलाने के लिए तुलसी के नीचे, खेत-खलिहान आदि में दीपक जलाते थे। इस प्रकार दीपक जलाकर कीट-पतंगों का विनाश करते थे। इस दीये में खेती के हानिकारक कीड़े-मकौड़े, पतंग आदि जलकर भस्म हो जाते हैं। यही काति (कार्तिक) बिहू कहलाता है।"[4] काति बिहू आते-आते लोगों के घर गरीबी आ जाती है। किसानों के अन्न के भण्डार खाली हो जाते हैं। इस बिहू के दिन किसी भी प्रकार के पकवान नहीं बनाये जाते हैं और न ही आनन्द मनाया जाता है। अभाव और गरीबी के कारण ही इस बिहू को 'कंगाली बिहू' भी कहा जाता है। 'कंगाली' शब्द का अर्थ 'कंगाल' होता है।

भारतीय समाज में सदियों से तुलसी का औषधि के रूप में महत्त्वपूर्ण प्रयोग होता आ रहा है। प्राचीन काल से हिन्दू सभ्यता-संस्कृति के लोग तुलसी की पूजा-अर्चना करते आ रहे हैं। "अपने आराध्य के प्रति भक्ति- निवेदन में एक साथ 'फूल तुलसी' का व्यवहार किया जाता है। काति बिहू के समय तुलसी-पूजा व्यवस्था प्रचलित है। बच्चे पौधे के चारों तरफ घूम-घूमकर गाते हैं -

"तुलसीर तले तले मृग पहु चरे/ताके देखि रामचन्द्रइ धनु शर धरे/रामे रखा फुल तुलसी लक्ष्मणे ढाले पानी/गोबर माटी दि ठाइ मचे सीता गोसानी।"[5]

काति बिहू में गाँव के लोग अपने प्रांगण में आकाशदीप जलाते हैं। उनका लोकविश्वास है कि इस दीप की रोशनी से मृतकों को स्वर्ग पहुँचने का रास्ता दिख जाता है। पूरे महीने तुलसी के नीचे दीया जलाया जाता है।

(ग) माघ 'बिहू' या भोगाली 'बिहू' : पौष संक्रान्ति के दिन असम प्रदेश में भोगाली बिहू मनाया जाता है। इस बिहू के पहले दिन को 'उरूका' कहा जाता है। इस दिन असमिया लोग नदी के तट अथवा किसी खाली मैदान में केले के सूखे पत्ते, धान के फूस आदि से एक अस्थायी घर का निर्माण करते हैं, जिसे 'भेला घर' कहा जाता है। वहीं सामूहिक रूप में सब मिलकर 'भोज' (खाना) खाते हैं। भेलाघर के समीप 'मेजी' बनायी जाती है। 'उरूका' के दूसरे दिन सुबह सब नहा-धोकर मेजी जलाते हुए माघ 'बिहू' का आरंभ करते हैं। सभी लोग मेजी के चारों ओर इकठा होकर अपनी मनोकामना की पूर्ति हेतु अग्नि में आहुतियाँ भी देते हैं। मेजी की राख को असमिया लोग खेत, फलों के पेड़ों में डालते हैं। उनकी पारम्परिक मान्यता है कि ऐसा करने से मिट्टी की उर्वरता शक्ति में वृद्धि होती है। माघ 'बिहू' के लिए विभिन्न प्रकार के पकवान एवं पिठाएं बनाई जाती है। पीठा असमिया जलपान का एक उपकरण है। 'बिहू' के अवसर पर भैंसा-युद्ध, अण्डा-युद्ध, बुलबुली (एक प्रजाति की चिडिय़ा) युद्ध, कश्ती, दौड़ इत्यादि अनेकोनेक खेल-कूद का आयोजन किया जाता है। माघ 'बिहू' में पीठा के साथ-साथ मीठा आलू अथवा लाल आलू या काठ आलू भी खाया जाता है। इस समय किसानों के भण्डार अन्न से परिपूर्ण रहते हैं। खाने-पीने की सारी सामग्री लोगों के घर मौजूद होती है। गरीबों को भी माघ बिहू में दो वक्त का खाना मिल ही जाता है। खाने-पीने की प्रमुखता होने

के कारण इस बिहू को 'भोगाली बिहू' के नाम से भी पुकारा जाता है।

निष्कर्ष : इस प्रकार असम प्रदेश का जातीय और लोकप्रिय त्यौहार बिहू बहुत ही पारम्परिक तौर-तरीके से मनाया जाता है। तीनों प्रकार के 'बिहू' का अपना एक सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक महत्त्व है। बिहू का पर्व असमवासियों की भावनाओं से जुड़ा हुआ है। यह त्यौहार असम की एकता-अखण्डता का प्रतीक है। बैशाख महीने में मनाये जाने वाला रंगाली बिहू सबसे प्रमुख है और लोगों के दिलादिमाग को रंगीन कर देता है। कृषि से संबंधित होने के कारण प्रकृति के साथ बिहू-त्यौहार का गहरा संबंध है। किसी परिवार के आंगन तथा खुले मैदान से बिहूनृत्य एवं हुँचरि आज नगर के मंच पर पहुँच गया है। यही कारण है कि आज बिहू त्यौहार के प्रति लोगों का दृष्टिकोण बदल गया है। शहरमुखी और व्यक्तिकेन्द्रित प्रवृत्ति के कारण बिहू के रंग-रूप में निरन्तर परिवर्तन हो रहा है। और आगे भी होता रहेगा। आज आधुनिकीकरण के इस युग में मूल परम्परा से अलग होकर बिहू त्यौहार को अपभ्रंश के रूप में मनाया जाता है। जिसका मूल कारण लोगों की मानसिक विकृति और मीडिया की बहुलता है। लोग बिहू को पहले धार्मिक दृष्टि से देखते थे, किन्तु अब इसने फैशन का रूप धारण कर लिया है। जो भविष्य में बिहू त्यौहार के भिन्न रूप में मनाये जाने की ओर इशारा करता है।

संदर्भ सूची :

1. शइकीया, क्षीरदा कुमार(सं). द्विभाषी राष्ट्रसेवक. असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति. गुवाहाटी - 781032, अंक : 1, 2, अप्रैल-मई, 2018, पृ. सं.03
2. सारस्वत, अपर्णा (सं). समन्वय पूर्वोत्तर. केन्द्रीय हिन्दी संस्थान. आगरा - 282005, अंक : 20 जुलाई-सितम्बर, 2013, पृ. सं.139-140
3. पूर्ववत्, पृ. सं.141
4. पूर्ववत्, पृ. सं.141-142
5. पूर्ववत्, पृ. सं.142

अतिथि अध्यापिका, हिन्दी विभाग,
रबीन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय
होजाई, असम, मो. 848613297

डॉ. माधुर्य पेगु
महात्मा गांधी विश्वविद्यालय, मेघालय
मो. 9101165117

कविता

अपनी बात

प्रो (डॉ) उमाकुमारी.जे

अपनी बात को ज़रा सोचकर कर लो
हर काम में ईश का पद नाप लो।
ज़िंदगी एक सार है बड़ा
हर पल बड़े ध्यान से चलना।
जाति-धर्म के भेदभाव बिना जीना है हमें
उच्च-नीच की सोच के बिना रहना है हमें
यह पुण्य देश है, यह धन्य जन्म है
पुण्य-पाप का फर्क सीखना फर्ज़ है हमारा
बनानी है सुन्दर पीढ़ी दुनिया में हमें
सुनानी है वीर कथाएँ बच्चों को हमें
सही राह पर ले चलो, उन्हें सही राह दिखा दो
कभी न जाओ गलत राह पर, यही सिखाओ बच्चो को
कोरा कागज़ जैसा दिल है, ध्यान से लिखो उसमें
भोले-भाले कोमल है बच्चे, अमृत भर लो दिल
सत्य-धर्म का मूल्य पढ़ाओ शक्ति बढ़ाओ बच्चों की
ज्ञान-धर्म का रास्ता खोलो धर्म-पथ पर ले चलो
महान पुरुष अनेक हैं यहाँ कथा सुनाओ उन्हीं की
पुराणों में बिखरी बातें, दिखा दो जल्दी ही।
काल हुआ है कला, उजाला लाना मुश्किल
तय करो, प्रण लो बच्चों की रहा लक्ष्य हमारा।
अपनी बात लो जो ज़रा सोचकर कर लो।

पूर्व डीन एवं अध्यक्षा
हिंदी विभाग
केरल विश्वविद्यालय

अशोक कुमार 'आस' का काव्य "रिश्ते एहसास के" : विभिन्न आयाम

इंदु रानी / डॉ. विनोद कुमार

भूमिका- कविता साहित्य की धड़कन है, साथ ही भावना और समसमायिक यथार्थ का दस्तावेज भी है। मानव की जीवन पद्धति में समाज का अधिक प्रभाव होता है। प्रत्येक कवि अपने समाज से प्रेरित होकर कविता करता है। कवि जिस समाज से, समाज की जिन वस्तुगत सच्चाईयों से रूबरू होता है, उसकी कविता में उन्हीं वस्तुगत सच्चाईयों की अभिव्यक्ति देखने को मिलती है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी कविता संबंधी अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखते है -"मनुष्य के लिए कविता इतनी प्रयोजनीय वस्तु है कि संसार की सभ्य-असभ्य सभी जातियों में, किसी न किसी रूप में पाई जाती है। चाहे इतिहास न हो, विज्ञान न हो, दर्शन न हो, पर कविता का प्रसार अवश्य रहेगा।"[1] कवि कोरी कल्पना में नहीं जीता। उसे यथार्थ से भी दो दो हाथ होना पड़ता है। कवि कल्पना और यथार्थ के ताने-बाने से अपने संवादों की आत्मा को शब्दों का लिबास पहनाकर पूरा करता है। अशोक कुमार 'आस' समकालीन संदर्भों से ऊब कर कविता की तरफ प्रवृत होते है। कवि 'आस' ने अपने काव्य संग्रह में जीवन और समाज के यथार्थ को कल्पना के सहारे नहीं, बल्कि स्वयं भोगे हुए जीवन की प्रमाणिकता के साथ प्रस्तुत किया है। कवि 'आस' अपने विचारों की अभिव्यक्ति बिना लाग- लपेट के प्रत्यक्षदर्शी की तरह दों टूक शब्दों में करते है। कवि 'आस' को अनुभव की प्रमाणिकता तथा समकालीन जीवन का चित्रण करना ही अभीष्ट रहा है। कवि अशोक कुमार 'आस' का काव्य संग्रह "रिश्ते एहसास के" एक ऐसी काव्य-कृति है जो वर्तमान समय के सामाजिक मूल्यों का किसी न किसी रूप में परीक्षण करती है। "रिश्ते एहसास के" काव्य संग्रह समाज में व्याप्त विभिन्न पक्षों का खट्टा-मीठा उदाहरण है।

बीज शब्द- रिश्ते, एहसास, आधुनिकता, मनोस्थिति, प्रतिस्पर्धा।

सारांश - अशोक कुमार 'आस' कृत "रिश्ते एहसास के" नाम से ही स्पष्ट होता है कि यह काव्य संग्रह एहसास की पगडंडियों पर चलकर समाज के विभिन्न पक्षों का चित्रण करते हुए अपनी यात्रा पूरी करता है। इस संग्रह में तेरह लंबी कविताएँ हैं। जो समाज के विभिन्न संदर्भों को चित्रित करती है। कवि 'आस' की कविता का आधार सामाजिक संदर्भ बनते है और उनकी कविता सामाजिक हलचलों और समाज के बुनियादी वर्गों से जुड़कर अपनी सार्थकता प्रमाणित करती है। कवि अशोक कुमार 'आस' आधुनिकता के लिबास को ओढ़कर जी रहे मनुष्य को आधार बनाकर काव्य संग्रह की रचना करते है। कवि कहते है, "लोगों ने जीना ही छोड़ दिया है। अब जी थोड़े ही रहे है... जीवन काट रहे हैं। कोई एहसास नहीं रहा। बस, दबाव में जीवन जीते जा रहे हैं और एक दिन इसी दबाव में संसार से विदा हो जाएंगे।"[2] इस संग्रह के माध्यम से कवि ने यह बताने का प्रयास किया है कि कैसे आधुनिकता के कारण मनुष्य की बदलती सोच, विचारधारा ने रिश्तों से एहसास ही खत्म कर दिए है। आज रिश्ते मानो नाम के रह गए है। रिश्तों में संवेदना खत्म हो गई है। आज रिश्तों में मिठास का स्थान खारेपन ने ले लिया है और नतीजन, रिश्तों में खालीपन आ गया है जिसके कारण आज हर घर में महाभारत हो रही है। जो हमारे वर्तमान और भविष्य के लिए खतरा बन रही है। "रिश्ते एहसास के" काव्य संग्रह पढ़ने पर लगेगा कि यह सब हमारे आस-पास ही घट रहा है। कवि भी उसी समाज में रहता है जहाँ हम रहते है। कवि उन्हीं घटनाओं को शब्दों में बांधता है जो हमारे आस-पास घट रही होती है। अशोक कुमार 'आस' का काव्य संग्रह भी इन्हीं घटनाओं के कारण अस्तित्व में आया है। "रिश्ते एहसास के" जैसा कि नाम से ही पता चलता है एहसास है तो रिश्ता है। बिना एहसास के रिश्ता सूखी नदी के समान होता है। नदी का जल सूखने के बाद उसमें रेत ही रेत रह जाती है, उसी प्रकार रिश्तों में भी एहसास रूपी जल खत्म हो जाने पर रिश्ते भी सूखे की वजह से मुरझा जाते हैं"।[3] 'रिश्ते एहसास के' काव्यसंग्रह में रिश्तों की तड़प है, जो सिर्फ चाहते है कि कोई हमसे प्यार के दो बोल दे। दो घड़ी हमारे पास बैठ जाए। आज वर्तमान समय में विडंबना देखिये, जिन्होंने हमें सब कुछ दिया, यहाँ तक पहुँचाया उनके लिए हमारे पास इतना भी समय नहीं कि हम दो पल उनके पास बैठकर उनकी बात सुन लें। आज परिस्थितियाँ यह है कि वर्तमान में हम उत्तर आधुनिकता ये भी अगले दौर में जी रहे हैं। हम चांद पर ज़रूर पहुँच गए परन्तु परम्परागत जीवन-मूल्यों को पीछे छोड़ते जा रहे है इसके परिणाम हम देख रहे है आज शादी कल तलाक के पेपर सबमिट। आज वर्तमान में मनुष्य में रिश्तों के प्रति एहसास, संवेदना खत्म होती जा रही है। जिसके कारण परिवार टूटते जा रहे है।

'धने सारे सपने' कविता विवाह के उपरांत एक पुत्र की मनोस्थिति का माता-पिता और पत्नी के त्रिकोण के बीच रहकर समाज-निर्माण की प्रक्रिया में स्त्री की भूमिका का वर्णन करती है- कि कैसे स्त्री ही स्त्री की दुश्मन बन जाती है। परिवार में सास अपना अधिकार खोना नहीं चाहती जिसके कारण परिवार टूटते आए हैं।

"प्रिये / तुम भी तो स्त्री हो / क्या सभी स्त्रियाँ / ऐसा ही सोचती है/अस्तित्व की पहचान के लिए/अपनी ही जाति से अंतर्द्वन्द्व"[4]

एक अन्य उदाहरण के माध्यम से कवि बताता है कि विवाह से पहले बेटे पर केवल माँ का अधिकार होता है। लेकिन विवाह के बाद अधिकार पाने वाले दो हो जाते है। जिस कारण सास और बहु में तकरार बढ़ती है और माँ अपना ममत्व भूलकर बहु पर शब्दों से प्रहार करती है।

"संसार में माँ ही/माँ की दुश्मन कैसे बन जाती है? / कहाँ खो जाता है उसका ममत्व/उसके भीतर से संवेदना कहाँ खत्म हो जाती ही।"[5]

'कितने भयानक शब्द' कविता में स्त्री- पुरुष की देह को महता को बताने का प्रयास किया है। जब तक देह है हमें कर्म करते रहना चाहिए, परिस्थितियों से हारकर अपनी देह से निजात पाने की कोशिश करना सृष्टि के निर्माण में हानी पहुँचाना है।

"प्रिय... / देह से मुक्तहोना.. / इतना आसान नहीं है /जितना तुम सोचती हो / देह चाहे स्त्री की हो या... पुरुष की / देह तो देह ही है / इतना ज़रूर है / दोनों का दर्शन अलग-अलग है / यही देह तो मंगलमय

सृष्टि का निर्माण करती है।"[6]

'रिश्ते एहसास के' का कथ्य आधुनिक स्त्री पर आधारित है जिसे अपनी पहचान के लिए स्वयं निर्णय लेने होंगे तभी तो वह सृष्टि में अपनी नई पहचान बना सकती है। नारी जाति देश की आधी आबादी है इसलिए नारी का सशक्त होना उसके अस्तित्व के साथ, समाज और संस्कृति के लिए भी महत्वपूर्ण है।

"तुम्हारी यात्रा के इक्कीस दिन / सामाजिक-सांस्कृतिक दृष्टि से भी /अहम और कारगार सिद्ध होंगे/ नारी सशक्त तो समाज मजबूत / समाज मजबूत तो / परंपराएँ- रीति-रिवाज मजबूत /नारी मजबूत तो संस्कृति मजबूत।"[6]

'माँ तो अमूमन' कविता के माध्यम से हर घर का यथार्थ बताया गया है जहाँ पुरुष चकी के दो पाटों में पिसता है, कभी बेटे के रूप में कभी पति के रूप में। ऐसी परिस्थिति में पुरुष को दोहरी भूमिका का निर्वाह करना पड़ता है। इस पीड़ा का एहसास सिर्फ वही पुरुष कर सकता है जो इस भूमिका का निर्वाह कर रहा होता है।

"माँ और सास के बीच/ प्रतिस्पर्धा लगी रहती है / दो योद्धाओ के मध्य /पिसता सिर्फ और सिर्फ/पुत्र ही है।"[7]

'सत्य अकाट्य है' कविता एकलव्य के माध्यम से आज वर्तमान में द्रोणाचार्य जैसे गुरु जो बिना शिक्षा दिए ही गुरु दक्षिणा माँग लेते है। ऐसे एहसास रहित गुरुओं की संकुचित सोच पर सवाल उठाती है।

"अनेक एकलव्यों को अपने अंगूठे देने पड़े है / द्रोणाचार्य जैसे एहसास रहित/ गुरु दक्षिणा लेने वाले/ गुरुओं के कारण / इतिहास कभी माफ नहीं करेगा।"[8]

'रिश्ते और रास्ते' कविता के माध्यम से विश्वास और अविश्वास की परिधि का निरूपण करने का प्रयास कवि ने किया है। कवि कहता है कि किसी भी रिश्ते को जीवित रखने के लिए उसमें विश्वास होना जरूरी है। रिश्तों में विश्वास का एहसास नहीं तो वह रिश्ता एक मोड़ पर आके टूटेगा ही, फिर वह रिश्ता चाहे माँ-बाप का हो, भाई-बहन का हो, पति-पत्नी का हो। कोई भी रिश्ता बिना विश्वास के नहीं टिक सकता।

"रिश्तों से विश्वास टूटा / समझा संबंध भी बिखरे / जब एक बार /अविश्वास पनप गया / कितना ही अंतरंग संबंध ही / रिश्ता चाहे प्यार पर ही / क्यों ना बना हो/ संबंध बिखरेगा ही।"[9]

'अंधेरों से अब' कविता के माध्यम से कवि ने देश के राजनीतिक हालात का चित्रण करते हुए बताता है कि आज भी हमारे देश में निर्भया जैसे कांड होने के बाद भी सरकारें सोई है। देश में जनता का रोटी, कपड़ा और मकान का सपना पूरा नहीं हुआ है। कवि के मन में इन्हीं घटनाओं का डर घर कर गया है इसलिए कवि कहता है मुझे आजकल अंधेरे से डर लगता है।

"सतर सालों के बाद भी / देश के लोगों का / रोटी कपडा और / मकान का सपना / पूरा नहीं कर पाई सरकारें?/ इसलिए आजकल मुझे अंधेरों से डर लगने लगा है।"[10]

'हम सब जानते हैं' में कवि ने गीता में निहित कर्म के सिद्धांत की व्याख्या कविता के माध्यम से करने का प्रयास किया है। कवि कहता है जीवन का लक्ष्य कर्म के रास्ते पर चलना है। हमें कर्म के रास्ते पर तब तक चलते जाना है जब तक मंजिल नहीं मिल जाती। कवि कविता द्वारा मनुष्य में कर्म के प्रति भाव जाग्रत करने का प्रयास करता है।

हमारा धर्म क्या है?/कर्म के मार्ग पर चलना ही / धर्म कहलाता है/फिर कर्म करने से/किस प्रकार का संकोच/किस प्रकार की ग्लानि/आत्मा वस्त्र रूपी/शरीर धारण करके मायावी संसार में/क्यों आती है?/मात्र और मात्र/कर्म करने के लिए,/ कर्म हमारा धर्म है"[11]

'वही ती प्रेम है' कविता प्रेम और संबंधों के छवि चित्र प्रस्तुत करती है।

"प्रिये जिसने भीतर से/जीना सीख लिया भीतर यानि प्रेम/प्रेम यानि अकेलापन/अकेलापन यानि सत्य/फिर सत्य क्या है प्रेम ही सत्य है/निश्छल प्रेम, निस्वार्थ प्रेम, हरि से प्रेम।"[12]

'शक की तर्जनी' कविता के माध्यम से प्रेम संबंध में होने वाले शक, अविश्वास को आधार बनाया गया है।

"बेचारा पति/लाकडॉउन रूपी सी सी टी वी में/महीनों से कैद पड़ा है/ फिर तर्जनी उठाने का प्रश्न/कहाँ तक उचित है।"[13]

'जाने-अनजाने में' कविता विश्वविद्यालयों के मठाधीशों की कड़वी सच्चाई को व्यान करते हुए बताती है कि कैसे सत्ता में बैठा व्यक्ति किसी की परवाह किए बिना किसी कों कुछ भी कह देते है, सोचते तक नहीं कि उनकी बात के क्या मायने है। उनकी बात का क्या प्रभाव होगा।

"कई बार/जाने अनजाने में/हम किसी कों भी कुछ भी कह जाते है/सोचते तक भी नहीं/सामने खड़े व्यक्ति पर क्या असर पड़ेगा!/साधारण जन किसी को कुछ कह दे/उसकी बात के खास मायने नहीं होते/लेकिन पद पर बैठे व्यक्ति/अगर बिना चिंतन किए/किसी को कुछ कहते है/बडे मायने हो जाते है।"[14]

'सब अकेले आए है' कविता में कवि ने मनुष्य के अकेलेपन का चित्रण करते हुए कहा की मनुष्य को अपने अपनेपन को ही अपना साथी बनाना चाहिए जब कभी मनुष्य अपने अकेलेपन से भागने का प्रयत्न करेगा। वह स्वयं को पहले से अधिक अकेला महसूस करेगा। कवि कविता के माध्यम से 'अप्प दीप्पो भवः' का संदेश मनुष्य को देते है।

"अगर चिंतन करें/भीतर का अकेलापन भी तो/ स्वाभाविक प्रक्रिया है/इससे भी तो भागना/खतरनाक है यात्री के लिए/ स्वभाव से आंखे फेरना/यात्री को विपरीत/परिस्थितियों में खड़ा करना है/बुद्द पथिक को संदेश देते है/अप्प दीप्पो भवः अर्थात../ अपना दीपक स्वयं बनो/स्वभाव में जो अकेलापन है/उसे ही अगर पथिक/अपना प्रकाश बना लें/सदियों से बंद पड़े मार्ग/ अपने आप खुलते जाते हैं।"[15]

'सत्य को भी' कविता स्त्री हो संशयों से बाहर निकलने की राह बताती है जिस पर उसके भविष्य की इमारत खड़ी होगी।

"सदियों से पुरुष की खुशी में/अपनी खुशी ढूंढती रही हो/ इसलिए आज तक/अस्मिता को खोज रही हो/अब समय तुम्हारा है/रास्ते तुम्हारे है/मंजिल भी तुम्हारी है/निकलो संशयों से बाहर/ वर्तमान की सुदृढ़ नींव पर/तुम्हारे भविष्य की/इमारत खड़ी होगी।"[16]

निष्कर्ष- अशोक कुमार 'आस' के काव्य संग्रह 'रिश्ते एहसास के' का आधार समाज में व्याप्त विभिन्न आयाम बनते है। कवि 'आस' अपने काव्य संग्रह 'रिश्ते एहसास के' में प्रत्येक घटना का चित्रण इतने सजीव रूप से करते है कि उनके काव्य संग्रह पढ़ने से वह घटनाएँ हमारे अपने जीवन की लगती है। उनके काव्य संग्रह पढ़ने पर एहसास होता है कि यह कहानी घर-घर की है-कहीं कम है तो कहीं ज्यादा है। 'रिश्ते एहसास के' काव्य संग्रह में कवि 'आस' रिश्तों में खत्म हो रहे एहसास के कारण रिश्तों में बढ़ती दरारों का वर्णन करते हुए आगाह करते है कि अगर अब भी हम नहीं संभले तो हम अकेले रह जाएँगे। हमारे पास पछतावे के सिवा कुछ नहीं बचेगा।

संदर्भ सूची

1. शुक्ल, रामचन्द्र. काव्य में लोक-मंगल की साधनवस्था, निबंध माल, डॉ. लक्ष्मीसागर वार्षणेय, पृ. 104-105
2. 'आस', अशोक कुमार. 'रिश्ते एहसास के', बिम्ब-प्रतिबिम्ब प्रकाशन पृ.7
3. वही पृ. 11 4.वही पृ. 35 5.वही पृ. 36 6.वही पृ. 97
7. वही पृ. 105 8.वही पृ. 123 9.वही पृ. 128
10. वही पृ. 135 11.वही पृ. 155 12.वही पृ. 142
13. वही पृ. 187 14.वही पृ. 167 15.वही पृ. 181
16. वही पृ. 193

1. शोध छात्रा
लवली प्राफेशनल यूनिवेर्सिटी, फगवाड़ा, पंजाब

2.(सह-प्राध्यापक),
लवली प्रोफेशनल यूनिवेर्सिटी, फगवाड़ा, पंजाब

अनूदित लघु कविता

बुलेटिन

कुरीप्पुषा श्रीकुमार

अनुवादक : डॉ.एम.एस.विनयचन्द्रन

बाबर की वोट
श्रीराम कर चुका।
श्रीराम का नाम
वोटर-सूची में नहीं था।
कौसल्या की वोट
मिथिला में थी और
सीता की वोट
लंका में थी।
रोते-प्रेमातुर पक्षी के बदले
शिकारी का चित्र या मतदान-पत्र में।
इसीलिए-
वाल्मीकी ने मतदान नहीं किया।

अल्मा कबूतरी - स्त्री संघर्ष की एक अलग कहानी

अंजु.ई.एम

आधुनिक समाज और साहित्य का एक अभिन्न अंग है 'स्त्री विमर्श'। किसी खास बिंदु को सम्यक दृष्टि से चिंतन - मनन, सोच - विचार या परीक्षण - निरीक्षण करने को हम विमर्श कहते हैं । साहित्य में 'स्त्री विमर्श' का संबंध समाज की पितृसत्तात्मक नीतियों के खिलाफ आवाज़ उठाकर स्त्री सत्ता की तलाश करने से है। इक्कीस्वीं सदी के हिंदी साहित्य ने स्त्री विमर्श को अपना एक प्रमुख मुद्दा मान लिया गया है । कहा जाता है कि भारतीय संस्कृति और परंपरा स्त्री को हमेशा आदर सम्मान की दृष्टि से देखने की कोशिश करती है ।लेकिन जब हम स्थिति को गौर से परख ले तो जानेंगे कि समाज को परिवार को परंपरा को आगे बढ़ाने वाली स्त्री माँ, देवी आदि अनेक नामों से अभिहित होने पर भी दूसरे दर्जे की ज़िन्दगी जीने के लिए विवश है ।देवी कहकर मंदिरों में उसकी पूजा होती है, आदर्श ग्रन्थों पर उसकी गाथा अंकित हो जाती है, लेकिन वास्तविक तौर पर उसकी ज़िन्दगी काँटों से भरी रहती है। एक ओर उसके आदर्श रूप का चित्रण होता है तो दूसरी ओर उसके सर्वांग शोषण करने का षड्यंत्र रचा जाता है। उसके लिए अलग कानून, अलग रीति -रिवाज, अलग समय यहाँ तक कि अलग भाषा का भी प्रयोग होता है। इस तरह स्त्री को दोहरी दृष्टि से देखने की प्रवृत्ति पुरातन काल से देख सकती है। सीमोन बोडवार के अनुसार - "पुरुष जान बूझकर स्त्री को बौना रखता है । स्त्री ना देवी है ना राक्षसी, वह मानवी है जिसे समाज की फूहड़ प्रथाओं ने दासता में जकड़ कर रख दिया।"[1] यह तो सच है कि आज स्त्री की स्थिति में बदलाव आ गया है। लेकिन इसका मतलब यही नहीं है कि उसको न्याय मिल रहा है। यह तो आशा है कि आधुनिक साहित्य स्त्री के आदर्शात्मक रूप को छोड़कर उसके वास्तविक परिवेश और पिंजरे में बंद उसकी आत्मा को खोलने की कोशिश कर रहा है। निर्मल वर्मा के अनुसार "नारी अपने अधिकारों की इच्छा करें, अधिकारी भी बने, अधिकारी के इच्छुक व्यक्तिको अधिकारी भी होना चाहिए। अर्थात इच्छा पूर्ण करने के लिए कृति की आवश्यकता होना जरूरी है।"[2] आज की स्त्री मंदिर में पूजा के लिए चुपचाप खड़ी किसी मूर्ति या सब कुछ सहने के बाध्य धर्ती माँ बनने के लिए तैयार नहीं है। ज़रूर वह आज भी शोषण ग्रस्त है। लेकिन उसके प्रति आवाज़ उड़ाने के लिए सोचने तक की क्षमता प्राप्त की है। समाज के नाम पर... संस्कृति के नाम पर... परिवार के नाम पर केवल स्त्री के ऊपर थोपे जानेवाले विशेष बंधनों को उसने पहचानना शुरू की है। मंजू रस्तोगी के अनुसार "जब सामाजिक व्यवस्था व्यक्तित्व को दबाने का प्रयास करती है , तब व्यवस्था में विद्रोह होता है और नई व्यवस्था उभरने लगती है।"[3] यह विद्रोह की भावना से उत्पन्न आत्म पहचान आज की स्त्रियों की ज़िदगी में एक प्रकार के नवजागरण की स्थिति पैदा करती है ।

आधुनिक हिंदी साहित्य का एक महत्वपूर्ण नाम है 'मैत्रेयी पुष्पा'। स्त्री विमर्श के संदर्भ की किसी भी चर्चा या लेख उनके बिना अपूर्ण है । समकालीन हिंदी कथा साहित्य में वे पहली लेखिका है जो ग्रामीण परिवेश से जुड़ी स्त्री जीवन की संपूर्ण समस्याओं को हमारे सामने उसकी पूर्ण गहराई के साथ प्रस्तुत करती हैं। लेखिका ने बुंदेलखण्ड के वातावरण को अपनी आत्मा में समाया है। स्त्री क्या है, उसकी आशा - आकांक्षा क्या है, उसके साथ क्या हो रहा है... सभी का यथार्थ चित्रण बिना कोई पर्दा के हमारे सम्मुख मैत्रेयी जी रखती हैं । मैत्रेयी जी के सभी स्त्री - पात्र पाठकों के मन में विशोषकर स्त्रियों के मन में मुक्तिके बीज बोती हैं । कुछ करने की लालसा पैदा करती है। उनमें कपट धार्मिकता नही है... अंधी ममता नही है.. प्रबल है एक जिजिविषा, सशक्त है अपनी आत्मा की पुकार... वो ज़िन्दगी जीते या हारे ... लेकिन बिना लड़े नहीं।

मैत्रेयी पुष्पा जी द्वारा लिखित सन 2000 में राजकमल प्रकाशन द्वारा प्रकाशित 'अल्मा कबूतरी' उपन्यास स्त्री विमर्श का एक नया और खुला दृष्टिकोण हमारे सम्मुख प्रस्तुत करता है। उपन्यास के प्रमुख स्त्री पात्र कदमबाई हो या अल्मा या उन दोनों की तुलना में कम प्रसंग में आने वाली भूरी, पाठकों को स्तब्ध कराकर हमारे समाज के सामने स्त्री के मन की दबी हुई उन सभी आकांक्षाओं को पूर्ण सच्चाई के साथ बेहिचक होकर पर्दाफाश करती हैं ।

समाज की हाशियेकृत जातियों में एक कबूतर जनजाति को आधार बनाकर लिखा गया उपन्यास है 'अल्मा कबूतरी'। उपन्यास का प्रारंभ 'मड़ोरा खुर्द' नामक गांव के कबूतरा जनजाति की स्त्री कदमबाई से होता है । उसके रूप सौंदर्य पर आकर्षित होकर 'कज्जा' वर्ग के मंसाराम उसको अपनाने के लिए उसके पति जंगलिया का उपयोग करते हैं। जंगलिया के नाम पर कदमबाई को धोखा देकर अपनाते हैं। कदमबाई मंसाराम से गर्भवती हो जाती है। बाद में मंसाराम जंगलिया को मारते हैं। सब कुछ जानकार भी कदमबाई मंसाराम के बच्चे को जन्म देती है। 'राणा' नाम से पालती है। मंसाराम राणा के प्रति अपने दिल में ममता रखते हैं। कदमबाई राणा को एक कबूतरी की तरह निर्मम बनाना चाहती है। लेकिन उनकी रुचि पढ़ाई की ओर थी। इसलिए पढ़ा लिखा कबूतरा रामसिंह मास्टर राणा को अपने साथ ले जाते हैं। रामसिंह की माँ भूरी अपने शरीर को बेचकर अपने बेटे को पढ़ाती थी। पढ़ा - लिखा मास्टर अपनी बेटी को भी पढ़ाता है। मास्टर अपनी बेटी अल्मा का हाथ राणा को सौंपना चाहता था। राणा और अल्मा के बीच तन - मन का रिश्ता बढ़ता है। लेकिन एक दिन राणा को रामसिंह मास्टर की कुछ ऐसे करतूतों की खबर मिलती है जो उन्हें कतई असह्य था। वह अल्मा के लाख मनाने के बाद भी वापस मडोरा खद जाता है। इसी बीच रामसिंह की हत्या कर दी जाती है और अल्मा सूरजभान जो पहले एक डाकू थे और अब राजनेता उसके हाथ में फंस जाती है। अल्मा सूरजभान की कैद से बचकर उनके विरोधी समाज कल्याण मंत्री श्री राम शास्त्री के पास पहुँच जाती है। अल्मा बडी चतुराई से श्री राम शास्त्री के करीब आती है और राजनीति के सभी चालों को अपने वश में कर लेती है।

वह धीरे-धीरे शास्त्री जी के लिए सब कुछ बन जाती है और शास्त्री जी की पत्नी का वेश धारण कर लेती है। विरोधी नेताओं द्वारा शास्त्री जी की हत्या होती है। अल्मा इस परिस्थिति की भी बड़ी कुशलता से सामना करती है वह विधवा का वेश धारण करती है। सभी नियमों को तोड़कर शास्त्री जी के देह को मुखाग्नि देती है। बड़ी उथल - पुथल मच जाती है। उपन्यास का अंत अगले दिन के अखबार में आई इस खबर से होती है कि रिक्त स्थान की उम्मीदवार है श्रीमती अल्माशास्त्री।

'अल्मा कबूतरी ' के स्त्री पात्र विशेष कर अल्मा, कदमबाई और भूरी परंपरा के मूल्यों को तोड़ने वाली है। उनमें आसीम धैर्य का आवेग है। सही गलत की खुद की मान्यताएँ हैं। मन और तन के प्रति अपनी रुचि है। समाज से मिली सभी प्रताड़नावों से वे हारते नहीं बल्कि लड़ते रहते हैं। तन - मन पर हुए अत्याचारों को आगे चलने का ईंधन बनती है। उपन्यास में हम देखते हैं कि कदमबाई तो एक खूबसूरत कबूतरी थी। कदमबाई के रूप सौंदर्य को अपनाने में कज्जा मंसाराम सफल होते हैं। कितना भी अंधेरा हो एक स्त्री पति को और उसके प्यार को पहचान सकती है। लेकिन कदमबाई जंगलिया के स्थान पर मंसाराम को स्वीकारती है। उसके बच्चे को कोख में लेती है। शायद कदमबाई के मन में कज्जा पुरुष के प्रति और उनके सादगी के प्रति मोह हुआ होगा। एक से यह स्वीकृति उसके मन की इच्छाओं के प्रति पल भर के लिए न्याय थी।अपने हक के बारे में सचेत एक आधुनिक नारी की सोच इस उल्लंघन में हम देख सकते हैं। लेकिन पति की हत्या के बारे में जानकर कदमबाई का वह भावावेश समाप्त होता है। कदमबाई पति की हत्या का प्रतिशोध मंसाराम के बच्चे को गिराकर नहीं, बल्कि जन्म देकर जताना चाहती है । वह कहती है 'राणा माथे पर कबूतरा की चिप्पी चिपकाए कितना दुख पाता है मंसाराम की तुम कट कर रह जाओगे'।[4] राणा को कबूतरा बनाने की लाख कोशिश करती है कदमबाई। वह अपरिष्कृत और अनपढ़ होने पर भी एक स्वाभिमानी स्त्री है। मंसाराम के बच्चे को जन्म देकर भी वह कहती है कि 'उनके बच्चे की माँ बनी थी, भिखारिन नहीं बनी कि पालन पोषण का मुआवजा मांगती और माँ के हक को छोटा करती।'[5] जब उसको पता चलता है कि राणा को कबूतरा बनाकर मंसाराम के पितृत्व के सामने प्रश्न चिह्न लगाने की ख्वाहिश एक व्यामोह थी,क्योंकि राणा में कबूतरों की नहीं बल्कि कज्जा वर्ग का चरित्र प्रबल है... तो वह उसको भी स्वीकारती है। शराब की ठेका बस्ती में खुलने पर वह उसको भी अपने अनुकूल बनाती है। समय की गति के अनुसार वह अपने जिंदगी को बदलती रहती है।

'अल्मा' कबूतरा जाति के मास्टर रामसिंह की बेटी है। रामसिंह के पिता पुलिस के हाथों मारा गया था। उसकी माँ भूरी चाहती थी कि किसी भी कीमत पर अपने बेटे को पढाए। वह अपनी देह बेचकर पुत्र को पढ़ने के लिए कमाती थी। भूरी को भी यह नहीं लगता कि वह कोई अपराध करती है। उसके सामने उसका लक्ष्य ही प्रमुख है, मार्ग नहीं । अल्मा शब्द का अर्थ है 'आत्मा'। अल्मा के चरित्र से गुज़रने पर हम देखते हैं कि अल्मा एक ऐसा पात्र है जो प्रस्तुत उपन्यास की भूरी, कदमबाई दोनों पात्रों के क्रमगत विकास भी है। अल्मा जाती से कबूतरी होने पर भी पढ़ी लिखी है। सभ्य लोगों के साथ उनकी ज़िन्दगी जीती है। उपन्यास में हम देखते हैं कि उसमें कई प्रकार के द्वन्द्व चल रहे हैं । अल्मा के पत्र के बारे में नीरा नाहटा लिखती है 'अल्मा का क्रमिक विकास भूरी से प्रारंभ होकर ज़िन्दगी से जूझती हुई कदमबाई की रूपकृति के बाद का अध्ययन रूप है'।[6] भूरी और कदमबाई की जिजिविषा और जिंदगी की लालसा अल्मा में प्रकट है। अपने प्रेमी राणा को वह उन्मुक्त होकर स्वीकारती है । लेकिन जब राणा अल्मा के पिता से विमुख होकर वापस चल चला जाता है तो वह अपने पिता का साथ देती है। कई बार उसके साथ अत्याचार होता है । कई बार उसका बलात्कार होता है। लेकिन तन और मन पर पड़े अत्याचार को अल्मा आत्मा पर आने नहीं देती। जो शरीर शिकार बन गया था उसको ही वह हथियार बनाती है। राणा को मन में रखते ही वह पाप भर से मुक्त होकर ज़िन्दगी को आगे बढ़ाने के लिए देह और बुद्धि का उपयोग करती है। पहले जिन लोगों ने उसके शरीर को अपनाने के लिए अन्याय किया था, अब अल्मा उस शरीर का उपयोग करके अपने लिए इंसाफ हड़प लेती है । समाज कल्याण मंत्री श्री राम शास्त्री के लिए सब कुछ बनकर वह राजनीति में प्रवेश करती है। उसकी मृत्यु के बाद उसकी विधवा बनकर उसकी देह को मुखाग्नि देकर समाज को चौंका देती है और अपने नाम की प्रतिष्ठा करती है। यह असीम धैर्य ही उसे शास्त्री जी के रिक्त स्थान की हकदार बनती है। समाज और संस्कृति द्वारा स्त्री शरीर को दी गई सभी सीमाएँ वह पार करती है, और अपने व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा करती है ।

हम जानते हैं कि भारत की बहुत स्त्रियाँ किसी न किसी प्रकार के शोषण के शिकार हैं। किसी न किसी के अत्याचार द्वारा जिंदगी में तड़पने के लिए विवश है। लेकिन मैत्रेयी जी ने प्रस्तुत उपन्यास के स्त्री पात्रों के ज़रिए असामान्य एवं अनुपम मिसाल प्रस्तुत की है। भूरी पत्र से शुरू होकर कदमबाई से विकसित होकर अल्मा तक पहुँचने वाली स्त्री-संघर्ष की गाथा सदियों से प्रताड़ित, शोषित, उपेक्षित कबूतरे वर्ग की एक स्त्री बनकर.. अपने सर्वशक्ति संभालकर समाज के सम्मुख अपने अस्तित्व की उद्घोषणा कर रही है। सत्ता के शिखर तक पहुँच कर समाज को चेतावनी दे रही है।

संदर्भग्रन्थ सूची3

1. सीमान बोउवा - द सेंकड सेक्स राजकमल प्रकाशन, दिल्ली - 2003 पृ. संख्या 301
2. निर्मल वर्मा - महादेवी एक मूल्यांकन - लोकभारती प्रकाशन - 1969 पृ. संख्या 208
3. मंजू रस्तेगी अनामिका का काव्य - पृ. संख्या - 11
4. मैत्रेयी पुष्पा - अल्मा कबूतरी - पृ. संख्या - 37
5. वही, पृ. संख्या - 44
6. नीरा नाहटा -दस्तावेज 92-जूलाई सितंबर -पृ. संख्या 42

शोध निर्देशक :**डॉ.शैलजा के**
प्रोफेसर, महाराजास कॉलेज

शोधार्थी
महाराजास कॉलेज, एरणाकुलम

अस्तित्ववाद और इक्कीसवीं सदी के हिन्दी नाटकों में वृद्ध विमर्श

प्रियानाथ कुमार

उपयोगितावादी दृष्टिकोणु मानव को संवेदना विहीन बनाता जा रहा है। भौतिक उपलब्धियों ने मानव को एक ऐसे भंवर में फंसा दिया है जिससे निकलना कठीन जान पड़ता है। सुविधा और शक्तिप्राप्ति की प्रतिस्पर्धा ने मानव को ऐसी तंग गलियों में धकेल दिया है जहाँ मानवता लगभग समाप्त हो गयी है। भौतिक सुविधाएँ मानव को आलसी तथा अपना गुलाम बनाते जा रही है। भौतिकतावादी दृष्टिकोण के प्रभाव स्वरूप मानव स्वयं भी मशीन बनता जा रहा है।

यहीं शक्ति की चाहत और लालसा ने मानव को स्वार्थी बना दिया है। मानव की इसी स्वार्थी प्रवृत्ति ने मानवीय सभ्यता को कई बार युद्धों और महायुद्धों की भयावह, बीभत्स और डरावनी स्थिति से सामना करवाया है। इन युद्धों और महायुद्धों ने मानवीय सभ्यता को निराशा, आत्मपीड़ा, कुण्ठा, संत्रास और दिशाहीन मानसिकता की ओर बार-बार धकेला है। दूसरे विश्वयुद्ध के उपरांत जब मानव सभ्यता के सामने ऐसी ही स्थितियाँ उत्पन्न हो गयीं तब मानवीयता को बनाये रखने के लिए आवश्यक हो गया कि मानवों के भीतर की निराशा, संकीर्णता, अकेलेपन तथा उदासीनता आदि को दूर किया जाए और उसके भीतर की आत्मीयता के भाव तथा स्वत्व की चेतना को जागृत किया जाए। अर्थात् युद्धादि विभिषिकाओं से उत्पन्न असुरक्षा, अलगाव, विछिन्नता, निराशा, कुण्ठा तथा अकेलेपन का भाव आदि ने मानव जीवन के समक्ष एक वीभत्स संकट पैदा कर दिया। मानव जीवन पर छायी इन गंभीर संकटों तथा गंभीर समस्याओं पर नयी दृष्टि से चिंतन किया जाने लगा। इस चिंतन द्वारा मानव जीवन की समस्यों का यथार्थ चित्रण तथा संभावित समाधन ढूंढने का प्रयास भी किया जाने लगा। यही नवीन चिंतन साहित्य में अस्तित्ववाद के नाम से जाना जाने लगा। अस्तित्ववाद की प्रथम सैद्धातिक व्याख्या कीर्केगार्द ने दी। इन्होंने अस्तित्ववाद के संबंध कहा कि "Life must be understood, backward but it must be lived forward."(1) डॉ श्यामसुन्दर मिश्र ने अस्तित्ववाद के संबंध में कहा है कि "अस्तित्ववाद अधुनातन जीवन के विभिन्न निषेध (सामाजिक, नैतिक, आर्थिक, राजनीतिक) और वैज्ञानिक उपलब्धियों, यांत्रिकता के बीच आबद्ध व्यक्ति इकाई की आकुल चिन्ता का वैज्ञानिक और समीचीन विश्लेषण है।"(2) भारतीय साहित्य में अस्तित्ववाद के उदय का दो कारण स्वीकार किया जा सकता है। प्रथम कारण-स्वातंत्र्योत्तर भारत की तत्कालीन परिस्थिति तथा द्वितीय कारण भारतीय साहित्यों का संबंध अंग्रेजी साहित्य से होना है। यदि हम प्रथम कारण पर दृष्टिपात करें तो पाते हैं कि स्वातंत्र्योत्तर भारत की सामाजिक तथा राजनैतिक परिस्थितियाँ बड़ी उथल-पुथल से भरी थीं। उस समय की वैश्विक परिस्थिति भी भय और शंका से भरी थी। लोगों के दिल और दिमाग पर हिरोशिमा और नागासाकी की विध्वंस की काली छाया शेष थी। शीत युद्ध के कारण विश्व भी दो धुरों में बँटता जा रहा था। ऐसी विकट वैश्विक स्थिति-परिस्थिति में आजाद हुए भारत की सामाजिक, राजनैतिक तथा आर्थिक स्थिति संकटपूर्ण थी। इन विकट परिस्थितियों से उभरने के लिए भारत ने औद्योगीकरण तथा शहरीकरण को अपनाया। इस औद्योगीकरण और शहरीकरण ने भारतीय जीवनशैली को प्रभावित और परिवर्तित किया। ग्राम आधारित संरचना नगर आधारित संरचना में ढलने लगी। इसने पहले से युद्धादि की विभीषिका से उत्पन्न जीवन की क्षणभंगुरता के बोध और जीवन की शून्य और निरर्थक होने की भावना से भयातुर जन के भीतर शंका, अकेलापन, विषमता, संत्रास, घुटन, अजनबीपन और आत्मनिर्वासन की भावना, को बढ़ा दिया। इस संकट ने प्रबुद्ध भारतीय जनमानस को सोचने पर विवश कर दिया। इन्हीं परिस्थितियों के क्रिया-प्रतिक्रिया स्वरूप भारत में अस्तित्ववाद का उदय हुआ। दूसरे कारण के आलोक में कहा जा सकता है कि भारतीय साहित्य अंग्रेजी के माध्य से वैश्विक साहित्य से जुड़ा रहा है। पार्शधिम में अस्तित्ववाद जिन परिस्थितियों में उपजा था जब उसी के समरूप परिस्थितियाँ भारत में भी उत्पन्न होने लगीं तो पाश्चात्य साहित्य के प्रभाव से भारतीय साहित्य में भी इसका अनुगुंजन सुनाई देने लगा। यह वाद धीरे-धीरे भारतीय साहित्य खासकर हिन्दी साहित्य में एक प्रमुख विषय बन गया। हालांकि इसका यह अर्थ नहीं है कि भारतीय अस्तित्ववाद पाश्चात्य अस्तित्ववाद का अंधानुकरण है।

अस्तित्ववाद जीवन का एक दर्शन या दृष्टिकोण है। यह अतिभौतिकता के कारण मानवीय सभ्यता पर आये संकट या मानवीय जीवन में उत्पन्न समस्याओं के प्रति मानवों को सजग करने का एक प्रयास भी है। यह व्यक्ति की स्वतंत्रता तथा अनुभूतियों को प्रमुखता देता है। यह व्यक्ति की स्वतंत्रा तथा अनुभूतियों को प्रमुखता देता है। यह व्यक्ति की स्वतंत्रता तथा अनुभूतियों को खण्डित करने वाली विद्रोही परंपराओं को तोड़ने वाला दर्शन या विचारधारा है। इसमें व्यक्ति की स्वतंत्रा तथा अनुभूतियों को प्राथमिकता दिया जाता है। इसमें स्वंतत्रता (वरण की) रिक्तता, निराशा, संत्रास, पीड़ा, अजनबीपन तथा आत्म निर्वसन की भावना आदि प्रवृत्तियाँ इसमें अभिव्यक्ति पाते हैं।

हिन्दी साहित्य में अस्तित्ववादी की सैद्धांतिक विचारधारा से प्रभावित कई विमर्शात्मक साहित्यिक आंदोलन की वैचारिकी की पृष्ठभूमि का निर्माण हुआ। इनमें स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श आदि प्रमुखता से अभिव्यक्त हुए। इन विषयों ने साहित्यिक आंदोलन का रूप धारण कर हिन्दी साहित्य की

दशा और दिशा दोनों को प्रभावित किया। अस्तित्वाद के प्रभाव लिए उक्त तीनों विमर्शों के अतिरिक्त वृद्ध-विमर्श और किसान विमर्श भी उभरा। किन्तु ये दोनों विषय अपेक्षाकृत गौण ही रहे। हालोंकि इसका यह अर्थ नहीं है कि इन विषयों पर हिन्दी में रचना लिखी ही नहीं गयी। बस इतना ही कहा जा सकता है कि विषय की गंभीरता, व्यापकता और विविधता के अनुरूप कम लिखा गया है। इस शोध आलेख का मुख्य विषय अस्तित्ववादी की नज़र से वृद्ध विमर्श को समझना है। अतः यहाँ वृद्ध विर्मश के अर्थ, स्वरूप तथा अवधारणा को समझ लेना आवश्यक है।

वृद्ध-विमर्श में वृद्ध तथा विमर्श दो शब्द है। वृद्ध मानवों के शरीरिक और मानसिक स्पिति में आए निश्चित परिवर्तन की एक अवस्था है। मनुष्य कि शारीरिक विकास की विभिन्न अवस्थाओं में विभक्त किया जाता है जो क्रमशः इस प्रकार है- शैशवावस्था, बाल्यावस्था किशोरावस्था, प्रौढ़ावस्था तथा वृद्धावस्था। इन अलग-अलग शारीरिक अवस्थाओं में मानकों की अवश्यकताएँ तथा क्षमताएँ भी अलग-अलग होती हैं। शैशवावस्था में जहाँ यह दूसरों पर निर्भर रहते है यहीं किशोरावस्था में जोश, ऊर्जा और शक्ति के शिखर पर रहते हैं। प्रौढ़ावस्था में मानव पारिवारिक तथा सामाजिक दायित्वों के निर्वहन में अस्त-व्यस्त रहता है। वृद्धावस्था में शारीरिक ऊर्जा अपेक्षाकृत कम होने लगती है और निर्भरता बढ़ने लगती है। यह धीरे-धीरे और अनिवार्य रूप से आने वाली प्राकृतिक तथा स्वभाविक अवस्था है।

साधारणतः विमर्श शब्द का अर्थ चिंतन-मनन, विचार या विवेचना आदि लिया जाता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि विर्मश किसी समस्या या परिस्थिति आदि पर पूर्वार्द्ध की धारणा या मान्यता आदि का चिन्तन-मनन द्वारा समाहार करते हुए नये ढंग और पूर्ण रूप से उसे समझने का प्रयास करना ही विमर्श है।

अतंतः कहा जा सकता है कि वृद्ध विमर्श में वृद्धावस्था की सम्पूर्ण परिस्थितियों, घटनाओं और समस्याओं का व्यापक और सूक्ष्मतम व्याख्या किया जाता है तथा इसके संभावित समाधान भी प्रस्तुत करने का प्रयास किया जाता है। हिन्दी साहित्य में वृद्ध विमर्श का तात्पर्य ऐसी विवेचनात्मक साहित्यिक रचना से है जिसमें वृद्धावस्था की पारिवारिक, सामाजिक तथा राजनैतिक आदि सम्पूर्ण परिस्थितियों, घटनाओं, समस्याओं और इसके संभावित समाधानों आदि का चित्रण प्रस्तुत किया गया हो। हिन्दी साहित्य में वृद्ध विमर्श की अनुगुंजन बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध से मिलने लगता है। वृद्धावस्था को विमर्श के केन्द्र में लाने वाले संभवतः प्रथम लेखकों में प्रेमचंद ही हैं। प्रेमचंद के युग से शुरू हुआ यह विमर्श आज भी उपयोगी बना हुआ है। या यूँ कहें कि आज इसकी आवश्यकता और बढ़ गयी है तो अतिश्योक्ति न होगा। आधुनिकीकरण, औद्योगिकरण तथा शहरीकरण ने पाश्चात्यीकरण को भी बढ़ावा दिया। इस पाश्चात्यीकरण ने भारत की आदर्शात्मक सामाजिक मानसिकता को प्रभावित और परिवर्तित किया। इससे भारत में उपयोगितावादी तथा व्यक्तिवादी मानसिकता बढ़ी और भारतीय मूल्य और नैतिक संस्कार जो चरित्र निर्माण में सहायक थे टूटने लगे हैं। आज के युवा कैरियर निर्माण को अधिक प्रश्रय देने लगे हैं। उनमें परिवार तथा पारिवारिक दायित्वों के प्रति अनास्था बढ़ती जा रही है। आज की वर्तमान सामाजिक क्रिया-प्रतिक्रया में वृद्धों की भूमिका सीमित होते जा रही है। वृद्धों की स्थिति इतनी दयनीय हो गई है कि वे न्यायालयों से आत्महत्या का कानूनी अधिकार मांग रहे हैं। इस संबंध में कुमारी मनीषा ने प्रेमचंद के कथा साहित्य में वृद्ध विमर्श शीर्षक आलेख में लिखा है कि "भारत के सबसे शिक्षित और आधुनिक राज्य केरल में भी वृद्ध लोगों की स्थिति इतनी दयनीय हो गई है कि वहाँ के उच्च न्यायालय में उनके लिए कष्टहीन आत्महत्या को कानूनी मान्यता देने की अपील की गई हैं।"

हिन्दी साहित्य के विभिन्न विधाओं में वृद्ध-विमर्श पर रचना हुई है। उदाहरणस्वरूप प्रेमचंद की रचना बुढ़ी काकी' (कहानी), भीष्म साहनी की 'चीफ की दावत' (कहानी), ममता कालिया की दौड़ (उपन्यास) आदि। वहीं हिन्दी में अन्य गद्य विधाओं की तुलना में नाटकों की रचना कम मात्रा में हुई है। वर्तमान समय में इस विधा में वृद्ध-विमर्श को केन्द्रीय विषय बनाकर बहुत कम ही नाटकों की रचना हुई। कृष्ण बलदेव वैद, जयवर्धन तथा मानव कौल आदि हिन्दी नाटककारों ने इस विषय पर नाटकों की रचना की है। इसके अतिरिक्त भी अन्य नाट्य रचनाओं में छिटपुट रूप से इसका चित्रण मिल जाता है। कृष्ण बलदेव वैद ने इस विषय पर हिंदी में अंत का उजाला शर्शीषक नाटक लिखा है। यह नाटक वृद्धों के जीवन में व्याप्त निराशा, कुंठा तथा अकेलेपन के भाव को मनोवैज्ञानिक ढंग से चित्रित करता है। नाटक का आरंभ शाम के दृश्य से होता है। दिन का अंतिम पड़ाव शाम होता है। यहाँ आकर दिन की व्यस्तता तथा क्रियाशीलता लगभग समाप्त हो जाती है। यहाँ पहुँचकर दिन अपनी अंतिम सांसें लेने लगता है। ठीक इसी प्रकार मानव जीवन का अंतिम पड़ाव या अवस्था है-वृद्धावस्था। इस प्रकार शाम वृद्धावस्था का प्रतीक बन जाता है। इस नाटक के कथानक के केंद्र में एक वृद्ध दंपति है। बुढ़ापे में अकेले और स्थिर पड़ चुके जीवन को बनाए रखने के लिए एक उम्मीद या आशा की आवश्यकता होती है। बीवी इसी आशा या उम्मीद को बनाए रखने का प्रयास करते हुए मियाँ से कहती है-

बीवी : आज कुछ तो आ जाना चाहिए था/हो जाना चाहिए था/ कोई फोन या ईमेल या खत/किसी ना किसी का कहीं न कहीं से/कोई घटना दुर्घटना (3)

परंतु वृद्धावस्था में भीतर की निराशा, भय, कुंठा तथा अंधेरा इतना गहरा जाता है कि अब इस अवस्था में किसी बात से कोई फर्क नहीं पड़ता है।

मियाँ : नहीं लेकिन अगर आ भी जाता कुछ/हो भी जाता कुछ/ तो क्या हो जाता (4)

आज वृद्धों के जीवन में अकेलापन, दुःख, भय, शंका आदि इतना अधिक व्याप्त हो गया है कि अब उनको जीवन से अधिक मृत्यु की चिंता होती है। इस नाटक में भी वृद्ध (मियों) की कामना है कि वे दोनों (पति-पत्नी) एक साथ मरें।

मियाँ : सब बूढ़े जोड़ों की एक ही दिन होनी चाहिए। (5)

दुःख, संत्रास तथा अकेलेपन की भावना ने वृद्धों के भीतर जीवन की कामना को मार कर कष्टहीन मृत्यु या आत्महत्या की कामना को बढ़ा दिया है। इस नाटक में मियाँ कहता है-

मियाँ : होना यह चाहिए था कि जब बूढ़ों का जी चाहे/वे जीना बन्द कर दें/कुछ खाए पिए बगैर/बस चाहने भर से बूढ़ों के लिए ऐसी व्यवस्था/कुदरत को कर देनी चाहिए थी (6)

वैद जी के नाटक में वृद्धों की मानसिक स्थिति का चित्रण मनोवैज्ञानिकता के आधार पर किया गया है। इनके नाटक के वृद्ध निराशा और अकेलेपन के दंश को झेलने को मजबूर नज़र आते हैं। वहीं जयवर्धन द्वारा लिखित 'हाय! हँडसम' शीर्षक नाटक में अपने ही बच्चों और परिवार के सदस्यों द्वारा उपेक्षित वृद्धों के दर्द का चित्रण है जो अपनी स्थिति से संघर्ष करते हैं और उसे बदलने का भरपूर प्रयास भी करते हैं। इस नाटक के मुख्य पात्र कर्नल कपूर हैं। कर्नल कपूर सेना के रिटायर कर्नल हैं। उनके घर में उनके अतिरिक्त एक बेटा और बहू तथा एक नौकर है। बेटा पूजा-पाठ और रसोई में व्यस्त रहता है और बहू मॉडलिंग और सिनेमा में अपना कैरियर बनाने में। आज लोग व्यक्तिवादी अधिक होते जा रहे हैं। हम लोग जिस परिवार में पलते-बढ़ते है। या यूं कहें कि योग्यता अर्जित करते हैं उसे ही अपने कैरियर निर्माण और व्यक्तिगात आजादी के नाम पर उसे पीछे छोड़ देने या उससे कट जाने में जरा भी नहीं हिचकते हैं। इस नाटक में कर्नल कपूर की बहू मंदा भी परिवार से अधिक कैरियर को प्राथमिकता देती है। यह अपने पति स्वामी से कहती है-

मंदा : सब मतलब में समझता हूं। बच्चा पैदा करो, घर में कैद हो जाओ, फिर आया की तरह बच्चों की देखभाल करते रहो। अपनी खुशी, अपनी इच्छा ताख पर रख दो।

इस नाटक में कर्नल कपूर सरकार द्वारा रिटायर कर दिए जाने और अपने परिवार द्वारा उपेक्षित होने के बावजूद भी अकेलेपन या निराशा के शिकार हो कर मृत्यु या आत्महत्या की कमना नहीं करते बल्कि विधवा महिला सीता देवी से शादी कर लेते हैं और अपने जीवन के अकेलेपन से लड़ने का प्रयास करते हैं। मानव कौल ने भी इस विषय पर दो नाटक बलि और शंभू' तथा 'पीले स्कूटरवाला आदमी' लिखा है। 'बलि और शंभू' शीर्षक नाटक ओल्ड एज़ होम (वृद्ध आश्रम) में रहने आए दो वृद्धों की त्रासदपूर्ण कहानी है। यह नाटक आधुनिक समाज के अंधेरे और संवेदनहीन पक्ष को उद्घाटित करता है, जिसमें वृद्धों को अपने ही बच्चों द्वारा अनुपयोगी तथा बोझ समझकर एक कोने में धकेल दिया जाता है। शंभू और बलि ऐसे ही वृद्ध हैं जो अपने ही बच्चों द्वारा प्रताड़ित है और वृद्ध आश्रम में रहने को मजबूर हैं।

शंभू : मेरी बेटी तितली। बच्चे कब बड़े हो जाते हैं, आपको पता ही नहीं लगता और जैसे-जैसे वो बड़े हो जाते हैं, उनके साथ अपेक्षाएँ भी बढ़ी हो जाती हैं। बाद में बच्चे चले जाते हैं और अपेक्षाएँ रह जाती हैं, जिन्हें हम कभी दीवार पर टांग देते हैं तो कभी मेज पर रख देते हैं। (7)

बलि : मैं कभी-कभी सोचता हूँ, मुझ में और गाय में कितना फर्क है..... खासकर उस गाय में जिसने दूध देना बंद कर दिया है। बुढ़ापा गाय हो जाने जैसा है। गाय जो कुछ भी खा लेती है ..... बिना किसी को परेशान किया जिंदा रहती है ..... आपको गायों से और बूढ़ों से बहुत परेशानी नहीं होती ..... बेचारी गाय और बेचारा बूढ़ा। घर में इंसानों के बीच जानवर जैसा महसूस होता था तो मैंने तय किया कि जब गाय जैसा ही जीना है ..... गायों के बीच में रहो ..... तो मैं यहाँ आ गया। (8)

शंभू और बलि का यह आत्म-अभिव्यक्ति परिवार और समाज के उस दोहरे और संवेदनहीन पक्ष को उद्घाटित करता है जो अपने ही बच्चों या पारिवारिक सदस्यों के द्वारा दिया जाता है।

वृद्धों की पारिवारिक सामाजिक स्थिति में सुधार तथा उनकी मदद के लिए वृद्धाश्रम (ओल्ड एज होम) की स्थापना किया गया है। कहने को तो ओल्ड एज होम वृद्धों की संवेदनाओं को समझते हुए उनकी सहायता करता है, पंरतु सच्चाई कुछ और ही है। इसी सच्चाई और यथार्थ को बलि अभिव्यक्त करते हुए कहता है कि-

बलिः तो सोचा चलो किसी अच्छे ओल्ड एज़ होम में अपना बाकी जीवन बिता दूँगा। पता है शंभू जी करीब पांच ओल्ड एज़ होमवालों ने मुझे रिजेक्ट कर दिया.....कहने लगे मैं उनके हिसाब से पूरा बूढ़ा नहीं हूँ। पूरा बूढ़ा.....ये होता है पूरा बूढ़ा।(9)

इस विषय पर मानव कॉल ने एक और नाटक 'पीले स्कूटर वाला आदमी' लिखा है। इस नाटक में वृद्धों की सामाजिक स्थिति को बूढ़े चील के प्रतीक के माध्यम से चित्रित किया गया है। इस नाटक में एक पात्र बूढ़ा आदमी का है। वह इस नाटक में एक जगह कहता है कि -

बूढ़ा आदमीः आजकल में एक बुढ़ी चील को देखता हूँ, वह बहुत बूढ़ी हो चुकी है। वह बस एक पेड़ की टूठ पर बैठी रहती है, बहुत से जवान कौवे उसे चोंच मार कर भागाते हैं। उसी चील की एक समस्या है या शायद जवान कौवों का डर, पर उसने अब ऊपर आसमान में उड़ना छोड़ दिया है। उसके पर झड़ते हैं। (10)

वर्तमान समय के समाज में वृद्धों की समस्याओं तथा उनकी स्थितिओं का प्रसंगवश चित्रण छिटपुट रूप से कुछेक

नाटकों में मिलता है। जैसे हृषिकेश सुलभ द्वारा लिखित बटोही नाटक के कुछ दृश्यों में मिलता है। इस नाटक में एक जगह भिखारी ठाकुर के पिता दलसिंगार ठाकुर उनपर नाराज होते हैं और उनके मित्र रामानंद से जब इसकी शिकायत करते हैं तो रामानंद भिखारी ठाकुर के पिता को समझाते हुए कहते हैं-

रामानंद : देखो दलसिंगर ठाकुर, घर में बुढ़-पूरनिगा का धरम है कि भूल-चूक माफ करें। बात पड़ने पर कभी-कभी नजर फेर ले। सब जानते-बूझाते हुए भी अनजान बन जाए। निखारी गोद के ना है कि हम, चाहे तुम उनके पीछे-पीछे भागें। (11)

प्रसंगानुसार आए इस कथन में वृद्धों को अपने व्यवहार में परिवेश और युग के अनुरूप परिवर्तन की सलाह है। इसका प्रति उत्तर दलसिंगार ठाकुर इस प्रकार देते हैं -

दलसिंगार: हम भी तो यही कह रहे हैं बाबू साहेब कि जिसके कलेजे में बूढ़े बाप-महतारी के लिए मोह-ममता ना है? उसके लिए छाती पीट-पीट कर रोने से कवन लाभ?

इस प्रकार दलसिंगार भी वृद्धों को संवेदनहीन और कर्तव्य विहीन संतान के प्रति व्यर्थ की प्रेम और आशा को त्यागने की सलाह देते हैं तथा स्वयं के भरोसे जीवन-यापन की सलाह देते हैं।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि अस्मितामूलक विषयों पर अन्य विषयों की भांति वृद्धविमर्श पर हिंदी साहित्य में रचनाएँ हुई हैं। हिंदी नाट्य साहित्य में भी इस विषय पर रचनाएँ मिलती है परंतु विषय की गंभीरता और व्यापकता के अनुरूप हिंदी नाट्य साहित्य में इस विषय पर रचनाएँ विरल ही हैं। आज इक्कीसवीं सदी में मानव उपयोगितावादी और व्यक्तिवादी होने के साथ नैतिक रूप से पतित और स्वार्थी होते जा रहा है। भारत जैसे प्राचीन, पारंपरिक और संस्कृति प्रधान देश में भी वृद्ध आश्रमों की संख्या लगातार बढ़ती जा रही है जो वृद्धों की पारिवारिक तथा सामाजिक स्थिति का नग्न यथार्थ है। अतः कहा जा सकता है कि अभी इस दिशा में और काम होना बाकी है।

संदर्भ ग्रंथ

(1) प्रेमचंद्रोत्तर कथा-साहित्य में अस्तित्ववाद डॉ0 शुकदेव सिंह, अनुपम प्रकाशन, पटना-1982. पृष्ठ संख्या-42

(2) अस्तित्ववाद और साहित्य, पंचशील प्रकाशन, यपुर-1984, पृष्ठ संख्या-19

(3) अंत का उजाला, कृष्ण बलदेव वैद, राजकमल प्रकाशन 2012 पुष्ठ संख्या-10

(4) वही. पृष्ठ संख्या-10 (5) वही, पृष्ठ संख्या-72

(6) वही, पृष्ठ संख्या-97 (7) वही, पृष्ठ संख्या-104

(8) वही, पृष्ठ संख्या-106

(9) पीले स्कूटर वाला आदमी, मानव कॉल, इग्नू, पृष्ठ संख्या-150

(10) बटोही, ऋषीकेश सुलभ, राजकमल प्रकाशन-2013, पृष्ठ संख्या-20

(11) वही, पृष्ठ संख्या-20

शोधार्थी, हिन्दी विभाग
कर्नाटक केन्द्रीय विश्वविद्यालय
कड़गंची, कर्नाटक।

कविता

होमो सैपियंस

रघुवीर शर्मा

इतनी बड़ी कायनात में
कितना क्षुद्र सा अस्तित्व है
हमारी पृथ्वी का
समुद्र में पानी की एक बूँद कहें
कि बूँद के अनंत परमाणुओं में
एक परमाणु कहें।

कहें कुछ भी
पर तय है इतना तो
कि क्षुद्रतम अस्तित्व है हमारी पृथ्वी का
इतने बड़े ब्रह्मांड में।

जलचर, नभचर, थलचर
सभी के बीच में
एक छोटी सी प्रजाति
होमो सैपियंस
इतनी बड़ी कायनात में बहुत ही मामूली है उसका
अस्तित्व

उसी नगण्य अस्तित्व वाली प्रजाति में
पैदा हो जाते हैं हिटलर
पैदा हो जाते हैं मुसोलिनी
पैदा हो जाते हैं कुछ ऐसे लोग
जो कर देते हैं जीना हराम
अपनी ही प्रजाति के लोगों का।

उपनिदेशक
राजभाषा विभाग
गृहमंत्रालय

डॉ. अंबेडकर : दलित साहित्य की प्रेरणा और ऊर्जा

प्रो. डॉ. सुनील एम.पाटिल

साहित्य में प्रथम दलित साहित्य का निर्माण हुआ है और उसकी अपनी अलग पहचान बनी है तो इसका भी यही कारण है कि समाज की तरह साहित्य में भी दलितों को हाशिए पर रखा गया तथा उनकी आवाज को उपेक्षित किया गया। दलित क्या सोचता है, वह क्या चाहता है, उसकी आशा-आकाक्षाएँ क्या हैं? वह दीन-हीन है, लेकिन क्यों है? इसका क्या कारण है और कब से उसको इस स्थिति से उबारा जा सकता है? इसे और समुचित रुप से कभी कोई ध्यान नहीं दिया गया। सदियों से दासता और दालन के शिकार दलितों द्वारा अपनी अस्मिता और अस्तित्व की रक्षा के लिए किए जा रहे संघर्ष को रेखांकित नहीं किया गया।

दलितों को उनकी अस्मिता से परिचित कराए, अज्ञान के अधेरे से बाहर निकालकर उनको ज्ञान का सूर्य दिखाए, अन्धविश्वासों, आडम्बरों के जाल से मुक्त कर उनको तर्क और वैज्ञानिकता का पाठ पढ़ाए, हीनता की गर्त हैं। उससे निकालकर उनमें आत्मविश्वास का संचार करें, उनमें आत्म-सम्मान, स्वाभिमान और गौरव से जीने की भावना पैदा करें। किन्तु साहित्य में इन अपेक्षाओं की पूर्ति के लिए दूर-दूर तक कोई गुंजाइश नहीं थी। दलितों के हितों को यहाँ कोई महत्त्व नहीं मिला। कहने की आवश्यकता नहीं है कि सारे के सारे साहित्य में प्रकृति, प्रेम और युद्ध - यही है। मुख्य प्रतिपाद्य रहे है। आधुनिक काल में अवश्य भूख और रोटी को भी प्रतिमा बनाकर आम आदमी की संवेदना और संत्रास को रेखांकित किया गया है। किन्तु दलितों की संवेदना और संत्रास आम आदमी की संवेदना और संत्रास से भिन्न है। जब तक वर्ण और जाति के आधार पर उनको हीनता और हिकारत से देखा जाएगा, जब तक अस्पृश्य समझकर उनकी उपेक्षा और उत्पीड़न होता रहेगा तब तक उनकी सामाजिक स्वीकृति और सम्मान को की संभावना नहीं है। इसलिए वर्ण जाति व्यवस्था और उसके आधार तथा उसके समर्थन में तर्कों और मान्यताओं पर चोट दलित हित में साहित्य की सर्वप्रथम आवश्यकता है। लेकिन साहित्य में इनपर चोट करने का प्रयास प्रायः नहीं हुआ।

इसके अलावा, शोषण, उत्पीड़न और अन्याय के विरुद्ध दलितों में पैदा हो रही चेतना तथा न्याय और समता तथा अपनी अस्मिता और अस्तित्व की रक्षा के लिए उनके द्वारा किए जा रहे आन्दोलनात्मक प्रयासों को भी नजरअन्दाज़ किया गया। साहित्य के इस उपेक्षा भाव ने दलितों को यह सोचने के लिए विवश किया कि साहित्य उनका पक्षधर नहीं है, उनका प्रतिनिधित्व नहीं करता है। उसका रवैया हिन्दुवादी है जो दलित विरोधी है। साहित्य के इस रवैये के कारण हो सामाजिक परिवर्तन और प्रगति को गति नहीं मिल रही है। साहित्य के प्रति इस असन्तोष और आक्रोश ने दलितों का अपना साहित्य स्वयं रचने के लिए प्रेरित किया और आज साहित्य की एक सशक्त धारा के रूप में दलित साहित्य की अपनी पहचान, प्रतिष्ठा एवं महत्त्व है। दलितों को उनकी अस्मिता का अहसास सही मायनों में डॉ. अम्बेडकर ने कराया। उन्होंने ही दलितों को अन्याय और शोषण के खिलाफ संघर्ष करने के लिए प्रेरित किया तथा उनमें यह विश्वास पैदा किया कि वे किसी से कम नहीं है, उनमें भी उपर उठने तथा आगे बढ़ने की सभी संभावनाएँ अन्धविश्वास, आडम्बर और अमानवीयता के खिलाफ मोर्चा कबीर, रैदास प्रभूति निर्गुण संतों ने भी खोला और ज्योतिबा फुले आदि ने भी किन्तु दलित-मानस को गहरे तक झकझोरने तथा उसकी चेतना में व्यापक स्तर पर क्रांतिकारी बदलाव लाने का काम सही मायनों में डॉ. अंबेडकर ने ही किया। यह अलग बात है कि अपने स्वयं के अनुभवों की आग में तपकर कुंदन बने डॉ. अंबेडकर ने सन्तों व अन्य परिवर्तनकारियों से भी बहुत कुछ ग्रहण किया। कुल मिलाकर डॉ. अंबेडकर ही दलित चेतना के सबसे बड़े संवाहक है तथा वहीं दलित साहित्य की प्रेरणा और उर्जा के स्रोत भी है।

दलित साहित्य पर डॉ.अंबेडकर के विचारों का व्यापक प्रभाव है। इसलिए दलित साहित्य को समझने के लिए डॉ.अंबेडकर की वैचारिकता को समझा जाना आवश्यक है। डॉ.अंबेडकर का सपना एक सुदृढ़ समुन्नत सुखी एवं संपन्न राष्ट्र और समाज का सपना था। जिनमें सब समान हो तथा सब परस्पर प्रेम, सहयोग और बन्धुता के साथ रहे। कोई छोटा-बड़ा, ऊँचा नीचा या सछूत-अछूत न हो। इसके लिए उन्होंने जाति-विहीन और वर्ग विहीन समाज की स्थापना की परिकल्पना की।

इस तरह के समाज की रचना सब में हो, यही उनके समय चिन्तन और सृजन का मूल विषय और आधार है। समाज, राजनीति, धर्म कोई क्षेत्र ऐसा नहीं जिनमें डॉ.अंबेडकर ने विचार एवं कार्य न किया हो। वैचारिक रूप से वह राजनीतिक क्षेत्र में लोकतंत्र के, सामाजिक क्षेत्र में मानववाद के आर्थिक क्षेत्र में समाजवाद के, धार्मिक क्षेत्र में बुद्धवाद के तथा दार्शनिक

क्षेत्र में अनात्मवाद के पक्षधर रहे। किसी भी प्रकार की असमानता और अन्याय का उन्होंने सदैव विरोध किया। दलित लोग जुल्म के शिकार है। यह उन्होंने स्वयं देखा और भोगा था। उन पर जुल्म इसलिए होते है क्योंकि वे जुल्मों को सहते हैं। उनका कहना था कि 'अन्याय को सहना अन्याय को बढ़ावा देना है, इसलिए हर हालत में 'अन्याय' का विरोध किया जाना चाहिए। उनका यह भी कहना था कि अधिकार कभी भी मांगने से नहीं मिलते हैं अधिकार छीने जाते हैं। इसलिए अपने मानवीय अधिकारों की प्राप्ति के लिए संधर्ष किए बिना दलितों को उनके अधिकार मिलने की कोई संभावना नहीं है।

डॉ. अंबेडकर ने दलितों को आह्वान किया था कि वे अपनी हीनता को त्याग दे तथा आत्मसम्मान और स्वाभिमान के साथ जीना शुरु करे। दूसरों की दया पर जीवित रहने की बजाए वे स्वावलंबी एवं सक्षम बने। डॉ.अंबेडकर ने दलितों की शिक्षा पर बहुत बल दिया। शिक्षा ही उन्नति और प्रगति का आधार है। शताब्दियों में दलितों के पिछडेपन का एक बड़ा कारण उनका अशिक्षित होना भी रहा है और अशिक्षित होना भी रहा है और अशिक्षा के कारण वे न कभी अपने अधिकारों को समझ सके, न उनकी प्राप्ति के निए आवाज़ उठा सके। न अपने शोषण के कारणों की वे पड़ताल कर सके, न उसे मुक्ति के लिए संघर्ष कर सके। शिक्षित होने के साथ-साथ उन्होंने दलितों को साफ-शुद्ध रहने, साफ कपड़े पहनने, मृत पशुओं का माँस न खाने, घृणित पेशों को त्यागने तथा संगठित होकर रहने का भी आह्वान किया। उन्होंने दलितों को उनका इतिहास बताया तथा हिन्दू धर्म के आत्मा-परमात्मा, अवतारवाद, भाग्यवाद, पुनर्जम जैसी सभी परिकल्पनाओं को वर्ण-व्यवस्था और जातिवाद पर आधारित शोषण-तंत्र के अंग बताते हुए यह समझाया कि ब्राह्मणवाद अर्थात् हिन्दुत्व दलितों का सबसे बड़ा दुश्मन है। इससे मुक्ति पाए बिना दलितों का अस्तित्व और उत्थान संभव नहीं है। यह दलितों के हित में होगा कि जितना जल्दी हो सके वे दलित हिन्दुत्व के चंगुल से मुक्त हो जाएँ। हिंदुत्व के चंगुल से मुक्त हुए बिना राजनीतिक स्वतंत्रता का भी उनके लिए कोई अर्थ नहीं है। दलितों को हिन्दुत्व के चंगुल से मुक्त कराने के लिए उन्होंने स्वयं बौद्ध धर्म की दीक्षा ली तथा लाखों दलितों को बौद्ध धर्म की दीक्षा दिलाकर हिन्दुत्व के चंगुल से मुक्त कराने के लिए उन्होंने स्वयं बौद्ध धर्म की दीक्षा ली तथा लाखों दलितों को बौद्ध धर्म की दीक्षा दिलाकर हिन्दुत्व से उनकी मुक्ति का मार्ग प्रशस्त किया। दलितों के लिए डॉ.अम्बेडकर का स्पष्ट आह्वान था कि यदि आप लोग चाहते हैं कि यह प्रतिष्ठा रहित स्थिति बदले यानी कि आप लोग छुआछुत के कलंक एवं मनुष्यों के निम्न स्तर में मुक्ति पाना चाहते हैं तो इसके सिवाय कोई अन्य उपाय नहीं है कि आप लोग हिन्दू धर्म व समाज की गुलामी में, जिसके साथ सदियों से चिपके है, सम्बन्ध तोड दे।' इसलिए डॉ अंबेडकर ने दलितों को कराई बाईस प्रतिज्ञानों में हिन्दू धर्म के देवी-देवताओं की पूजा, ब्राह्मणी द्वारा संस्कार कराने और पिण्डदान, श्राद्ध आदि कर्मकाण्डो को त्यागने तथा केवल वैज्ञानिक और तक आधारित बातों को ही स्वीकार करने का निर्देश दिया।

डॉ. अम्बेडकर के ये विचार और मान्यताएँ ही दलित साहित्य का आधार और प्राण हैं। कविता, कहानी, नाटक, निबन्ध, आत्मकथा और उपन्यास सभी विधाओं में लिखा जा रहा दलित साहित्य डॉ. अम्बेडकर के इन्हीं विचारों से प्रेरित और अनुप्राणित है। उसका प्रमुख स्वर हिन्दूवादी मूल्यों मान्यताओं और विश्वासों के प्रति नकार और विद्रोह का स्वर है जिनका आधार वर्ण-जाति व्यवस्था है। दलित साहित्य के प्रारंभिक दौर की रचनाओं में जहाँ रैदास आदि सन्तों तथा गाँधी और आर्य समाज आदि के सुधारवाद का प्रभाव व्याप्त था तथा अपनी यातना का बयान अर्थात् दीन-हीन अवस्था का चित्रण कर समाज की संवेदना को झकझोरने का प्रयास था वहीं आज की रचनाओं में डॉ. आंबेडकर की निर्भीकता, तार्किकता और औज व्याप्त है।

आज लिखे जा रहे दलित साहित्य का स्वर न्याय के लिए गुहार कर नहीं संविधान द्वारा प्रदत्त अपने अधिकारों को प्राप्त करने के लिए संघर्ष का स्वर है। ये रचनाएँ वास्तव में न केवल सदियों में सुषुप्त पड़े दलित की चेतना को जागृत करने में अलार्म का काम करती है बल्कि अन्याय और शोषण के खिलाफ उठ खड़े होने का आह्वान भी करती है, उसे शक्ति स्फूर्ति और विश्वास से भरती है। डॉ. अम्बेडकर के चिन्तन पर बुद्ध कबीर और ज्योतिबा फुले इन क्रान्तिकारी महापुरुषों के विचारों का व्यापक प्रभाव था। दूसरे शब्दों में डॉ. अंबेडकर का चिन्तन बुद्ध कबीर और फुले के विचारों का एक घोल है जिसमें बुद्ध का गाम्भीर्य, कबीर का साहस और फुले की जीवटता का समावेश है। स्वाभाविक है कि दलित साहित्य पर बुद्ध, कबीर और फुले के विचारों का प्रभाव सहज ही देखा जा सकता है। श्री माताप्रसाद, पारसनाथ, डॉ. एन. सिंह, डॉ. सोहनपाल सुमनाक्षर, डॉ. पुरुषोतम सत्यप्रेमी आदि साहित्यकार जहाँ पर्याप्त रूप से कबीर तथा उनके साथ-साथ रैंदास और दूसरे निर्गुण सन्तों में गहरे तक प्रभावित होकर सृजन कर रहे है तो एन. आर. सागर, लक्ष्मी नारायण सुधाकर, डॉ. कुसुम वियोगी, मोहनदास नैमिशराय और बुद्धशरण 'हंस' प्रभृति साहित्यकार बुद्धबाद में अधिक प्रभावित है।

दलित साहित्य में कई ऐसे लेखक है जो डॉ.अम्बेडकर को स्वीकारते है किन्तु बौद्ध विचारों के प्रति प्रायः उदासीन है। इनमें डॉ. धर्मवीर प्रभूति लेखक भी है जिनकी दृष्टि में डॉ. अम्बेडकर द्वारा बौद्ध धर्म की दीक्षा दलितों के हित में उचित नहीं है क्योंकि बौद्ध धर्म दलितों की समस्याओं को हल नहीं करता है। उनकी दृष्टि में बौद्ध धर्म जिस दुःख पर आधारित है। वह दलित की पीड़ा से अलग की चीज़ है। अर्थात् बुद्ध की समस्या एक राजकुमार की समस्या थी और उसी का समाधान बुद्ध ने खोजा जबकि दलितों की समस्याएँ अलग हैं, इसलिए धार्मिक स्तर पर उनका समाधान खोजने का समुचित तरीका दलितों के अपने नए धर्म की स्थापना के अलावा और कोई नहीं है।

डॉ. धर्मवीर के अनुसार डॉ. अम्बेडकर की बौद्ध धर्म की दीक्षा लेने की बजाए अपना प्रथम धर्म रूपायित करना चाहिए था। डॉ. श्योराज सिंह बेचैन, माताप्रताप, सुमनाक्षर आदि कई लेखक डॉ. धर्मवीर के इस मंत्र का समर्थन करते हैं। नारी की शिक्षा और समानता पर भी डॉ. अंबेडकर ने बहुत बल दिया है। उनकी मान्यता भी कि एक स्त्री को शिक्षित करना एक परिवार को शिक्षित और संस्कारित करना है, विशेषतः दलित स्त्रियाँ जब तक शिक्षित नहीं होंगी तथा पुरुषों के साथ कभी में कन्धे कन्धा मिलाकर नहीं चलेगी तब तक हमारा सामाजिक आन्दोलन सफल नहीं होगा। डॉ. अम्बेडकर के इस विचार को मूर्त करते हुए न केवल डॉ. कुसुमलता मेघवाल, डॉ. सुशीला टाकभौर, डॉ. नीरा परमार, कावेरी, डॉ विमलधौराट, डॉ. तारा परमार, रजतरानी 'मीनू' और रजनीतिक आदि कई महिला लेखिकाएँ साहित्य सृजन के क्षेत्र में अपना योगदान दे रही हैं। बल्कि कई दलित लेखक भी नारी शिक्षा और स्वातंत्र्य को अपनी रचनाओं का प्रतिपाद्य बनाकर अम्बेडकर के इस विचार को मूर्त कर रहे हैं।

दलित साहित्य का सर्वाधिक और वर्ण और जाति के नकार पर है। जाति का नाश हुए बिना सामाजिक समता की कोई सम्भावना नहीं है। डॉ.अम्बेडकर ने सामाजिक समता के मार्ग में जाति को सबसे बड़ी माना था। जाति के रहते वर्ग की अवधारणा भी सफल नहीं हो सकती है। इसलिए दलित साहित्य का नकार, गुस्सा और आक्रोश जाति और उसका शोषण करने वाली व्यवस्था पर हो सबसे अधिक है। इसलिए वह आग भी लगाना चाहता है तो समाज में तत्कालीन व्यवस्था में परिवर्तन हो। राष्ट्र और संविधान को दलित साहित्य सर्वोच्च महत्त्व देता है। राष्ट्र और संविधान की उपेक्षा, अपमान या उसके विरोध को दलित साहित्य में कोई जगह नहीं है। आक्रोश में आकर यदि एन. आर सागर जैसा कवि यह कह भी देता है कि "मैं लगा दूँगा अब आग इस देश में" तो इसका संकेत भी व्यवस्था परिवर्तन की ओर होता है न कि राष्ट्र विरोध को ओर।

जहाँ तक दलित साहित्य में प्रयुक्तमिथकों का सम्बन्ध है रामायण, महाभारत और पौराणिक कथाओं के अनेक उपेक्षित पात्र दलित साहित्य के मिथक बने है। इनमें एकलव्य, कर्ण, शम्बूक, शबरी, बालि, हिरण्यकश्यप से लेकर प्रमथ्यू तक को मिथक बनाकर दलित साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं के ज़रिए वहीं अपने जीवन की घनघोर यातनाओं को चित्रित कर समाज की संवेदना को गहरे तक झकझोरा है तो कहीं ब्राह्मणवाद के शोषकों को कठघरे में खड़ा कर उनसे जवाब माँगते रहे। कहीं अपने तक बाणों से वर्णवादियों को बींधकर उन्हें धराशाई किया है तो कहीं परिवर्तनकामी नेतना को एक आयाम दिया है।

दलित साहित्य में इन मिथकों का प्रयोग भी बहुत हद तक डॉ. अम्बेडकर के प्रभाव का परिणाम है। उन्होंने स्वयं कई स्थानों पर सामाजिक चेतना के निमित्त इन मिथकों का प्रयोग किया है। कुल मिलाकर, दलित साहित्य का स्वर सामाजिक न्याय का स्वर है। उसका तेवर चाहे कितना ही तीखा या विद्रोही हो किन्तु उसकी दृष्टि रचनात्मक है। इसलिए वह ध्वंस भी करता है तो नव निर्माण के लिए, खोजता भी है तो रचनात्मकता के बीज ढूंढने के लिए और कहने की आवश्यकता नहीं है कि दलित साहित्य की यह रचनात्मकता निस्सन्देह अम्बेडकरवाद के विचार और दर्शन के प्रभाव का परिणाम है जिन्हें संक्षेप में ताराचन्द खाण्डेकर के शब्दों में इस प्रकार कहा जा सकता है- एक व्यक्ति एक मूल्य को मानकर स्वतन्त्रता, ममता और बंधुत्व अर्थात् सामाजिक नैतिकता को स्वीकार करते हुए व्यक्ति का सर्वांगपूर्ण कल्याण साधने का संसदीय जनतन्त्रात्मक जीवन मार्ग अम्बेडकरवाद है।

संदर्भः

1) दलित विमर्श और हम डॉ. एम.फिरोज खान
2). दलित साहित्य शरणकुमार लिंबाले
3) दलित विमर्श के विविध आयाम डॉ.विरेंद्रसिंह
4) भारतीय दलित साहित्य परिप्रेक्ष्य पुत्रीसिंह
5) 21वी सदी में दलति आन्दोलन डॉ.जयप्रकाश कर्दम
6) दलित साहित्य समग्र परिदृश्य डॉ.मनोहर भंडारे

हिन्दी विभाग
आर.सी. पटेल कला
वाणिज्य एवं विज्ञान महाविद्यालय
शिरपुर, जिना चुलियों
ईमेलः- drsmpatil 1968@gmail.com

कमर मेवाड़ी की कहानियों में आधुनिक युगबोध

रजाक शाह कादरी

सारांश कमर मेवाड़ी का समकालीन कथाकारों में विशिष्ट स्थान है। इनकी कहानियों का एक अलग ही कथा संसार है, जो अन्य रचनाकारों से अलग पहचान दिलाती है। वस्तुतः कमर मेवाड़ी ऐसी प्रकृति के कथाकार हैं, जो वाणी के द्वारा नहीं, बल्कि अपनी लेखनी के माध्यम से स्वयं को अभिव्यक्त करते हैं। वर्तमान जीवन की विसंगति, विषमतापूर्ण स्थितियाँ और उनमें व्याप्त स्वार्थ से वशीभूत अमानवीय षडयंत्र आम आदमी को जीवन जीने के अधिकार से दूर कर रहे हैं। इस प्रकार की असहनीय स्थितियाँ रचनाकार को सूजन के लिए प्रेरित करती हैं। यही विशेषता कमर मेवाड़ी की कहानियों में देखी जा सकती है। वे अपनी रचनाओं के माध्यम से व्यक्ति ही नहीं अपितु सम्पूर्ण समाज की पहचान कराना चाहते हैं। इनकी कहानियों में सूक्ष्मता, गहनता और अन्तर्मन की गहराइयों की पड़ताल है, आन्तरिक संघर्ष का चित्रण है। जो आज की यथार्थ जिन्दगी के बहुत करीब है। अपनी कहानियों में आधुनिक और परम्परागत जीवन मूल्यों के बीच संघर्षों, विघटित होते जीवन मूल्यों एवं स्त्री पुरुष सम्बंधों के मध्य बनते बिगड़ते रिश्तों को चित्रित किया है। तथा वर्तमान सामाजिक व्यवस्था के प्रति सचेत और जागरूक किया है। सूक्ष्म से सूक्ष्म संवेदनाओं को कहानियों के माध्यम से उकेरना उनकी कहानी की खूबी है। कमर मेवाड़ी की व्यक्ति , समाज और रचना के प्रति गहरी अभिरुचि है जो इन्हें समाज के एक सजग प्रहरी के रूप में प्रतिस्थापित करती है।

बीज शब्द : सृजनात्मकता, युगबोध, जीवनानुभूति, प्रौद्योगिकी, दृष्टिकोण, अजनबीपन, परिर्वतनशील, आधुनिकता, मूल्य संक्रमण।

कमर मेवाड़ी का कथा : साहित्य समकालीनता के परिप्रेक्ष्य में - समकालीन कथा साहित्य में मानव और उसके जीवन यथार्थ को नए घरातल पर अभिव्यक्त किया गया है। इसमें जीवन की भयावह स्थितियों व समस्याओं के बीच जूझते सामान्य जन को चित्रित कर युगबोध का अंकन किया है। आधुनिक और वैज्ञानिक तार्किक जीवन दृष्टि को स्वीकार करने से जहाँ एक ओर मानव जीवन तेज़ी से बदल रहा है, वहीं दूसरी ओर जीवन जटिलता की ओर अग्रसर होता नजर आ रहा है। ऐसी स्थिति में मनुष्य की अस्मिता और अस्तित्व पर प्रश्न चिह्न लगना स्वाभाविक है। समय के साथ-साथ सारे संदर्भ और स्थितियाँ बदलती जा रही हैं, जिससे मनुष्य के लिए राह बनाना कठिन होता जा रहा है। वर्तमान जीवन की गति और स्थिति को रचनात्मक पृष्ठभूमि पर अभिव्यक्ति देने का अद्वितीय और सार्थक प्रयास जिन कथाकारों ने किया है, उनमें कमर मेवाड़ी का नाम अग्रगण्य है। समकालीन कथाकारों में अपनी अलग पहचान बनाने वाले कमर मेवाड़ी समृद्ध जीवनानुभूति के धनी हैं, जिसे वे अत्यन्त सूक्ष्मता से परखते हुए रचना धरातल पर उतारते हैं। उनकी कहानियाँ समाज के किसी एक वर्ग से संबंधित नहीं हैं, बल्कि वे व्यक्ति, समाज और उसके जीवन के बृहद रूप से संबंधित हैं। उनमें मानव जीवन के अनेक पक्ष उद्घाटित होते हैं।

वर्तमान बदलते परिप्रेक्ष्य में उनमें कहीं तो स्त्री पुरुषों के बनते बिगड़ते रिश्तों की व्याख्या मिलती है तो कहीं व्यक्ति के अन्तर्मन एवं अन्तर्विरोधों का चित्रण मुखरित होता है। उनकी कहानियों का पात्र कहीं जीवन से जूझता दिखाई देता है, तो कहीं विषमताओं, विसंगतियों, संत्रास, अकेलेपन और घुटन से आहत व पीडित दिखाई देता है। उनकी कहानियाँ पुरातनता और आधुनिकता, भारतीय और पाश्चात्य मूल्य संक्रमण, नगर और महानगर, उच्च वर्ग तथा निम्न व मध्यवर्ग के बीच कश्मकश आदि का सशक्त चित्र प्रस्तुत करती हैं। वस्तुतः समकालीन कहानी का परिदृश्य अत्यंत दीर्घ और विस्तृत है। अतः इसे सहेजने के लिए एक बड़ी योजना की आवश्यकता है। कमर मेवाड़ी की कहानियों में चित्रित आधुनिक युगबोध को निम्नलिखित बिन्दुओं के द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है-

कमर मेवाड़ी का सामाजिक सरोकार एक दृष्टि - कमर मेवाड़ी का सृजनात्मक कृतित्व बहुआयामी रहा है। उनकी प्रथम लेखकीय दृष्टि कहानी से मिलती है। कमर मेवाड़ी की प्रथम कहानी 'साप्ताहिक हिंदुस्तान' में 1959 में छपी। उसके बाद की कहानियाँ मधुमति, अभिनव संबोधन तथा अनेक चर्चित व प्रसिद्ध पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुईं। उन्होंने तकरीबन सौ से भी अधिक कहानियाँ लिखी हैं जो विभिन्न कथा संग्रहों में संग्रहीत हैं। साथ ही कुछ कहानी संग्रह से बाहर नियमित रूप से विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई है। उनके कहानी संग्रहों के नाम है - रोशनी की तलाश में, लाशों का जंगल, ऊँचे कद का आदमी, जिजीविषा और अन्य कहानियाँ तथा चुनी हुई कहानियाँ आदि।

अपने लेखन के साथ अंतर्मुखी होकर भी एक बड़े विस्तृत उद्देश्य से अपनी रचनाओं के माध्यम से अभिव्यक्त करते चले जाते हैं जो उनकी कथा साहित्य में स्पष्ट दिखाई देता है। वे अपनी कहानी लेखन के बारे में लिखते हैं कि "आज से पचास साल पहले जब मेरी कहानी साप्ताहिक हिंदुस्तान में प्रकाशित हुई उसके बाद तो मेरे पर ही निकल आए, मैं निरंतर लिखता और छपता रहा। दैनिक साप्ताहिक और मासिक पत्रिकाओं में मेरी कविताएँ कहानियाँ और लेख प्रकाशित होते रहे और मैं खुशबू सनी हवाओं में तैरता रहा।"[1] सामाजिक रूप से प्रतिबद्ध कमर मेवाड़ी का मानना है कि "मेरी कहानियाँ आज के विकसित युग के पाठकों का न केवल मनोरंजन कराती है अपितु उनके अनुभव को विस्तार भी देती है।" उनकी कहानियाँ घटना मात्र न होकर जीवन के विरोधाभासों, विसंगतियों, अंतर्द्वन्द्व एवं अंतर्विरोध के गुण की सामाजिक सरोकारों के परिप्रेक्ष्य में रचनात्मक अभिव्यक्तिहै। उनकी कहानियों का कथ्य बहुत सशक्त है जो पाठकों को अपनी ओर आकर्षित करता है। मानव जीवन

को समझने के लिए कमर मेवाड़ी की कहानियाँ ऐसा माध्यम है जो पाठक के अंतजर्गत और अंतर्मन में व्यापकता लाता है। वे न तो बोध कथाएँ प्रतीत होती है और नहीं पंचतंत्र की कहानियाँ। अपितु उनमें मानव के अंतजर्गत की गहरी रचनात्मक अभिव्यक्ति के दर्शन होते हैं।

कमर मेवाड़ी की कहानियाँ आधुनिक : युगबोध के संदर्भ में - आधुनिकता को हम अंग्रेज़ी शब्द 'मॉडर्निटी' के संदर्भ में समझ सकते है। इसका शब्दकोषीय अर्थ है - आधुनिक होने का भाव; एक ऐसा दृष्टिकोण जो मनुष्य की नियति को पूर्व परंपरा से संबंद्ध न मानकर नए युग की स्थितियों के अनुसार परिभाषित करें। डॉ नरेंद्र मोहन के अनुसार "इसे आप आधुनिक युग की खास मानसिकता, खास दृष्टि कह सकते हैं। खास इस माने में कि यह मध्यकालीन मानसिकता और दृष्टिकोण से अलग है, क्योंकि इसके मूल में वैज्ञानिकता, टेक्नोलॉजी और औद्योगीकरण की संस्कृति है। इसलिए आधुनिकता आधुनिक जिंदगी के दबावों, आधुनिक आदमी की सोच और चिंतन उसके अस्तित्व, उसकी द्वंद्वपूर्ण, प्रश्नानुकूल और संघर्षशील मानसिकता से बना एक दृष्टिकोण है।"[2] आज वैज्ञानिक, तकनीकी एवं प्रौद्योगिकी के विकास ने व्यक्तिके जीवन को बदला है। जिससे महानगरीय जीवन की जटिलता तथा परिवेश की तनाव भरी स्थिति व्यक्तिके अंतर व बहिर्जगत प्रभावित कर रही है। निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि आज के आधुनिक जीवन को नए अर्थ में यथार्थपरक दृष्टि से देखने की प्रवृत्ति आधुनिकता बोध है। जिसमें मानवीय मूल्यों के टूटने से जीवन की दशा व दिशा को देखा जा सकता है।

कमर मेवाड़ी अपनी सृजनात्मक प्रक्रिया में अपने कथा लेखन के प्रति सजग रहे हैं। वे सूक्ष्म परीक्षण से अपनी रचनाओं में विस्तृत जीवन अनुभवों से विषयों का चयन करते हैं। और उनमें सजीवता लाने के लिए अपने पात्रों, स्थितियों और घटनाओं से लगातार जुड़े रहते हैं। वे खुद अपनी कहानियों की मौलिकता के संदर्भ में लिखते हैं कि "कहानी के लिए मैं काल्पनिक पात्रों का सृजन नहीं करता, न कहानी लिखने के लिए कोई रूपरेखा बनाता हूँ। मेरी सारी कहानियाँ यथार्थ के धरातल पर खड़ी हैं। कहानियाँ मेरे आस-पास से गुजरती रहती हैं। कई चेहरे इर्द-गिर्द मंडराते रहते हैं। मैं किसी की परवाह नहीं करता, न कहानियों की न चेहरों की।"[3]

माधव नागदा कमर मेवाड़ी की कहानियों के संदर्भ में लिखते हैं कि "आज़ादी के बाद की मोहभंग की स्थितियाँ, आपातकाल की आहट, संपूर्ण क्रांति आंदोलन और उसका भटकाव, श्रमिक चेतना, पूँजीवाद के फैलते डैने, अमीर और गरीब के मध्य चौड़ाती खाई, सांप्रदायिक विद्वेष, भ्रष्टाचार के बोझ तले दूभर होती जा रही ईमानदार आदमी की जिंदगी, मनुष्य का बढ़ता एकाकीपन एवं तदजन्य मानसिक अस्थिरता आदि अंडरकरंट की तरह इन कहानियों में मौजूद है।"[4]

इस प्रकार उनकी कहानियों में विषय वस्तु की दृष्टि से सामाजिक आर्थिक विषमता राजनैतिक नौकरशाही आधुनिक युग को मानवीय भोग तृप्ति आदि समकालीन प्रवृत्तियों की चर्चा हुई है। कमर मेवाड़ी अपनी कहानियों में आधुनिक युग बोध को निम्नांकित तथ्यों के माध्यम से स्पष्ट करने का प्रयास किया है।

आधुनिक बनने की अंधी दौड़ - आज का मानव आधुनिक बनने की दौड़ में इतना अंधा हो गया है कि वह अपने मानवीय मूल्यों को भी तार-तार होने से रोक नहीं पाता। कमर मेवाड़ी का कथा साहित्य मानव की आधुनिक बनने की इस दौड़ को बेनकाब करता है। आधुनिकता के इस बदलते जीवन में बच्चों को अपने माता-पिता का ख्याल रखने का भी समय नहीं मिलता। वे अपनी जिंदगी में इतने व्यस्त हैं कि खुद के बारे में उनको सोचने के लिए भी समय नहीं है। कमर मेवाड़ी की कहानी 'बदलते रिश्ते' में सोमेश जब दस साल बाद पिताजी से मिलने आता है काम की व्यस्तता के कारण उसे अपने पिता से मिलने का समय तक नहीं मिलता है। कहानी के अंत में "टैक्सी से उतरकर प्लेन पर सवार हुआ तो वह कुछ हल्का हो चुका था। उसे इस बात की खुशी थी कि उसके माता-पिता दोनों जिंदा है और वह उनसे मिलकर अपने नियुक्तिस्थान पर जा रहा है। प्लेन में बैठे-बैठे ही उसने प्लान बनाया कि अबकी बार जब दिवाली की छुट्टियाँ होंगी तब वह अपने माता-पिता के पास अधिक दिन रुकेगा। उसने अपना सूटकेस खोला, उसमें से नए साल की डायरी निकाली और गिनने लगा कि दिवाली की छुट्टियों में अब कितने दिन शेष हैं। आधुनिक बनने की दौड़ में धन का महत्व इतना बढ़ा दिया है कि आर्थिक स्तर पर ही मुख्य रूप से पारिवारिक संबंध बदल रहे हैं। एक व्यक्ति जो नौकरी करता है तथा अचानक उसकी नौकरी छूट जाने से उत्पन्न स्थिति जिसमें बेकारी के साथ पेट की आग शायद वह सबसे बड़ी आग है। धीरे-धीरे सब कुछ छीन लेती है।

'उनकी जीत' कहानी मूल्य संक्रमण को रेखांकित करती है। कहानी में इलाही बक्स अपने आपको आधुनिक मानते हैं। इस आधुनिकता के चक्कर में उन्होंने अपनत्व को छोड़ दिया है ऐशो आराम ही उसकी जिंदगी का मूल रह गया है। "जहाँ पहले एक ट्रक माल चार - पाँच हज़ार रुपए में बिकता था उतना ही माल अब पचास साठ हजार रुपयों में बिकने लगा। इलाही बख्श के हाथ से पुरानी साइकिल छूट गई और उसकी जगह मारुति कार ने ले ली। उन्होंने अपने पुराने दबडेनुमा घर को गिराकर का एक आलीशान इमारत में बदल दिया। जिसमें सभी आधुनिक उपकरण मौजूद थे। वह अक्सर बीड़ी पिया करता था। अब उनके होठों के बीच कीमती सिगार दबा रहता। गंदे चीकट कपड़ों की जगह अब खादी के धवल वस्त्र शरीर की शोभा बढ़ा रहे होते।'

अकेलापन, अजनबीपन एवं खालीपन 'नीली झील की गहराई' कहानी में परिवर्तित सामाजिक मूल्य दृष्टि से उत्पन्न अकेलापन और व्यक्तिवादी दृष्टिकोण से जीवन में आई रिक्तता को व्यक्त किया गया है। नीरा और दिनेश का मित्र अपने अकेलेपन को दूर करने के लिए कॉफी हाउस में मिलते हैं। यहाँ पर उनका सूनापन और अकेलापन पीछा नहीं छोड़ता। कॉफी हाउस में नीरा कॉफी समाप्त कर खाली प्याले की ओर संकेत करते हुए कहती है। "मुझे कभी-कभी अपनी जिंदगी कॉफी के

इस खाली प्याले की तरह लगती है। रिका और सूनी सूनी। देखना एक दिन सब यूँ ही समाप्त हो जाएगा और हम आश्चर्यचकित हो देखते रह जाएंगे।"[7]

'दस साल बाद' कहानी अकेलापन और खालीपन को मानवीय जीवन के धरातल पर अभिव्यक्त करती है। इस कहानी में प्रेम संबंधों में आये अलगाव से उत्पन्न त्रासदी का अंकन है। कहानी की नायिका शीरी के खालीपन की स्थिति का वर्णन लेखक इस प्रकार करता है "उसे विश्वास था कि एक दिन वह लौट कर वापस आएगा पर आप जानते ही हैं, भला शहर से ही वापस लौट कर आया है? यह उसकी याद में बावली हो गई। उसे खाने पीने का होश नहीं रहा। वह इधर से उधर दौड़ती फिरती। अपने आम्रकुंज में जाकर गीत गाती और अकेले में बातें करती रहती। एक दिन उसे भी यह विश्वास हो गया कि शायद अब वह कभी लौटकर नहीं आएगा और उसी दिन रात के समय वह इस जलकुंड में कूद पड़ी।"[8]

महानगरीय जीवन बोध-महानगरीय परिवेश आधुनिकता से जुड़ा एक महत्वपूर्ण पहलू है। महानगरीय परिवेश और जीवन की अभिव्यक्तिही महानगरीय बोध है। कमर मेवाड़ी की कहानियों में आधुनिक नगरीय जीवन की अनेक विसंगतियाँ एवं विद्रूपताएँ बड़े ही मार्मिक ढंग से व्यक्त हुई हैं। कमर मेवाड़ी की एक और कहानी शहर की जिंदगी से ऊबे हुए पति-पत्नी की कहानी है। जो अंत में एक दूसरे से मुक्त होना चाहते हैं। और वे हो भी जाते हैं। "सुबह जब पत्नी उठी, उसने चाय बनाकर मेज पर सजाई और पति की तरफ देखा तो वह देखती ही रह गयी। पति का निर्जीव शरीर पलंग पर पड़ा था और पत्नी को चिढ़ाती हुई पास ही लुढ़की पड़ी थी नींद की गोलियों की खाली शीशी।"[9] इस तरह शहर के अनात्मीय होते हुए रिश्तों के अंतिम नतीजों में सिर्फ मौत या खुदकुशी ही नज़र आती है।

बेरोजगारी की भयावह स्थिति आधुनिक जीवन बोध का एक बहुत ही अहम पहलू बेरोजगारी है। कमर मेवाड़ी की 'लाशों का जंगल' कहानी गरीबी, बेबसी और बेरोजगारी की अंतर्थथा को उकेरती एक सशक्त कहानी है। इसमें पिता की आर्थिक मजबूरियों को तोडकर नन्हा गुड्डू असमय ही बुजुर्ग हो गया है। दूसरी ओर रोजगार की तलाश में घर से भागा डेविड असाध्य बीमारी को गले लगाए लगभग विक्षिप्त अवस्था में घर वापस आता है। अंततः उसकी ज़िंदगी की नाव मझधार में ही डूब जाती है। कमर मेवाड़ी की 'धुंध में फंसे लोग' कहानी मजदूरों की दयनीय स्थिति, उनकी व्यवस्था के प्रति लाचारी, विवशता और बेरोजगारी आदि के प्रति पुरजोर प्रहार करती है।

विवाह का विरोध - कमर मेवाडी की कहानियो में ऐसे चरित्र विद्यमान हैं जो विवाह संस्था का विरोध करते हैं। जिसे परिवार नाम की संस्था लगभग अनुपस्थित है। अधिकांश स्त्री पात्र अपने पुरुष मित्र के साथ बिना किसी अपराधवोध के उन्मुक्त भाव से परस्पर यौन संबंध रखते हैं। इनकी बावजूद कहानी में नायिका किसी अन्य से विवाह करके भी सुहागरात मनाने अपने प्रेमी के पास पहुँचती है और कहती है- "अजीत! शादी हो जाने के बावजूद भी मैं तुम्हारे लिए आई थी। सिर्फ तुम्हारे लिए। मैं चाहती थी शादी की यह रात अविस्मरणीय बन जाए और अगली बार जब हम मिलें इस रात की याद को ताजा करते रहें।"[10] 'हज़ार आँखों वाला चेहरा' कहानी में साठ साल के सेठ की युवा पत्नी सलमा अपने पति की मृत्युकामना मन में लिए कथा नायक से प्यार करती है। इसी तरह 'बिस्तर में धँसा दिन' कहानी की नायिका मौका पाकर पति के दोस्त से शारीरिक संबंध स्थापित कर लेती है। 'इतने सारे सुख' कहानी में अपने प्रेमी से नहीं बल्कि एक धनाढ्य से विवाह करके आधुनिक सुख सुविधाओं के उपादानों में सुख ढूंढने का प्रयास करती है। लेकिन सच यह है कि इन सब बाहरी तड़क-भड़क के बीच उसे अपने प्रेमी का अभाव बुरी तरह खलता है। और वह अभिशप्त की तरह पगलायी सी इधर उधर फिरती रहती है।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि कमर मेवाड़ी समकालीन कथाकार के रूप में मानव और समाज के कई अनुगूढ रहस्यों और अनखुली परतों को उजागर करते हैं, जिसकी अपेक्षा मेवाड़ी जैसे रचनाकार से स्वाभाविक रूप से ही की जा सकती है। आधुनिकता बोध के संदर्भ में उनका मानना है कि आधुनिकता किसी एक तत्व से नहीं बनी है, अपितु इसका निर्माण अनेक बाहय तत्वों के समावेश से हुआ है। उसमें तात्कालिकता अधिक है। अतः इसे फैशन भी कहा जा सकता है। आधुनिकता की प्रकृति परिर्वतनशील है अतः समय, देशकाल और वातावरण के अनुरूप इसमें बदलाव आता रहता है। आज जो आधुनिक है, कल यह आधुनिक न कहलायी जाए। आधुनिकता के इसी स्वरूप को अपनी कहानियों में मानवीय संवेदनाओं के आधार पर प्रस्तुत किया है। कहानीकार अपनी कहानियों में व्यक्ति को सचेत करते हैं कि आधुनिकता के चक्कर में इतने भी मत फँस जाएँ कि स्वत्व को ही भूल जाओ।

संदर्भ

1. मेवाडी, कमर (1999) राजस्थान साहित्यकार प्रस्तुति उदयपुर, पृष्ठ-09
2. मोहन, नरेन्द्र (1982) आधुनिकता के संदर्भ में हिन्दी कहानी, जय श्री प्रकाशन, पृष्ठ -13
3. सृजन कुंज, (संस्करण 2019) त्रैमासिक पत्रिका, अंक 23, पृष्ठ-22, गंगानगर
4. जनपथ पत्रिका, (जुलाई-2016) पृष्ठ 85
5. मेवाडी, कमर (संस्करण 1990) उसका सपना, सम्बोधन प्रकाशन, कांकरोली, पृष्ठ 15
6. मेवाडी, कमर (2017) चुनी हुई कहानियाँ, अमन प्रकाशन, कानपुर, पृष्ठ- 52
7. मेवाडी, कमर (संस्करण 2012) जिजीविषा और अन्य कहानियाँ, शिल्पायन प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ-20
8. मेवाडी, कमर (संस्करण, 2000) ऊँचे कद का आदमी, आदर्श प्रकाशन मन्दिर, बीकानेर, पृष्ठ -76
9. मेवाडी, कमर (संस्करण, 1990) उसका सपना, संबोधन प्रकाशन, कांकरोली, पृ.68
10. मेवाडी, कमर (1985) रोशनी की तलाश, संबोधन प्रकाशन, कांकरोली, पृ.18

राज ऋषि भर्तृहरि मत्स्य विश्वविद्यालय
अलवर (राजस्थान) Email -r.s.kadari.786@gmail.com

हिन्दी साहित्य के विकास में प्रवासी साहित्यकारों का योगदान

डॉ.सुधा टी

प्रवासी भारतीय से मतलब है, 'जो किन्हीं कारणों से विदेश में कुछ अवधि के लिए या फिर सदैव के लिए वहाँ बस गये हैं किन्तु भारत से उनका सम्पर्क बना हुआ है। ये भारत से दूर होते हुए भी प्रवासी साहित्य के कारण बहुत निकट होते हैं। विश्व भर में भारतीय फैले हैं। इसलिए ही भारतीय संस्कृति को विश्व भर में फैलाने में ये समर्थ हुए। डॉ. पुष्पेन्द्र कुमार शर्मा के मत में, प्रवासी साहित्य से यह स्पष्ट है कि भारत से विदेश चले गये और वहाँ स्थाई या अस्थाई रूप से बस गये लोग तथा उनकी संतानों ने भारत, भारतीयता तथा भारतीय भाषाओं विशेषकर हिन्दी भाषा में लेखन, अध्ययन, अध्यापन द्वारा अपना योगदान दिया है और वे अभी भी सहयोग कर रहे हैं। डॉ. पूनम अग्रवाल, 'प्रवासी हिन्दी साहित्य अवधारणा एवं चिंतन में कहते हैं कि 'हिन्दी का प्रवासी साहित्य, हिन्दी साहित्य को अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूप प्रदान करता है। इसकी एक स्वतंत्र सत्ता है। यह भारतेतर देशों को भारत से जोड़ने वाले सेतु का कार्य करता है। यह सेतु विश्वव्यापी हिन्दी साहित्यिक समाज का निर्माण करता है।'[1]

कविता, उपन्यास, कहानी, नाटक, एकांकी, महाकाव्य, खण्डकाव्य, अनूदित साहित्य, यात्रा वृत्तांत, आत्मकथा आदि साहित्य के विभिन्न विधाओं का सृजन प्रवासी हिन्दी साहित्य में विद्यमान हैं। मृदुला गर्ग प्रवासी साहित्य के बारे में कहती है कि प्रवासी साहित्य को अलग करके देखने की बजाय उसे हिंदी की मुख्यधारा में स्थान दिया जाए।

हिन्दी एवं अंग्रेज़ी में ख्यातिप्राप्त बहुत कम प्रवासी रचनाकारों में सुनीता जैन सशक्त हस्ताक्षर हैं। भारत में ही नहीं बल्कि विदेशों में भी उनका साहित्य पाठ्य-पुस्तकों में लगा हुआ है। 'सुनीता जैन का लेखकीय सामर्थ्य उनकी प्रवासी कहानियों में उभरकर आता है। फिर भी देशी मिट्टी की कुछ कहानियाँ हिन्दी साहित्य को समृद्ध बनाती हैं। हमने विस्थापन के रक्तरंजित दृश्य देश के विभाजन के समय देखे हैं। इन कहनियों में अपनी इच्छा और शक्ति से प्रवास करनेवाले लोगों का जीवन भी कम रक्तरंजित नहीं है। आत्म-निर्वासित आत्माओं के खून से सनी ये कहानियाँ कहती हैं देश बदलने से दुख नहीं बदल जाता।[2]

कविता, आलोचना, निबन्ध, अनुवाद आदि सभी विधाओं में लिखने पर भी हिन्दी कथा साहित्य उल्लेखनीय है। समाज में नारी की असली स्थिति क्या है, किन किन क्षेत्रों में शोषण का शिकार बनती हैं, शिक्षा समाज में विशेषकर नारी में परिवर्तन कैसे लाते हैं, इसका सच्चा वर्णन 'अनुगूँज', 'बिंदु', 'बोज्यू' आदि उपन्यासों में और 'ललछट', 'लक्ष्मण रेखा', 'पार्वति जब रोएगी', 'कोट', 'बेघर' आदि कहानियों द्वारा भी चित्रण करते हैं। प्रवासी साहित्य के बारे में यह सच है कि 'प्रवासी साहित्य में भारतीयों की प्रत्येक समस्या को किसी न किसी रूप में प्रस्तुत किया गया है। प्रवासी साहित्यकार इन समस्याओं को कहीं भावुक होकर और कहीं यथार्थ रूप में प्रस्तुत करते हैं, परंतु इन समस्याओं का हल कम ही प्रवासी साहित्यकारों ने प्रस्तुत किया है।'[3]

मॉरिशस के हिन्दी साहित्य के इतिहास में अभिमन्यु अनत एक संपूर्ण युग है। अभिमन्यु अनत ने मॉरिशस के हिन्दी साहित्य के इतिहास में जो रेखाएँ खींची हैं, वे अमिट होने के साथ प्रेमचन्द के समान देश की आनेवाली पीढ़ियों को भी प्रेरित करती रहेंगी। प्रेमचन्द ने इतिहास रचा था अभिमन्यु अनत ने भी इतिहास रचा है। इसलिए अभिमन्यू अनत को 'मॉरिशस के प्रेमचंद' कहते हैं।

अभिमन्यु अनत ने एक कवि, कथाकार, नाटककार और एक अच्छे मनुष्य के रूप में जो साहित्य देश को दिया, वह निश्चित ही हमारी बहुत बड़ी निधि है। आजकल अभिमन्यु अनत हिन्दी के ही नहीं बल्कि विश्वस्तरीय लेखक का गौरव प्राप्त करने की सामर्थ्य रखते हैं।

अमरीका में लिखे जानेवाले प्रवासी हिन्दी साहित्य के विषय और भारत में लिखे जाने वाले साहित्य में बहुत अंतर है। यह इसलिए है कि प्रवासी अपनी कहानियों अपने अनुभव - क्षेत्र से ही उठाता है और उसका अनुभव क्षेत्र बहुत सीमित है। बिहार राज्य में जन्मे पले और शिक्षित होकर उच्च शिक्षा के लिए अमेरिका गए हुए श्रेष्ठ अमेरिकी कवि है डॉ. विजयकुमार मेहता। वे अमरिका के सुप्रसिद्ध चिकित्सक और हृदयरोग विशेषज्ञ भी हैं। उनके शब्दों में 'भारत की आत्मा उसके गाँवों में बसती है। यहीं ग्राम, धर्म, संस्कृति एवं साहित्य की केंद्र बिंदु है। यहीं

मेरे गाँव की हर पगडंडी की धूल अब तक मेरे कण कण में व्याप्त हैं। व्यक्तित्त्व एवं संस्कारों का वह दुर्ग यदि अमेरिका के ज्योतिर्मय कोलाहल में विशृंखलित नहीं हुआ तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं। '[4]

अमेरिका, मॉरिशस आदि की तरह फीजी में भी प्रवासी हिन्दी और प्रवासी साहित्य का उद्‌भव एवं विकास हुआ। फीजी में हिन्दी की स्थिति और संभावनाओं पर विमर्श प्रस्तुत करने वाला पहला ग्रन्थ 'फीजी में हिन्दी का स्वरूप और विकास' का लेखक विमलेश कांति वर्मा व धीरा वर्मा है। इसका प्रकाशन पीतांबरा प्रकाशन द्वारा सन् 2000 में हुआ।

कमला प्रसाद मिश्र फीजी के सबसे श्रेष्ठ हिन्दी कवि के रूप में जाने जाते हैं। फीजी के राष्ट्रकवि के रूप में भी कमला प्रसाद मिश्र को मानते हैं। इनके अलावा जोगिंदर सिंह कॅवल, प्रो. सुब्रमनी, श्रीमती अमरजीत कौर, प्रो. ब्रिज विलास लाल, महेन्द्र चन्द्र शर्मा विनोद आदि यहाँ के प्रमुख प्रवासी कवि हैं।

हिन्दी साहित्य को समृद्धि प्रदान करने में प्रवासी भारतीय लेखक और लेखिकाओं का योगदान महत्वपूर्ण हैं। प्रवासी हिन्दी साहित्य में जानेमाने हस्ताक्षर हैं अमेरिकी प्रवासी सुदर्शन प्रियदर्शिनी। लेखक जब विदेश की धरती पर लेखन में अपने जीवनानुभवों को किसी साहित्यिक विधा में पिरोती है, तो चाहे अनचाहे उसके वस्तु तत्व में विदेश के भौगोलिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक प्राकृतिक तत्व अपनी समस्त सुंदरता और कुरूपता के साथ भारतीय परिवेश के समान तत्वों की तुलना में अक्सर आ खड़े होते हैं। प्रवासी साहित्य पढ़ने पर हमें इस प्रकार भ्रम आते हैं कि वास्तव में अपने भारत से दूर अपने हृदय में एक लघु भारत को जीवित रखने की क्षमता इनमें हैं। क्योंकि मूलतः अधिकतर संख्या में ये प्रवासी हमारे भारतवंशी समाज की प्रतिनिधि हैं जो बहुत पहले अपनी निजी जरूरतों के लिए अपनी धरती, अपने देश को छोड़ने के लिए मजबूर हुई होगी। इनके नये धरातल और आयाम पर लिखी गयी कहानियों में नया परिवेश और विषयवस्तु हम देख सकते हैं।

सुषम बेदी, पुष्पा सक्सेना, अंशु जौहरी, नीना पॉल, उषा राजे सक्सेना, सुधा ओम ढींगरा, अंजना संधीर, तेजेन्द्र शर्मा, सूर्यबाला, इला प्रसाद, उषा प्रियंवदा आदि अपनी महत्वपूर्ण रचनाओं द्वारा प्रवासी साहित्य में नारी विषयक साहित्य की सृष्टि की। दिव्या माधुर, कीर्ति चौधरी, तेजेंद्र वर्मा, इरा सक्सेना, महेंद्र दवेसर, तोषी अमृता, सलमा जैदी, पदमेशळ गुप्त आदि अनेक कथाकारों ने ब्रिटन के परिवेश में, अपने अपने क्षेत्र में हिन्दी कहानी के माध्यम से निस्संदेह तीव्रगति प्रदान की है।

प्रवासी भारतीय साहित्यकारों का योगदान हिन्दी साहित्य क्षेत्र में अब तक महत्वपूर्ण हैं। अनेक प्रवासी भारतीय हिन्दी भाषा और संस्कृति के प्रचार प्रसार में लगे हुए हैं, साथ-साथ विश्व के अनेक देशों में हिन्दी भाषा पढ़ा भी रहे हैं। यह कहना उचित होगा कि हिन्दी अध्यापन के ज़रिए ये भारतीय सांस्कृतिक जीवन मूल्यों को भी फैला रहे हैं।

प्रवासी भारतीयों ने अपनी निष्ठा और परिश्रम से देश को संपन्न बनाया। जिस देश में वे रहते हैं उसे अपना देश समझकर स्वाभिमान पूर्वक काम करते हैं। केवल साहित्य सृष्टि से ही नहीं पत्रकारिता के जरिए भी साहित्य परिचय कराकर हिन्दी की जड़ें दूर देश तक फैलाने में प्रवासी साहित्यकारों का जो प्रयत्न हुआ है, वे सचमुच सराहनीय हैं। हिन्दी ने विश्व पत्रकारिता में भी स्वयं को स्थापित किया है । अमेरिका की 'सौरभ' और 'विश्व विवेक', फीजी की 'फीजी टाइम्स', कनाडा की 'हिन्दी चेतना', अमेरिका की 'साहित्य सेतु' आदि पत्रिकाओं में भारतीय हिन्दी साहित्य का इतिहास, अनेक कथा कविताओं का विभिन्न भाषाओं में अनुवाद आदि के द्वारा विश्व स्तर पर हिन्दी भाषा, साहित्य एवं संस्कृति का विकास फैला हुआ है और जारी भी रहा है।

संसार भर में हिन्दी के प्रति जन जागृति करने में प्रवासी साहित्य एवं साहित्यकारों की देन अद्वितीय है।

संदर्भ

1. प्रवासी हिन्दी साहित्य अवधारणा एवं चिंतन - डॉ. पूनम अग्रवाल, पृ.सं. 252
2. पुनःश्च हमारे खून से दौड़ता विचार है देश - कश्मीर उप्पल दिनेश द्विवेदी, पृ.सं. 133
3. प्रवासी नारी नावतकारो में नारी चेतना - हरकमल कौर, पृ.सं. 190
4. डॉ. कमल किशोर गोयनका के साथ कवि की वार्ता (यू.एस. एम. पत्रिका, मई-जून 2005 ई., पृ.सं. 18)

असि.प्रोफेसर, हिंदी विभाग
श्रीनारायणगुरु मुक्त विश्वविद्यालय
कोल्लम, केरल

उदारीकरण के दौर में महिलाओं की बदलती भूमिकाः- भारत के संदर्भ में

डॉ. महेंद्र कुमार

शोध सारांश :भारतीय समाज विविधतायुक्त समाज है, जिसमें बहुत से धर्म, जाति, भाषा, क्षेत्र, रीति-रिवाज व परंपरा का समिश्रण है। अन्य समाजों की तरह भारतीय समाज भी पितृसत्तात्मक समाज है जिसमें सांस्कृतिक व धार्मिक आधार पर तो स्त्रियाँ सम्मानित, पूज्यनीय देवी स्वरूप है लेकिन व्यवहरिक घरातल पर महिलाओं की स्थिति दोयम दर्जे की है। भारतीय महिलाओं की सामाजिक संरचना में निर्धारित प्रस्थिति के कारण उनमें शिक्षा का अभाव, सामाजिक, आर्थिक, भौतिक संपदाओं पर उनकी सहभागिता बहुत ही कम होती है। वे न केवल आर्थिक सामाजिक वंचनाओं की शिकार होती हैं वस्तुतः पूरा नारी समाज असमानता व पिछड़ेपन का शिकार है। उनके साथ होने वाले लैंगिक भेदभाव के कारण उनकी हैसियत समाज में निम्न है। हाल के वर्षों में उदारीकरण व ढांचागत समायोजन कार्यक्रमों को हर आर्थिक समस्या के हल के रूप में देखा जा रहा है।

शब्द कुंजी- भारतीय समाज, उदारीकरण, सामाजिक, आर्थिक समस्या इत्यादि।

पृष्ठभूमि : आजकल भारत में आर्थिक उदारीकरण/पूंजीवादी वैश्विकता की आवाज काफी तेज सुनाई दे रही है। उदारीकरण के पैरवीकारों ने बाजार व्यवस्था के 'मायाजाल' में लगातार अपना वि श्वास प्रकट किया है। भारत की स्थिति पर गौर करें तो यहाँ हम पाते हैं कि भारत में वैश्विकता ने अपना आकार 1990 के दशक में किये गये आर्थिक सुधारों एवं उदारीकरण की प्रक्रिया के फलस्वरूप ग्रहण किया। एक नजर में देखने से ऐसा लगता है मानो आर्थिक उदारीकरण/पूंजीवादी वैश्विकता ने महिलाओं को वे तमाम चीजें मुहैया करा दी हैं जिनसे उन्हें आज तक वंचित रखा गया था तथा जो थोड़ी-बहुत कसर है, आने वाले दिनों में उसकी भी पूर्ति हो जायेगी। उदारीकरण का अर्थ है आद्योगिक विनिमय और बाजार का पूरी तरह खोला जाना जिससे कि अर्थ व्यवस्था में सरकार के बजाय बाजारी शक्तियाँ हावी हो जाएँ। बाज़ार को सुरक्षित रखने तथा आयात के विकल्प खोजने के बजाय महसूस किया गया कि भारतीय अर्थव्यवस्था को निर्यातोन्मुखी बनाया जाय।[1] उदारीकरण में निहित है- विदेशी व्यापार का उदारीकरण, चुंगी व कर में कमी, खासकर कृषि उत्पादों के निर्यात से सारे प्रतिबंध हटाना।

वर्तमान स्थिति : आज उदारीकरण या पूंजीवादी वैश्विकता के दौर में महिला सशक्तीकरण का विचार उभरकर सामने आया है। महिलाएँ राजनीति में सक्रिय भागीदारी के साथ-साथ कारखानों एवं फैक्ट्रियों में भी काम कर रही हैं। शासन में भी वे बड़े पदों को धारण कर रही हैं तथा प्रबंधन क्षमता तो ऐसी है कि उन्हें अपनी ओर आकर्षित करने के लिए निगमों के बीच एक होड़ सी मची हुई है। इस प्रकार भारत में उदारीकरण के पैरवीकार महिलाओं के आजादी की तुरही बजानी शुरू कर दी है। भारत का संविधान महिलाओं के लिए विशेष प्रावधान करने के अतिरिक्त सभी नागरिकों की भांति महिलाओं को हर क्षेत्र में समानता की गारण्टी प्रदान करता है। क्रमिक सरकारें प्रगतिशील कानूनों के निर्माण द्वारा अतीत में महिलाओं के साथ हुए अन्याय को दूर करने का प्रयास कर रही है। परन्तु फिर भी आज महिलाओं की कानूनी और वास्तविक स्थिति के मध्य इतना बड़ा अंतर है।

उदारीकारण के लगभग दो दशकों के बाद भूमंडलीकरण की आंधी ने जहाँ कुछ प्रतिशत महिलाओं को फायदा पहुँचाने का काम किया उससे कहीं अधिक प्रतिशत महिलाओं को विश्व व्यापार की शर्तों के थपेड़ों ने उनकी पारंपरिक आजीविका के साधनों को छीनकर उन्हें अर्थ व्यवस्था से बाहर करने पर भी मजबूर किया है। पहले से ही सामाजिक असमानता के माहौल में जीती भारतीय महिलाओं पर भूमंडलीकरण का प्रतिकूल असर अधिक नजर आता है। हमारे देश की आर्थिक व्यवस्था में महिलाओं का सबसे अधिक योगदान कृषि के क्षेत्र में है। यहाँ अधिकतर खेतिहर कार्य महिलाओं द्वारा किए जाते हैं। महिलाओं का ज्ञान और उनकी निपुणता बीजों की सुरक्षा, खाद्य उत्पादन और फसलों की विविधता और खाद्य प्रोसेसिंग में काम आती है। लेकिन विश्व व्यापार संगठन के समझौते के तहत कृषि पर कारपोरेट जगत का दबदबा बढ़ा है। जो खाद्य सुरक्षा महिलाओं के काम पर निर्भर करती है उसे कारपोरेट संबंधित खाद्य संस्कृति ने पीछे धकेल दिया है। ट्रिप्स (व्यापार संबंधित बौद्धिक संपति अधिकार) समझौते के तहत ग्रामीण महिलाओं से बीज और जैव विविधता का ज्ञान छीनकर ग्लोबल कंपनियों के हाथों चला गया है।

वर्ष 2005 में राष्ट्रीय महिला आयोग ने भूमंडलीकरण के कृषि पर होने वाले प्रभावों पर कराए एक अध्ययन में कहा था कि विश्व व्यापार संगठन के तहत कृषि पर समझौता अनुचित और असमान है और इससें कृषि में कार्यरत महिलाओं पर नकारात्मक बदलाव आया है। कारपोरेट आधरित कृषि ने महिलाओं को उनकी खाद्य उत्पादन और खाद्य संस्करण की जीविका से बेदखल करने का काम किया है। यह सही है कि ग्लोबलाइजेशन ने अनौपचारिक और असंगठित क्षेत्र में महिलाओं को रोजगार के असीम अवसर प्रदान किए है। जो महिलाएँ परिवार की देखभाल में समय बिताती थीं उन्हें श्रम प्रधान इन इकाइयों में काम करने का अवसर मिला लेकिन इस प्रक्रिया ने महिलाओं से उनके काम के बुनियादी अधिकार छीन लिए। 1990 से शुरू हुए एसएपी (ढांचागत समयोजन) कार्यक्रम के तहत कई विदेशी कंपनियों ने अपने निर्यात उद्योगों जैसे कपड़ा, खेल का सामान,

फूड प्रोसेसिंग, खिलौनों की इकाईयों को भारत में खोलकर महिलाओं को सस्ता श्रम मानते हुए उन्हें अधिक से अधिक काम पर रखा। लेकिन असुरक्षित माहौल और दमघोंटू काम की स्थितियों ने महिलाओं को 'गुलाम वेतनभोगी' बनाने का काम अधिक किया। नौकरियाँ मिलीं लेकिन न तो युनियन बनाने के अधिकार और न ही अपने अधिकारों के खिलाफ लड़ने या आवाज उठाने के अधिकार मिल सके। काम की उचित कल्याणकारी सरकारी नीतियों के अभाव ने इन महिलाओं को बदहाल और गुलाम बनाने वाली कार्य स्थितियों में भी काम करने का आदी बना दिया है।

अर्थव्यवस्था का यह अनौपचारीकरण की ओर रूझान शहरी और ग्रामीण दोनों क्षेत्रों में देखा जा सकता है। 2001 से 2011 की जनगणना में महिला कामगारों की संख्या काफी बढ़ी है लेकिन ग्रामीण तथा शहरी दोनों ही क्षेत्रों में यह कामगार हाशिए पर ही हैं। आज इसे माना जा रहा है कि देश में ग्रामीण महिला श्रम का 45 प्रतिशत तथा शहरी महिला, श्रम का 43 प्रतिशत अनौपचारिक है। जबकि पुरुषों के अनौपचारिक का अनुपात क्रमशः 34.6 और 30 प्रतिशत है। अनौपचारिक महिला कामगारों का प्रतिशत 2005-06 के 39.3 प्रतिशत से 2011-2013 में 4.8 प्रतिशत बढा है।

यहाँ यह रेखांकित करना प्रासंगिक जान पड़ता है कि उदारीकरण व ढांचागत समायोजन नीतियों से श्रम के महिलाकरण पर बहस शुरू हुई है। इस बहस के मुद्दों पर पहुँचने के पहले यह उन प्रक्रियाओं पर नज़र डालना आवश्यक जान पड़ता है जिनके संदर्भ में महिलाकरण शब्द का प्रयोग होता है। गौरतलब है कि श्रम के भूमंडलीय महिलाकरण का तर्क गाई स्टेडिंग ने दिया। उसने कहा कि 1980 के दशक में काम की अनियमितता और श्रम का महिलाकरण दोनों ही हुए हैं। इसे भारतीय संदर्भ में लागू करते हुए सरला गोपालन का कहना है कि महिलाकरण का यह रूझान पूरे भारत और खासकर मुंबई में देखने में आया है। उन्होंने इसे एक महत्वपूर्ण बदलाव माना क्योंकि उनके अनुसार इससे महिलाओं के रोजगार के मौके बढ़े हैं। उनका यह भी मानना है कि उदारीकरण से निर्यात बढ़ेगा और निर्यात उद्योग के श्रमप्रधान होने से महिलाओं के श्रम की मांग बढ़ेगी, चूंकि महिला श्रम अपेक्षाकृत सस्ता है और महिलाएँ ज्यादा आज्ञापरायण होती हैं इसलिए उनके काम से निकाले जाने की संभावनाएँ भी कम होंगी। आज के संदर्भ में हमें यह याद रखना चाहिए कि श्रम बाजार में शोषित, होना बुरा है लेकिन उससे भी ज्यादा बुरा है शोषित न होना। चूंकि महिलाओं असंगठित श्रम शक्तिका हिस्सा माना जाता है, काम के अनौपचारिक स्वरूप से उन्हें लाभ होने की ज्यादा संभावनाएँ हैं।

भारत सरकार द्वारा योजनाएँ : महिला-रोजगार की गुणवत्ता में सुधार शिक्षा तथा कौशलयुक्त प्रशिक्षण तक पहुँच पर निर्भर करता है। इस बात को ध्यान में रखते हुए, भारत सरकार ने महिलाओं के लिए अनेक योजनाएँ बनाई हैं जैसे कि:

1. श्रम मंत्रालय द्वारा 1974 में महिला व्यावसायिक प्रशिक्षण कार्यक्रम शुरू किया गया।

2. इस उद्देश्य के लिए एक 'पृथक महिला सेल' का भी निर्माण किया गया है और इसे महिला व्यावसायिक प्रशिक्षण निदेशालय के साथ जोड़ दिया गया है। इस निदेशालय के अंतर्गत संस्थागत संरचना में नोएडा में एक राष्ट्रीय व्यावसायिक प्रशिक्षण संस्थान तथा देश के विभिन्न भागों में 10 क्षेत्रीय प्रशिक्षण संस्थान शामिल हैं।

3. लगभग 765 संस्थान (इनमें 231 महिला औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान में 534 महिला विंग/प्राइवेट आईटीआई शामिल हैं) शिल्पकार स्तर पर महिलाओं के लिए व्यावसायिक प्रशिक्षण सुविधाएँ प्रदान करने के लिए 46750 प्रशिक्षण सुविधाएँ प्रदान करते हैं।

4. महिला कार्मिकों के हित को ध्यान में रखते हुए शिशुपालन केंद्रों को स्थापित करने के लिए मौजूदा श्रम कानूनों के संवैधानिक प्रावधान भी किए गये हैं। 3

स्वास्थ्य सुरक्षा मानव विकास का सबसे महत्वपूर्ण तत्त्व है। अच्छा स्वास्थ्य न केवल विकास का अंतिम उत्पाद है बल्कि आर्थिक विकास के लिए एक अनिवार्य शर्त भी है। बेहतर स्वास्थ्य कर्मचारियों की बीमारी के कारण होने वाले उत्पादन के नुकसानों को कम करके आर्थिक वृद्धि में योग देता है। आय वृद्धि और स्वास्थ्य के बीच एक महत्वपूर्ण संबंध है। अच्छा स्वास्थ्य तथा आदर्श पोषण मूलभूत मानव विकास की आवश्यकता है। इसके बिना मनुष्य की प्रजनिक क्षमता भी समाप्त हो सकती है। अतः समाज में महिलाओं की स्थिति में सुधार के लिए स्वास्थ्य आवश्यकता है। महिलाओं के स्वास्थ्य से जुड़े महत्वपूर्ण मुद्दों में शामिल हैं-कुपोषण, अपेक्षित माताओं पर शारीरिक एवं पोषणकारी दबाव, तनाव रजोनिवृत्त संबंधी अन्य रोगा महिलाएँ जीवन के लगभग हर चरण में कुपोषण एवं बीमारी की समस्या से जूझती हैं। चाहे परिवार हो या राज्य की कल्याणकारी एजेंसियाँ, महिलाओं की स्वास्थ्य सुविधाओं की प्रायः, अनदेखी की जाती है। उर्जा तथा प्रोटीन के साथ-साथ आयरन, विटामिन 'ए' तथा आयोडीन की आपूर्ति पर अभी भी पर्याप्त ध्यान नहीं दिया जाता। यह स्थिति अपेक्षित तथा दूध पिलाने वाली माताओं के लिए गंभीर है। इस प्रकार की स्वास्थ्य एवं पोषणकारी नीतियों के नाम पर महिला कल्याण के लिए जो थोड़ा बहुत किया गया है, उसने महिलाओं के कल्याण के अनेक पहलुओं को अनदेखा किया है। अतः पहला कदम यह होना चाहिए कि युवा कन्याओं में कुपोषण, प्रजनन अवस्था की महिलाओं में सर्वाइकल तथा ब्रेस्ट कैंसर तथा ऑस्टियोपोरोसिस एवं रजोनिवृत्त संबंधी समस्याओं के लिए समान रूप से निदान किया जाए। इसके अतिरिक्त, आय एवं शिक्षा भी स्वास्थ्य में सुधार को प्रोत्साहित करते हैं इन सभी आर्थिक नीतियों में,

स्वास्थ्य सुधार के लिए निर्धन वर्ग की आय को बढ़ावा देना भी प्रभावकारी है। यह इसलिए आवश्यक है ताकि एक गरीब व्यक्ति अपनी अतिरिक्त आय का प्रयोग स्वास्थ्य-सुधार, स्वच्छ जल एवं आवास के लिए कर सकें।[4]

अनेक परिवारों में महिला प्रधान के प्रसंग तेजी से बढ़ रहे हैं। पुरुषों द्वारा नौकरी की खोज में मौसमी प्रवास अथवा घरेलू शहरी श्रम बाजारों में प्रवास के कारण ग्रामीण परिवारों में अनेक महिलाएँ परिवार संभालती हैं। महिला-प्रधान परिवार निर्धन होता है क्योंकि घर में कमाने वाले लोग कम होते हैं तथा निर्भर लोग अधिक होते हैं। निर्धनता के कारण अनेक परिवारों में विधवा महिलाएँ जो परिवार की प्रधान हैं, उन्हें अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। संयुक्त प्रधान परिवारों में महिलाएँ अवैतनिक घरेलू श्रम करके तथा अन्य आय प्रदान करने वाले अन्य कार्यों के द्वारा पारिवारिक आय में योग देती हैं। एक व्यापक सीमा तक, महिलाओं की निर्धनता का संबंध उनके कार्य की प्रकृति तथा उनसे प्राप्त होने वाले अल्प प्रतिफल से है।

आधुनिक तकनीकों तथा पूंजी तक सीमित पहुँच उनकी निम्न आमदनी का प्रत्यक्ष परिणाम है। महिलाओं को प्रायः ऐसे कार्य करने के लिए बाधित होना पड़ता है जिनमें श्रम अधिक होता है तथा उत्पादन कम और यही उनकी निम्न आय और गरीबी का कारण है। वास्तव में, सभी विकासशील देशों में पुरुषों की तुलना में महिलाएँ नौकरी तथा घर, बच्चों के पालन पोषण, खाना बनाने आदि में अपना अधिक समय एवं योग देती हैं। बच्चों की देखभाल के साथ-साथ नौकरी के कारण महिलाओं के कार्य करने के घण्टों में तो बढ़ोतरी होती है, पर उनका अवकाश का समय कम हो जाता है। गरीबी का बोझ उस स्थिति में और भी अधिक बढ़ जाता है जब महिला आधुनिक अर्थव्यवस्था के अनुरूप कार्य कौशल के अभाव में श्रम बाजार में काम की तलाश करती है।[5]

निम्न आय के परिवारों में महिलाओं की आमदनी का महत्त्व परिवार के आनुपातिक बजट, बच्चों के पोषणकारी स्तर को बढ़ावा देने तथा विपत्ति के समय प्रयोग पर निर्भर करता है। बेहतर परिवारों की अपेक्षा गरीब परिवारों में प्रधान महिलाओं की आमदनी का अनुपातिक रूप से अधिक महत्त्व है। महिलाओं की आमदनी तथा बच्चों के पोषण में संबंध दर्शाता है कि जिन माताओं की आमदनी अधिक हैं उनके बच्चों का स्वास्थ्य एवं पोषण स्तर उन बच्चों से बेहतर है जिनकी माताओं की आमदनी कम है।

निष्कर्ष

इस प्रकार उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि मशीनीकरण के प्रथम चरण में महिलाओं को बेदखल कर दिया गया, हालांकि विभिन्न सामाजिक-आर्थिक तबके की महिलाएँ इससे अलग-अलग तरह से प्रभावित हुई। कुछ के लिए रोजगार के अवसरों में वृद्धि हुई तो कुछ के लिए कमी। रोजगार में कमी के कारण महिलाओं पर सकारात्मक और नकारात्मक दोनों ही तरह के प्रभाव पड़े। चाहे उसने महिलाओं के लिए खाली समय को बढ़ाया है या उन रोजगारों का नुकसान किया जो कुछ महिलाओं के जीवन के लिए अति ज़रूरी होते हैं।

अनुभव सिद्ध पर्यवेक्षण दर्शाते हैं कि महिलाओं की स्थिति में सुधार के लिए विकास के जितने भी प्रयास किये गये हैं, वे सभी अधिक पोषणकारी एवं बेहतर रहे हैं। पुरुष एवं खी 'प्रगति' रूपी पहिये के दो पहलू हैं। अगर भारत छः दशक के विकास नियोजन के बावजूद भी मानवीय विकास सूचकांक में एक अच्छा स्थान पाने में सफल नहीं हुआ, तो इसपर दोबारा दृष्टि डालने की ज़रूरत है। जितनी भी थोड़ी बहुत प्रगति हुई है, यह भारत जैसे बड़े देश के लिए बहुत कम है। अर्थव्यवस्था के वैश्वीकरण एवं उदारीकरण के दौर में हमारे सामने एक नई चुनौती खड़ी हो गई है। वास्तव में, यदि हम इसे चुनौती के रूप में लें, तो इससे बाहर आ सकते हैं।

संदर्भ-सूचीः-

1. बीणा अग्रवाल, ए फिल्ड ऑफ बन्स ओनः जेंडर एण्ड लैंड राईट्स इन साउथ एशिया, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी, कैम्ब्रिज. अमरेश दुबे, 'वर्क फोर्स पार्टीशिपेशन ऑफ वूमेन इन रूरल इंडिया' द इंडियन जरनल ऑफ लेबर इकोनॉमिक्स, वॉल्यूम-47ए 2004
2. विप्लव दास गुप्ता, ग्लोबलाईजेशनः इंडियाज एडजस्टमेंट एक्सपीरियंस, सेज पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2006.
3. सरला गोपालन वुमेन एण्ड इंप्लायमेंट इन इंडिया, हर आनंद पब्लिकेशन, न्यू दिल्ली, 2014, प. 43-49
4. माधेश्वरन एण्ड संगीता सर्राफ, 'एजुकेशन, इम्पलायमेंट एण्ड अर्निंग फॉर साइंटिफिक एण्ड टेक्निकल वर्क्स फॉर इंडिया : जेंडर इसूज', द इंडियन जर्नल लेबर इकोनॉमिक, नई दिल्ली, वॉल्यूम 43, नं-1, 2000,पृ. 121-137
5 प्रवीण विसारिया एण्ड राकेश वसंत, नन एग्रीकल्चरल इंप्लायमेंट इन इंडिया, सेज पब्लिकेशन, न्यू दिल्ली, 2009, पृ. 85-88

सहायक प्रोफेसर, भूगोल विभाग
गवर्नमेंट डिग्री कॉलेज, कासगंज भारत

मंजूर एहतेशाम के कथा-साहित्य में राजनीतिक चेतनाः मध्यवर्ग के संदर्भ में

डॉ.शमीम पी

आज हमारे समग्र जीवन में राजनीति का हस्तक्षेप बढ़ गया है। हमारे जीवन का कोई भी कार्य-कलाप अब ऐसा नहीं है जिस पर उसकी छाया न पड़ी हो। राजनीति राज्य के प्रशासन की व्यवस्था है। इस व्यवस्था का समाज-जीवन पर पड़े प्रभाव को लेखक अपने साहित्य में अभिव्यक्ति देता है वह अपने साहित्य में, समाज में, होने वाली राजनीतिक गतिविधियों एवं परिवर्तन का अंकन करता है। इस दृष्टि से साहित्य और राजनीति का संबंध स्पष्ट होता है। साहित्य और राजनीति का संबंध स्पष्ट करते हुए राही मासूम रज़ा लिखते हैं - "वस्तुतः राजनीति भी समाज का एक अंग है, वह समाज से नहीं है वह समाज में है और चूंकि साहित्यकार समाज से बाहर नहीं जा सकता इसलिए किसी राजनीतिक विचारधारा को नहीं मानते हुए भी राजनीति से कतराकर नहीं गुज़र सकता, साहित्य के ताने-बाने में भी राजनीति की डोर रखी हुई है। इसलिए वह साहित्य हो नहीं सकता जिसका राजनीतिक आधार न हो। फलतः साहित्य में राजनीतिक जीवन अपने विविध आयामों के साथ अभिव्यक्त होता है यही कारण है कि किसी युग की राजनीतिक स्थिति को जानने के लिए तत्कालीन साहित्य मदद करता है। राज्य तथा समाज की व्यवस्था सुचारू रूप से चलाने के लिए जो नीति नियम बनाए गए हैं, वही राजनीति होती है। उन नियमों को बनाते समय जनता एवं समाज का ही ध्यान में लिया जाता है। आज राजनीति का अर्थ पूर्ण रूप से बदल गया है अब राजनीतिक राज्य की नीति न रहकर राज्य को प्राप्त करने की नीति बन गई है प्रजा हित के लिए बनाई गई राजनीति स्व हित के लिए अपनाई जा रही है। मंजूर एहतेशाम जी ने अपने कथा साहित्य में सत्तालोलुप राजनीति के क्षेत्र में झूठ, फरेब, अनीति, अनाचार, बेईमानी, छल कपट, भ्रष्टाचार, व नीचता का सफल अंकन किया है। कथनी और करनी में अंतर, चाटुकारिता, वोट की राजनीति, तानाशाही, खोखले नारे, चापलूसी, सत्तालोलुपता, शोषणवृत्ति एवं सांप्रदायिकता की आड़ में शिकार करना आदि विकृतियों का चित्रण अपनी रचनाओं में किया है मंजूर एहतेशाम जी एक संवेदनशील साहित्यकार हैं और उन्होंने अपने साहित्य का कथ्य मध्यवर्गीय समाज को लिया है इस मध्यवर्गीय समाज को रेखांकित करते समय राजनीति का चित्रण भी स्वाभाविक रूप से नज़र आता है।

मंजूर एहतेशाम जी के कथा साहित्य में भी राजनीतिक चेतना समाहित है जो राजनीतिक परिवेश में रची-बसी दूषित एवं भ्रष्ट राजनीति, अवसरवादिता, वोट बैंक की राजनीति, राजनीतिक परिवारवाद, राजनीति और स्त्री आदि आयामों का चित्रण सशक्त रूप से करती है।

राजनीति सामान्य रूप से एक देश एवं समाज को व्यवस्थित ढंग से चलाने की नीति है लेकिन यह व्यवस्थित नीति दूषित एवं भ्रष्ट रूप धारण कर लेती है तो देश और समाज के लिए हानिकारक बन जाती है वर्तमान राजनीति ने भी एक भयानक रूप धारण कर लिया है जिससे लगातार राजनीतिक पतन होता जा रहा है आज की राजनीति इतनी दूषित एवं भ्रष्ट हो गई है कि उसमें सिर्फ भ्रष्टाचार हत्या, अन्याय, अत्याचार, घृणा, लूटमार जैसी घटनाएँ आम हो गई है। स्वातंत्र्योत्तर राजनीति में सेवाभाव, त्याग, निस्वार्थता का स्थान, कुटिलता, भ्रष्टता, झूठ और स्वार्थ ने ले लिया है। राजनेता लोग अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए आम आदमी को एक दूसरे से लडवा देते हैं और मौके का फायदा उठा लेते हैं अपनी सत्ता एवं अधिकार को बचाए रखने के लिए नेता लोग किसी भी हद को पार करने के लिए तैयार रहते हैं। दूषित एवं भ्रष्ट राजनीति के संदर्भ में डॉ ज्ञानचंद गुप्त का कथन है कि वस्तुतः राजनीति का क्रिया क्षेत्र अधिकार लोलुपता, पैसा गुंडई आदि तक की रह गया है मानवतावादी दृष्टि का संकुचन हो रहा है।"[2] इस प्रकार सिर्फ सत्ता, कुर्सी, अधिकार के मोह के कारण वर्तमान राजनीति दूषित एवं भ्रष्ट बनती जा रही है।

'सूखा बरगद' उपन्यास में मंजूर जी ने दूषित राजनीति भ्रष्ट एवं स्वार्थी राजनेताओं और उनके दोगले व्यक्तित्व का पर्दाफाश किया है असगर साहब और रज्जब अली दो ऐसे नेता है जो अधिकार एवं सत्ता प्राप्ति के लिए किसी भी हद तक गिर सकते हैं और लोगों को भडकाकर हिंदू मुस्लिम भेदभाव पैदा करके धार्मिक लड़ाइयों को बढ़ावा देते हुए नंजर आते हैं असगर साहब और रजब अली अक्सर गलत अफवाहें फैलाकर दंगे करवाते हैं और हिंदू मुस्लिम को आपस में लड़वाते रहते हैं। उपन्यास के एक प्रसंग में नेता असगर साहब भोपाल को राजधानी बनाए जाने पर भड़काउ बयान करा देते हैं कि शहर को राजधानी इसलिए बनवाया गया है कि धीरे-धीरे यहाँ मुसलमान का पत्ता साफ हो जाए। हिंदू उनके सर पर जूते बजाए इधर राजधानी बनी उधर शहर का हिंदू, मुसलमान फसाद हुआ और ऐसी राजनीति के चलते उसे समय का परिवेश इस तरह बिगड़ गया था कि कोई भी छोटी सी छोटी बात पर हिंदू मुस्लिम दंगे फसाद शुरू हो जाते थे सूखा बरगद उपन्यास का एक और प्रसंग है - "उन दिनों होली रमज़ान में पड़ती थी संयोग वश अलविदा का जुमा और रंग पंचमी एक ही दिन पड़ गए और नतीजे में शहर का पहला हिंदू-मुस्लिम फसाद हमने दोपहर को पटाखे फूटने सी आवाज़ सुनी और उसके कुछ देर बाद किसी ने घर आकर खबर दी फसाद हो जाने, गोली चलने, तथा कर्फ्यू लगने की"[3] इस तरह वहाँ के हालात बहुत ही सूक्ष्म एवं गंभीर

बन जाते हैं। लेखक ने यहाँ असगर साहब और रजब अली जैसे मतलबी नेताओं की कूटनीति, लोगों को बहकाने की प्रवृत्ति, भ्रष्ट एवं दूषित राजनीति, सांप्रदायिक हिंदू-मुस्लिम दंगे फसाद और उनके परिणामों का बखूबी आंखों देखा हाल प्रस्तुत किया है और ऐसी दूषित राजनीति से सिर्फ और सिर्फ नफरत को बढ़ावा मिलता है और सिर्फ नेताओं को सियासी फायदा होता है इस बात को सिद्ध किया गया है हिंदू-मुस्लिम वैमनस्य इतने प्रभाव में बढ़ गया है कि आगे चलकर उसके परिणाम और भी गंभीर बनते गए हैं दोनों, समुदाय के लोगों के बीच दूरियाँ बढ़ गई हैं और एक दूसरे के दुश्मन और जान के प्यासे बन गए हैं।

'मदरसा उपन्यास' में लेखक ने राजनीति और राजनेता पर व्यंग्य भी किया है -"इस बीच हुआ सब कुछ एक खेल एक तमाशा बनता जा रहा था, बनकर रह गया था, एक राष्ट्रपति था देखने में खुशनुमा जो मदारी की तरह देश के प्रधानमंत्री को अपनी डुगडुगी पर नचाने को तुला था, और प्रधानमंत्री, जिसके संसद में दिए वक्तव्य पढ कर लगता था किसी बच्चों के स्कूल या मदरसों के डिबेट कंपटीशन में दिए गए भाषण किसी देश का शायद इकलौता ऐसा प्रधानमंत्री जो राजनीति की दलदल में गले गले तक होने के बावजूद, राजनीति से ही इतना बेजार था दरिया में रहकर मगरमच्छ से बैर। कोई भरोसा नहीं था बंदे के कहे और किए का। विडम्बना यह की थ्रिल और सस्पेंस जहाँ होना चाहिए, खेल का मैदान, वहाँ तो गायब था राजनीतिक मंच पर शिफ्ट हो गया था।"[4]

मंजूर एहतेशाम जी के इस राजनीतिक व्यंग्य पर और एक श्रेष्ठ कवि धूमिल की रोटी और सांसद कविता की कुछ पंक्तियाँ सटीक लगती हैं - "एक आदमी रोटी बेलता है... दूसरे आदमी रोटी खाता है... एक तीसरा आदमी भी है... जो न रोटी बेलता है... न रोटी खाता है... वह सिर्फ रोटी से खेलता है... मैं पूछता हूँ, यह तीसरा आदमी कौन है? मेरे देश के संसद मौन हैं।"[5]

अवसरवादिता का अर्थ मौके का फायदा उठाने की प्रवृत्ति के रूप में ग्रहण किया जा सकता है। राजनीति में अवसरवादिता का बोलबाला रहा है क्योंकि वर्तमान की राजनीति अवसर की राजनीति है नेताओं द्वारा किया जानेवाला दोगलापन उनकी अवसरवादिता का परिचायक है आज के नेता लोग हमेशा अवसर की ताक में रहते हैं इसलिए सत्ता या कुर्सी प्राप्त करने के लिए किसी भी सत्ताधारी पार्टी में शामिल हो जाते हैं वर्तमान राजनीति में स्वार्थ भावना ज्यादा से ज्यादा बढ़ गई है और इसके फलस्वरूप नेतागण अपने स्वार्थ सिद्धि के लिए दल बदल नीति को अपनाते हैं और कल तक जो दुश्मन थे उन्होंने गले लगा कर दोस्त भी बन जाते हैं आज का नेता सिर्फ कुर्सी और अधिकार के लालच में छल - कपट से भोली-भाली जनता को अपने वश में करता है अवसरवादिता के संदर्भ में डॉक्टर पांडुरंग पाटील का कथन है कि "सभी नेता सत्ताधारी तथा विरोधी भी अपने दर्तों की स्वीकृत आदर्शों का परित्याग कर व्यक्तिगत स्वार्थ सिद्धि में लग गये"[6] मदरसा उपन्यास में राजनीतिक चापलूसी, षड्यंत्र अवसरवादिता का उल्लेख मिलता है राजनेता सत्ता पाने के लिए किसी भी पार्टी में शामिल होकर कभी-कभी भड़काउ बयान देकर विभिन्न समुदायों को एक दूसरे से लडवा देते हैं और सत्ता प्राप्ति के किसी भी हद तक गिरने के लिए तैयार हो जाते हैं मदरसा उपन्यास में राजनेता इमरान भाई का स्वभाव इस प्रकार दर्शाया गया है। "इमरान भाई कांग्रेस का सांसद था और प्रधानमंत्री के निकटस्थ लोगों में समझा जाता था शहर की राजनीति पर उसकी पुरानी पकड़ थी और शुरुआत उसने छात्र नेता के रूप में की थी जो संजय गांधी ब्रिगेड की सिपहसालरी में परिवर्तित होकर, आपातकाल के बाद, जेल यात्रा इत्यादि के रास्ते, आज सत्ता सुख भोगने की स्थिति में पहुँच जा चुकी थी।"[7] मंजूर एहतेशाम जी की पुल पुख्ता कहानी में भी राजनीतिक अवसरवादिता का यथार्थ चित्रण मिलता है प्रसतुत कहानी में पुल टूटने की संभावना व्यक्त की गई इसलिए वहाँ की बस्ती में रहने वालों को घर खाली करने का आदेश दिया जाता है उसे इलाके में मुसलमानों की आबादी ज्यादा है। और कुछ दिनों से वहाँ से मुसलमान को खाली करवाने की प्लानिंग भी जोरों शोरों से चल रही थी कहानी में अवसरवादिता का कठोर यथार्थ इस तरह दर्शाया गया है, सब सोची समझी पॉलिसी है मास्टर प्लान इस पूरे इलाके को जहाँ वैसे भी ज्यादातर गरीब मुसलमान रहते हैं, खाली कराने का इससे अच्छा क्या बहाना हो सकता है। पानी सब कुछ बहा कर ले जाएगा और कल कोई सरकारी अफसर हमें किसी दूसरे इलाके में प्लॉट एलाट कर देगा कुछ नेता इस बात पर अफसोस का बयान दे देंगे कि हमारा सब कुछ घर धंधा सैलाब की नज़र हो गया झूठसाले सब के लिए एक से अवसर है मंजूर एहतेशाम जी ने अपनी रचनाओं में स्पष्ट किया है कि किस प्रकार वर्तमान राजनेता अक्सर अवसरवादी राजनीति का लाभ उठाते हुए जनता का शोषण करते हैं।

राजनीति में नेता का स्थान निर्धारित करने का आवश्यक तत्व है वोट (मत)। राजनीति में लोकतंत्र का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है इसी लोकतंत्र के माध्यम से सामान्य जनता को अपने नेता को चुनने के लिए मत देने का अधिकार मिला है इससे वह स्पष्ट होता है कि राजनेता को अपनी सता में अधिकार को पाने के लिए चुनाव में बहुमत पाने की अनिवार्यता होती है नेता लोग वोट प्राप्त करने के लिए अलग-अलग चाल चलते हैं स्वार्थपरक पर राजनीति के संदर्भ में डॉक्टर शशी जेकब का कथन है कि - "दाँव पेंच राजनीति का अस्त्र है यह कुश्ती के दाँव पेंच से ज्यादा खतरनाक, बेरहम और हिंसात्मक है। राजनीति में उचित अनुचित का भेद नहीं किया जाता जो कुछ होता है, ठीक ही होता है, ऐसा मान लिया गया है राजनीति की राजशक्तियाँ स्वार्थलोलुप होती जा रही है, जहाँ स्वार्थ के अलावा दूसरा कुछ नहीं है"[8] पहर ढलते' उपन्यास में समुदाय के आधार पर की जाने वाली वोट बैंक की राजनीति पर व्यंग्य किया गया है सामुदायिक राजनीति के अंतर्गत चुनाव लड़नेवाले व्यक्ति की योग्यता के आधार पर

नहीं बल्कि उसके समुदाय, धर्म, जाति, उपजाति के आधार पर वोट किया जाता है इस तरह के समुदाय आधारित मतदान से देश की प्रगति को बहुत अधिक क्षति पहुँचती है क्योंकि देश की जनता अपने ही धर्म समुदाय आदि के घेरे में फँसकर रह जाती है और इसी का फायदा राजनेता उठाते हैं पहर ढलते उपन्यास में भी वोट बैंक की राजनीति को दर्शाया गया है - "क्या चुनाव वह सिर्फ मुसलमानों के वोटों से जीता था जहाँ से वह कामयाब हुआ था, वहाँ मुसलमान बोट डालने वालों की तादाद ही कितनी थी और उनमें से कितनों ने उसके खिलाफ चुनाव लड़ा था लेकिन चुनाव जीतने के लिए कुछ ही अरसे बाद उसने गौर किया तो अंदाजा हुआ था कि उसके आसपास के मजमें में सारे के सारे मुसलमान थे।"[9] प्रस्तुत उपन्यास के इस कथन से वोट बैंक की राजनीति के दृश्य प्रस्तुत होते हैं।

परिवारवाद शासन की वह पद्धति है, जिसके माध्यम से एक ही घर परिवार या वंश से एक के बाद एक कई शासक बनते जाते हैं राजनीतिक परिवारवाद में अपने ही बच्चों, भाई बंधुओं में रिश्तेदारों में से किसी के हाथों सत्ता या अधिकार सौंप दिया जाता है हालांकि लोकतंत्र में परिवारवाद के लिए कोई स्थान नहीं है लेकिन फिर भी राजनीति में परिवारवाद हावी होने लगा है राजनीतिक परिवारवाद से देश की राजनीति को बहुत सारी हानियां होती है जैसे कि राजनीति में नए लोग नहीं आ पाते है। अयोग्य शासक शासन करते हैं सभी को समान अवसर प्राप्त नहीं हो पाता है भ्रष्टाचार को बढ़ावा मिलता है परिवारवाद संबंधी कानून एवं नीतियों को बनाया जाता है देश का लोकतंत्र कमजोर पड़ जाता है बशारत मंजिल उपन्यास में राजनीतिक परिवारवाद का चित्रण मिलता है राजनीति से जुड़े नेता लोग अपने बच्चों एवं रिश्तेदारों को भी राजनीति में प्रवेश करते हैं और राजनीतिक परिवारवाद चलाते हैं कभी-कभी राजनेताओं के बच्चे कानून को ही अपने हाथ में ले लेते हैं और लोगों को अपने आगे कुछ नहीं समझते हैं जिनकी बदौलत ही यह नेता लोग चुनकर आज शासन कर रहे हैं बशारत मंजिल उपन्यास में पारिवारिक राजनीति का उल्लेख इस प्रकार प्राप्त होता है। संशा अली का दूसरा बेटा है जो राजनीति और दादागिरी करता है वह पार्षद के लिए एक से ज्यादा बार चुनाव भी लड़ और हार चुका है और एक राजनीतिक पार्टी में अल्पसंख्यक विचार मंच इत्यादि का पदाधिकारी है कई राजनीतिक और आपराधिक मामले में वह जेल की हवा खा चुका है और अच्छा खासा समय राजनीति के नाम पर बिताने के बाद भी उसका स्तर इससे आगे नहीं बढ़ा है कि कभी-कभी नाम, शहर आने-जाने वाले नेताओं का अभिनंदन करने वार्ता की सूची में अखबार में देखने को मिल जाता है अतः राजनीति के इस नैतिक पतन की स्थिति को देखते हुए और पारिवारिक राजनीति के संदर्भ में है कहा जा सकता है की राजनीति में परिवारवाद की परंपरा आधुनिक राजनीति के सिद्धांत एवं प्रगतिशील राजनीति के मार्ग पर एक बाधा के समान है इसलिए राजनीति में परिवारवाद की प्रथा जल्द से जल्द खत्म होनी चाहिए।

मंजूर एहतेशाम जी के कथा साहित्य के राजनीतिक परिवेश से यह सिद्ध होता है कि राजनीतिक परिवेश की छवि किस तरह बन रही है राजनेता, राजनीति को सिर्फ खेल मान रहे हैं और राजनीतिक व्यवस्था और जनता के साथ खिलवाड़ कर रहे हैं । इससे कितनी जीव हानियाँ हो रही हैं और लोगों की मानसिकता संकुचित होती जा रही है और मानवीयता पर सांप्रदायिकता हावी होती चली जा रही है। मंजूर एहतेशाम जी के कथा साहित्य में ग्रामीण तथा नगरीय राजनीतिक परिवेश का वास्तविक एवं यथार्थ चित्रण किया गया है। राजनीति का बदलता स्वरूप, विसंगति, भ्रष्टता का उल्लेख भी हुआ है। देशकाल, वातावरण के अनुरूप लेखक ने राजनीतिक परिवेश को दर्शाया है ईमानदारी, कर्तव्य निष्ठा के स्थान पर लालच, झूठ, अधिकार का गलत प्रयोग, अत्याचार, नैतिकपतन आदि कुरीतियों के कारण राजनीति कूटनीति में बदल गई है राजनीति के कारण राजनेताओं ने अपने स्वार्थ के लिए आम लोगों में धार्मिक फूट डाला है और इसका लाभ राजनीतिक सत्ताधारियों के लिए है। मंजूरजी के कथा साहित्य में राजनीतिक चेतना, आधुनिक विचारधारा, राष्ट्रीयता, युवाजागरण, संघर्षशीलता, व्यवस्था के प्रति विद्रोह आदि के दर्शन भी प्राप्त होते हैं इस तरह राजनीतिक दोगलापन, चुनाव में भ्रष्टाचार का बोलबाला, नेतृत्व का पतन, स्वार्थ प्रवृत्ति, कुटिलता, सेवा और त्याग भावना की कमी, जातिवाद एवं क्षेत्रवाद आदि कलहों से मनमुटाव और घृणा व्यापक रूप से फैलती हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. राही मासूम रजा के उपन्यासों में समकालीन संदर्भ, शैलजा जायसवाल, पृ. 123
2. डॉ. जान चंद्रगुप्त, स्वातंत्रयोतर हिंदी उपन्यास और ग्राम चेतना, पृ. 79
3. मंजूर एहतेशाम सूखा बरगद, पृः 43
4. मंजूर एहतेशाम, मदरसा, पृः 238
5. कविता कोश 16 अप्रैल 2013
6. डॉ. पांडुरंग पाटील, देवेश ठाकुर और उनके उपन्यास साहित्य, पृः 97
7. मंजूर एहतेशाम, मदरसा, पृ. 243
8. डॉ. शशि जेकब, महिला उपन्यासकारों की रचनाओं में वैचारिकता, पृ. 91
9. मंजूर एहतेशाम, पहर ढलते, पृ.50
10. मंजूर एहतेशाम, बशारत मंजिल, 5: 22

सहायक आचार्य, हिंदी विभाग
यूनिवर्सिटी कॉलेज, तिरुवनंतपुरम, केरल-695304

आधुनिकता, विडम्बना और भूख : 'भूख आग है' की आलोचनात्मक पड़ताल

डॉ.अनूपा कृष्णन

कृष्ण बलदेव वैद हिन्दी के आधुनिक गद्य-साहित्य के प्रमुख रचनाकार हैं। उन्होंने डायरी, कहानी और उपन्यास के साथ-साथ नाटक तथा अनुवाद के क्षेत्र में भी महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। वैद की रचनाओं में निरंतर नवीन और मौलिक भाषिक प्रयोग दिखाई देते हैं, जो न केवल पाठक को चमत्कृत करते हैं, बल्कि आधुनिक हिन्दी-लेखन में एक विशिष्ट शैली के आविष्कार की दृष्टि से भी अत्यंत अर्थपूर्ण हैं। उनका रचना-संसार विपुल है - विविध अनुभवों और अभिव्यक्तियों से भरा हुआ। इस संसार में भाषा और शैली के अनगिनत नए, ताज़ा और अनूठे प्रयोग मिलते हैं।

समकालीन समय के महत्त्वपूर्ण और आवश्यक साहित्यकारों में वैद का स्थान इसलिए भी विशिष्ट है कि उन्होंने नैतिकता, श्लील-अश्लीलता, भाषा और आधुनिकता जैसे प्रश्नों को केवल अपने चिंतन का विषय न बनाकर, अपने पूरे लेखन में एक मूर्तिभंजक रचनात्मकता के साथ प्रस्तुत किया। वे साहित्यिक विधाओं की सीमाओं को तोड़ने में विश्वास रखते हैं-पर यह अराजकता नहीं, बल्कि सुविचारित, आत्म विश्वासपूर्ण और रचनात्मक हस्तक्षेप है। अस्वीकृतियों का जोखिम उठाते हुए उन्होंने अपने शिल्प, कथ्य और भाषा को हर कृति में नए ढंग से संवारा है; इसी कारण वे अपनी रचनाओं में एक अलग, कभी-कभी विवादित, किंतु अप्रत्याशित स्वर के रूप में उभरते हैं। वैद की भाषा में उर्दू छंद-लय, अनुप्रास, तुक, निरर्थकता में संगति और आधुनिकता की चमक सहज मिलती है। निर्भीक प्रयोगशीलता उन्हें मनुष्य के भीतर के अंधकार-उजाले, जीवन-मृत्यु, सुख-दुख, आशंकाओं, भय, संशय, अनास्था, ऊब और वासनाओं में गहराई से झाँकने का अवसर प्रदान करती है। वे मनुष्य-आत्मा के अंधकार में किसी अनदेखे उजाले की तलाश में चलने वाले अकेले, किंतु अनूठे रचनाकार हैं।

कृष्ण बलदेव वैद का 'भूख आग है' एक विडम्बना प्रधान नाटक है। इसकी विडम्बना बहुत संश्लिष्ट है । इसका यथार्थ यथार्थवादी नहीं और इसका विचार 'विचारधारावादी' भी नहीं है । यह एक ऐसा नाटक है जिसमें 'भूख' के कई प्रकारों का वर्णन बहुत ही सुन्दर ढंग से हुआ है । भूख पापी पेट से मात्र जुडी हुई नहीं है। जैसे कि दौलत की भूख, प्रशंसा की भूख, बड़े से और बड़े बनने की भूख आदि न जाने कितनी बातों की भूख लोगों में रहती हैं। लेकिन हमें यह समझना ज़रूरी है कि भूख किसी भी प्रकार की क्यों न हो, हद से गुज़र जाए तो वह विध्वंसता की ओर ही ले जायेगी । इसी बात पर इस नाटक में गहनता से चर्चा हुई है। इसके अलावा उस बीते हुए (गुज़रे हुए) ज़माने का ज़िक्र भी किया गया है, जहाँ लोग 'समानता' के सपने देखा करते थे। नौजवानों ने क्रांतिकारिता का बाना पहना था, और उसे आगे बढाने का प्रण भी लिया था पर आगे जाकर उनका यह जोश ठंडा पड गया। लेकिन उनके अन्दर अब भी कोयले में छिपी चिंगारी की तरह अन्दर ही अन्दर सुलग रही है।

भूख आग है नाटक को तीन दृश्यों के अन्दर समाहित किया है । इसमें मुख्य रूप से छह पात्र हैं। इसके मुख्य पात्र हैं- ममी , पापा , बच्ची, बुढ़िया, बूढा और भूखी बच्ची । इसके अलावा कुछ भूखे लोगों को भी दिखाया गया है। इसमें पहले के तीन पात्र उच्च मध्यवर्ग के प्रतिनिधि हैं और बाकी के तीन निम्न वर्ग के । नाटक की नायिका बच्ची और उसके ममी - पापा के बीच हो रही बातचीत से पहला दृश्य शुरू होता है । बच्ची को स्कूल से होमवर्क के रूप में 'भूख' से सम्बंधित एक एस्से लिखना है। बच्ची भूख से अनजान है क्योंकि वह एक खाते-पीते घर की औलाद है। वह एस्से लिख ही नहीं पा रही है। उसकी माँ तो हमेशा कुछ न कुछ खाती ही रहती है। ममी को यही लगती है कि बच्चों को इतना होमवर्क देना ही नहीं चाहिए क्योंकि इससे बच्चे खा-पी नहीं पा रहे हैं। और उन्हें यह भी लग रही है की 'भूख' एस्से के लिए उपयुक्त । विषय भी नहीं है । ममी समझ ही नहीं पा रही है कि आखिर अध्यापक ऐसे विषय देते ही क्यों है जिसके बारे में बच्चों को जानना तक नहीं है, और वह भी हिंदी में। ममी को लगती हैं कि स्कूलों में हिंदी पढ़ानी ही नहीं चाहिए और हिंदी अध्यापकों की भी इसलिए ज़रूरत नहीं हैं। उसका प्रश्न है ऐसी वाहियात विषय पढ़ाने के लिए रखते ही क्यों हैं? बच्ची टीचर को बहुत चाहती है इसलिए टीचर के खिलाफ एक भी लफ्ज़ वह बर्दाश्त नहीं कर पा रही थी। वह टीचर का ही पक्ष लेती है। ममी-पापा के बीच एस्से और टीचर के सम्बन्ध में इस बीच थोड़ी सी लड़ाई भी हो जाती हैं। पापा टीचर से मिलकर यह बताना चाहता है कि ऐसे वाहियात एस्से बच्चों को देने की ज़रूरत नहीं है। लेकिन ममी यही समझती है कि पापा टीचर से मिलकर उससे फ़्लर्ट करना चाहता है। इसलिए वे पापा को अकेले भेजना नहीं चाहती है। बच्ची बार-बार भूख का मतलब समझाने की बात करती हैं तो पहले उसका मतलब हंगर बताया जाता है और बाद में एपीटइट । लेकिन ममी-पापा बच्ची को ठीक उत्तर नहीं दे पा रही है। अंत

में पापा बच्ची को यही बताता है कि पोवेरटी की वजह से भूख का जन्म होता है। तब बची यह पूछती है कि पोवेरटी होती है तो क्यों? तब उसे समझाया जाता है कि लोगों के पास काम नहीं है। माँ की यही सोच है कि लोग मेहनत करना नहीं चाहते, वे कामचोर है। इस बीच बातें करते करते बच्ची को यह पता चलता है कि उसके दादा-दादी जो टीचर थे वे भी पोवेरटी का शिकार था और उसके पापा भी इसका शिकार हो चुका था। इसलिए पापा अपनी ज़िन्दगी के उस कडवे सच को भुलाना चाहते हैं, जिसे उसने बचपन में भोगा था। वह अपनी पत्नी या अपने बच्चों से भूख का रू-ब-रू करवाना नहीं चाहता। इसलिए वह यही कहता है कि इससे अच्छा उसे लोग डाकू ही समझे। बच्ची के बार-बार कहने पर यह तय किया जाता है कि पापा और बच्ची कुछ देर चुप रहकर एस्से का आउटलाइन तैयार करेंगे। अंत में सोचने से भी कुछ नहीं मिलते तो यह तय किया जाता है कि किसी भूखे से ही इसके सम्बन्ध में पूछ लिया जाय।

उच्च मध्यवर्ग और उच्च वर्ग हमेशा आम आदमी से दूर ही रहते हैं। वे भूख से अनजान है। इसलिए उन्हें इसके सम्बन्ध में कुछ भी पता नहीं है। और जिसे यह पता है वे अपने गुज़रे ज़माने को याद करना भी पसंद नहीं करता, जैसे पापा। भूख के बारे में चर्चा करते वक्त और भी कुछ बातें सामने आती हैं जैसे एबॉर्शन। अगर कोख में बच्ची निकली तो उसे पेट में ही मारा जाता। बच्ची सिर्फ बारह- चौदह साल की है, पर उसे पता है कि बच्चों के लिंग निर्णय के लिए टेस्ट करवा दी जाती है और यह गैरकानूनी है। उसे हिंदी की टीचर से सब पता चलता है। उसे अपनी सहेली से यह भी पता चला कि ममी का बेटा होनेवाला है। इसलिए ममी इतना खुश है। भारत में लोग आज भी बेटा-बेटी में फर्क रखता है- इस बात पर यहाँ पर नाटककार ने व्यंग्य किया है।

दूसरे दृश्य में जामा मस्जिद के आसपास के कबाब के दूकान और उसके आसपास रहनेवाले भूखे लोगों का दृश्य दिखाया गया है। जब बच्ची और उसका परिवार वहाँ खा रहे होते हैं तो उनके इर्द-गिर्द भूखे लोगों का जमाव हो जाता है। अंत में भूख और लालच की वजह से भूखे लोग उनसे कहते हैं कि उन्हें भी खा जाए। इस बीच बची उनमें से एस्से तैयार करने के लिए तीन लोगों को चुन भी लेती है।

तीसरे दृश्य में सारे मुख्य पात्र एक साथ मंच पर दिखाई देने लगते हैं । भूखी बच्ची, बच्ची के हमउम्र है । इस दृश्य में बच्ची यह जान जाती है कि सिर्फ उच्च वर्ग के लोग मात्र अंग्रेजी में बात नहीं करते बल्कि भूखे लोगों को भी यह भाषा आती है। बच्ची उनसे भूख का मतलब जानने की कोशिश करती है। पर चालाक भूखी बच्ची उसे पहले बताने को तैयार नहीं होती। वह तब तक नहीं बताना चाहती जब तक उसे भरपेट खाना खिलाया न जाय। अंत में उसे परिवारवाले न चाहते हुए भी खाना खिलाते हैं। भूखी बच्ची जब अकेले खाना खाती है तो बूढा और बुढ़िया उसे भला - बुरा कहते हैं। भूखी बच्ची किसी भी बात पर पीछे नहीं है। उसे पता है कि किस तरह लोगों से काम निकाला जा सकता है। इस बीच भिखारी जो गाने गाते हैं, उनसे पापा परिचित है। उसे याद आता है कि वह गाना उसके माता-पिता गाया करते थे। जिसके बोल वह भूल सा गया है या फिर याद ही नहीं करना चाहता। पापा की सोच के बीच ममी ज्यादा खाने से बेहोश सा हो जाती है और पापा ज्यादा सोचने से। मौके का फायदा उठाते हुए बूढा,बुढ़िया और भूखी बच्ची घर के खाने लायक सब चीज़ें लेकर जाने को तैयार हो जाते हैं। बूढा बच्ची को भी उठाकर ले जाना चाहता है और बच्ची के बदले तीन लाख रुपये बच्ची के पापा से ऐंठना चाहता है पर बुढ़िया उसे रोक लेती है। इस बीच पापा को होश आता है तो बूढा,बुढ़िया और भूखी बच्ची खिड़की से भाग जाते हैं। यह सब देखकर बच्ची बहुत खबरा जाती है।

बच्ची इस हादसे से यह जान जाती है कि भूख लोगों से क्या-क्या करवा सकते हैं। और उसे यह भी पता चलता है कि भिखारियों ने जो गाना गाया वह गाना उसके दादा-दादी गाया करते थे। इससे पापा की पुरानी यादें ताज़ा हो गयी हैं। उनके अन्दर अपने पापा-ममी के प्रति तिरस्कार और अपनी पुरानी ज़िन्दगी के प्रति घृणा ही है यह भी बच्ची जान जाती।

इस नाटक के माध्यम से वैद ने आज के भारत की सामाजिक यथार्थता हमारे सामने रखी है। व्यंग्य के माध्यम से उन्होंने उन लोगों पर प्रहार किया है जो बाहरी आडंबर में खोकर अपने अतीत को याद करने से भी कतराते हैं। साथ ही कन्या भ्रूण हत्या जैसी समकालीन समस्याओं को भी उन्होंने तीखे व्यंग्य के माध्यम से उजागर किया है। इस प्रकार 'भूख आग है' नाटक भारतीय समाज की बहुआयामी सच्चाइयों को हमारे सामने रखता है और मानवीय भूखों का नग्न, तीखा तथा विचारोत्तेजक चित्र प्रस्तुत करता है।

सहायक ग्रन्थ

कृष्ण बलदेव वैद - भूख आग है, राजपाल एंड संस, मदरसा रोड, कश्मीरी गेट, दिल्ली-संस्करण 1998

असिस्टेंट प्रोफेसर
महात्मा गाँधी कॉलेज , तिरुवनंतपुरम
(केरल विश्वविद्यालय से सम्बद्ध)

कविता

डॉ.देवेन्द्र कुमार धोदावत

(1)
वो दुआवों का टीका
दो घूँट मीठा दही...
हर इम्तिहाँ में आज तक
काम आ रहा वहीं ....

(2)
एक बार ही
मुस्करायी थी वो
तेरे रोने पर ...
वरना तेरे
हर दर्द पर
उसकी आँख में
आँसू थे...

(3)
माँ बच्चों की
तकदीर होती है...
काबिल बच्चे की माँ
बहुत अमीर होती है...

(4)
एक माँ ही है
जो इम्तिहां नहीं लेती...
वरना
खुदा भी
कोई कसर नहीं छोड़ता...

(5)
ये मेला
दुनिया का,
सभी के लिए
एक सा नहीं होता...
हर दादी की
किस्मत में पोता,
हमीद सा नहीं होता...

(6)
जब भी गुस्सा हुई
बापू का डर दिखाया माँ ने...
मौका डॉट का आने पर
अपने आँचल में छुपाया माँ ने...

(7)
बच्चे ही अच्छे थे
भाई क्यूँ बड़े हो गए...
एक ही कुनबे में
कई घड़े हो गए...

(8)
बच्चा बड़ा हो गया, अब
माँ का झूठा नहीं खाता...
फेंकना बच्चे का खाया बिस्किट
माँ के ज़ेहन में नहीं आता...

(9)
सिमेण्ट की फर्श पर चॉक से
हम लिखते साथ साथ थे....
मेरे काँपते हाथों को थामते थे
वो सके हाथ थे...

(10)
बहुत झूलाया था माँ ने
बेटे को पालने में...
अब वो होशियार हो गया है
माँ को टालने में...

(11)
जब भी गुस्सा हुई
बापू का डर दिखाया माँ ने...
मौका डॉट का आने पर
अपने आँचल में छुपाया माँ ने...

(12)
वो क, ख, ग पर ठहर गयी
मैं आगे बढ़ गया...
बहुत खुश है माँ
मैं पोथी पढ़ गया...

(13)
एक कोने में गुज़र जाएगा बूढ़ापा
बच्चों को, कितना भरम हो जाता है...
बूढ़े, माँ-बाप होते हैं,
बच्चों को, दिखना कम हो जाता है...

(14)
टाफी दिलायी बापू ने
फिर भी मन उदास था...
माँ के साये में
ज़रूर कुछ खास था..

अतिरिक्त मुख्य सचिव
'लोक भवन' कार्यालय
केरल

कहानी

गणित

महेश के बजाज

'ताई' यही नाम था उस 12 साल की लड़की का। देखने में 7-8 बरस की लगती थी। उसकी माँ ने बताया था सभी बच्चे उसे प्यार से ताई बुलाते हैं वैसे उसका नाम राजश्री है। शायद इन दिनों नाम व काम का दूर तक भी कोई रिश्ता नहीं है वरन राजश्री नाम होकर भी झुग्गी झोंपड़ी में क्यूँ रहती? उसकी माँ किसी घर में खाना बनाती, बरतन साफ करती, बाप कपड़े इस्त्री का धन्धा करता और माँ-बेटी, बाप के धन्धे में हाथ बटातीं।

उस दिन ताई घर पर कपड़े लेकर आयी तो बोली इस्त्री का दाम बढ़ गया है, पत्नि ने पूछा-क्यूँ?

कोयला महँगा हो गया है, ना!

फिर जल्दी से हिसाब बनाकर बोली 88 रुपये 50 पैसे।

इधर पत्नि डायरी, पेन व केलकुलेटर से जूझ रही थी।

कुछ समय बाद बोली ठीक है, तेरा हिसाब तो ठीक है यह ले पैसे। उसके जाने के बाद पत्नि बोली- कितनी तेज़ लड़की है, दिखने में छोटी है पर हिसाब तो देखो, न जाने कौन स्कूल में पढ़ती है। मैंने समझाया- 'गणित' स्कूल से नहीं पेट से सीखा जाता है, जरू रत इंसान को हिम्मत, रास्ता और गणित सब सिखा देती है।

मुझे याद आता है बरसों पहले मैं उत्तर बिहार के शहर-दरभंगा में रहता था।

एक दिन शाम को कहीं जाना था। चौक पर रिक्शा की इंतजार करते-करते सामने एक रिकशावाला जो देखने में काफी कमज़ोर नजर आता था, पैरो में पट्टी बंधी होने से मालूम पड़ रहा था कि कहीं चोट लगी है और घाव अभी भरा नहीं हैं, आ कर रुका।

"बाबू जी कहा जाईएगा"?

सुनकर मेरी तंद्रा टूटी, "टॉवर चौक जाना है"

- तो चलिए।

- लेकिन तुम कैसे लेकर जाओगे। तुम हारे तो पैरों में चोट लगी है?

- अरे बाबू जी रिक्शा पैरों से थोड़े न चलता है।

- 'तो कैसे चलता है?' मैंने आश्चर्य से पूछा।

- रिक्शा पेट से चलता है बाबूजी। देखिये न मेरे पास पाँच-सात दिन का इंतज़ाम होता तो मैं रिक्शा

नहीं चलाता, लेकिन भूखे बच्चों का मुँह देखकर रिक्शा चलाने की हिम्मत आ जाती है।

वो घटना मुझे आज भी याद है। हेड ऑफिस मुंबई में कम्पनी के बोर्ड रूम के ए.सी. की ठण्डी हवा में जब में बड़े-बड़े पढ़े-लिखे लोगों को गणित व अर्थशास्त्र के जटिल विषयों पर दिये गये भाषणों को सुनता हूँ, अथवा कम्पनी की परफोरमेंस सुधारने के उपायों में अपनाए जाने वाले मोटिवेटर्स की चर्चा में भाग लेता हूँ तो जान पड़ता है कि शायद हम वास्तविकता से बहुत दूर किसी अलग दुनिया में रहते हैं।

बार-बार, बरस-दर-बरस कम्पनियों की नॉन-परफोरमेंस पर आँसू बहाते बहाते कितने चैयरमैन, सी.ई.ओ. आते और जाते हैं। विदेशों से नई-नई मानव संसाधन नीतियों व प्रबन्धक तकनीक सीख कर आते हैं। फिर भी नतीजे अच्छे क्यों नहीं निकलते?

भारतीय मूल के एक अर्थशास्त्री को नोबल पुरस्कार मिला। उन्होंने विश्व को बताया कि मानव संसाधन के विकास से विश्व का कल्याण सम्भव है।

क्या अभी तक किसी को यह बात समझ में नहीं आयी थी? चन्द रोज पहले भारत में प्रबन्धन के विदेशी गुरु बताकर गये कि अच्छा प्रबन्धक नेता होने के लिए पहले अच्छे आदमी होना जरूरी है।

और अखबारों में चर्चा व टी.वी. चैनल पर परिचर्चा का मसाला मिल गया।

इसमें नया क्या है? शायद कुछ भी नहीं लेकिन आज की सुख-सुविधाओं ने मानव का बौद्धिक विकास मानो बाधित कर दिया है।

अनेकानेक चिंतकों ने सदियों से लोगों को बौद्धिक विकास की ओर प्रेरित किया। उर्दू के मशहूर शायर इक्बाल ने कहा -

'खुदी कर बुलन्द इतना कि हर तदबीर से पहले,

खुदा बन्दे से खुद पूछे बता तेरी रज़ा क्या है?

महा प्रबंधक (सेवानिवृत)
सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया

प्राकृतिक संसाधनों का बाजारीकरण 'ठंडे पानी की मशीन' कविता के संदर्भ में

डॉ.मिनि ए आर

प्राकृतिक संसाधन ऐसे सामग्री और घटक है, जी पर्यावरण के भीतर पाया जा सकता है। प्रत्येक मानव निर्मित उत्पाद प्राकृतिक संसाधनों से बनता है। प्राकृतिक संसाधन आज बिकाउ साधन बन रहा है। प्राकृतिक संसाधनों का बिकाउ का मतलब है प्राकृतिक रूप से पाए जानेवाले संसाधनों का व्यापार या बिक्री। यह एक जटिल प्रक्रिया है, जो विभिन्न स्तरों पर होती हैं। इसमें खनन और निष्कर्षण, वन उत्पादों का व्यापार, कृषि उत्पाद, पानी का व्यापार, उर्जा संसाधन आदि होता है। कुछ क्षेत्रों में पानी को भी बेचा जाता है। खासकर उन क्षत्रों में जहाँ पानी की कमी है। प्राकृतिक संसाधनों का व्यापार आर्थिक विकास और रोजगार का अवसर पैदा कर सकता है। लेकिन इनके नकारात्मक प्रभाव भी हो सकते हैं- पर्यावरण प्रदूषण, वनोन्मूलन, भूमिक्षरण, प्रजातियों का विलुप्त होना, सामाजिक असमानता आदि प्राकृतिक संसाधनों का सतत उपयोग सुनिश्चित करने के लिए हमें संसाधनों का संरक्षण करना है। प्राकृतिक संसाधनों का बिकाउ एक जटिल मुद्दा है। सतत विकास और पर्यावरण संरक्षण सुनिश्चित करने के लिए हमें प्राकृतिक संसाधनी का बुद्धिमानी से उपयोग करना चाहिए और उनके संरक्षण के लिए प्रयास भी करना चाहिए।

हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि एकान्त श्रीवास्तव जिनके बिना आज की हिन्दी कविता का मार्नायत्र पूरा नहीं होता। उनकी प्रमुख कविता ठंडे पानी की मशीन में प्राकृतिक संसाधन जैसे पानी के बिकाउ पर गहरा ध्यान दिया गया है। जल जीवन का मूल स्रोत है, अब बिकाउ वस्तु बन रहा हा। पानी कभी सार्वजनिक संपति था, अब बिकाउ वस्तु बन गया है। यह मशीन हमें याद दिलाती है कि प्राकृत्तिक जल सोतों पर अब निजी कंपनियों या संस्थाओं का नियंत्रण है। पानी जैसी बुनियादी जरूरत को भी जब हम पैसे देकर खरीदते हैं, यह दर्शाता है कि प्राकृतिक संसाधन अब सिर्फ उपयोग की चीज़ नहीं रहे, बल्कि मुनाफे का साधन बन गए हैं। ठंडे पानी की मशीन आधुनिक सभ्यता का प्रतीक है, यह मशीन शहरों और बाज़ारों में खड़ी यह संरचना है, जो प्रकृतिक संसाधनों के निजीकरण, उपभोक्तावाद और वर्गीय भेद को मूर्त रूप देती है। यह केवल एक तकनीकी सुविधा नहीं है, बल्कि यह आज के युग में प्राकृतिक संसाधनों के बाज़ारीकरण, सामाजिक असमानता और आधुनिक उपभोक्ता समाज की गहराई से झलक दिखानेवाला प्रतीक बन चुकी हैं।

कवि ने शहर के भीड़-भाड़वाले इलाके पर एक ठंडे पानी की मशीन देखी। यह देखकर कवि को चिंता हुई और डर महसूस हुआ। पानी जो बारिश के रूप में निशुल्क मिलता है। जो नदियों में स्वाभाविक रूप से बहता है। अब वही प्राकृतिक रूप से मिलनेवाला पानी भी बाज़ार में बेचा जा रहा है। आधुनिक समाज में प्राकृतिक संसाधनों के बाजारीकरण पर व्यंग्य करती है। कवि चिंता भी प्रकट करता है। यह कविता केवल पानी की मशीन की बात नहीं करती है, यह पूरे समाज की सोच बाजारवाद और पर्यावरणीय संकट की गहरी आलोचना है। पानी जो जीवन का मूल है, अब पैसे से मिलनेवाला उत्पाद बन गया है। यह एक चेतावनी है कि यदि हम प्राकृतिक संसाधनों का इतना दोहन करते रहे तो आनेवाला समय और भी भयावह होगा। कविता हमें मानवता की गिरती संवेदनशीलता और मुनाफे की अंधी दौड़ की और ध्यान दिलाती है। जी पानी पहले सबके लिए था, अब सिर्फ पैसे खर्च करनेवालों को मात्र उपलब्ध हो रहा है। भविष्य में जलसंकट और वर्गभेद बढ़ सकता है। हम अभी नहीं जाते तो हमारी प्राकृतिक धरोहरं पूरी तरह बाजार की वस्तु बन जाएँगे। आधुनिकता और सुविधा के नाम पर हम प्रकृति के मूल तत्वों का भी व्यवसायीकरण कर रहे हैं - जो अनैतिक और खतरनाक है। इसलिए हमें चेतना और बदलाव की जरूरत है।

पानी जो एक प्राकृतिक अधिकार है, अब खरीदकर पीने की वस्तु बन गया है। यदि आपके पास पैसे है तो उन्हें मिलेगा। यदि आपके पास पैसा नहीं है तो आप प्यासे रह सकते हैं, पानी अब अधिकार नहीं, उत्पाद है। यह स्थिति सामाजिक न्याय और समानता के विरुद्ध है।

इस मशीन के सामने अनेक जन ठिठकते हैं। आमजन उस मशीन के पास जाते हैं, जेबें टटोलते है और आगे बढ़ जाते हैं। उनके पास शायद उस मशीन से पानी लाने के लिए पैसे नहीं होते। उनका रुकना ही उनकी लाचारी का प्रतीक है। वे पैसे की उम्मीद में जेबें टटोलते हैं, लेकिन जब पैसा नहीं मिलता तो मौन, निराशा के साथ आगे बढ़ जाते है। यह स्थिति गरीबी की चुप व्यथा है। जब बच्चों की प्यास उन्हें पानी की मशीन की ओर खींचती है तो माँ-बाप उन्हें खींचकर दूर ले जाते है। क्योंकि पानी खरीदने में वे असक्षम है। यहाँ माता-पिता की मजबूरी, शर्म और दुख झलकते है। खुद माता-पिता भी बहुत प्यासे है, पर पैसा नहीं होने के कारण पानी नहीं पी सकते। वे केवल अपने होठों पर जीभ फेरकर प्यास को सहने की कोशिश करते है। शारीरिक प्यास के साथ-साथ मानसिक और सामाजिक पीड़ा की भी अभिव्यक्ति हैं। यहाँ सामाजिक, आर्थिक और मानवीय असमानता की करुणा भरी गवाही है। यहाँ पानी अधिकार है, न कि एक वस्तु।

अब तक हम अपनी भूख से लड़ते थे,
अब हमें अपनी प्यास से भी लड़ना होगा-

इन पंक्ति द्वारा आधुनिक समय की सबसे गहरी विडंबनाओं में से एक को उजागर करती हैं। यह महज एक वाक्य नहीं, बल्कि हमारी सामाजिक, आर्थिक और पर्यावरणीय स्थिति पर एक तीखा व्यंग्य है। यह कथन दर्शाता है कि मनुष्य जिस धरती पर जन्मा, जिसकी नदियों, झीलों और वर्षों से उसे जीवन दिया, आज उसी धरती पर जीने के लिए सबसे मौलिक संसाधनों भोजन और पानी के लिए संघर्ष करना पड़ रहा है।

इतिहास में भूख को एक सबसे बड़ी समस्या मानी गयी। अनेक देश और समाज अकाल और कुपोषण से जूझते रहे। इसलिए भूख के खिलाफ संघर्ष मानव सभ्यता का एक पुराना व्यावसायिक संघर्ष रहा है। अब प्यास यानि जल संकट भी उसी श्रेणी में आ गया है। भोजन की कमी मुख्यतः उत्पादन वितरण और गरीबी से जुड़ी थी। लेकिन पानी की कमी एक और जटिल समस्या है, जो जलवायु परिवर्तन प्राकृतिक संसाधनों के अति दोहन, शहरीकरण, औद्योगीकरण और जल के निजीकरण जैसे कई कारणों से उत्पन्न हुए। यह हमें चेतावनी देता है कि जल अब सभी को समान रूप से और स्वतः सुलभ नहीं रहा। आज के युग में जल शुद्धीकरण मशीनें, बातलंबद पानी, पानी की पाइप लाइनें और वाटर ए.टि.एम जैसी सुविधाएँ केवल उन्हीं के लिए उपलब्ध हैं, जो आर्थिक रूप से सक्षम है। गरीब और वंचित वर्ग को सार्वजनिक नली, टैंकरों तथा जलाशयी पर निर्भर रहना पड़ता है। वहाँ भी उन्हें अक्सर पानी की लाइन में लगना पड़ता है। मारपीट होती है और कभी-कभी खाली हाथ लौटना पड़ता है। यही तो वह प्यास से लड़ना है।

कवि के मन में आशा है कि, वह रास्ता वापस आना है। किसी समय गाँव से होकर गुजरते थे, वे रास्ते अब नहीं। आज के आधुनिक शहरे नैशनल हाईवे, फ्लाई ओवर आदि में ऐसे रास्तों का कोई स्थान नहीं। अब ऐसे गाँवों को काटते हुए नहीं, उन्हें पीछे छोड़ते हुए निकलते हैं। यहाँ गाँव कंवल भौगोलिक स्थान नहीं है, बल्कि एक सांस्कृतिक इकाई हैं। गाँवों में जीवन की सहजता, सादगी, आत्मीयता और मानवीय संबंधों की गर्माहट हुआ करती थी। जब रास्ते गाँवों से होकर गुज़रते थे, तो बटोहियों को न केवल गंतव्य तक पहुँचना होता था, बल्कि रास्ते में जीवन का अनुभव करना होता था। प्राकृतिक छाँव जैसे आम, नीम, बरगद के पेड़ ये प्रकृति और मानव के बीच आत्मीय संबंध के प्रतीक है। इन पेड़ों के नीचे बैठकर लोग विश्राम करते, बातें करते और राहगीर एक दूसरे की खबर लेते। यह केवल पेड़ नहीं थे, बल्कि सामाजिक जीवन के केन्द्र थे। अब ये पेड़ या तो काट दिए गए हैं, या बचे नहीं है, या इनका कोई महत्व नहीं रहा। बटोहियों को गुड और ठंडा पानी देकर स्वागत करते थे। यह सिर्फ सत्कार नहीं, संवेदनशीलता और सामुदायिकता की संस्कृति थी। यह सहज सेवा भावना अब धीरे-धीरे खतम हो रही हैं, क्योंकि हम एक उपभोक्तावादी समाज में बदल रहे हैं जहाँ हर वस्तु का मूल्य है, पर मूल्यहीन हो गयी है, संवेदनाएँ।

बनाए जा रहे हैं, जिनमें इंसानी गर्माहट की कोई जगह नहीं बची। न वहीं गाँव मिलते हैं, न प्रकृति की गोद और न ही वो लोग जो बिना जाने पहचाने किसी प्यासे को पानी दे दें। कविता का स्वर तो नोस्टोलजिक है। इस कविता की व्यंजना में नौस्टोलजिया, पीड़ा और चेतावनी तीनों मौजूद है। यह हमें प्रकृति संस्कृति और सामूहिक जीवन के मूल्यों की वीपसी की आवश्यकता का स्मरण कराती है। केवल यह अतीत की याद नहीं मात्र दिलाती है, बल्कि भविष्य के लिए एक सवाल भी छोड़ती है क्या हम फिर कभी ऐसे रास्ते बना सकेंगे? ठंडे पानी की मशीन तो वास्तव में आज के समाज के लिए एक चेतावनी हैं। यह हमें याद दिलाता है कि प्रगति का सही अर्थ नहीं है, जिसमें विकास के साथ-साथ मानवीय संबंध, प्रकृति और परंपराएँ भी सुरक्षित करें। यह आधुनिकता के लाभ और हानि दोर्ना का प्रतीक है, आज के युग में एक सशक्त प्रतीक बव चुकी है।

सहायक आचार्य
पय्यन्नूर कॉलेज, पय्यन्नूर, केरल

कविता

'तम्बू'

कमलादास (माधविकुट्टि)
मलयालम कविता का हिंदी अनुवाद
डॉ. एम.एस.विनयचन्द्रन

ओ पाठक,
मेरी कविता एक जल-धारा सी
तुम्हारे अन्दर प्रवेश करती है
और फिर
तुम मेरी यात्रा के सह-यात्री बन जाते हो।
मेरी खोज
तुम्हारी भी खोज बन कर रह जाती है
प्रेत-वृक्षों की छायाओं में
विश्राम लेते वक्त भी
झरनों से दोने भरकर
मायाजल का पान करते वक्त भी
हम साथ हैं
दूर-दर्शी चिड़ियों की
चेतावनी सुनना।
अयथार्थ वनों से राह चलकर
अस्तित्वहीन चोटियों को देखकर
बादलों की तरह
हम मन्द गति से भटके जा रहे हैं
हमारे खून की नदियों के किनारों पर
तम्बू गढ़कर
आनेवाली पीढ़ी आराम लेती है।

पूर्व हिंदी विभागाध्यक्ष
यूनिवर्सिटी कॉलेज, तिरुवनन्तपुरम।

हिंदी में अनूदित तेलुगु कहानियों का संवेदनात्मक पक्षः एक समीक्षा

डॉ.राथौड पुंडलीक

शोध-सार : कहानी विधा में संवेदना पक्ष का अत्यधिक महत्व होता है, जिसमें संवेदना पक्ष को एक उत्कर्ष तक पहुँचाया जाता है। प्रस्तुत शोध-आलेख में हिंदी में अनूदित उन पांच कहानियों को चुना गया है, जिनमें लेखक इन कहानियों के विभिन्न पात्रों को जीवन के विभिन्न रूपों से उलझते हुए एक विशिष्ट संवेदनात्मक स्थिति में लाकर खड़ा करते हैं। पाँचों कहानियों में पात्र अपनी सामाजिक, आर्थिक पृष्ठभूमियों में विभिन्नता को लिए हुए हैं। इन कहानियों में शहरी उच्च मध्य वर्ग, शहरी मध्य वर्ग, ग्रामीण समाज, फैक्ट्री के मजदूर वर्ग, निम्न वर्ग की विभिन्न मानसिक स्थिति का चित्रण हुआ है। प्रस्तुत शोध आलेख में इन पाँचों कहानियों में चित्रित विभिन्न संवेदनात्मक पहलुओं को सामाजिक पृष्ठभूमि में संबंधों के बिखराव तथा सामाजिक मानसिकता का परिचय आदि उपशीर्षकों में समझने और विश्लेषण करने का प्रयास हुआ है।

बीज शब्द : कहानी विधा, संवेदना, संवेदनात्मक पक्ष, सामाजिक पृष्ठभूमि, सामाजिक वर्ग, ग्रामीण समाज, भावना, प्रेम, अधूरापन, संबंधों में बिखराव, ऋण ग्रस्थता, एकता, संगठन, कुंठा, अकेलापन, मानसिक ईर्ष्या।

अनुदित कहानी संग्रह का परिचय : तेलुगु साहित्य के महान कहानीकारों की कहानियों को हिंदी में अनुवाद के माध्यम से पदार्पण करवाना एक महान कार्य है। श्री कमलेश्वर द्वारा चयनित एवं संपादित इस पुस्तक का शीर्षक तेलुगु की चुनी हुई कहानियाँ है। राजपाल एंड संस से सन 2012 में प्रकाशित इस कहानी संग्रह में कुल 26 कहानियों को सम्मिलित किया गया है। सभी कहानियाँ तेलुगु साहित्य में अपने विशिष्ट कथानक प्रवृत्तियों एवं शैली की दृष्टिकोण से चर्चित एवं महत्वपूर्ण हैं। इन कहानियों में से प्रस्तुत शोध आलेख हेतु कुल पाँच कहानियों का चयन किया गया है। इन कहानियों में पलुगुम्मी पद्मराजू द्वारा रचित 'पड़ोस वाली नानी', बुच्चि बाबु द्वारा रचित 'पुरानी यादें', टी गोपीचंद द्वारा रचित 'पड़ोस की कुंवारी लड़की', कोडवटिंगट कुटुंबाराव द्वारा रचित 'नयी जिंदगी' और इच्छापुरपु जगन्नाथ राव द्वारा रचित 'मुझे गरीब पति चाहिए' आदि सम्मिलित हैं।

चयनित कहानियों का कथानक:पाँचों कहानी अपनी अपनी प्रवृत्तियों एवं कथानक के आधार पर विशिष्ट हैं। किसी भी दो कहानियों का कथानक सामान नहीं हैं। सभी कहानियाँ अपने विशिष्ट कथानक के माध्यम से एक भिन्न संवेदना पक्ष को हमारे समक्ष रखती हैं। इन कहानियों में कहानीकारों द्वारा बदलते समाज के साथ-साथ परिवर्तित होते सामाजिक आर्थिक मूल्य को समेटने का प्रयास किया गया है।

पालगुम्मि पद्मराजु- पड़ोस वाली नानी : यह कहानी महिला की सामाजिक समझ एवं सूझबूझ पर आधारित है। इस कहानी की नायिका 'पड़ोस वाली नानी' है। वह नानी जमींदार की चौथी पत्नी है और पति के मृत्यु के पश्चात वह अपने पुत्र को लेकर, लेखक की गली में रहने आ जाती है। कालांतर में नानी के पुत्र का विवाह हो जाता है, उसके बच्चे भी हो जाते हैं लेकिन नानी का पुत्र मदिरापान का आदि होता है। वह शराब पीकर हमेशा अपनी पत्नी को पीटता रहता है। इसका नकारात्मक प्रभाव उसके छोटे-छोटे बच्चों पर पड़ता है। इस स्थिति में अपने पौत्रों के भविष्य को सुधारने हेतु नानी अपनी बहू को मायके भेज देती है और अपने पास जो भी गहने, पैसे थे, सब बहू को देकर भेज देती है क्योंकि वह उन बच्चों की ठीक से परवरिश कर सके। कहानी में नानी का चरित्र चित्रण एक आदर्श महिला के दृष्टिकोण से हुआ है। कुछ समय बाद नानी की मृत्यु हो जाती है, तब उसका पुत्र वास्तव में दुःखी होता है और रोने लगता है। इसी दृश्य से कहानी का प्रारंभ भी होता है और समाप्ति भी।

बुच्चिबाबु- पुरानी यादें : इस कहानी की नायिका एक पत्नी है। कहानी में उसका नाम नहीं है क्योंकि यह कहानी में शैली में लिखी गई है। पति-पत्नी के बीच एक ऐसा वार्तालाप जो पत्नी को किसी अनोखे संसार में ले जाता है। इस कहानी में पत्नी बचपन में किसी पद्मराजु नामक लड़के से प्रेम करती थी। पति जब अपनी पत्नी को पिक्चर हाउस में पद्मराजु से उनकी मुलाकात की सूचना देते हैं, तो पत्नी का उत्साह एक भिन्न विश्लेषण की मांग करता है। दूसरे दिन फिर पति ने अपनी पत्नी को 'नृत्य शाला' में उनकी मुलाकात की सूचना देता है और यह भी कहता है कि वह अपने घर आने वाले हैं। जब पत्नी यह समाचार सुनती है, तब पत्नी अपने मनोभावों को वहाँ ले जाती है, जहाँ से उनकी प्रेम कहानी की शुरुआत हुई थी। पत्नी अपनी प्रेम कहानी का सारा चित्र अपने विचारों में घूमाती रहती है। वह आज बहुत प्रसन्न भी है क्योंकि पद्मराजु से भेंट हो पाएगी। जब पद्मराजु उनके घर आता है, तो वास्तव में वह पद्मराजु नहीं बल्कि पद्मराजु नामक कोई अन्य पुरुष है। इस पर पत्नी को अपने पति पर क्रोध आता है। वह सोचती है कि -"मुझे धोखा देने के लिए, मेरे मन को दुख पहुंचाने के लिए उन्होंने यह षड्यंत्र रचा था? अगर मानसिक यातना देने की उनकी मंशा रही हो, तो विजय उन्हीं के पक्ष में है और हार मेरी हुयी।[1]

टी गोपीचंद- पड़ोस वाली कुंवारी लड़की : यह एक ऐसे परिवार की कहानी है, जिसमें कमाने वाला अकेला पति है और आर्थिक स्थिति ठीक नहीं है। ऐसी स्थिति में उनकी एक बेटी है, जो विवाह योग्य हो गई है। यह परिवार लेखक के पड़ोस में रहता है। पत्नी हर शाम को पति को कहती है कि बेटी का विवाह

करवा दीजिए, पति कहता है हाथ में रुपया नहीं है फिर भी पत्नी विवाह की बात पर जोर देने लगती है और पति उसे मारने लगता है। हर दिन का यही सिलसिला है। पड़ोस में एक इंकम टैक्स अधिकारी का परिवार भी रहता है, जिसका रहन-सहन उंचे दर्जे का है। उनका यह दर्जा उस गली में किसी को भी भाता नहीं है। सभी गली की महिलाएँ उस अधिकारी की पत्नी के प्रति इर्ष्या भाव रखती हैं। एक दिन बच्चों के बहाने हर रोज अपने पति से मार खाने वाली पत्नी उस अधिकारी की पत्नी से झगड़ने लगती हैं। इस कहानी में दूसरे की उन्नति के प्रति ईर्ष्या भाव को प्रमुखता से चित्रित किया गया है। पड़ोस की कुंवारी लड़की की माँ जो हर रोज अपने पति से मार खाती है, वह कहती है कि "अभी तो कुछ नहीं हुआ, आगे देखना। मैं तब तक चैन नहीं लूँगी जब तक वे लोग यह गली छोड़कर न चले जाए।"[2]

कोडवटिंगट कुटुंबराव- नयी जिंदगी : इस कहानी का नायक विट्ठल अपने गाँव से रोजगार की तलाश में शहर आता है क्योंकि उनके परिवार (संयुक्त परिवार) पर कर्ज हो जाता है। विट्ठल को शहर की एक फैक्ट्री में काम मिल जाता है। कहानी में फैक्ट्री में काम करने वाले मजदूरों की सामाजिक, आर्थिक एवं संगठनात्मक एकता का चित्रण हुआ है। एक दिन जब मजदूर हड़ताल पर बैठ जाते हैं, तब विट्ठल उस हड़ताल को साथ नहीं देता है लेकिन जब मजदूर अपनी माँगे पूरी करवा लेते हैं, तब उसे पश्चाताप होता है। उसे ज्ञात होता है कि एक के अधिकार हेतु यहाँ के सारे मजदूर आवाज उठाते हैं। विट्ठल अपने परिवार को पैसे भेजते रहता है और आशा करने लगता है कि आधा कर्ज तो चुकता हो ही गया होगा। कुछ समय बाद विट्ठल अपने घर जाता है, देखता है कि घरवाले सब उनके द्वारा भेजे गए पैसों पर मौज कर रहे हैं और कर्ज ज्यों का त्यों पड़ा हुआ है। सारे सदस्य कहते हैं कि काम से क्यों लौट आया? अर्थात् परिवार को केवल उसके पैसों से मतलब है, वह फैक्ट्री में किस स्थिति में काम करता है, कोई मतलब नहीं है। विट्ठल को वास्तविकता का बोध होता है और वह कभी न लौट आने और एक भी रुपया न भेजने का संकल्प लेकर शहर जाने की बात करता है, तब सब कहते हैं, इतना जल्दी क्यों जाना चाहते हो? "पर विट्ठल को यह नहीं लगा कि यह लोग सचमुच उसे रोकना चाहते हैं।"[3]

इच्छापुरपु जगन्नाथ राव- मुझे गरीब पति चाहिए : यह कहानी शहरी मध्य एवं उच्च वर्ग के जीवन पर केंद्रित है। मध्यवर्गीय जीवन का अकेलापन, कुंठा, स्वार्थ मानसिकता, संबंधों को भी मूल्य पर तौलने की प्रवृत्ति आदि विभिन्न पहलुओं का चित्रण इस कहानी में हुआ है। इस कहानी की नायिका राधा, जो उच्च मध्यवर्गीय परिवार से है और नायक प्रकाश राव निम्न वर्ग से संबंधित है। नायिका राधा को उच्च मध्यवर्गीय कटा-छटा जीवन पसंद नहीं है। वह प्रकाश राव से विवाह करने का प्रस्ताव रखती है लेकिन प्रकाश राव अपनी स्थिति के अनुसार मना कर देता है। राधा का विवाह एक उच्च वर्गीय व्यक्ति मल्लिक साहब से होता है। कुछ समय बाद जब राधा और प्रकाश राव की भेंट होती है, तब राधा पूर्णतः बदल चुकी है। वह अब शराब पीने लगी है और अपने व्यक्तित्व को समाप्त करके ऐसी जिंदगी जी रही है, जिसको लोग उच्च वर्गीय जीवन शैली कहते हैं लेकिन उस शैली का कोई मूल्य नहीं होता है। वह बस एक व्यर्थ जिंदगी होती है। राधा कहती है कि "देखिए प्रकाश, आज की रात मुझे बहुत सुहानी सी लग रही है। चलिए न लेक्स तक हो आएँ। वह अकस्मात बोल उठी।"[4]

चयनित कहानियों का संवेदन पक्षः प्रस्तुत कहानी संग्रह में सारी कहानियाँ अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। इन कहानियों की वस्तु संवेदना के अनेक पक्ष एवं व्यापक पहलुओं के बीच हम कुछ ही पक्षों पर विचार कर रहे हैं।

पात्रों की वर्गीय पृष्ठभूमि का परिचयः चयनित पाँचों कहानियों में पात्रों की पृष्ठभूमि भिन्न-भिन्न हैं। 'नयी जिंदगी' का नायक विट्ठल ग्रामीण समाज से है किंतु वह शहरी मजदूर वर्ग से जुड़ता है। 'मुझे गरीब पति चाहिए' कि राधा शहरी उच्च मध्य वर्ग से संबंधित है। 'पड़ोस वाली नानी' निम्न वर्ग से आती है, तो 'पड़ोस की कुंवारी लड़की' का परिवार निम्न वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। 'पुरानी यादें' का दंपति जोड़ा मध्य वर्ग की पृष्ठभूमि से है।

मध्यवर्गीय जीवन का यथार्थः शहरी मध्यवर्गीय जीवन की समस्या यह है कि उसके प्रेम और विवाह में असंगति के कारण जीवन में वास्तविक रस प्राप्त नहीं हो पाता है क्योंकि प्रेम एक सहज मानवीय भावना है जबकि विवाह एक सामाजिक व्यवस्था। मुझे गरीब पति चाहिए कि राधा प्रेम के साथ विवाह करना चाहती है। वह प्रेम की सहज मानवीय भावना को विवाह में बदलना चाहती है, इसलिए वह प्रकाश राव से कहती है कि "प्रकाश! आप मुझसे शादी करेंगे? इस नौकरी को लात मारिए। हम दोनों कहीं दूर चले जाएँगे। खुशी से जिंदगी बसर करेंगे। मैं भी कोई न कोई नौकरी करूँगी। मैं भी श्रम करूँगी। बोलिए! मंजूर है, आपको मेरा प्रस्ताव।"[5] राधा अपने विवाह को महज एक सामाजिक व्यवस्था नहीं बल्कि भावनाओं से युक्त स्वर्ग बनाना चाहती है। इसलिए वह पति भी ऐसा चाहती है, जो वास्तव में भावनाओं का आदर करें। प्रेम जैसी सहज भावना शहर के यांत्रिक जीवन में अपनी सरसता खो चुकी है। वह उपयोगितावादी समीकरणों से परिभाषित होने लगती है। राधा का होने वाला पति प्रेम या विवाह को लाभ-हानि की दृष्टि से देखता है। उसके संदर्भ में राधा प्रकाश राव को कहती है कि "मैं ऊब चुकी हूँ रईसाना ठाट बाट से। एक गरीब की जिंदगी बसर करना चाहती हूँ। इसलिए मैंने पिताजी से साफ कह दिया है कि मैं मल्लिक के साथ शादी नहीं करूँगी। उनका उठना-बैठना, बोलना-चलना, तौर-तरीके, पीना-पिलाना सब कुछ मुझे और अस्वाभाविक और अटपटे से लगता है।"[6]

आज शहरी जीवन में भावनाओं और संवेदनाओं का

अकाल पड़ा है। हर व्यक्ति अपने जीवन में अधिक से अधिक सफल होना चाहता है, इस प्रक्रिया में वह वास्तविक जीवन और हृदय की भावनाओं से कट कर नकली व्यक्ति हो जाता है। अर्थात वह कटी-छटी जिंदगी जीने लगता है।

शहरों में उच्च मध्यवर्गीय व्यक्ति दूसरों की पहचान से वंचित होता जा रहा है और वह स्वयं को भी नहीं पहचान पा रहा है, बस एक बाढ़ में बहता जा रहा है। फलतः नायिका राधा आत्मनिर्वासन या अजनबीपन की अवस्था में पहुँच जाती है। उसे अपना पति भी अजनबी सा लगने लगता है। जब प्रकाश राधा को उनके पति की याद दिलाता है, तब वह कहती है कि "हाँ, हाँ, मैं तो उनकी बात भूल ही गई थी। राधा ने गिलास हाथ में लेते हुए कहा।"[7] नायिका अपने पति से भावनात्मक रूप से जुड़ नहीं पाती है, इसलिए अब वह शराब पीने लगी है। 'पीने में बड़ा आनंद आता है मुझे' नायिका का अपने जीवन से मोह भंग हो चुका है क्योंकि उसका पति भावनाओं की पवित्रता से नहीं बल्कि भावनाओं को वस्तु से परिभाषित करता है। वह राधा को एक महंगी अंगूठी पहनाया है लेकिन राधा की दृष्टि में उस अंगूठी का मूल्य इस वाक्य से ज्ञात हो जाता है। वह प्रकाश राव को कहती है कि "हाँ, हाँ! मल्लिक बड़े अच्छे आदमी हैं। देखिए न यह अंगूठी! उन्हीं की दी हुई बड़ी कीमती है।' राधा ने अंगूठी निकालकर उसको दे दी। वह बहुत ठंडी थी।"[8] यह कहानी शहरी उच्च मध्यवर्गीय पुरुष और नारी के बदलते संबंधों को चित्रित करती है।

संबंधों में बिखराव:'पड़ोस वाली नानी' और 'नयी जिंदगी' कहानी में संबंधों की वह तार, जो आपस में जोड़कर रखती है, बहुत पतली होती जाती है। इन दोनों कहानियों में संबंधों की टूटन और टूटने की स्थिति का चित्रण हुआ है लेकिन दोनों कहानियों में संबंध टूटने के भिन्न-भिन्न कारण हैं।

'नयी जिंदगी' का नायक 'विट्ठल' अपने परिवारों से इसलिए अलग होता है क्योंकि परिवार के सदस्य केवल उसकी कमाई की परवाह करते हैं न कि उसकी। विट्ठल के परिवार वाले केवल लालची हैं। "विट्ठल को बड़ी निराशा हुई। उसे ऐसा अनुभव हुआ कि उसके सभी संबंधी बड़े लालची, लुटेरे और दूसरे के सुख-दुःख को न समझने वाले व्यक्ति हैं। वह छः महीने बाद आया तो, उसे देखकर किसी को भी कोई प्रसन्नता नहीं हुई। जितना रुपया परिवार के सभी लोग इकट्ठा नहीं कमा सकते, उतना वह अकेला ही कमा कर लाया, तो भी किसी ने कोई प्रशंसा तक नहीं की। पसीना बहाकर, अपना पेट काटकर, जो रुपया उसने कमाया था, उसे इन लोगों ने अंट-संट खर्च कर दिया।"[9] आज यही कारण है कि संयुक्त परिवार टूटते जा रहे हैं, संबंध बिखरते जा रहे हैं।

'पड़ोस वाली नानी' कहानी में युवा पीढ़ी में फैल रही विभिन्न नकारात्मक प्रवृत्तियों और बुरी आदतों के कारण संबंध टूटते हैं। नानी का एकमात्र पुत्र 'रामम' जो हमेशा शराब पीता है और पत्नी को मारता है। "रोज वह शराब पीकर आता और पत्नी को मारता था; इस मारपीट से बच्चे सब एक साथ रोने लगते बड़ा हंगामा मच जाता।"[10] इस परिस्थिति में नानी अपने पौत्रों की अच्छी परवरिश हेतु अपनी बहू को मायके भेज देती है। नानी जी से वह देखा नहीं गया, उसने अपनी बहू को बच्चों के साथ मायके भेज दिया। उसके पास जितने गहने आदि बचे हुए थे, बहू के हाथ सौंप दिए। उसने बहू को कहा कि जैसे भी हो, बच्चों की जिंदगी बनाना।"[11] नानी का यह आदर्श चरित्र है। जब पुरुष इस तरह की प्रवृत्ति अपना लेता है, तब महिलाएँ अपने हाथ में कमान लेती है और समाज को नई दिशा दिखाती हैं।

भावात्मक प्रेम की अमिट गंगा: प्रेम एक सहज मानवीय भावना है। वह अमिट है, पवित्र है, अकाट्य है, वास्तविक है, आनंद स्वरूप है। प्रेम कभी मिटता अथवा समाप्त नहीं होता है। 'पुरानी यादें' की नायिका एक पत्नी है। वह अपने विवाहित जीवन (जो सामाजिक व्यवस्था है) के अनुरूप प्रतिबद्ध पत्नी है। वह अपने दांपत्य जीवन में सफल पत्नी है। लेकिन एक दिन जब उसका पति उनके बचपन के प्रेमी पद्मराजू से मुलाकात की सूचना देता है, तो वह पत्नी पुराने किंतु गहरे प्रेम संबंध की स्मृतियों में चली जाती है और उन भावों का रसास्वादन करने लगती है। "ऐसा कोई दिन शायद ही रहा होगा, जिस दिन मैंने उसे याद न किया हो। उसके बारे में जब भी मैं सोचने बैठती हूँ, तो मेरे मन में भय, आश्चर्य और प्रसन्नता का संचार होने लगता है। जब वह मुझे याद आता, तो मैं यह देखने के लिए आईने के सामने खड़ी हो जाती थी, कि मुझ में कोई परिवर्तन तो नहीं आया।"[12] प्रेम एक सदानीरा वाहिनी के समान है। प्रेम भावना का उच्चतम शिखर है, वह पवित्र है, प्रेम की अनुभूति मिटाए नहीं मिटती है क्योंकि वह स्वयं सत्य है।

'पुरानी यादें' कहानी में कहानीकार पुरुष और एक नारी के मनोभावों में अंतर स्पष्ट करने में सफल होता है। प्रेम से अलगाव और विवाह के बाद भी साथ गुजारे गए कुछ क्षणों की स्मृतियाँ जहाँ नायिका के भावात्मक जीवन में तूफान ला देती हैं। जब पत्नी को सूचना मिलती है कि उसका प्रेमी पद्मराजु आज उनके घर आने वाला है, तब वह अपनी स्मृतियों में गोता लगाने लगती है। "उस दिन रात के आठ बजे उसके घर गई थी .... हम दोनों के बीच का वातावरण एक खुशबू से भर गया ... मैं सहन नहीं कर सकी उस समीप्य को, उस उष्णता को और उस सौंदर्य को... मैं चुपचाप पीछे हटकर खड़ी हो गई।"[13] स्त्री भावनाओं में वास्तविक जीवन को जीना चाहती है लेकिन पुरुष

इस प्रेम में तटस्थ और निर्विकार रह जाता है। फलतः नारी अधिक-अधिक भाव विभोर होते रहती है।

सामाजिक मानसिकता का साक्षात्कारः आज शहरी समाज में संवेदनात्मक जुड़ाव नहीं बचा है। शहरी समाज अकेलापन, निराशा, भाग-दौड़, कुंठा आदि विकृतियों से प्रभावित है। फलतः शहरी समाज में ग्रामीण समाज के समान संबंध विकसित नहीं हो पाते हैं। शहरी समाज में मानवीय संबंधों के विकसित न होने के कई कारण हैं, जैसे वर्ग अंतराल, भाषा अंतराल, मानसिक अंतराल और जीवन शैली का अंतराल आदि। 'पड़ोस की कुंवारी लड़की' कहानी में जीवन शैली के अंतराल का चित्रण हुआ है। इस कहानी में दो प्रकार के परिवार हैं, एक गरीब परिवार और एक मध्यम वर्ग परिवार जो इनकम टैक्स ऑफिसर का है। "इनकम टैक्स ऑफिसर शाम को ठीक पाँच बजे दफ्तर से घर लौटते.... बच्चों को वह बहुत प्यार से रखते। हमेशा अच्छे कपड़े पहनाते, कभी उसको न डांटते-डपटते, न मारते-पीटते।[14] किंतु यह उच्च जीवन शैली अन्य गली के परिवारों की ईर्ष्या का कारण बनती है।

भारतीय समाज में साधारणतः यह मानसिकता देखी जाती है कि लोग किसी को आगे बढ़ते नहीं देखना चाहते। जैसे ही कोई परिवार आर्थिक स्थिति से आगे बढ़ने लगता है, वैसे ही पड़ोसियों के दिल, दिमाग, पेट में गाँठें पड़नी शुरू हो जाती हैं और वे बस किसी तरह बहाना ढूंढते हैं कि कैसे वह परिवार अपनी कैंची में आए। कहानी में ऑफिसर की पत्नी की आदर्श जीवन शैली को गली की महिलाएँ सामाजिक मूल्यों से जोड़ने लगती है और कहती है कि "लाज शर्म तो पी गई है तू' पड़ोसिन ने कहा। 'काहे की लाज शरम'? अफसर की बीवी ने सवाल किया। पड़ोसन ने बड़े विस्तार से बता दिया की लाज शरम किस बात की थी।"[15]

भारतीय समाज में उच्च जीवन शैली को घमंड की संज्ञा दी जाती है, हालांकि यह सही नहीं है किंतु क्या करें ईर्ष्या जो आड़े आती है। पड़ोसन अफसर की पत्नी को कहती है कि "बड़ी आई है, पैसे वाली। पैसा हमने भी देखा है। देख री बेटी पैसे का कितना घमंड है, इस चुड़ैल को।"[16] कहने का तात्पर्य यह है कि समाज की मानसिकता का चित्रण इस कहानी में हुआ है। पड़ोसी के मन में ईर्ष्या का भाव जो अफसर की पत्नी का ऐशो-आराम देखने नहीं देता है। अतः दोनों में झगड़ा होता है।

निष्कर्षः

प्रस्तुत शोध आलेख की पाँचों कहानी समाज की सामाजिक, आर्थिक स्थिति को चित्रित करती हुई, विभिन्न संवेदनात्मक पक्षों को हमारे समक्ष उभारती हैं। विभिन्न संवेदनात्मक पहलुओं से जुड़ी इन कहानियों में विचारों के साथ-साथ विभिन्न भाव लिपटकर सामने आते जाते हैं। भाव की गहराइयों में उतरती हुई इन कहानियों में वर्तमान भारतीय समाज का एक लेखा-जोखा प्रस्तुत होता है। इन कहानियों के पात्र कई पहलुओं से जुड़ते हुए, एक ऐसे बिंदु पर पहुँचते हैं, जहाँ से पाठक गण के विचार शुरू होते हैं। कोई कहानी किसी विशेष निष्कर्ष तक नहीं पहुँचती है क्योंकि निष्कर्ष पाठक अपनी समझ के अनुरूप निकल सके। यही नई कहानियों एवं समानांतर कहानियों की प्रमुख विशेषता रही है। अतः कहना न होगा कि वर्तमान समाज के व्यापक स्वरूप एवं अनगिनत पहलुओं में इन कहानियों की आज प्रासंगिकता सिद्ध होती है।

संदर्भ ग्रंथः

1. श्री कमलेश्वर, 'तेलुगु की चुनी हुई कहानियाँ' है। राजपाल एंड संस, नई दिल्ली, प्र.सं. 2012 पृष्ठ- 37,
2. वही पृष्ठ- 60 3.वही, पृष्ठ- 69 4.वही पृष्ठ-
5. वही पृष्ठ- 143 6.वही पृष्ठ- 142 7.वही पृष्ठ- 145
8. वही पृष्ठ- 144 9. वही पृष्ठ- 69 10.वही पृष्ठ- 20-21
11. वही पृष्ठ- 21 12.वही पृष्ठ- 32 13.वही पृष्ठ- 34
14. वही पृष्ठ- 58 15.वही पृष्ठ- 58 16.वही पृष्ठ-58

सहायक आचार्य, हिंदी विभाग
मौंट कैश्मल कॉलेज (स्वायत्त)
बेंगलुरु, कर्नाटक, मोबाईल : 9441161687

कविता

आजमाइश

कैसरबेन राजपुरोहित

पैरों के नीचे जमी है न सिर पे आसमा
ऐसे में उड़ने के सिवा क्या है आसरा?

दिल में है दर्द भरा, जिसे बनाया है दवा
न चाहकर भी छलक आए आँखों से भला

कभी दिखे रास्ता सामने है, क्यों है परवा?
कभी न आए समझ, जाए तो जाए कहाँ?

संभालते है खुद को, करते है हिम्मत न हारे
फिर भी बीन लड़े ही छूटने लगते सहारे

गहराई में जाए तो भरे है तूफ़ान कई
अनजाना साया जैसे अपना सा कोई

मुश्किल ज़रूर लग रहा है दौर यह
देखा जाए तो निखार भी रहा है वक्त यह

रोशन होगी मंजिल अनुभवों के सफर से
डर गए तो हार निश्चित, अच्छा है 'आजमाइश' करे।

अतिथि व्याख्याता
कन्नूर विश्वविद्यालय, केरल।

अरुंधति रॉय की 'द गॉड ऑफ स्मॉल थिंग्स' (1997) और किरण देसाई की 'इनहेरिटेंस ऑफ लॉस' (2006) में पर्यावरण-आलोचना

डॉ. रिंकू भाटिया एवं डॉ. पायल भाटिया

प्रस्तावना : प्रकृति और साहित्य का रिश्ता अनूठा है। यह देखा गया है कि प्रकृति कई महान लेखकों के लिए प्रेरणा का मुख्य स्रोत बनी हुई है। आज, ज्ञान और विकास के सभी विभागों में प्राकृतिक और सामाजिक दुनिया के बीच घनिष्ठ संबंध का विश्लेषण और बल दिया जा रहा है। इसके अलावा, 20वीं शताब्दी पर्यावरण के प्रति आलोचनात्मक प्रतिक्रिया के विकास की गवाह है। नतीजतन, पारिस्थितिकीवाद शब्द मुद्रा में आता है। प्रकृति लेखन के अध्ययन में रुचि और 'हरे' मुद्दाँ पर ध्यान देने के साथ साहित्य पढ़ने में 1980 के दशक के माध्यम से वृद्धि हुई और 1990 के दशक की शुरुआत में अमेरिकी विश्वविद्यालयों के साहित्य विभागों के भीतर पारिस्थितिकवाद एक पहचानने योग्य अनुशासन के रूप में उभरा। पारिस्थितिकी आलोचना ने पिछले तीन दशकों में कई विद्वानों का ध्यान आकर्षित किया है। पारिस्थितिकवाद कुल मिलाकर मानव और परिदृश्य के बीच संबंध से संबंधित है। साहित्यिक अध्ययन में प्रारंभिक सिद्धांत महत्वपूर्ण विश्लेषण के महत्वपूर्ण मानदंड के रूप में वर्ग, जाति, लिंग, क्षेत्र के मुद्दों पर ध्यान केंद्रित करते हैं। बीसवीं सदी का उत्तरार्थ एक नए खतरे के प्रति जाग उठा है:- पारिस्थितिक आपदा। पारिस्थितिकवाद इस नई चेतना का परिणाम है कि बहुत जल्द, जब तक हम सावधान नहीं होंगे तब तक प्रकृति में कुछ भी सुंदर नहीं होगा।

पर्यावरण के प्रति आलोचना : एक सिंहावलोकन

♦1990 के मध्य में साहित्य और प्राकृतिक पर्यावरण के बीच संबंधी के अध्ययन के रूप में पारिस्थितिकवाद का उदय हुआ।

♦पारिस्थितिकी आलोचना साहित्य और पर्यावरण का अंतः विषय दृष्टिकोण से अध्ययन है जहां सभी विज्ञान पर्यावरण का विश्लेषण करने के लिए एक साथ आते हैं और समकालीन पर्यावरणीय स्थिति के सुधार के लिए संभावित समाधान पर पहुँचते हैं।

♦चेरिल ग्लॉटफेल्टी संयुक्त राज्य अमेरिका में इकोक्रिटिक्स की संस्थापक हैं। उनके अनुसार, "पारिस्थितिकीवाद साहित्य और भौतिक पर्यावरण के बीच संबंधों का अध्ययन है।" जिस तरह नारीवादी आलोचना भाषा और साहित्य को एक लैंगिक जागरुक दृष्टिकोण से जाँचती है, और मार्क्सवादी आलोचना उत्पादन के तरीकों और आर्थिक वर्ग के बारे में जागरुकता लाती है, उसी तरह पारिस्थितिकवाद साहित्यिक अध्ययन के लिए एक पृथ्वी-केंद्रित दृष्टिकोण लेता है।

पारिस्थितिकीवाद का विकास : भौतिक दुनिया के साथ साहित्य के संबंध का अध्ययन लंबे समय से देहाती परंपरा के क्षेत्र में हमारे साथ रहा है। 1970 के दशक में साहित्य और पर्यावरण के बीच संबंध लेखकों और विद्वानों के बीच गंभीर और व्यापक रुचि के विषय के रूप में उभरा। जोसेफ मीकर, विलियम रुएकेर्ट और नील एवरडेन का लेखन पारिस्थितिकवाद के प्रमुख कार्य हैं। 1990 के दशक में इकोक्रिटिज्म के एक अनुशासन के रूप में आधिकारिक शुरुआत हुई थी। थोरो का लेखन और एमर्सन पारिस्थितिक आलोचनात्मक मूड में आते हैं। थोरो का जर्नल अमेरिकी प्रकृति लेखन में इस मनोवैज्ञानिक परंपरा के स्पष्ट शुरुआत बिंदु को चिह्नित करता है।

यह धारणा कि साहित्य अमानवीय और मानवीय संदर्भों, प्रकृति और संस्कृति का एक संयोजन है, 1970 और 1980 के दशक के दौरान कुछ महत्वपूर्ण समर्थकों को मिला। उन्नीसवीं सदी के अंत और बीसवीं सदी की शुरुआत में पुराने मशीन गार्डन संघर्ष को तत्काल वर्तमान में, जंगल, पुराने विकास वनों, प्रदूषण और फैलने वाले शहरी दोष में स्थानांतरित किया गया। मैरी ऑस्टिन, गैरी स्नाइडर, वैरी लोपेज, टेरी टेम्पेस्ट विलियम्स जैसे लेखकों की रचनाओं ने इन वर्षों के दौरान ऐसे मुद्दों के प्रकाशनों में सबसे आगे रखा। पीटर वैरी की शुरुआत का सिद्धांत विश्लेषण के पारिस्थितिकीय मोड के रूप में साहित्यिक कार्यों का अध्ययन करने के लिए निम्नलिखित बिदुओं का वर्णन करता है।

♦यह प्राकृतिक दुनिया के प्रतिनिधित्व पर विशेष ध्यान देने के साथ, पर्यावरण-केंद्रित दृष्टिकोण से प्रमुख साहित्यिक कृतियों को फिर से पढ़ा जाता है।

♦अध्ययन प्राकृतिक दुनिया के अलावा अन्य चीजों का उपयोग करते हुए पर्यावरण-केंद्रित अवधारणाओं की एक श्रृंखला की अनुमति देता है अवधारणाएँ जैसे कि विकास और ऊर्जा,

संतुलन और असंतुलन, सहजीवन और पारस्परिकता, और ऊर्जा और संसाधनों के टिकाउ या गैर-टिकाउ उपयोग।

♦ यह उन लेखकों पर विहित जोर की जाँच करता है जो प्रकृति को अपने विषय वस्तु के प्रमुख भाग के रूप में प्रस्तुत करते हैं जैसे कि अमेरिकी पारलौकिकवादी, ब्रिटिश स्वच्छंदतावादी, जॉन क्लेयर की कविता, थॉमस हार्डी का काम और बीसवीं सदी की शुरुआत के जॉर्जियाई कवि।

यह प्रासंगिक तथ्यात्मक लेखन, विशेष रूप से चिंतनशील स्थलाकृतिक सामग्री जैसे निबंध, यात्रा लेखन, संस्मरण और क्षेत्रीय साहित्य पर एक नया जोर देकर साहित्यिक-आलोचनात्मक अभ्यास का अध्ययन करने में मदद करता है।

अरुंधति रॉय, किरण देसाई और पर्यावरण-आलोचना के कार्य:अरुंधति रॉय, किरण देसाई अंग्रेजी में प्रमुख समकालीन लेखक हैं और कई प्रतिष्ठित पुरस्कारों के विजेता है और उनके कार्यों का उत्तर आधुनिक, उत्तर औपनिवेशिक लेखन के उदाहरण के रूप में विश्लेषण किया गया है। लेकिन, उनके उपन्यासों को ध्यान से पढ़ने से उनकी लगभग सभी रचनाओं में कई तरह की पर्यावरणीय चिंताओं का पता चलता है। दोनों लेखक अपने वास्तविक जीवन के अनुभव और इतिहास के ज्ञान को खूबसूरती से साझा करते है और अपने लेखन में प्रकृति को आपस में जोड़ते हैं। उनके काम में शामिल हैं:

अरुंधति रॉय का काम : एक एटलस ऑफ इम्पॉसिबल लॉन्गिंग (2008), द फोल्डेड अर्थ (2011), स्लीपिंग ऑन ज्यूपिटर (2015), ऑल द लाइव्स वी नेवर लिव्ड (2018), द अर्थस्पिनर (2021)। उनके दोनों उपन्यासों द गॉड ऑफ स्मॉल थिंग्स (1997) और द मिनिस्ट्री ऑफ अटमोस्ट हैप्पीनेस (2017) में पर्यावरण प्रमुख विषयों में से एक है। किरण देसाई का काम : अमरूद के बाग में देसाई का हुल्लाबालू (1998), द इनहेरिर्टस ऑफ लॉस (2006)। किरण देसाई का दूसरा उपन्यास परिदृश्य पर प्रमुख चरित्र के रूप में केंद्रित है।

अरुंधति रॉय की द गॉड ऑफ स्मॉल थिंग्स (1997) और किरण देसाई की द इनहेरिटेंस ऑफ लॉस (2006) में पर्यावरण आलोचना : माउंट कंचनजंगा के प्राकृतिक सौदर्य का वर्णन उपन्यास के प्रारंभ में किया गया है। घर ऐसी जगह पर स्थित है जहाँ से कुदरत का खूबसूरत खजाना मिलता है।

घर के सदस्य, नामित, सेवानिवृत्त जज, साई नाम की अपनी अनाथ पोती, एक नौकर और एक कुत्ते मठ के साथ आसानी से आनंद ले सकते हैं। बर्फ के नजारों के लिए रखे गए धन के पुराने तरीके में कमरे विशाल हैं (द गॉड ऑफ स्मॉल थिंग्स एंड द इनहेरिटेस ऑफ लॉस, 6-7)। प्रकृति ने हर घर को आशीर्वाद दिया है। लेकिन इस शांतिपूर्ण और सुंदर वातावरण के विपरीत, उपन्यास के लेखक ने उन लोगों के प्रयासों को चित्रित किया है जो उद्देश्यपूर्ण रूप से मनुष्य और प्रकृति के बंधन को तोड़ना चाहते हैं। इसके पीछे केवल प्रकृति की शांति और सुंदरता को नष्ट कर वर्चस्व स्थापित करना है। उन्होंने कच्चे माल के उद्देश्य के लिए जंगल का उपयोग किया है और इसे काठमांडू द गॉड ऑफ स्मॉल थिंग्स एंड द इनहेरिटेंस ऑफ लॉस, 4) के काले बाजार से चमड़े की जैकेट में पैर पर बनाया है। वे युवा लड़के हैं जो अलग गोरखालैंड की माँग कर रहे हैं। वे गोलियाँ चलाकर प्रकृति के सन्नाटे को भंग करते थे। उनका काम लोगों को आतंकित करना और उनकी संपत्ति लूटना है, खासकर उनकी बंदूकें। इस प्रकार, आतंकवादी गतिविधियों, राजनीतिक कारणों से प्रेरित, स्वर्ग जैसी प्रकृति को आसानी से एक नारकीय अनुभव में बदल देती हैं, देसाई एक पर्यावरण-आलोचक की तरह यहाँ बनाए रखते हैं:

'प्रकृति वास्तव में हमारे बाहर मौजूद है, उल्टे अल्पविरामों को जानने के भीतर संलग्नक द्वारा एक अवधारणा के रूप में आयनित होने की आवश्यकता नहीं है, लेकिन वास्तव में एक इकाई के रूप में मौजूद है जो हमें प्रभावित करती है, और जिसे हम प्रभावित कर सकते हैं, शायद घातक रूप से, अगर हम इसका गलत व्यवहार करते हैं' (पीटर बैरी, 252)।

मनुष्य और प्रकृति का संबंध आस्था का विषय है। जितना अधिक मनुष्य प्रकृति पर भरोसा करता है, उतना ही उसे उसके आशीर्वाद का बोध होता है। यह ईश्वर का पर्याय भी बन जाता है, बशर्ते कोई इसके रहस्य को समझने की कोशिश करे। जज के बगीचे में खिली सुंदर लता को एसडीओ देखते हैं तो कहते हैं सुंदर फूल, जस्टिस साहब। अगर आप ऐसा नजारा देखेंगे तो आपको पता चलेगा कि कोई भगवान है। पुलिस का आदमी होने के बावजूद, वह प्रकृति की इतनी खूबसूरत रचना से प्यार करता है और अपने पौधों की ठीक उसी तरह देखभाल करता है जैसे कि वे बच्चे थे (द गॉड ऑफ स्मॉल थिंग्स एंड द इनहेरिर्टस ऑफ लॉस 226)। यदि एक आधुनिक व्यक्ति अपने जीवन से उभरती हुई चुनौतियों से बचना चाहता है, तो उसे प्रकृति के साथ अपने जुड़ाव और सामंजस्य को फिर से स्थापित करने के प्रयास करने होंगे (भट्टाचार्य (2018) में उद्धृत)।

समापन : अरुंधति रॉय और किरण देसाई के लेखन में लेखक और स्थान, पात्रों और स्थान के बीच परस्पर क्रिया के कारण प्रकृति प्रमुख कारक है। परिभाषा के अनुसार लैंडस्केप में जगह के गैर-मानवीय तत्व शामिल हैं- चट्टानें, मिट्टी, पेड, पौधे, नदियों, जानवर, हवा साथ ही मानवीय धारणाएँ और संशोधन। किरण देसाई ने लगभग सभी अलग-अलग अवधारणाओं और परिभाषाओं को शामिल किया है जो पारिस्थितिकवाद के विभिन्न आलोचकों द्वारा प्रस्तुत की गई हैं। उनका उपन्यास पर्यावरण महत्वपूर्ण संदर्भों से समृद्ध है और हाल के उपन्यासों में सबसे उपयुक्त रूप से एक पर्यावरण आलोचनात्मक पठन दिया जा सकता है। अरुंधति रॉय सामान्य रूप से समाज और विशेष रूप से पर्यावरण से जुड़े महत्वपूर्ण प्रश्न उठाती हैं। अपने दोनों उपन्यासों के माध्यम से, वह अपने पाठकों के मन में पर्यावरण के विनाश और पर्यावरण से संबंधित कई अन्य मुद्दों की एक स्पष्ट तस्वीर बनाती है।

सन्दर्भ सूचि :

- भट्टाचार्य, अर्चना, ईको-क्रिटिसिज्म इन द गॉड ऑफ स्मॉल थिंग्स एंड द इनहेरिर्टस ऑफ लॉस ।
- गैलेक्सी छः इंटरनेशनल मल्टीडिसिप्लिनरी रिसर्च जर्नल, 2018. आईएसएसएन 2278-95291 वॉल्यूम। मैं मुद्दा।
- चतुर्थ। 1-41
- नुक्सान की विरासत (2006) पेंगुइन बुक्स इंडिया नई दिल्ली।
- ग्लॉटफेल्टी, चेरिल। 'परिचय : पर्यावरण संकट के युग में साहित्यिक अध्ययन।'
- द इकोक्रिटिसिज्म रीडर : लैंडमार्क्स इन लिटरेरी इकोलॉजी, 1996। एथैस, जीएः यू ऑफ जॉर्जिया। पी। एक्सवी।
- ग्लॉटफेल्टी, चेरिल और फ्रॉम, हेरोल्ड (एड्स)। द इकोक्रिटिसिज्म रीडरः लैंडमार्क्स इन लिटरेरी इकोलॉजी, 19961 एथेंस, जॉर्जिया और लंदनः जॉर्जिया विश्वविद्यालय प्रेस।
- हावडे, डब्ल्यू । इकोक्रिटिसिज्म के कुछ सिद्धांत, 1996. जी. ग्लॉटफेल्टी और एच. फ्रॉम में। द इकोक्रिटिसिज्म रीडर : लैंडमार्क्स इन लिटरेरी इकोलॉजी, 1996। एथेंस, जीएः यूनिवर्सिटी ऑफ जॉर्जिया प्रेस। पीपी.69-911
- रॉय, अरुंधति, छोटी चीजों का देवता। नई दिल्ली : पेंगुइन बुक्स इंडिया, 2002। प्रिंट। अत्यंत प्रसन्नता का मंत्रालय। नई दिल्लीः पेंगुइन रैंडम हाउस इंडिया, 2017. प्रिंट।

1.असिस्टेंट प्रोफेसर,
श्री भीखाभाई पटेल इंस्टीट्यूट ऑफ पीजी स्टडीज
एंड रिसर्च इन ह्यूमैनिटीज, आनंद -388001

2. असिस्टेंट प्रोफेसर
एम.बी.पटेल कॉलेज ऑफ एजुकेशन, बी.पी.नगर-388120

कविता

मुखौटा

रेवति एस

गुज़रे दिन शहर की दुकान से,
खरीदा एक मुखौटाः
कितना सुंदर और मनमोहक ।
लेकिन दूसरों को नहीं पता,
ये कितना खतरनाक है।
हाँ ! हर मोड़ पर मुखौटा है।
मैंने खरीदे हुए
उस मुखौटे के बारे में सोचा।
कैसी दुनिया है यह,
हर आदमी के चेहरे पर
एक कुटिल मुखौटा छिपा हुआ है।
ये मुखौटा कभी-कभी दुःख, दर्द,
अनीति, अत्याचार या अवसाद का होगा ।
लेकिन उसे समझना मुश्किल बात है।
हर मुखौटा अपने-अपने स्वार्थ से पैदा हुआ है।
ये सब मुखौटे देखने में तो सुंदर लगता है
लेकिन सुंदरता के पीछे
कुरूपता और कुटिलता के चेहरे को छिपाकर
वह स्वैर्यविहार करता है।
ऐसे मुखौटों में
हम अपने साथ घूमने वाले
दोस्तों, राजनीतिज्ञों, पारिवारिक सज्जनों और
अध्यापकगणों को भी देखते हैं।
अब मैं भी समझ गया कि,
मुखौटे के बिना किसी का अस्तित्व नहीं।
इसीलिए शहर की दुकान से
मैंने भी खरीदा है एक मुखौटा
मन मोहक मुखौटा,
सच को छिपाकर
सिर्फ मन मोहने वाला मुखौटा।

सरकारी महिला कॉलेज,
तिरुवनन्तपरम, केरल विश्वविद्यालय

'हिंदी के ज़रिए प्रांतीय भाषा को दबाना नहीं चाहिए, ताकि एक प्रांत दूसरे प्रांत से अपना सजीव संबंध जोड़ सके'

महात्मागाँधी

मंजुल भगत की कहानियों में स्त्री-परिप्रेक्ष्य

डॉ.जीना मेरी जोस

समाज के निर्माण में नारी की महत्वपूर्ण भूमिका है। भारतीय परंपरा में नारी पूजनीय थी। बच्चों का पालन पोषण, परिवार की देखभाल, समाज सेवा, आर्थिक योगदान, समाज सुधार, राष्ट्र निर्माण में आज की नारी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। नारी का सर्वांगीण विकास ही समाज के विकास का सूचक है। आज की नारी शिक्षित, जागरूक और आत्मविश्वासी है। वह हर क्षेत्र में पुरुषों के बराबर कदम से कदम मिलाकर चल रही है।

हिन्दी गद्य लेखन के क्षेत्र में लेखिकाओं का महत्वपूर्ण योगदान है। हिन्दी कहानी को नया मोड़ और नई दृष्टि देने में उन्होंने जो कुछ भी दिया है वह सराहनीय है। बंगमहिला की कहानी 'दुलाईवाली' हिन्दी की पहली कहानी निया में एक मानी गई है। कहानी के क्षेत्र में नारी के आगमन का यह पहला चरण है। इसके बाद अनेक लेखिकाओं ने हिन्दी को समृद्ध बनाने में सहयोग दिया है।

बीसवीं शती के छड़े दशक में महिला कथाकारों का एक सशक्त प्रवाह हिन्दी साहित्य में प्रवाहित हुआ। इस प्रवाह में कृष्णा सोबती, मन्नू भण्डारी, उषा प्रियंवदा, मंजुल भगत, मृदुला गर्ग, ममता कालिया, चित्रा मुद्गल, नासिरा शर्मा, मैत्रेयी पुष्पा आदि कथा लेखिकाएँ प्रमुख रूप से उभरकर सामने आईं। सातवें दशकोत्तर हिन्दी कथा-साहित्य में अपनी अमिट छाप छोडने वालों में मंजुल भगत का नाम अग्रणीय है। उनका रचनाकाल लगभग तीन दशकों का है। उनकी प्रमुख विधा कहानी है और इसी से वे साहित्य जगत में प्रवेश करती है। परंतु उपन्यास के क्षेत्र में भी उन्होंने अपनी लेखन प्रतिभा का परिचय दिया और 'अनारो' जैसे उपन्यास की रचना करके देश-विदेश में ख्याति प्राप्त की।

'गुलमोहर के गुच्छे', 'क्या छूट गया', 'आत्महत्या से पहले', 'कितना छोटा सफर', 'बावन पत्ते और एक जोकर', 'सफेद कौआ', 'दूत', 'चर्चित कहानियाँ', 'बूँद', 'आखिरी चोट', 'अंतिम बयान' आदि मंजुल भगत के प्रकाशित कहानी संग्रह हैं।

'गुलमोहर के गुच्छे' कहानी संग्रह की कहानियों में मुख्यतः नारी के विभिन्न रूपों और स्थितियों का ही चित्रण किया गया है। इसमें संतान की आकांक्षा की पूर्ति न होने पर गोद लिए बेटे की बहू को साज संवारकर आत्मतोष पाने का प्रयत्न करती विधवा, नपुंसक पति की मर्यादा की रक्षा के लिए अपने को ही दोषी स्वीकार करनेवाली बहू, शराबी पति को छेलती हुई पत्नी, अपने जीवन को रंगीन बनाने के लिए क्लब और रेस्तरां में समय बितानेवाली मेम साहब, आर्थिक आत्मनिर्भरता प्राप्त कर अपनी माँ और बहन को सुरक्षा प्रदान करती युवती, प्रेमी की मृत्यु के बाद पूरे मन से वैधव्य स्वीकार करनेवाली प्रेमिका आदि अनेक रूपों में हम नारी को देखते हैं। इस संकलन की अधिकतर कहानियाँ समाज के विभिन्न वर्गों की नारियों के जीवन से संबन्धित हैं। दूसरे शब्दों में मंजुल जी के कहानी साहित्य में नारी जीवन के विविध पक्षों का चित्रण हुआ है। इस संदर्भ में कमल किशोर गोयनका का कथन दृष्टव्य है। "मंजुल सब के प्रति संवेदनशील थी परंतु जीवन के कष्टों, बाधाओं और प्रतिकूलताओं में स्त्री की गरिमा के साथ जीवन जिया और कभी पराजित नहीं हुई। उनके साहित्य की स्त्रियाँ भी कभी पराजित नहीं होतीं। उन्होंने अपना एक स्त्री विमर्श विकसित किया था। इसमें पश्चिम के स्त्रीवादी आंदोलन का प्रत्यक्ष रूप में कोई प्रभाव नहीं था। मंजुलजी ने अपने स्त्री को भारतीय ही बनाकर रखा।"[1] मंजुलजी ने भारतीयता में ही अपने स्त्री पात्रों को खोजा और उन्हें साहित्य में अवतरित किया।

बाद के संग्रहों में भी आपने उच्च मध्यवर्ग और मध्यवर्ग की नारियों को ही अनेक संदर्भों और भूमिकाओं में चित्रित किया है। अपने परवर्ती कहानी संग्रह 'सफेद कौआ' में आपने अपनी कथा भूमिका को कुछ विस्तृत किया है। इसमें एक सीमा तक साधारण लोगों की बुनियादी समस्याओं की ओर भी ध्यान दिया गया है। मंजुलजी की कुल 83 कहानियों में से छः सात कहानियों को छोड़ दें, तो बाकी सभी में मध्य निम्नवर्ग, विवाहित-अविवाहित, शिक्षित-अशिक्षित, सम्पन्न-विपन्न, संस्कृत-असंस्कृत, सभ्य-असभ्य से लेकर सभी तबकों की स्त्रियों और उनकी वैयक्तिक, पारिवारिक व ससुराली जीवन की विभिन्न समस्याओं और विषयों को विश्लेषित किया गया है। मंजुलजी ने अपनी कहानियों में नारी जीवन और यथार्थ को पूरी सच्चाई से अभिव्यक्त किया है। यह इसलिए कि मंजुलजी नारी की वेदना और उसकी पीड़ा को बखूबी जानती है। डॉ. मंगल कप्पीकेरे का कथन यहाँ सार्थक होता है, "स्त्री को एक स्त्री के रूप में विशिष्ट अनुभओं से गुजरना होता है। इस प्रकार के अनुभव पुरुष को प्राप्त नहीं होते हैं। इन अनुभओं को साहित्य के माध्यम से नारी ही व्यक्त कर सकती है।"[2]

मंजुलजी की कहानियों को तीन मुद्दों में बाँट सकते हैं - पारिवारिक, सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक। नारी की पारिवारिक स्थिति को लेकर लिखी गई कहानियों में 'नागपाश', 'नालायक बहू', 'गुलमोहर के गुच्छे', 'पायदान', 'तीसरी औरत', और 'स्की हुई रफ्तार' आदि बहुचर्चित कहानियाँ हैं। इनमें से 'नागपाश' एक मध्यवर्गीय शिक्षित विवाहिता नारी शिवानी की कहानी है, जिसे शराबी पति रह-रहकर मारता है। शिवानी को अपने अस्तित्व के खतरे का अनुमान होता है और वह अपनी नरकीय जिंदगी के लिए गर्भपात कराकर अपनी अजन्मी संतान को नागपाश से

मुक्त कर देती है। "शिवानी को वह रात याद आई, जब नशे में पागल प्रशांत ने बहस करते-करते तडाक से शिवानी के गाल पर एक तमाचा जड़ दिया था। गुस्से और अपमान से उसका मुख लाल हो गया था। तब शिवानी की सोच यह थी कि क्या मध्यवर्ग की शिक्षित महिला ही सबसे अबला है, मान-मर्यादाओं के नीचे कुचली हुई?"[3]

'नालायक बहू' मंजुलजी की व्यंग्य कहानी है। कहानी में शेखर और कामिनी पति-पत्नी है । इसमें नालायक बहु अर्थात कामिनी वास्तव में लायक वह है, जो अपनी संतानोत्पत्ति में असमर्थ पति की रक्षा करती हुई स्वयं सास से नालायक बहु का संबोधन स्वीकारती है। जीवन को संतोषमय बनाने के लिए कामिनी अनाथाश्रम से गुड्डू नामक एक बच्चे को गोद लेकर पति तथा घर के सभी को सुरक्षित रखती है। इस बच्चे को शेखर भी सहर्ष स्वीकार कर लेता है। इस प्रकार कहानी में पति-पत्नी दोनों एक दूसरे की सफलता के लिए प्रयत्न करते हैं। 'गुलमोहर के गुच्छे 'पारिवारिक विघटन को चित्रित करनेवाली कहानी है। यह मनोचिकित्सा संबंधी कहानी है। 'पायदान' कहानी शराब के शिकार होनेवाले पति-पत्नी के संबंधों तथा पत्नी की संघर्षपूर्ण मानसिक स्थिति को दर्शाती है। इसमें मंजुलजी ने ऐसी नारी का चित्रण किया है जो जीवन की संघर्षपूर्ण अवस्था में भी पति तथा परिवार को नहीं छोड़ती। 'तीसरी औरत' गौरव तथा ताशा के प्रेम संबंधों को व्यक्त करनेवाली कहानी है। 'रुकी हुई रफ्तार' महानगरीय जीवन की दुर्घटना का अनुभव करनेवाली कहानी है।

मंजुलजी की सामाजिक कहानियों में 'खोज', 'बावन पत्ते और एक जोकर', 'मोहरा', 'सफेद कौआ', 'अपना-अपना नशा', 'शुभ-अशुभ', 'दूत' आदि को सर्वश्रेष्ट कहानियाँ कही जा सकती हैं। 'खोज' कहानी नीलिमा के 'मैं' की खोज की कहानी है। वह तो दफ्तर में काम करती है और हमेशा व्यस्त रहती है। क्योंकि महानगर की व्यस्त जीवन भर उसे अपने लिए जीने का अवसर नहीं देती। वह सोचती है कि क्या यही जीवन है। लेकिन जब गर्भवती होती है और बाद में जब शिशु जन्म लेता है, तो वह अपना प्रतिबिंब देखती है तथा 'मैं' के बारे में सोचती हुई कहती हैं, 'यही है क्या वह 'मैं' जो पकड़ाई में नहीं आ रहा था। यह स्थाई रूप क्या पति से क्षणिक घनिष्ठता का ही परिणाम है या फिर वह आवेश भरा क्षण भी पूर्ण था, जिसकी अभिव्यक्ति इस शिशु में हुई है।"[4]

'बावन पत्ते और एक जोकर' में मंजुलजी ने आधुनिक व्यस्तता भरी पारिवारिक जिंदगी का चित्रण किया है। यहां लेखिका ने आधुनिक परिवार के युवा पति - पत्नियों की मानसिकता का चित्रण किया है। इनके पास अपने माँ-बाप या बच्चों के बारे में सोचने के लिए समय नहीं है। 'मोहरा' आधुनिक समाज का यथार्थ प्रतिबिंब प्रस्तुत करनेवाली सच्ची कहानी है।' सफेद कौवा एक प्रतीकात्मक कहानी है। इसमें भरत कुमार सफेद कौआ का प्रतीक है जो सम्पूर्ण संसार से अलग रहता है और कभी भी धन ईमानदारी नहीं बेचता है। 'अपना अपना नशा' कहानी माँ की अभिलाषाओं के साथ बेटे की मनोवृत्तियों को दर्शाती है। शुभ-अशुभ कहानी स्वार्थी सास तथा पति और असहाय पत्नी की कहानी है।

मंजुलजी की मनोवैज्ञानिक कहानियों में 'अलग-अलग दायरे कितना छोटा सफर', 'छोटा डॉक्टर', 'मलबा', 'अजूबा' और 'उदबिलाव' आदि कहानियाँ आती हैं। 'मनोवैज्ञानिक कहानियों में मन की स्थिति को उद्घाटित किया जाता है। मानव-मन को केन्द्रित कर उसके उतार चढाओं को प्रमुखता दी जाती है। 'मंजुलजी की मनोवैज्ञानिक कहानियों में से' अलग-अलग दायरे कहानी का विशेष महत्व है क्योंकि यह मम्मी, डाड्डी और पुत्री के त्रिकोण की कहानी है, जिन्हें घरेलू कुत्ता परस्पर जोड़ता है। मम्मी, डाड्डी और बेटी स्मिता की दुनिया अलग-अलग हैं। उनके अपने-अपने कमरे, काम व सोच-विचार हैं। उस घर में डस्टी नामक कुत्ता है जो हर कमरे में जाता है हर एक को सूँघता है और उन्हें एक दूसरे से जोड़ता है।

'मलवा' शरणार्थी माँ-बाप की मानसिकता का बड़ा ही मार्मिक चित्रण करनेवाली कहानी है। 'कितना छोटा सफर' एक मरीज का अकेलापन तथा उसके मन में होनेवाली घबराहट को व्यक्त करती है। 'छोटा डॉक्टर' आज के बड़े बड़े अस्पतालों की वास्तविकताओं को उजागर करनेवाली सशक्त कहानी है। अस्पताल की दुर्दशा, रोगियों की स्थिति एवं परेशानी वहाँ के कर्मचारियों द्वारा रोगियों पर अमानवीय व्यवहार आदि का चित्रण इसमें है। वास्तविकता यह है कि बड़े बड़े अस्पतालों में साधारण मनुष्य के लिए सही चिकित्सा की सुविधा प्राप्त होना शायद बड़ी मुश्किल है।

सारांशतः कहा जा सकता है कि मंजुलजी की कहानियों में नारी जीवन की विभिन्न समस्याओं का पर्दाफाश किया गया है। नारी जीवन का दर्द, नारी की समस्याएँ, नारी की ओर परिवार एवं समाज की दृष्टि आदि कई-कई बातों का अंकन हुआ है। उन्होने नारी-मन के विभिन्न तहों को खोलकर देखने का प्रयास अपनी कहानियों द्वारा किया है। इसमें उन्हें पूर्ण सफलता भी प्राप्त हुई है।

संदर्भ सूची :

1. मंजुल भगतः समग्रं कथा साहित्य, डॉ. कमल किशोर गोयनका, पृ.12
2. माटोत्तर हिन्दी लेखिकाओं की कहानियों में नारी, डॉ. मंगल कणीकेरे, पृ. 60
3. मंजुल भगतः समग्र कथा साहित्य, डॉ. कमल किशोर गोयनका,पृ.35
4. वही, पृ. 60

असिस्टेंट प्रोफेसर
निर्मला कॉलेज, मुवाट्टुपुष़ा, केरल

मीराकांत के नाटकों में स्त्री आत्मसंघर्ष

परमिन्द्रजीत कौर / डॉ. विनोद कुमार

शोध पत्र सारांश : मीराकांत ने सदियों से उपेक्षित स्त्री को सामने लाने का प्रयास किया है। उनके स्त्री पात्र अलग-अलग परिवेश से जुड़े हुए होने के बावजूद स्त्री के संघर्ष की सार्वभौमिकता व सार्वकालिकता को उजागर करते हैं। लेखिका ने पौराणिक युग व इतिहास में स्त्री की स्थितियों को दिखाते हुए यह सिद्ध किया है कि स्त्री का संघर्ष किसी एक युग विशेष का नहीं है। स्त्री ने हर युग में सत्ता व समाज की रूढ़ियों से संघर्ष किया है। इस शोध पत्र में मीराकांत द्वारा रचित नाटकों में चित्रित स्त्री पात्रों के आत्मसंघर्ष को दिखाने का प्रयास किया गया है।

बीज शब्द:आत्मसंघर्ष, शोषण, मानसिक द्वन्द्व, यौन उत्पीडन, पितृसता, अधिकार।

शोध पत्र आत्मसंघर्ष से अभिप्राय है कि व्यक्ति का अपने अंत?करण के विरोधाभास, द्वन्द्व, संदेह, क्षीणता, हीनभावना से लड़ना। यह एक मानसिक और भावनात्मक प्रक्रिया है। व्यक्ति आंतरिक संघर्ष के माध्यम से पहले अपनी कमजोरियों पर जीत प्राप्त करता है और फिर बाह्य परिस्थितियों से जूझता है। स्त्री जीवन का संघर्ष विभिन्न रूपों में सामने आता है। स्त्रियों को पग-पग पर सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनीतिक स्तर पर चुनौतियों का सामना करना पड़ा। पितृसत्ता में स्त्री के लिए दोहरे मापदण्ड स्थिर किए गए। सदियों से लिंगभेद के नाम पर स्त्री को दमित किया जाता रहा। शिक्षा व ज्ञानार्जन के क्षेत्र में, रोजगार व आर्थिक स्वतंत्रता के क्षेत्र में, गृहस्थ व समाज के क्षेत्र स्त्रियाँ लगातार संघर्षरत हैं। आर्थिक दृष्टि से समर्थ होने की प्रक्रिया में आधुनिक स्त्री घर से बाहर निकल कर अपने को स्थापित कर रही है। परन्तु साथ ही कार्यस्थल पर लैंगिक असमानता, यौन शौषण, पुरुष सता के अहं का शिकार होकर अपनी भूमिका को सीमित करने वाले पूर्वाग्रहों से जूझ रही है।

स्त्री बाहरी समाज के साथ-साथ आंतरिक संघर्ष से भी गुजरती है। समाज द्वारा लगाए गए प्रतिबन्धों के बावजूद वह अपने अधिकारों के प्रति सचेत होकर खड़ी होने का साहस जुटाती है। यह संघर्ष ही उसकी आंतरिक शक्ति व साहस का प्रतीक है। मीराकांत के स्त्री पात्र प्रत्येक स्थिति में संघर्षशील पात्र के रूप में सामने आते हैं। इन पात्रों में संघर्ष अस्तित्व बोध, लैंगिक समानता, अधिकारों के प्रति चेतना, राजनीति में हस्तक्षेप, यौन शोषण से मुक्ति, आर्थिक स्वावलम्बन, मानसिक द्वन्द्व, सामाजिक रूढ़ियों का खण्डन, पुरुष सत्ता की अस्वीकार्यता, संबंध शून्यता, स्त्री आन्दोलन आदि अनेक रूपों में उद्घाटित होता है।

सदियों से स्त्री का स्वतन्त्र अस्तित्व कभी स्वीकार्य नहीं हुआ। स्त्रियों की वैचारिकता व भावनात्मकता को कभी स्वर नहीं मिला कभी मिला भी तो पुरुष सत्ता द्वारा दबा दिया गया। 'नेपथ्य राग' नाटक में पौराणिक युग में स्त्री की स्थिति को खना के माध्यम से तथा आधुनिक युग की में स्त्री की स्थिति को मेधा के माध्यम से चित्रित किया है। मेधा ने स्त्री की विद्वत्ता के प्रति युगों-युगों से समाज के व्यवहार को रेखांकित किया है। मेधा अपने कार्यालय में अनेक प्रकार के विरोध का सामना करती है। उसके पुरुष सहकर्मी मेधा को स्त्री होने के नाते अपना बॉस स्वीकारने में भी आनाकानी करते हैं। मेधा के आदेशों का पालन करने पर उनके पुरुषत्व को ठेस पहुँचती है- "लेडी ऑफिसर.... यही तो प्रॉब्लम है.... परन्तु बर्दाश्त कहाँ कर पाते है मुझे वे लोग.... मेरे ज्यादातर फैसलों का विरोध करते हैं.... कमियाँ ढूंढते हैं मुझमें.... दे फिल चैलेंज्ड....।"[1] मेधा की इसी कहानी में खना की कहानी विस्तार पाती है। ईहामृग नाटक में सित्तछाया के चरित्र में मूक रहकर पीड़ा को सहन करने वाली स्त्री दिखाई देती है। वह स्त्री की पीड़ा के सन्दर्भ में अनिबद्ध से कहती है- "तुम अपनी माँ की पीड़ा का फल हो इसीलिए ऐसा अनुभव करते हो अन्यथा स्त्री की वेदना भी उसी की तरह प्रायः स्वर नहीं पाती है... घुट-घुट कर मर जाती है।"[2]

स्त्री का जीवन सदियों से पराधीनता की पीड़ा से ग्रस्त है। यह पीड़ा कम होने की बजाए समय के साथ-साथ बढ़ती जा रही है। आधुनिक काल में स्त्री के सामने नई स्थितियाँ बनी हुई है। 'गली दुल्हनवाली' नाटक में दुल्हन स्त्री के दर्द को बयान करती हुई कहती है- "अरे छोड़ो ना गौरी की माँ मुझे तो लगता है कि हम औरतों का दर्द खत्म तो क्या कम होने का भी नहीं। मरा सोने के भाव की तरह बढ़ता ही जा रिया है। जरा सोची गौरी की माँ... अपना दर्द अगर सोने का भाव न होकर आलू-प्याज का भाव होता तो? जालिम कभी तो कम होता!"[3]

दुल्हन अपनी माँ के बचपन से लेकर विवाह तक के जीवन को एक तराजू में रखकर तौलती है। ऐसा नरकीय जीवन जहाँ स्त्री होना ही अभिशाप है। पुरुष और स्त्रियों में खाने को लेकर विभेद किया गया। भूखमरी के दिनों में घर में अनाज कम होने के कारण सिर्फ पुरुषों को रोटी-चावल मिलेंगे, स्त्रियाँ या भूखी रहेगी या फिर बचे हुए टुकडे खाएँगी। लड़के और लड़की में अन्तर की यह विभाजन रेखा स्त्री जीवन का यथार्थ है जो स्त्री के माथे पर कंलक है-"अम्मी के दादा गियों ने ऐलान किया कि गेहूँ की रोटी और चावल सिर्फ घर के मर्द और लड़के खाएँगे। औरतें उनके थाल में बचे टुकड़े खाएँगी और चावल का माँड पिएँगी।"[4]

बाल विवाह, अनमेल विवाह, स्त्रियों की खरीद-फरोख्त गरीबी और भूखमरी की नाजुक परिस्थितियों की देन है। इसी कारण दुल्हन की माँ का विवाह तेरह वर्ष की अवस्था में ही

पैंतीस साल के अधखड़ से कर दिया जाता है- "दादा मियाँ ने कुछ बरसों में तेरह साल की कटोरी का निकाह पैंतीस बरस के अब्बा से कर दिया। अब्बू के पहले ही तीन औलादें थी। दौड़ा-दौड़ाकर काम करवाने के लिए सास-ससुर थे। निकाह के बाद खाविन्द की लार्त-घूंसे तो खाने को मिलते थे पर एक सबर था कि भरपेट रोटी भी नसीब होती थी।"[5]

यौन संबंध प्रकृति की एक पूरक क्रिया है, परन्तु यह क्रिया जब तुष्टि का विषय न होकर उत्पीड़न का विषय बन जाए, तब समाज में स्त्री को इसके परिणाम भुगतने पड़ते हैं। स्त्री शारीरिक, मानसिक और सामाजिक स्तर पर संताप भोगती है। मीराकांत ने अपनी नाट्य रचनाओं के माध्यम से इस स्थिति को यथार्थता के साथ उठाया है। घर की चहारदीवारी में भी स्त्री सुरक्षित नहीं है। ऐसी अनेक घटनाएँ समाज की तह में दबी पड़ी है इज्जत, मर्यादा के डर से। अन्त हाज़िर हो नाटक में तीन बेटियों का पिता जब अपनी ही बेटियों को भोगना चाहता है। भोगना ही नहीं अपितु बड़ी बेटी के साथ यौन संबंध बना चुका है। उसी तर्ज पर छोटी को भी अपना शिकार बनाने के कोशिश करता है। पिता जब बड़ी बेटी यानी अनु दीदी के साथ संबंध बनाते है तो छोटी उन्हें आपत्तिजनक हालात में देखकर चौंक जाती है और वह सवाल पूछती है-

"पापा तुम्हारे ऊपर क्यों लेटे थे?"[6]

अबोध मन पर इस घटना का इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि वह विक्षिप्त अवस्था में स्वयं से बातें करती रहती। वह स्वयं को किसी एकांत में छिपा कर रखने की कोशिश में लगी रहती। पुरुष की कामुक प्रवृत्ति की विश्वविद्यालय के प्रोफेसर व तीन बेटियों के पिता के माध्यम से दिखाया गया है। शराब का सेवन व स्त्री के प्रति उनकी सोच को इस संवाद के माध्यम प्रकट किया गया।

"साली क्या ज़िन्दगी है हमारी भी यार... बीज बोओ। उसे सींचते रहो सालों... पालो पोसो... जब लहलहाने लगे तो किसी और की नज़र कर दो। तुम भी तो भुगत रहे हो। तुम्हारी ऐसी खूबसूरत जवान बेटी को ले जाने की वो साला तुम्हारा प्रोसपेक्टिव दामाद कीमत चाहता है कम न ज्यादा... दस लाख। साला... पाले हम फल खायें दूसरे! ओह इस घुटन में तो नशा भी नहीं ठहरता.....।"[7]

मीराकांत ने नाटक की पात्र शिल्पा के माध्यम से पुरुष सत्ता पर प्रतीक रूप में व्यंग्य करते हुए नाटक की मूल संवेदना को उजागर किया है-

"मेरे मन में... मेरे मन में आजकल एक इमेज... एक बिम्ब चल रहा है। अफ्रीका के जंगलों में एक पेड़ पाया जाता है। रक्तप्रायी पेड़... खून चूसने वाला पेड़। जो भी उसके साये में आता है। वह झुककर उसे साया देने की आड़ में उसका खून पी लेता है। खून चूस लेता है।"[8]

इसी प्रकार 'गली दुल्हनवाली' नाटक में दुल्हन के पति रज़ाक को उसके शरीर मात्र से मतलब है। उसके मन और संवेदना की कोई जगह नहीं है - "अरे चूल्हे की छोड़ पहले मुझे ठंडा कर। बस फिर कैसा चूल्हा और किसका खाना... यही पिरोगराम रहता रोज़ रात को.....।"[9]

पारिवारिक संबंधों के ताने-बाने में कितनी ही स्त्रियाँ घर में ही यौन शोषण का शिकार होती रही है और उनकी आवाज़ संबंधों और सामाजिक मर्यादाओं की परत में दबकर रह जाती है। धामपुर नाटक में प्रभा बुआ अपने जीजा द्वारा प्रताडित होती है। इसी प्रकार 'पुनरपि दिव्या' नाटक में दिव्या की मानसिक स्थिति से बेखबर कामान्ध सैनिक उसके शरीर की कीमत पूछते हैं-

"हंह कुलीन सुंदरी ! बोलो, तुम्हारे सहवास का क्या मूल्य है।"[10]

धामपुर नाटक में प्रभा बुआ की विक्षिप्त अवस्था मानसिक द्वन्द्व की यथार्थता को दर्शाता है। नित्या की संवेदनशीलता का स्पर्श पाकर प्रभा बुआ अपनी व्यथा का पिटारा खोल देती है। वह धामपुर व दिल्ली दोनों जगह से निर्वासिता बन चुकी थी। न उसका मायके में कोई अधिकार था, न ससुराल में। घर का मतलब उसके लिए कैदखाना था, जहाँ उसकी साँसें घुटती थी। स्त्रियाँ पीढ़ी दर पीढ़ी इन्हीं स्थितियों से जूझती रही हैं। सिर्फ स्त्री बदली है, स्थिति ज्यों की त्यों है। पहले प्रभा बुआ, अब नित्या, कल कोई अन्य। प्रभा बुआ ने स्त्री मन की कोमल भावनाओं की ओर संकेत करते हुए पुरुष वर्ग से यह शिकायत करती है कि एक स्त्री को पूर्ण रूप में समझने की कभी कोशिश नहीं की गयी - "किसी को भी कुछ पता नहीं चलता। जहाँ वो उन सपनों को छुपाती वहाँ वो बरसों से कोई झाँका ही न था। जिन्दगी गुजर गयी थी ऐसे ही... कोई नहीं झाँका... न ब्लाउज़ के अन्दर... न मन में।"[11]

पितृसता में उपेक्षित स्त्री के यथार्थ को 'कन्धे पर बैठा था शाप' नाटक में कामिनी के माध्यम से उजागर किया गया है। "पर पुत्री, तू जहाँ थी वहीं रही... तेरा शव लेने भी कोई न आया। उसका वही तिरस्कार हुअजो हमारी अंतिम नियति है... रही है युग-युग से... रहेगी युग-युग तक...।"[12]

मीराकांत का लेखन रिश्तों के खोखलेपन पर केन्द्रित रहा है। आधुनिक युग में व्यक्ति अपनी स्वार्थपूर्ति हेतु नैतिकता, मर्यादा, विश्वास और मूल्यों को ताक पर रख देता है। मनुष्य में पाश्विक वृत्ति हावी होती जा रही है। अन्त हाज़िर हो नाटक में धीरज सम्बन्धों के ताने-बाने पर विचार करती हुई कहती है- "दुनिया में सबसे मुश्किल है इन्सानी रिश्तों को समझना।"[13]

कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी चुनौतियों का सामना करते हुए अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करते हुए पात्रों का सृजन करना लेखिका के सकारात्मक दृष्टिकोण का परिचायक

है। पुनरपि दिव्या में दिव्या के साथ विश्वासघात ने दिव्या को भीतर तक झिंझोड़ दिया था। दिव्या के गर्भवती होने के बावजूद पृथुसेन धन, यश और सत्ता के लोभ में सीरो का वरण कर लेता है। वह आत्मग्लानि से भर पृथुसेन का राज्य छोड़ने का निर्णय लेती है, परन्तु इस समाज में जहाँ भी आश्रय पाने के लिए पहुँची, वहीं पर उसके साथ धोखा हुआ। वृद्ध स्त्री धन के लालच में दिव्या के आभूषण उतारकर उसे मद्र देश से बाहर मथुरापुरी में बेच देती है। आज भी कितनी ही स्त्रियों को छद्म नाम के साथ वेश्यालयों में नरक भोगने के लिए विवश किया जाता है। कभी प्रेम के नाम पर, कभी नौकरी के नाम पर, कभी पैसे व सुख- सुविधा के नाम पर स्त्री के साथ छल किया जाता है। धर्म भी स्त्री को आश्रय देने में अपनी असमर्थता प्रकट कर देता है। बौद्ध धर्म ने दिव्या को शरण देने से मना कर दिया, क्योंकि स्त्री के अभिभावक, पति या पुत्र की अनुमति के बिना बौद्ध धर्म उसे शरण नहीं दे सकता। दारा के रूप में दिव्या ने बौद्ध धर्म पर आक्षेप किया कि महात्मा बुद्ध ने तो अंबपाली को भी अपनी शिष्या बनायी थी। बाँध स्थविर ने वैश्या की स्वतंत्र नारी कहकर अपना पक्ष रखा। तब द्वारा के चिन्तन में स्त्री का आत्मसंघर्ष उजागर होता है–

"वेश्या स्वतंत्र नारी है... परंतु मैं... परतंत्र होने के कारण मेरे लिए कहीं शरण नहीं। दासी होकर मैं परतंत्र हो गई। अपने शाकुल को पास रखने की स्वतंत्रता के लिए ही मैंने दासत्व स्वीकार किया.... अपना शरीर बेचकर इच्छा की स्वतंत्र रखना चाहा... परंतु स्वतंस्ता स्वतंत्रता मिली कहाँ? मैं स्वतंत्र थी ही कब? कुल नारी के लिए स्वतंत्रता कहाँ? केवल वैश्या स्वतंत्र हैं। अब मैं... अपनी संतान के लिए स्वतंत्र होऊँगी... मुझे स्वतंत्र होना है... अपनी संतान के लिए स्वतंत्र होना है। वेश्याओं का मार्ग किस और है?"[14]

'उत्तर प्रश्न' नाटक में मीराकांत ने वर्तमान स्त्री सशक्तीकरण के दौर में स्त्री-प्रश्नों को नई दृष्टि से देखने का प्रयास किया गया है। गौनन्द के पुत्र दामोदर की यदुवंशियों के साथ हुए युद्ध में मृत्यु होने के पश्चात् कृष्ण दामोदर की गर्भवती पत्नी यशोधरा को कश्मीर का शासन सौंप देते हैं। यह एक विलक्षण पहल थी कि किसी स्त्री का शासन सत्ता पर विराजमान होना। लेकिन लेखिका ने यशोवती के माध्यम से स्त्री की दूरगामी सोच को उजागर करके यह साबित किया है कि वह पुरुष सत्ता के षड्यंत्र को भलि-भांति पहचानती है। कृष्ण ने यशोवती को राजसिंहासन प्रदान करके उपकृत नहीं किया था। वह मात्र एक छलावा था, फिर से पुरुष सत्ता को स्थापित करने का। यशोवती का मानना है कि इन पुरुषों से इतने सालों तक एक स्त्री सत्ता के शीर्ष पर बर्दाशत नहीं हो पायी। लेखिका ने यशोवती के माध्यम से लिंगभेद के साथ-साथ वर्गभेद की संरचना को सूक्ष्मता से अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है। यशोवती द्वारा कल्पित आदर्श राज्य समाज की उस सन्तुलित व्यवस्था की अभिलाषा है जहाँ स्त्रियाँ अपने वैध अधिकारों के लिए अकेली न जूझती रहें, अपितु पुरुष भी उन मानव मूल्यों से युक्त हो जहाँ किसी भी विषमता के प्रति दोनों ओर से आवाज उठे-एक स्वर में, एक साथ-

"नहीं पुत्र... मैं तुम्हें इन जीर्ण-शीर्ण रूढ़ियों को आगे बढ़ाने का माध्यम नहीं बनने दूंगी। मैं तुम्हें सपने दूँगी... जो ऐसे राज्य की स्थापना के हो जिसमें छोटे-बड़े का भेद न हो... जिसमें स्त्री की निर्णायक भूमिका से पुरुष आतंकित न हो... जहाँ स्त्री की सामर्थ्य को सशंक दृष्टि से न देखा जाए... उसकी सामर्थ्य को सशक्तकिया जाए। इन सपनों को सच में बदलने के संस्कार दूँगी। जब तुम राजसिंहासन पर बैठो तो स्त्री-शक्तिकी सम्भावनाएँ संकुचित न हो। तुम ऐसे शासक बनना कि तुम्हें इस जर्जर व्यवस्था की बैसाखी का सहारा न लेना पड़े।"[15]

काग़ज़ी बुर्ज नाटक में गोपा अपने प्रेमी से मिले धोखे से पीडित है। गोपा के जीवन की रिक्तता किसी से भी भरी नहीं जा सकती है। वह पूरी शक्ति के साथ स्वयं को परिस्थितियों से जूझने के लिए तैयार करती है ताकि वह अपनी सहेली शर्ली की तरह मानसिक सन्तुलन न खो बैठे - "शर्ली को उसका बॉयफ्रैंड ड्रग्स के सहारे जहाँ ले गया, मुझे निखिल का प्रेम वहाँ ले जा रहा है? नहीं... मैं ऐसा नहीं होने दूंगी।"[16]

मीराकांत का मानना है कि स्त्री शिक्षा के बल पर शोषण से मुक्ति के रास्ते पर अग्रसर हो सकती है। शिक्षा ही स्त्री जीवन में क्रांति ला सकती है। जब तक स्त्री शिक्षित नहीं होगी, तब तक वह शोषण की चक्की में ऐसे ही पिसती रहेगी। गली दुल्हनवाली नाटक में लेखिका ने शिक्षा के प्रभाव को रेखांकित करते हुए यह स्पष्ट किया है कि शिक्षित स्त्री अपने भावी पीढ़ी के भविष्य की भी निर्माता बनती है। दुल्हन स्वयं अशिक्षित होते हुए भी अपनी सन्तान को पढ़ाने के लिए हरसंभव प्रयास करती है। उसे घर से बेघर होना स्वीकार था, परन्तु अपने बेटे-बेटियों का अशिक्षित होना नहीं-

"अपनी ज़िन्दगी का कुछ करने की तो हिम्मत नहीं थी मुझमें पर मेरी ख्वाहिश थी कि मेरे बच्चे गौरी और उसके भाई की तरह पढ़ें... इस्कूल जाएँ और अपने बाप जैसे जल्लाद और जाहिल न बनें।"[17]

लेखिका ने केवल शोषित व प्रताड़ित स्त्री के जीवन संघर्ष को दिखाया ही नहीं, अपितु समस्या का समाधान भी खोजा है। स्त्री जब तक कमज़ोर बनी रहती है तब तक पुरुष उसे अपने वर्चस्व के अधीन रखता है। परन्तु जब स्त्री भीतर से मजबूत बन कर समाज के सामने आती है, तो पुरुष उसके सामने घुटने टेक देता है। लेखिका ने स्त्री मुक्ति का जो सपना देखा था उसकी संकल्पना यही से रूपाकार होती दिखाई देती है 'गली दुल्हनवाली' नाटक में दुल्हन का पति के अन्याय के सामने डटकर खड़े होने का निर्णय एक क्रांतिकारी बदलाव था। वह अपने पति के अमानवीय व्यवहार का तीखा विरोध करती है। दुल्हन का पति रज्ज़ाक उसपर अपने स्वामित्व का दंभ भरता है,

तो दुल्हन उसे स्त्रीत्व से परिचित करवाती है। स्त्री केवल दासी और भोग्य मात्र नहीं है। वह सृष्टि की सृजनकर्ता भी है। दुल्हन के प्रश्नों का रज्जाक के पास कोई उत्तर नहीं होता।

"तो मुझे क्या रंडी समझ रखा है। अरे मैं तेरे बच्चे पैदा करती हूँ... तेरा घर देखती हूँ... तेरा हरामी पेट भरती हूँ.. उपर का भी और नीचे का भी। अब बोल... आया बड़ा कमानेवाला।"[18]

समाज में हमेशा स्त्री के बांझपन पर सवाल किए जाते रहे हैं। पुरुष के लिए बांझ का विपरीत लिंगी शब्द कभी गढ़ा ही नहीं गया है। सन्तान न होने का सन्ताप स्त्री को ही झेलना पड़ता है। बांझपन की समस्या को मीराकांत ने नई दृष्टि से देखने का प्रयास किया है। आज के वैज्ञानिक युग में बांझपन के कारण का पता आसानी से लगाया जा सकता है। लेकिन पुरुष अपनी कमज़ोरी को स्वीकार नहीं पाता और समस्त दोष स्त्री पर मढ़ दिया जाता है। धामपुर नाटक की प्रभा बुआ इस यर्थाथ का प्रमाण है-

"जैसे ही डॉक्टरों ने यह इशारा दिया कि कमी पत्नी में नहीं पति में है तो राधेश्याम बाबू बीच रास्ते से तत्काल लापता होकर वापस धामपुर पहुँचे। फिर न कभी अपनी ससुराल में देखे गये न दिल्ली में। और अब तो उन्होंने अपनी पत्नी से भी कन्नी काटनी शुरु कर दी।"[19]

पुरुष सत्ता से संघर्ष सिर्फ स्त्रियों की आज़ादी और समानता के लिए नहीं है, बल्कि एक विस्तृत फलक पर सामाजिक बदलाव का आन्दोलन रहा है। इस संघर्ष का उद्देश्य ऐसे समाज का निर्माण करना है, जिसमें लैंगिक समानता हो, सभी को समान अधिकार की व्यवस्था हो। पुरुष की सत्ता को पुनर्परिभाषित करके पुरुष की भूमिका में परिवर्तन लाना है। मीराकांत के स्त्री पात्र पितृसता के खिलाफ डटकर खड़े है। उनकी स्त्री पात्र हर स्थिति में पुरुषों से श्रेष्ठ नज़र आती हैं।

निष्कर्ष:

मीराकांत ने स्वयं स्त्री होने के नाते स्त्री की संवेदना को अधिक गहराई से अनुभूत किया है। उनका लेखन स्त्री के जीवन के विविध पहलुओं से सम्पृक्त है। वह स्त्री जीवन की विभिन्न अवस्थाओं व परिस्थितियों में स्त्री की दशा के प्रति गहरा संज्ञान लेती है। लेखिका ने स्त्री के संघर्ष के बाहरी रूप के साथ-साथ आंतरिक रूप का सूक्ष्मता से चित्रण किया है। स्त्री पात्रों के आत्मसंघर्ष का यथार्थ चित्रण पाठक को उस तह तक ले जाता है, जहां स्त्री की दमित संवेदनाएँ सदियों से दबी पड़ी है।

सन्दर्भ सूची:

1. मीराकांत, नेपथ्य राग, भारतीय जानपीठ, नई दिल्ली, संस्करण-2004, पृष्ठ-62
2. मीराकांत, ईहामृग, मेधा बुक्स, दिल्ली, संस्करण-2011, पृष्ठ-94
3. मीराकांत, गली दुल्हनवाली, तीन अकेले साथ-साथ, स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-2013, पृष्ठ-20
4. वही, पृष्ठ-27
5. वहीं, पृष्ठ-27
6. मीराकांत, अन्त हाज़िर हो, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, संस्करण-2012, पृष्ठ-61
7. वही, पृष्ठ-65
8. वही, पृष्ठ-36
9. मीराकांत, गली दुल्हनवाली तीन अकेले साथ-साथ, पृष्ठ-30
10. मीराकांत, पुनरपि दिव्या, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, संस्करण-2007, पृष्ठ-42
11. मीराकांत, धामपुर, तीन अकेले साथ-साथ, पृष्ठ-6
12. मीराकांत, कन्धे पर बैठा था शाप, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, संस्करण-2010, पृष्ठ-60
13. मीराकांत, अन्त हाज़िर हो, पृष्ठ-33
14. मीराकांत, पुनरपि दिव्या, पृष्ठ-47
15. मीराकांत, उत्तर प्रश्न, स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-2016, पृष्ठ-69
16. मीराकांत, कागजी बुर्ज, तीन अकेले साथ-साथ, पृष्ठ-84
17. मौराकांत, गली दुल्हनवाली तीन अकेले साथ-साथ, पृष्ठ-34
18. वहीं, पृष्ठ-41
19. मीराकांत, धामपुर, तीन अकेले साथ-साथ, पृष्ठ-57

शोधार्थी, पीएचडी (हिन्दी)
गुरु काशी विश्वविद्यालय, बठिण्डा, पंजाब।
मो. 8437884200

सहायक प्रोफेसर , स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग
डीएवी कॉलेज जालन्धर पंजाब, मो. 7837802706

कविता

मेरी कविता

रघुवीर शर्मा

जब काँटे चुभते हैं
मेरे पैरों में
बोझ से टूटता है मेरा सिर
छटपटाने लगाता है मेरा अस्तित्व
पानी आ जाता है मेरी आँखों में
बँट जाता हूँ मैं टुकड़े-टुकड़े में
बुझा देती हैं बेदर्द हवाएँ मेरा दीपक
और मैं रो भी नहीं पाता
ठीक से जी भरकर
कि तूफान मुझे उठाकर दूर पटक देता है।
और तब शायद केवल तभी
सार्थक हो जाते हैं मेरे कोरे कागज
उभरते हैं तेजी से उनपर कुछ शब्द, कुछ वाक्य।
विश्वास करो ऐ दोस्त
उसी को तुम कहते हो
मेरी कविता ।

उपनिदेशक, राजभाषा विभाग, गृहमंत्रालय

अंग्रेज़ी शासन के खिलाफ पहला विद्रोह 'आनंदमठ'

डॉ माजिदा एम

अंग्रेज़ी शासन काल में भारतीय जनता पराधीनता की बेड़ियों को तोड़ने के लिए व्याकुल थी। तत्कालीन राजनेताओं एवं समाज सुधारकों ने स्वतंत्रता आंदोलन को उष्मा एवं उर्जा प्रदान की। उनके साथ साहित्यकार भी थे जिन्होंने अपनी रचनाओं द्वारा अंग्रेजी सत्ता को चुनौती देकर देशवासियों में साहस एवं बलिदान की भावना का संचार किया। ब्रिटिश सरकार ने उन रचनाओं पर प्रतिबंध लगा दिया जिसने भारतीयों के मन में राष्ट्रप्रेम एवं एकता की भावना का संचार होता है ऐसी रचनाओं में प्रमुख है बंकिम चंद्र चट्टोपाध्याय द्वारा लिखित 1882 में प्रकाशित 'आनंदमठ' यह उपन्यास 1770 के दशक में बंगाल में हुई अकाल और संन्यासी विद्रोह की पृष्ठभूमि में लिखा गया है। अकाल के कारण जनता भयंकर दुर्भिक्ष और भूख से पीड़ित थी तो भी सरकार आम जनता से कर वसूल जा रहा था। अंग्रेज़ों के इस हृदयहीन बर्ताव के विरुद्ध जनचेतना जगाने का सफल प्रयास है यह उपन्यास। इसमें हमारे राष्ट्रगीत 'वन्दे मातरम' अंतर्निहित है।

मूल आलेख : भारतीय इतिहास की ओर दृष्टिपात करने पर सबसे अधिक अफसोस की बात यह है कि हमें शताब्दियों तक गुलामी की जंजीरों में जकड़कर जीना पड़ा। एक ओर क्रूर एवं आततायी मुसलमान शासकों का आतंक झेलना पड़ा तो दूसरी ओर स्वार्थता से प्रेरित निर्देयता से अपने व्यापारिक हितों की रक्षा करने का उपाय ढूँढने वाले ब्रिटन जैसे साम्राज्यबादी ताकतों का शासन भी सहना पड़ा। इन दोनों शक्तियों की लालची आँखें हमारे समृद्ध एवं विपुल प्राकृतिक संसाधनों पर थी। अंग्रेज़ यहाँ व्यापार के इरादे से आए तो भी उन्होंने राजनैतिक एवं आर्थिक दृष्टि से भारत का शोषण किया। यूरोप के बाज़ारों में भारतीय वस्तुओं की जबर्दस्त माँग थी। वे यहाँ से सस्ती कीमत पर माल खरीद कर अपने देश ले जाते थे और बहाँ उँची कीमत पर बेचते थे। "भारत को गुलाम बनाने का उनका एकमात्र मकसद इस देश की धन संपदा को रत्ती-रत्ती निचोड़कर अपने देश को समृद्ध करना था।"1 इस प्रकार उन्होंने यहाँ की अर्थव्यवस्था को तहस नहस कर दिया और अपनी कूटनीति एवं साहस के बल पर संपूर्ण भारत को अपना अधीन कर लिया।

अंग्रेज़ों के उपनिवेश बनने के बाद भारत की अर्थव्यवस्था दिनों दिन खराब होती जा रही थी। भारतीय राजनेता एवं समाज सुधारकों ने आम जनता को अंग्रेजों की आर्थिक नीति के बारे में जागरूक कराने का सफल प्रयास किया। तत्कालीन साहित्यकारों ने भी अंग्रेज़ों की साम्राज्यवादी नीतियों के पर्दाफाश करने की कोशिश में पूरा सहयोग दिया। ऐसे साहित्यकारों में प्रमुख है भारतेंदु हरिश्चंद्र जिन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से विभिन्न वर्गों के लोगों में ब्रिटिश विरोधी भावना पैदा कर दी।

द्विवेदी युग में भी राष्ट्रीयता एवं देश प्रेम का स्वर मुखरित था। राष्ट्रीय भावना जगाने के साथ ही साथ स्वतंत्रता के लिए जान की कुर्बानी देने का आहवान भी तत्कालीन कवियों ने किया है। इन कवियों ने गांधीजी के आदेनानुसार सत्याग्रह, अहिंसा, राष्ट्रभाषा प्रचार, असहयोग आंदोलन जैसे कार्यक्रमों में सक्रिय भाग लिया था। कथा सम्राट मुंशी प्रेमचंद जी ने भी स्वतंत्रता आंदोलन को दिला दिखाने का सफल प्रयास किया था। उन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम में भारतीय जनता को नई ऊर्जा प्रदान की और भारतीय जनता के मन में ब्रिटिश शासन के खिलाफ तीव्र विरोध पैदा किया।

इस प्रकार स्वतंत्रता संग्राम की उर्वर भूमि तैयार करने में भारतीय साहित्य का योगदान अतुलनीय है। आम जनता के मन में देश प्रेम एवं राष्ट्रीय एकता की भावना जगाने के लिए कविता, उपन्यास, कहानी आदि की रचना प्रचुर मात्रा में हुई थी। लेकिन भारतीय स्वतंत्रता संग्राम को बढ़ावा देने में तत्कालीन पत्र पत्रिकाओं का योगदान इन सबसे बढ़कर था। अंग्रेज सरकार की भेदभावपूर्ण दमनकारी नीतियों में लोगों को अवगत कराने में इन पत्रिकाओं की विशेष भूमिका रही है। पत्रिकाओं के बढ़ते प्रभुत्व को देखकर अंग्रेज समझ गए कि इनपर सरकारी नियंत्रण लाना अनिवार्य है। इसके लिए उन्होंने समाचार पत्रों का दमन करने के लिए अनेक अधिनियम बनाए। वर्नाकुलर प्रेस अधिनियम 1878, प्रेस सेंसरशिप अधिनियम 1799, लाइसेंसिंग अधिनियम 1857, पंजीकरण अधिनियम 1867, भारतीय प्रेस अधिनियम 1910 आदि इसमें प्रमुख है।

1878 के वर्नाक्यूलर प्रेस अधिनियम को लागू करने में सरकार के लिए उन प्रकाशनों को दबाना आसान हो गया जो ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन की आलोचना करते थे। वर्नाक्यूलर प्रेस अधिनियम का लक्ष्य भारत में प्रेस की स्वतंत्रता पर प्रतिबंध लगाना था। इस नियम का उद्देश्य स्थानीय समाचार पत्रों को ऐसी सामग्री प्रकाशित करने से रोकना था जो ब्रिटिश नीतियों की आलोचना करती थी, औपनिवेशिक सत्ता पर सवाल उठाती थी या राष्ट्रवादी विचारधाराओं को प्रथय देती थी। वर्नाक्यूलर प्रेस अधिनियम को 'अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर अंकुश लगाने के प्रयास' के रूप में देखकर भारतीय नेताओं और बुद्धिजीवियों ने इसकी कड़ी आलोचना की। लेकिन ऐसे भी कुछ लेखक थे जिन्होंने ब्रिटिश सरकार के आतंक से बचने के लिए एक और दिखावे के रूप में उनकी प्रशंसा की तो दूसरी ओर अंग्रेज़ी सत्ता को जड़ से उखाड़ने का प्रयास अपने लेखन द्वारा किया। ऐसा एक उपन्यास है बंगाली साहित्यकार बंकिम चंद्र चटोपाध्याय द्वारा लिखित 'आनंद मठ'। जिस प्रकार फूल की खुशबू को छिपाने की कोशिश करने पर भी छिपा नहीं सकता उसी प्रकार

'आनंद मठ' में निहित राष्ट्रीयता एवं देश प्रेम की भावना को छिपाना आसान नहीं था। इसलिए ब्रिटिश सरकार ने सांप्रदायिक भेदभाव को बढ़ावा देनेवाला कहकर इसपर प्रतिबंध लगा दिया था।

आलोचक 'आनंदमठ' को भारत में लिखा गया पहला राजनैतिक उपन्यास मानते हैं। उपन्यास के रूप में 'आनंद मठ' के प्रकाशन से पूर्व स्वयं बंकिम बाबू द्वारा स्थापित बंगाली साहित्यिक पत्रिका 'बंग दर्शन' में 'आमार दुर्गोत्सव' नाम से यह धारावाहिक के रूप में छपकर आया था। उपन्यास के रूप में इसका प्रथम संस्करण 1882 में प्रकाशित हुआ था। इसकी लोकप्रियता का अनुमान हम इस बात से लगा सकते हैं कि प्रकाशन के दस वर्ष के अंदर इसके पाँच संस्करण प्रकाशित हो चुके थे। इतना ही नहीं भारत के करीब सभी भाषाओं में इसका अनुवाद भी हो गया, साथ ही अंग्रेज़ी में भी। 1894 में इसका हिन्दी अनुवाद भी प्रकाशित हुआ और बंगाली उपन्यास के समान ही हिन्दी अनुवाद भी काफी चर्चित रहा। इस उपन्यास की सबसे बड़ी खासियत यह है कि इसमें हमारे राष्ट्रगीत 'वन्देमातरम' अंतर्निहित है। बंकिम बाबू ने सालों पहले इस गीत की रचना की थी और बंगाल में वह आज़ादी का प्रेरणादायक गीत बन चुका था। बाग में वह संपूर्ण भारतवासियों के लिए यह प्रेरणास्रोत का कार्य किया।

भारत में बढ़ रहे राष्ट्रवादी भावनाओं को रोकने के लिए तथा भारतीयों के बीच फूट डालने के लिए लॉर्ड कर्जन ने 1905 में बंगाल विभाजन किया था। इस कुचक्र के विरुद्ध चल रहे आंदोलनों को शक्तिशाली बनाने में 'आनंदमठ' उपन्यास ने विशेष भूमिका अदा की। साथ ही इस उपन्यासा ने औपनिवेशिक शक्तियों के विरुद्ध क्रांतिकारी भावनाओं को जगाने में सहायता प्रदान की। अंग्रेज़ों ने प्रेस को काबू में करने के लिए बनाए गए नियमों के द्वारा 1898 में 'आनन्द मठ' उपन्यास की मूल प्रति एवं उसके हिंदी अनुवाद दोनों पर प्रतिबंध लगा दिया। जो 'वंदेमातरम' गीत हर भारतीय के होठों का आभूषण बन चुका था, उस पर भी प्रतिबंध लगा दिया। घरों की तलाशी लेकर 'आनंद मठ' की सारी प्रतियाँ ले गए और उसकी सार्वजनिक होली जलायी। डॉ. महेश प्रसाद सिन्हा इसके संबंध में लिखता है "जिस किसी के घर में 'आनंद मठ' की प्रति मिली उसे गिरफ्तार कर लिया गया और जिस किसी ने 'वंदे मातरम् गीत गाया उसकी जुबान गी दी गई, कोड़े लगाए गए, फॉसी दी गई।"[3]

'आनंदमठ' को अपनी साहित्यिक उपलब्धि से ज्यादा राजनीतिक सफलता के लिए याद किया जाता है। बंगाल ही नहीं, पूरे देश के लोगों पर इस उपन्यास ने गहरा असर डाला है। इसकी घटनाओं में ऐतिहासिकता की मात्रा अधिक है तो भी सारे पात्र काल्पनिक हैं। उपन्यास बंगाल में अपने प्रकाशन से एक सदी पहले 1770 में पड़े अकाल और उसके बाद हुए संन्यासी विद्रोह पर आधारित है। 'आनंदमठ' में जिस कालखंड के बारे में बताया गया है, वह बंगाल के नवाबों का समय था। नवाबों का दौर करीब खत्म हो गया था, लेकिन अंग्रेजी शासन पूरी तरह स्थापित नहीं हुआ था। अंग्रेज उस समय बंगाल के दीवान थे। ये कर बसूलते थे, परंतु बंगालवासियों के जान-माल की रक्षा का जिम्मा उन्होंने नहीं लिया था। रुपया लेने के मालिक अंग्रेज थे और जान-माल की रक्षा के दायित्व से उन्होंने मुँह मोह लिया तो बंगाल की जनता की भलाई देखने वाला कोई नहीं था। इसी दौर में बंगाल और बिहार में कुछ हिस्सों में संन्यासी विद्रोह हुआ जो 'आनंदमठ' की कहानी का आधार है।

'आनंदमठ' का आरंभ उस समय से होता है, जब बंगाल में भयंकर अकाल पड़ा था। अंग्रेजों द्वारा कर वसूली तब भी की गई थी जब जनता भयानक दुर्भिक्ष और भूख से पीड़ित थे। अकाल और ब्रिटिशों की कठोर आर्थिक नीति के कारण पूर्वी भारत में संन्यासियों के एक समूह द्वारा ब्रिटिश शासन के खिलाफ प्रतिरोध किया गया था। ये संन्यासी अपने आपको भारत माता की संतान मानते हैं। उन्होंने गृह त्यागकर आम लोगों के हक के लिए हथियार उठाया। ये टैक्स वसूली करने वालों को मारकर लूट-पाट करते थे। इनके नेता सत्यानंद नाम के एक ब्रह्मचारी थे, जो घने जंगलों के एक मठ में रहता है। उन्होंने पारिवारिक जीवन का त्याग करके अपने आप को भारत माता की सेवा के लिए समर्पित किया है। भारत माता की संतान संन्यासी अंग्रेज़ों के शोषण, अत्याचार, अन्याय आदि को समाप्त करने का प्रयास करते हैं। उपन्यास में सत्यानंद, उनके शिष्य भवानंद, जीवानंद और धीरेंद्र गोस्वामी आदि का चित्रण 'संतानों' के रूप में हुआ है।

आम जनता से वसूला गया कर गाड़ियों में लादकर सिपाहियों के पहरे में कलकत्ता के धनागार में ले जाने वाला एक दृश्य प्रस्तुत उपन्यास में भी चित्रित है। अकाल से पीडित जनता से माल को बचाने के लिए पचास सिपाही उसके साथ चल रहे थे। उसके पीछे एक गोरा घोड़े पर सवार था जो नशे में था। इस समय हथियारबंद विद्रोही संन्यासियों ने उनपर हमला बोल दिया और गोरे के कमर से उसकी ही तलवार निकालकर उसका सिर नहरीर में अलग कर दिया। उपन्यास के प्रथम खंड में वर्णित इस घटना में विद्रोही संन्यासी अंग्रेज़ों का आक्रमण करते हैं। इस प्रसंग से स्पष्ट है कि प्रस्तुत उपन्यास अंग्रेज़ी विरोधी है।

बंकिम चंद्र चटर्जी ब्रिटिश हुकूमत में डिप्टी कलेक्टर और डिप्टी मैजिस्ट्रेट रहे थे। उनके अंदर जो राष्ट्रवाद और मातृभूमि के आज़ादी के विचार थे वह 'आनंद मठ' उपन्यास में स्पष्ट परिलक्षित है। लेकिन ये एक सरकारी अफसर भी थे। उन्हें पता था कि फिलहाल, अंग्रेज़ शासन पर न तो जीत हासिल की जा सकती है और न ही उन्हें युद्ध में हराया जा सकता है। इसलिए अंग्रेज़ों को खुश करने के लिए आनंदमठ के आख़िरी अध्याय में उन्होंने अंग्रेज़ों की बुद्धिमानी, उनकी ताकत और उपलब्धियों का भी बखान किया है।

'आनंदमठ' में देश की कल्पना माँ के रूप में की गई है और भारतांबा को अंग्रेजों एवं मुसलमानों के चंगुल से मुक्त कराने की बात कही गई है। महेंद्र द्वारा पूछे गए "यह तो देश हुआ, माता तो नहीं ....."[4] प्रश्न के उत्तर में भवानंद कहते हैं - "हम और किसी माँ को नहीं मानते। जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी। हम जानते हैं, जन्मभूमि ही जननी है। हमारी माँ नहीं, बाप नहीं, बन्धु नहीं, स्त्री नहीं, पुत्र नहीं, घर नहीं, मकान नहीं, हमारे लिए है सिर्फ वही सुजला, सुफला, मलयजसमीरण शीतला शस्यश्यामला ....."[5] आनंदमठ ने मातृभूमि की सेवा के इच्छुक लोगों को संदेश दिया है कि उन्हें सब-कुछ छोड़कर देश सेवा में लगना होगा।

कुछ आलोचक आनंदमठ को सांप्रदायिकता को बढ़ावा देने वाला एवं मुस्लिम विरोधी उपन्यास मानते हैं जोकि उचित नहीं है। बंकिम बाबू ने अपने उपन्यासों में ऐसे अनेक मुस्लिम पात्रों का निर्माण किया है जो उदात्त मानवीय गुणों से युक्त हैं। उनके 'दुर्गेशनंदिनी का पात्र आयशा', 'चंद्रशेखर' नामक उपन्यास का पात्र बंगाल के नवाब मीर क़ासिम, 'राजसिंह' की जेबुन्निसा और मुबारक आदि पात्रों का चित्रण श्रेष्ठ मानवीय गुणों से युक्त पात्र के रूप में किया गया है। ब्रिटिश अधिकारियों ने भारतीय उपमहाद्वीप पर अपना नियंत्रण मजबूत करने के लिए 'फूट डालो और राज करो' की नीति अपनाई थी। उसी का परिणाम है 'आनंद मठ' के माथे पर लगाया गया यह कलंक। उसी को अनदेखा करके उपन्यास में निहित देश प्रेम एवं राष्ट्रीय एकता की भावना को स्वीकार करते हुए आगे बढ़ना ही भारतवासियों के लिए श्रेयस्कर है।

निष्कर्ष

'आनंदमठ' अनुत्तरदायी शासन से मुक्ति और सुखद शासन व्यवस्था की कामना करने वाला उपन्यास है। भारतीय सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय चेतना को जागृत करने का सफल प्रयास है यह उपन्यास। " 'आनंदमठ' के द्वारा बंकिम चंद्र चटर्जी ने एकता, राष्ट्रप्रेम, सेवा, शौर्य, राष्ट्रीय अस्मिता, अभय और बलिदान जैसे मूल्यों का प्रचार-प्रसार उस समय किया जबकि भारतीय जनता में राष्ट्रवाद और राजनीतिक चेतना का प्रादुर्भाव हो चुका था, भले ही अपने प्रारंभिक रूप में।"[6] प्रस्तुत उपन्यास के माध्यम से आम लोगों के मन में यह धारणा घर गयी कि जिस गरीबी और शोषण का उन्हें सामना करना पड़ रहा है वह अंग्रेज़ों की देन है। इससे उनके ब्रिटिश विरोधी रवैये को बल मिला और आज़ादी की छटपटाहट और भी तीव्र बन गयी। सांप्रदायिकता का काला चश्मा उतारकर मानवतावादी दृष्टिकोण से देखने पर यह तथ्य स्पष्ट हो जाएगा कि भारत में उपनिवेशवाद को समाप्त करने का पहला और सबसे महत्वपूर्ण चरण है।

संदर्भ ग्रंथ

1) Microsoft Word-HND P4 M16 Andher Nagri Ki Antarvastu Aur Praasangikta (inflib net.ac.in)
2) भारतेंदु हरिश्चंद्र-भारत दुर्दशा भारतेंदु नाटकावली पृ. सं. 133
3) डॉ महेश प्रसाद सिन्हा स्वाधीनता आंदोलन और प्रतिबंधित हिन्दी उपन्यास पृ. सं. 134
4) बंकिम चंद्र चट्टोपाध्याय 'आनंदमठ' पृ. सं. 25
5) वही पृ. सं. 25
6) सुधीर कुमार - बंकिम चंद्र चैटर्जी और सांस्कृतिक विमर्श : आनंद मठ का पुनर्पाठ पृ. में 33

सह आचाया, हिंदी विभाग
सरकारी महिला महाविद्यालय, तिरुवनंतपुरम

कविता

घरौंदे

योगेन्द्र कुमार

बालू से लेकर कंक्रीटों तक,
शीशे से लेकर पाषाणों तक,
मैदानों से शैल-मालाओं तक,
संसृति के सभी अंचलों तक!

शिशु से युवावस्था पाने तक,
प्रौढ़ता का अनुभव होने तक,
वरिष्ठता जीवन में आने तक,
साँसों का उपक्रम थकने तक!

नित नए धरौंदे बनाता मनुज,
निजता के संसर्ग में रहने को,
कामनाओं से संश्लिष्ट जीवन,
अभिलाषा-कलित हो जीने को!

निदाघ की ऊष्मा से बचने को,
आँधियों का प्रकोप सहने को,
घनघोर बरसात से बचने को,
शरद की भयावहता सहने को!

जगकी ज्वालाओं से बचने को,
सहज कल्पनाओं में जीने को,
तज संसृति की उन्मुक्तता को,
निज-बंधन में जीवन जीने को!

काश बना पता मनुज घरौंदा,
नील-निलय जैसा आश्रयदाता,
जिसमें बसतीं जग की खुशियाँ
आँगन में न कोई दुराव होता!

सेवा निवृत्त
एडीशनल कमिश्नर (विधि)
ग्रेटर नोयडा (उ.प्र)

उच्च प्राथमिक स्तर पर हिंदी विषय शिक्षण में शिक्षण सहायक सामग्री के उपयोग के प्रति अध्यापकों के प्रत्यक्षण का अध्ययन

वर्तिका चौबे एवं डॉ.चंद्रशेखर पाण्डेय

सारांश : प्रस्तुत शोध कार्य का प्रमुख उद्देश्य उच्च प्राथमिक स्तर पर हिंदी विषय शिक्षण में शिक्षण सहायक सामग्री के उपयोग के प्रति अध्यापकों के प्रत्यक्षण का अध्ययन करना था। प्रस्तुत शोध कार्य विवरणात्मक अनुसंधान के अंतर्गत सर्वेक्षण विधि पर आधारित है। शोधार्थी द्वारा प्रतिदर्श के रूप में वर्धा जनपद के उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यालयों में अध्ययनरत हिंदी विषय के 50 शिक्षकों का चयन उद्देश्यपूर्ण न्यायदर्श प्रविधि द्वारा किया गया है। आंकड़ों के संकलन के लिए शोधार्थी द्वारा साक्षात्कार अनुसूची तथा स्वनिर्मित प्रत्यक्षण मापनी का निर्माण किया गया। प्रथम शोध उद्देश्य हेतु साक्षात्कार अनुसूची का उपयोग कर गुणात्मक विश्लेषण किया गया तथा द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ शोध उद्देश्य हेतु प्रत्यक्षण मापनी का उपयोग किया गया जो तीन बिन्दु लिकर्ट मापनी पर आधारित है। इस मापनी में कुल 4 विमाओ के अंतर्गत 27 कथन है, जिसमें 15 सकारात्मक एवं 12 नकारात्मक कथन थे। इस मापनी का उद्देश्य शिक्षण सहायक सामग्री के उपयोग के प्रति अध्यापकों के प्रत्यक्षण का मापन करना है। स्वनिर्मित प्रत्यक्षण मापनी की सहायता से एकत्रित आकड़ों के विश्लेषण करने के लिए माध्य, मानक विचलन तथा विचरण का गुणांक तथा स्वतंत्र न्यादर्श परीक्षण सांख्यिकीय प्रविधि का उपयोग किया गया। आकड़ों के विश्लेषण के पश्चात निष्कर्ष के रूप में यह प्राप्त हुआ कि उच्च प्राथमिक स्तर के अध्यापकों का शिक्षण सहायक सामग्री के उपयोग के प्रति धनात्मक प्रतिक्रियाएँ व्यक्त करते हैं । उच्च प्राथमिक स्तर पर हिंदी विषय शिक्षण में शिक्षण सहायक सामग्री के उपयोग के प्रति अध्यापकों के प्रत्यक्षण का लिंग तथा शिक्षण अनुभव के आधार पर सार्थक प्रभाव नहीं पड़ता है अर्थात लिंग तथा शिक्षण अनुभव के आधार पर शिक्षण सहायक सामग्री के उपयोग के प्रति अध्यापक व अध्यापिकाएँ समान विचार व्यक्त करते है।

बीज शब्द : शिक्षण सहायक सामग्री, अध्यापकों का प्रत्यक्षण, शिक्षण अनुभव, साक्षात्कार अनुसूची

प्रस्तावना : विज्ञान एवं तकनीकी के इस युग में शिक्षण को एक ऐसी कला के रूप में स्वीकार किया जा रहा है। जिसमें शिक्षक को निष्णात होने के लिए इसमें नवाचार का प्रयोग करने की आवश्यकता है। शिक्षण की प्रक्रिया को सरल बनाने तथा अधिकाधिक अधिगम उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए शिक्षक शिक्षण के समय ऐसी विभिन्न प्रकार की सामग्रियों का प्रयोग करता है, जिनसे विषय सामग्री को सरल एवं रुचिकर बनाकर प्रस्तुत किया जा सके, इन सामग्रियों को सहायक सामग्री कहते हैं।

शिक्षण में प्रयुक्त होने वाली यह सहायक सामग्री दृश्य, श्रव्य तथा दृश्य-श्रव्य तीनों ही रूपों में हो सकती है। विश्व तथा राष्ट्रीय स्तर पर बनी शिक्षा की नीतियाँ पूरी तरह से आधुनिक तथा शिक्षा को बाल केंद्रित बनाती है। आज की शिक्षा बच्चों के सर्वांगीण विकास पर बल देती है। शिक्षा बालकों की रुचि, उसके स्वभाव और उसके मानसिक विकास के आधार पर होनी चाहिए। इसके लिए अध्यापक कक्षागत शिक्षण प्रक्रिया को इस तरह सरल व सजीव बनाएँ की विद्यार्थियों को आसानी से समझ में आ जाए। इस तरह शिक्षण प्रक्रिया की सफलता के लिए बहुत से संसाधनों की आवश्यकता होती है, जिसका उचित उपयोग कर अध्यापक शिक्षण के कार्य को एक सरल व व्यवस्थित रूप दे पाते हैं।

एन सी एफ- 2005, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 व राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में उल्लेखित है कि प्रत्येक विद्यार्थियों की रुचि, अभिक्षमता व आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर शिक्षण कार्य किया जाए, साथ ही शिक्षा को बोझिल होने से बचाया जाए। ऐसे में शिक्षण सहायक सामग्री की आवश्यकता और भी बढ़ जाती है इसलिए हम रचनात्मक परिदृश्य में अधिगम हेतु शिक्षण को सरल व सुगम बनाने हेतु शिक्षण सहायक सामग्री का उपयोग करते हैं। परंतु शिक्षण प्रशिक्षण के उपरांत कितने शिक्षक अपनी कक्षाओं में टी.एल.एम (शिक्षण सहायक सामग्री) का प्रयोग करते हैं? एक शिक्षक बनने के बाद टी. एल. एम को लेकर उनका दृष्टिकोण और व्यवहार बदलने लगता है धीरे-धीरे वे कक्षाओं में सहायक सामग्री का प्रयोग करना बंद कर देते हैं। किन समस्याओं के कारण इनका प्रयोग शून्य होता जा रहा है, इस प्रस्तावित लघु शोध कार्य में जानने का प्रयास किया गया है।

सामान्यतः प्राथमिक विद्यालयों में शिक्षकों द्वारा शिक्षण अधिगम सामग्री के प्रयोग की स्थिति सकारात्मक दिखाई नहीं देती है। शिक्षण अधिगम सामग्री के निर्माण, उपलब्धता उनके संचालन के लिये आधारभूत ढांचे की कमी आदि ऐसी समस्याएँ हैं, जो विद्यार्थियों के अधिगम पर नकारात्मक प्रभाव डालती है। इस दृष्टि से शिक्षण अधिगम सामग्री के कक्षा शिक्षण के दौरान प्रयोग के प्रति शिक्षकों की प्रतिक्रियाओं और समस्याओं को समझना आवश्यक है ताकि इस दिशा में सकारात्मक प्रयास के लिये उचित कदम उठाए जा सकें।

जैसा कि हम देखते हैं विज्ञान गणित भूगोल सामाजिक विज्ञान विषयों में अनेक ऐसे विषय और विषय सम्मिलित हैं जिस पर आसानी से सहायक सामग्री का उपयोग, प्रयोग और निर्माण किया जा सकता है। परंतु अगर हम वही हिंदी विषय के कोई भी विधा जैसे नाटक उपन्यास, एकांकी और गद्य के पाठ

का संचालन जब हम अपनी कक्षाओं में करते हैं तो सामग्री बनाने में या निर्माण करने में हमें कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है जिसके कारण कुछ शिक्षक इसे बोझिल समझकर इसके प्रति कोई जागरूकता नहीं रखते हैं और वही प्रचलित व्याख्यान विधि द्वारा कक्षा में अध्यापन का कार्य करते हैं जिससे विद्यार्थियों के अंदर कल्पनाशक्ति व रचनात्मकता की कमी नजर आती दिखती है और पाठ की अवधारणाओं की समझ सही ढंग से विकसित नहीं हो पाती है इसके चलते एक अध्यापक को इस विषय के प्रति जागरूकता आवश्यक है। शिक्षण कार्य में शिक्षण सहायक सामग्री के प्रति उसकी सकारात्मक सोच का पल्लवित होना अति आवश्यक है।

शिक्षा किसी भी समाज के सर्वांगीण विकास का सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपागम होती है। किसी भी वर्ग, समुदाय, समाज अथवा राष्ट्र के विकास की सबसे पहली सीढ़ी शिक्षा ही होती है। शिक्षा व्यक्ति अथवा बालक की आंतरिक शक्तियों को बाहर लाने अथवा विकसित करने की एक प्रक्रिया है, जिसका मानव जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान है। मानव संसाधन के विकास का मूल शिक्षा है, जो देश के सामाजिक- आर्थिक तंत्र के संतुलन में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। संकुचित अर्थ में शिक्षा एक निश्चित समय पर, निश्चित पाठ्यक्रम के द्वारा विद्यालयों एवं महाविद्यालयों में सुनियोजित ढंग से चलने वाली सोद्देश्य सामाजिक प्रक्रिया मात्र है, परंतु व्यापक अर्थ में शिक्षा किसी भी समाज में चलने वाली एक उद्देश्य पूर्ण सामाजिक प्रक्रिया है जो कि मनुष्य के अंदर व्याप्त जन्मजात शक्तियों का विकास करती है, मनुष्य के ज्ञान और कौशल में वृद्धि के द्वारा उसके व्यवहार में परिवर्तन एवं परिमार्जन करती है तथा उसे एक सभ्य, सुसंस्कृत एवं योग्य नागरिक बनाती है। समकालीन शैक्षिक विचारक जे. कृष्णमूर्ति के अनुसार तथ्यों को रटने, परीक्षा उत्तीर्ण करने और उपाधियाँ प्राप्त करने को शिक्षा नहीं मानते हैं। इनकी दृष्टि से यह शिक्षा का मनुष्य को एक पक्ष है, जो उसे केवल रोजी रोटी कमाने योग्य बनाता है। वास्तविक शिक्षा वह है जो आत्मज्ञान कराए।

शिक्षा के अनेक रूप माने जाते हैं, व्यवस्था की दृष्टि से शिक्षा के तीन रूप हैं; औपचारिक, अनौपचारिक और निरौपचारिक। शिक्षा के भी अनेक रूप हैं, जैसे; प्रौढ़ शिक्षा, खुली - शिक्षा, दूरस्थ शिक्षा और जीवन पर्यंत शिक्षा या सतत् शिक्षा। विषय क्षेत्र की दृष्टि से शिक्षा के दो रूप होते हैं, जैसे, सामान्य शिक्षा और विशिष्ट शिक्षा। किसी भी प्रकार की शिक्षा का प्रथम चरण है- प्राथमिक शिक्षा। यदि हम प्राथमिक शिक्षा की बात करें तो हम यह कह सकते हैं कि प्राथमिक शिक्षा बह शिक्षा है जो बच्चे की सांस्कृतिक, भावात्मक, बौद्धिक, नैतिक, शारीरिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक विकास की नीव रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। प्राथमिक शिक्षा, शिक्षा व्यवस्था की महत्वपूर्ण कड़ी है।

प्राथमिक शिक्षा के विस्तार के लिए विभिन्न आयोगों एवं नीतियों जैसे-कोठारी आयोग (1964-66), राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986, तथा राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 ने प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमीकरण में योगदान दिया। दूसरी ओर प्राथमिक शिक्षा संपूर्ण शिक्षा के लिए आधार का कार्य करती है प्राथमिक शिक्षा में सर्वप्रथम बच्चों को संप्रेषण के माध्यम से भाषा का ज्ञान कराया जाता है तथा बच्चों को वस्तुओं को देखकर तथा छूकर उनमें देखने समझने की शक्ति विकसित की जाती है और खेल खेल में बच्चों में कौशलों का विकास किया जाता है। प्रकृति ने मानव को ज्ञान प्राप्त करने हेतु ज्ञानेंद्रियाँ प्रदान की हैं। अध्यापक शिक्षण के दौरान सहायक सामग्री द्वारा बालक की ज्ञानेंद्रियों को प्रेरित एवं सक्रिय करके जो शिक्षण कार्य करता है वह प्रभावी उपयोग होता है ज्ञानेंद्रियों को सक्रिय करने हेतु व शिक्षण के समय शिक्षण सहायक सामग्री के बेहतर प्रयोग में भी। प्रो बेनैर के अनुसार ज्ञानेंद्रियों के द्वारा ज्ञान प्राप्त करने का प्रतिशत बताया गया है कानों से 25 प्रतिशत, आंखों से 40 प्रतिशत, स्पर्श से 17 प्रतिशत, अन्य साधनों से 18 प्रतिशत है। कुछ विद्वानों ने भी प्रयोग से सिद्ध करके बताया है जैसे- प्रो पी. जे. रूलोन दृश्य और दृश्य चलचित्र के द्वारा व्यक्ति सामान्य से 38% अधिक याद रख सकता है तो ऐसे में हम क्यों ना शिक्षण प्रक्रिया और अधिगम को सहायक सामग्री के माध्यम सुगम व मरल बनाएं।

शिक्षण सहायक सामग्री :शिक्षण सहायक सामग्री में अभिप्राय उन श्रव्य दृश्य साधनों से है जिनके द्वारा छात्रों को ज्ञानेंद्रियों को अधिक सक्रिय बनाकर उनके लिए विशेष सामग्री को अधिक सुबोध, रोचक तथा प्रभावशाली बनाया जाता है। इन साधनों को सहायक साधन इसलिए कहा जाता है क्योंकि इनका प्रयोग शिक्षण में वहीं पर किया जाता है जहाँ पर इनकी आवश्यकता होती है। अर्थात् यह साधन शिक्षण प्रक्रिया में सहायक की भूमिका निभाते हैं। अतः अध्यापक द्वारा शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को सरल, रोचक तथा प्रभावशाली बनाने के लिए जिन श्रव्य दृश्य साधनों का प्रयोग किया जाता है, उसे हम शिक्षण सहायक साधन कहते हैं, जो सामग्री पाठ को रोचक तथा सुबोध बनाने और किसी संकल्पना या प्रत्यय विशेष को अथवा शब्द, पदबंध आदि के अर्थ को सुनिश्चित रूप से अधिक स्पष्ट करके में सहायक सिद्ध होती है उसे शैक्षणिक सहायक सामग्री कहा जाता है। शिक्षा के क्षेत्र में टी. एल. एम आमतौर पर प्रयोग किए जाने वाला शब्द है।

प्रत्यक्षण : किसी वस्तु के बारे में मिली सूचना को संगठित व संसाधित करके उससे ज्ञान और अपनी स्थिति के बारे में जागरूकता प्राप्त करने की प्रक्रिया को प्रत्यक्षण कहते हैं। यहाँ प्रत्यक्षण से तात्पर्य यह है कि शिक्षण सहायक सामग्री के प्रति अध्यापकों की क्या रुचि, जागरूकता व नजरिया है। प्रत्यक्षण से तात्पर्य संवेदना की मानसिक व्याख्या करने से है। अध्यापक संवेदनाओं की व्याख्या करके उन्हें अपने लिए अर्थपूर्ण बनाता

है। कोई भी संवेदना स्थिति व्यक्ति के प्रत्यक्षण का आधार बन सकती है।

शोध का औचित्य : प्रस्तावित शोध कार्य से संबंधित अध्ययन बहुत कम हुए हैं, जो कार्य हुए भी हैं वह विभिन्न प्रकार के शिक्षण सहायक सामग्री द्वारा किए गए शिक्षण कार्य का प्रभाव विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि, अभिरु चि व अभिवृत्ति पर देखा गया है तथा शिक्षकों के भाषा दक्षता सुधारने हेतु टी एल एम का प्रयोग किया गया है। लेकिन शिक्षण सहायक सामग्री के प्रयोग के प्रति अध्यापकों के प्रत्यक्षण का अध्ययन कार्य नहीं हुए हैं इसलिए शोधार्थी शिक्षकों का शिक्षण सहायक सामग्री के प्रति क्या प्रत्यक्षण है यह जानने का प्रयास किया गया है। शोध अध्ययनों का अवलोकन करने से जो हमें रिक्तता प्राप्त हुई है उस रिक्तता को शोधार्थी भरने का प्रयास अपने अनुसंधान कार्य में पूर्ण करेगा। अतः प्रस्तावित शोध कार्य से प्राप्त निष्कर्ष शिक्षण सहायक सामग्री के उपयोग के प्रति अध्यापकों में जागरूकता तथा समझ विकसित करेगा। अध्यापकों और विद्यार्थियों को अध्यापन तथा अध्ययन प्रक्रिया में सार्थक सिद्ध होगा।

शोध के उद्देश्य

1.उच्च प्राथमिक स्तर पर हिंदी विषय शिक्षण में शिक्षण सहायक सामग्री के उपयोग की संभावनाओं और चुनौतियों का अध्ययन।

2. हिंदी विषय शिक्षण में शिक्षण सहायक सामग्री के उपयोग के प्रति अध्यापकों के प्रत्यक्षण का अध्ययन।

3.हिंदी विषय शिक्षण में शिक्षण सहायक सामग्री के उपयोग के प्रति अध्यापकों के प्रत्यक्षण का लिंग के आधार पर तुलनात्मक अध्ययन।

4.हिंदी विषय शिक्षण में शिक्षण सहायक सामग्री के उपयोग के प्रति अध्यापकों के प्रत्यक्षण का शिक्षण अनुभव के आधार पर तुलनात्मक अध्ययन।

शोध परिकल्पना :

1.उच्च प्राथमिक स्तर पर हिंदी विषय शिक्षण में शिक्षण सहायक सामग्री के उपयोग के प्रति अध्यापकों के प्रत्यक्षण में सार्थक अंतर नहीं है।

2.उच्च प्राथमिक स्तर पर हिंदी विषय शिक्षण में शिक्षण सहायक सामग्री के प्रति अध्यापकों के प्रत्यक्षण का लिंग के आधार पर सार्थक अंतर नहीं है।

3.उच्च प्राथमिक स्तर पर हिंदी विषय शिक्षण में शिक्षण सहायक सामग्री के प्रति अध्यापकों के प्रत्यक्षण का शिक्षण अनुभव के आधार पर सार्थक अंतर नहीं है।

शोध विधि एवं प्रक्रिया : प्रस्तुत अध्ययन में वर्णनात्मक विधि के अंतर्गत सर्वेक्षण विधि का उपयोग किया गया है। सर्वेक्षण विधि एक वैज्ञानिक प्रक्रिया है जिसका संबंध वर्तमान परिस्थितियों, प्रचलित विश्वासों तथा दृष्टिकोण को जानने का प्रयास किया जाता है।

जनसंख्या एवं प्रतिदर्श : जनसंख्या - प्रस्तुत शोध में जनसंख्या के रूप में महाराष्ट्र राज्य के वर्धा जनपद के समस्त उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यालय के अध्यापकों को सम्मिलित किया गया।

प्रतिदर्श : प्रस्तावित शोध में प्रतिदर्श के लिए उद्देश्यपूर्ण प्रतिदर्शन विधि का प्रयोग किया गया। वर्धा जनपद के उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यानयों ने हिंदी विषय के 50 अध्यापकों का चयन किया गया।(स्थलाभाव के कारण तालिका प्रकाशित करने में हम असमर्थ हैं।)

शोध उपकरण : प्रस्तुत शोध अध्ययन में शोध उपकरण के रूप में शोधार्थी द्वारा स्वनिर्मित प्रत्यक्षण मापनी का उपयोग किया गया है। अध्यापकों द्वारा उपयोग की जाने वाली शिक्षण सहायक सामग्री के संबंध में जानकारी प्राप्त के लिए साक्षात्कार अनुसूची का निर्माण किया गया है।

शोध उपकरण का विवरण : प्रस्तुत शोध प्रबंध कार्य में दो उपकरणों का उपयोग किया गया है जो अग्रलिखित है : -

1. संरचित साक्षात्कार (स्वनिर्मित) 2. अध्यापक हेतु प्रत्यक्षण मापनी (स्वनिर्मित)

संरचित साक्षात्कार (स्वनिर्मित) : प्रस्तुत शोध प्रबंध कार्य में हिंदी विषय शिक्षण में शिक्षण सहायक सामग्री के उपयोग की संभावनाओं और चुनौतियों के अध्ययन हेतु तथा शिक्षण में शिक्षण सहायक सामग्री के प्रभावी उपयोग के प्रति अध्यापकों का सुझाव मांगा गया है। इस साक्षात्कार अनुसूची में कुल 11 प्रश्नों को सम्मिलित किया गया है।

स्वनिर्मित प्रत्यक्षण मापनी : प्रस्तुत शोध प्रबंध कार्य में हिंदी विषय शिक्षण में शिक्षण सहायक सामग्री के उपयोग के प्रति अध्यापकों के लिए प्रत्यक्षण मापनी का उपयोग किया गया है जिसका निर्माण शोधार्थी द्वारा स्वयं किया गया है। इस मापनी का निर्माण लिकर्ट के तीन बिन्दुओं सहमत, अनिश्चित तथा असहमत के आधार पर किया गया है। मापनी में उल्लेखित सभी कथन शिक्षण सहायक सामग्री के उपयोग से संबन्धित है। इन कथनों के प्रति उन्हें तीन वर्गों के अंतर्गत अपनी प्रतिक्रिया व्यक्तकरनी है। इस मापनी में सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों ही प्रकार के कथनों का प्रयोग किया गया है, जिसमे 15 सकारात्मक कथन तथा 12 नकारात्मक कथन सम्मिलित किए गए है।

आंकड़ों के संकलन की प्रक्रिया : प्रदत्त संकलन हेतु सर्वप्रथम शोधार्थी महाराष्ट्र राज्य के वर्धा जिले के प्रत्येक उच्च प्राथमिक विद्यालय के प्रधानाध्यापक से अनुमति लेकर विद्यालय में हिंदी विषय शिक्षण के अध्यापक से मिले तत्पश्चात अपने शोध कार्य एवं शोध उपकरण से सम्बंधित तथ्यों से उन्हें अवगत कराया। तत्पश्चात शोधार्थी द्वारा स्वयं अध्यापकों के बीच उपकरण

को प्रशासित किया गया तथा उन्हें शोधार्थी द्वारा यह विश्वास दिलाया गया कि आपके द्वारा दी गई समस्त सूचनाओं को गोपनीय रखा जाएगा। शिक्षण सहायक सामग्री के उपयोग के प्रति प्रत्यक्षण मापनी को पूर्ण करने के उपरान्त उपकरण का संकलन कर लिया गया। इसी प्रकार साक्षात्कार हेतु अध्यापकों से मिले तथा इसके साथ सौहार्दपूर्ण संबंध स्थापित कर अपने शोध उपकरण से अवगत किया तदुपरांत शोधार्थी ने उपकरण को प्रशासित किया और शोधार्थी द्वारा स्वयं प्रश्न पूछकर अध्यापकों के प्रति उत्तर को रिकॉर्ड किया गया। इन अध्यापकों को आश्वस्त किया कि उनके द्वारा दी गई समस्त सूचनाओं को गोपनीय रखा जाएगा।

आंकडों का विश्लेषण एवं व्याख्या प्रथम शोध उद्देश्य :उच्च प्राथमिक स्तर पर हिन्दी विषय शिक्षण में शिक्षण सहायक सामग्री के उपयोग की संभावना और चुनौतियों का अध्ययन ।

प्रस्तुत शोध के प्रथम शोध उद्देश्य के अनुसार शोधार्थी द्वारा उच्च प्राथमिक स्तर पर हिन्दी विषय शिक्षण में शिक्षण सहायक सामग्री के उपयोग की संभावनाओं और चुनौतियों का अध्ययन करने के लिए संरचित साक्षात्कार का उपयोग एवं उनका गुणात्मक विश्लेषण किया गया है जिसमें लगभग 11 पद सम्मिलित थे । जिनके गुणात्मक विश्लेषण का विवरण 11 पद के माध्यम से कोड और प्रतिशत के आधार पर किया गया।

व्याख्या : परिणामस्वरूप यह कहा जा सकता है कि ऑकड़ों के विश्लेषण के पश्चात प्राप्त परिणामों से ज्ञात हुआ कि उच्च प्राथमिक स्तर पर हिन्दी विषय शिक्षण में शिक्षण सहायक सामग्री के उपयोग के प्रति अध्यापकों की सोच सकारात्मक थी। अधिकांश अध्यापकों का मानना है कि हिन्दी विषय में अधिगम के लिए परंपरागत विधि की तुलना में तकनीकी से जुड़े शिक्षण सहायक सामग्री से अध्यापन कार्य कराना अधिक प्रभावशाली होता है, परंतु वरिष्ठ अध्यापकों को तकनीकी ज्ञान के अभाव के कारण कक्षा संचालन के दौरान तकनीकी से जुड़ी शिक्षण सहायक सामग्री का उपयोग करने में समस्याओं और चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। इसी आधार पर अध्यापकों का मानना है कि नई तकनीकी से संबंधित शिक्षण सहायक सामग्री का प्रशिक्षण प्रत्येक विद्यालयी संस्था में दिया जाना चाहिए। अधिकांश अध्यापक इस बात से भी सहमत थे कि वर्तमान समय में कक्षा संचालन के दौरान शिक्षण सहायक सामग्री के अभाव में विद्यार्थियों का ध्यान विषय वस्तु पर कम केंद्रित होता है।

द्वितीय शोध उद्देश्य : हिन्दी विषय शिक्षण में शिक्षण सहायक सामग्री के उपयोग के प्रति अध्यापकों के प्रत्यक्षण का अध्ययन : प्रस्तुत शोध के द्वितीय उद्देश्य के अनुसार शोधार्थी द्वारा हिंदी विषय शिक्षण में शिक्षण सहायक सामग्री के उपयोग के प्रति अध्यापकों के प्रत्यक्षण का अध्ययन करना था। जिसके लिए स्वनिर्मित प्रत्यक्षन मापनी का निर्माण किया गया। प्रत्यक्षण मापनी में कुल 4 बीमाओं के अनुसार कुल 27 पद थे, जिसमें 15 सकारात्मक पद तथा 12 नकारात्मक पद सम्मिलित थे। प्रत्येक पद के प्रति उत्तर के लिए कुल 3 बिन्दु निर्धारित किए गए थे। सहमत, असहमत तथा अनिश्चित। सकारात्मक पद हेतु सहमत के लिए 3 अंक असहमत के लिए 2 अंक तथा अनिश्चित के लिए 1 अंक का निर्धारण किया गया था। नकारात्मक पद में सहमत के लिए 1 अंक, असहमत के लिए 2 और अनिश्चित के लिए 3 अंक का निर्धारण किया गया था। स्वनिर्मित प्रत्यक्षण मापनी की सहायता से एकत्रित आँकड़ों के विश्लेषण के लिए माध्य, मानक विचलन तथा विचरण का गुणांक (coefficient of variation) सांख्यिकीय प्रविधियों का उपयोग किया गया।

शिक्षण सहायक सामग्री के उपयोग के प्रति अध्यापकों के प्रत्यक्षण प्रतिक्रियाओं के मध्यमान, मानकविचलन और विचरणशीलता का गुणांक का सारांश व्याख्या:

अवलोकन से स्पष्ट होता है कि प्रत्यक्षण मापनी की सहायता से प्राप्त प्रदत्तों का माध्य 2.59 तथा मानक विचलन 0.37057 है। माध्य का अवलोकन करने पर स्पष्ट होता है कि उच्च प्राथमिक स्तर के अध्यापकों का शिक्षण सहायक सामग्री के उपयोग के प्रति धनात्मक प्रतिक्रियाएँ व्यक्त करते है। इसके साथ-साथ विचलनशीलता गुणांक का मान 14.28 है, जो सामान्य है तथा प्रतिक्रियाओं में सार्थक अंतर नहीं है जिससे यह पता चलता है कि उच्च प्राथमिक स्तर पर अध्यापकों का शिक्षण सहायक सामग्री के उपयोग के प्रति धनात्मक प्रतिक्रियाएँ व्यक्त करते है।

उच्च प्राथमिक स्तर के अध्यापकों का शिक्षण सहायक सामग्री के उपयोग के प्रति प्रत्यक्षण मापनी पर प्रतिशत के आधार पर किस प्रकार का प्रदर्शन किया है? इस तथ्य की जाँच करने के लिए उनकी प्रतिक्रियाओं का प्रश्नवार सांख्यिकीय विश्लेषण किया गया। जिसमें स्पष्ट हुआ कि अध्यापकों का प्रत्यक्षण धनात्मक है।

तृतीय शोध उद्देश्य : उच्च प्राथमिक स्तर पर हिंदी विषय शिक्षण में शिक्षण सहायक सामग्री के प्रति अध्यापकों के प्रत्यक्षण का लिंग के आधार पर तुलनात्मक अध्ययन करना।

प्रस्तुत शोध का द्वितीय उद्देश्य 'उच्च प्राथमिक स्तर पर हिंदी विषय शिक्षण में शिक्षण सहायक सामग्री के उपयोग के प्रति अध्यापकों के प्रत्यक्षण का लिंग के आधार पर तुलनात्मक अध्ययन' करना था। जिसके लिए कुल 50 अध्यापकों की प्रतिक्रिया को जानने के लिए शोधार्थी द्वारा स्वनिर्मित प्रत्यक्षण मापनी का उपयोग किया गया। आँकड़ों के विश्लेषण के पश्चात प्राप्त परिणामों को तालिका क्रमांक 04 में प्रदर्शित किया गया है।

व्याख्या : अवलोकन से स्पष्ट होता है कि अतः उच्च प्राथमिक स्तर पर हिंदी विषय शिक्षण में शिक्षण सहायक सामग्री के प्रति अध्यापकों के लिंग के आधार पर प्रत्यक्षण के माध्य फलांकों

कि तुलना करने पर यह ज्ञात होता है कि अध्यापकों के प्रत्यक्षण फलांकों का माध्य 68.75 तथा मानक विचलन 5.95487 है। इसी प्रकार अध्यापिकाओं के प्रत्यक्षण फलांकों का माध्य 69.43 तथा मानक विचलन 4.15794 है। उच्च प्राथमिक स्तर पर हिंदी विषय शिक्षण में शिक्षण सहायक सामग्री के प्रति अध्यापकों के प्रत्यक्षण फलांकों का परिकल्पित टी-परीक्षण का मान 478 है, जिसका स्वतंत्र्यांश 48 पर सार्थकता मान 635 है यह मान 0.05 से ज्यादा है। इसलिए सार्थकता के 0.05 स्तर पर सार्थक नहीं है। अतः शून्य परिकल्पना अस्वीकृत नहीं होती है। परिणाम स्वरूप यह कहा जा सकता है कि उच्च प्राथमिक स्तर पर हिंदी विषय शिक्षण में शिक्षण सहायक सामग्री के प्रति अध्यापकों (पुरुष व महिला) के प्रत्यक्षण के मध्यांक फलांकों में सार्थक अंतर नहीं है। परिणाम से यह स्पष्ट हो जाता है कि हिंदी विषय शिक्षण में शिक्षण सहायक सामग्री के प्रति अध्यापकों के प्रत्यक्षण पर उनके लिंग का सार्थक प्रभाव नहीं पड़ता।

चतुर्थ शोध उद्देश्य

उच्च प्राथमिक स्तर पर हिंदी विषय शिक्षण में शिक्षण सहायक सामग्री के प्रति अध्यापकों के प्रत्यक्षण का शिक्षण अनुभव के आधार पर तुलनात्मक अध्ययन करना।

प्रस्तुत शोध का चतुर्थ उद्देश्य 'उच्च प्राथमिक स्तर पर हिंदी विषय शिक्षण में शिक्षण सहायक सामग्री के उपयोग के प्रति अध्यापकों के प्रत्यक्षण का शिक्षण अनुभव के आधार पर तुलनात्मक अध्ययन' करना था। जिसके लिए कुल 50 अध्यापकों की प्रतिक्रिया को जानने के लिए शोधार्थी द्वारा स्वनिर्मित प्रत्यक्षण मापनी का उपयोग किए गए थे। स्वनिर्मित प्रत्यक्षण मापनी की सहायता से एकत्रित आँकड़ों के विश्लेषण के लिए माध्य, मानक विचलन तथा टी-परीक्षण प्रविधियों का उपयोग किया गया।

व्याख्या

उच्च प्राथमिक स्तर पर हिंदी विषय शिक्षण में शिक्षण सहायक सामग्री के उपयोग के प्रति अध्यापकों के प्रत्यक्षण का शिक्षण अनुभव के आधार पर प्रत्यक्षण के कुल फलांकों का माध्य 19.5840 तथा मानक विचलन 9.04725 था। शिक्षण सहायक सामग्री के उपयोग के प्रति अध्यापकों के प्रत्यक्षण का शिक्षण अनुभव के आधार पर प्रत्यक्षण के फलांकों का उच्च अनुभव समूह वाले का माध्य 68.6897 तथा मानक विचलन 5.28545 है। इसी प्रकार शिक्षण सहायक सामग्री के उपयोग के प्रति अध्यापकों के प्रत्यक्षण का शिक्षण अनुभव के आधार पर प्रत्यक्षण के फलांकों का निम्न अनुभव समूह वाले का माध्य 69.8095 तथा मानक विचलन 4.37743 है। उच्च प्राथमिक स्तर पर हिंदी विषय शिक्षण में शिक्षण सहायक सामग्री के उपयोग के प्रति अध्यापकों के उच्च व निम्न अनुभव समूह वाले प्रत्यक्षण फलांकों का टी- परीक्षण का मान 793 है, जिसका स्वतंत्र्यांश 48 पर सार्थकता मान 432 है। यह मान 0.05 स्तर से ज़्यादा है इसलिए सार्थकता के 0.05 स्तर पर सार्थक नहीं है। अतः शून्य परिकल्पना अस्वीकृत होती है।

परिणाम स्वरूप यह कहा जा सकता है कि उच्च प्राथमिक स्तर पर हिंदी विषय शिक्षण में शिक्षण सहायक सामग्री के उपयोग के प्रति अध्यापकों के उच्च व निम्न अनुभव समूह वाले प्रत्यक्षण के मध्यांक फलांकों में सार्थक अंतर नहीं है। परिणाम से यह स्पष्ट हो जाता है कि हिंदी विषय शिक्षण में शिक्षण सहायक सामग्री के प्रति अध्यापकों के प्रत्यक्षण पर उनके शिक्षण अनुभव का सार्थक प्रभाव नहीं पड़ता।

शोध निष्कर्ष

प्रस्तुत शोध अध्ययन में शोध निष्कर्ष के रूप में निम्नलिखित तथ्य प्राप्त हुए है :-

1. लिंग के आधार पर उच्च प्राथमिक स्तर पर हिन्दी विषय शिक्षण में शिक्षण सहायक सामग्री के प्रति अध्यापकों के प्रत्यक्षण की तुलना करने पर पाया गया कि अध्यापकों के प्रत्यक्षण प्राप्तांकों में सार्थक अन्तर नहीं है अतः कह सकते है कि अध्यापकों (महिला व पुरुष) के शिक्षण सहायक सामग्री के उपयोग के प्रति एक समान विचार है, लिंग का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।
2. शिक्षण अनुभव के आधार पर उच्च प्राथमिक स्तर पर हिन्दी विषय शिक्षण में शिक्षण सहायक सामग्री के उपयोग के प्रति अध्यापकों के प्रत्यक्षण कि तुलना करने पर पाया गया कि अध्यापक और अध्यापिकाओं के प्रत्यक्षण पर उनके शिक्षण अनुभव का सार्थक प्रभाव नहीं पड़ता फलस्वरूप कहा जा सकता है कि शिक्षण अनुभव के आधार पर हिन्दी विषय शिक्षण में शिक्षण सहायक सामग्री के उपयोग के प्रति अध्यापक व अध्यापिकाएँ समान विचार व्यक्त करते हैं।
3. उच्च प्राथमिक स्तर पर हिन्दी विषय शिक्षण में शिक्षण सहायक सामग्री के उपयोग के प्रति अनुभवी अध्यापकों की तुलना में वर्तमान समय के अध्यापक ज़्यादा जागरूक है ऐसे में अनुभवी अध्यापकों में शिक्षण सहायक के प्रति जागरूकता लाने की आवश्यकता है।
4. अधिकांश अध्यापक जो तकनीकी संबंधी शिक्षण सहायक सामग्री का उपयोग कर रहे है वह सामग्री का उपयोग करते समय सहज महसूस करते है परंतु जो अध्यापक पारंपरिक प्रणाली से अध्यापन कार्य कर रहे है उनको तकनीकी संबंधी कोई विशेष ज्ञान नहीं जिससे तकनीकी संबंधी शिक्षण सहायक सामग्री का उपयोग करना कठिन लगता है जिससे वह सहज महसूस नहीं करते है।
5. अध्यापकों का मानना है कि उच्च प्राथमिक स्तर पर हिन्दी विषय शिक्षण में शिक्षण सहायक सामग्री का उपयोग करने से हिन्दी विषय के प्रति विद्यार्थियों के अंदर रुचि व

जिज्ञासा बढ़ती है साथ ही समझ स्तर, मस्तिष्क उद्वेलन तथा कल्पना शक्ति के विकास में सहायक होता है।

6. उच्च प्राथमिक स्तर पर गणित, विज्ञान तथा सामाजिक विज्ञान जैसे विषयों की अपेक्षा हिन्दी विषय में शिक्षण सहायक सामग्री का चयन करने में कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।

7. तकनीकी संबन्धित शिक्षण सहायक सामग्री का उपयोग करते समय नेटवर्क कनेक्टिविटी संबंधी तथा प्रोजेक्टर, कम्प्यूटर जैसे उपकरण का उचित उपयोग करने में कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, जिससे अध्यापकों को कक्षा संचालन के दौरान समस्याओं और चुनौतियों का सामना करना पड़ता है।

8. प्रस्तुत शोध में अध्यापकों से प्राप्त आकड़ों के विश्लेषण के आधार पर यह प्राप्त हुआ कि अध्यापकों का शिक्षण सहायक सामग्री के उपयोग के प्रति प्रत्यक्षण सम्बन्धी सकारात्मक प्रतिक्रिया व्यक्तहुई क्योंकि अध्यापकों के प्रत्यक्षण के माध्य प्राप्तांकों, विचरणशीलता गुणांक में सार्थक अंतर नहीं है निष्कर्षतः कह सकते है कि उच्च प्राथमिक स्तर के अध्यापकों का शिक्षण सहायक सामग्री के उपयोग के प्रति समान विचार है।

9. अधिकांश अध्यापकों का मानना है कि हिन्दी विषय में अधिगम के लिए परंपरागत विधि कि तुलना में तकनीकी से जुड़े शिक्षण सहायक सामग्री से अध्ययन कार्य करना अधिक प्रभावशाली होता है।

संदर्भ ग्रंथ

- सक्सेना.एच. के. (2011-12). भूगोल विषय के शिक्षण अधिगम सामग्री की प्रभावशीलता का अध्ययन, शोध एवं नवाचार प्रकोष्ठ प्रकाशन, राज्य शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद रायपुर, छत्तीसगढ़, पृ.सं. 84-89.
- गोयल.एस. (2018), उच्च माध्यमिक स्तर पर रसायन विज्ञान विषय में कंप्यूटर सहायक अनुदेशन व परंपरागत अनुदेशन सामग्री का सरकारी विद्यालय के विद्यार्थीयों के अधिगम स्तर व उपलब्धि पर प्रभाव का तुलनात्मक अध्ययन, सोशल रिसर्च फाउंडेशन, पेरिओडिक रिसर्च, वॉल्यूम 7.नं. 1.
- गौतम.ए.के. (2018-19), प्राथमिक शालाओं में सम्पर्क किट आधारित शिक्षण का विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि स्तर पर प्रभाव का अध्ययन : गणित विषय के सन्दर्भ में. उन्नत शिक्षा अध्ययन संस्थान, बिलासपुर, पृ.सं. 12-14.
- दिघ्रस्कर.एस. (2009-10). मल्टीमीडिया उपागम के प्रयोग का विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि एवं अभिरुचि पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन, क्रियात्मक अनुसंधान, शोध एवं नवाचार प्रभाग प्रकाशन, राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण पारिपद, रायपुर, छत्तीसगड, पृ.सं. 32.
- गौतम.ए.के. (2018-19). प्राथमिक शालाओं में सम्पर्क किट आधारित शिक्षण का विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि स्तर पर प्रभाव का अध्ययन - गणित विषय के सन्दर्भ में. उन्नत शिक्षा अध्ययन संस्थान, बिलासपुर, पृ.सं. 12-14.
- दिघ्रस्कर.एस. (2009-10). मल्टीमीडिया उपागम के प्रयोग का विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि एवं अभिरुचि पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन. क्रियात्मक अनुसंधान, शोध एवं नवाचार प्रभाग प्रकाशन, राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण पारिषद, रायपुर, छत्तीसगढ़, पृ.सं. 32.
- नवीन.डी., जोशी.के. चं. (2012, जुलाई-अक्टूबर). टीएलएम : जरूरतया विवशता. संदर्भ-इशू 82, पृ.सं. 59-73.
- पाल. जे., मिश्रा. एम. (2018), माध्यमिक स्तर पर हिंदी भाषा में संजा के ज्ञान में मल्टीमीडिया उपागम का अधिगम स्तर पर प्रभाव का अध्ययन : रिसर्च रिव्यू इंटरनेशनल जर्नल ऑफ मल्टीडिमीप्लिनरी, वॉल्यूम 3.नं. 9.
- लता, अनुजी, एस., और पी. डी.एस. (2020). माध्यमिक विद्यालय के शिक्षकों की भाषा दक्षता के विकास में स्मार्टफोन, भारतीय आधुनिक शिक्षा, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद, नयी दिल्ली, वॉल्यूम 40, नं.3, पृ.सं. 76-88.
- लिस, ए. कुक, एस., और ए.तोही. (2015) स्मार्टफोन असिस्टेड लैंग्वेज लर्निंग एंड ऑटोनोमी इंटरनेशनल जर्नल ऑफ कंप्यूटर लैंग्वेज लर्निंग एड टीचिंग- अगस्त 2015.
- वैष्णव.बी. (2018), उच्च माध्यमिक स्तर पर अर्थशास्त्र विषय में कंप्युटर सहायक अनुदेशन व परंपरागत अनुदेशन सामग्री का निजी विद्यालय के विद्यार्थियों के अधिगम स्तर व उपलब्धि पर प्रभाव का अध्ययन, सोशल रिसर्च फाउंडेशन, वॉल्यूम 3, नं, 1.

शोध छात्रा, शिक्षा विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय

असिस्टेंट प्रोफेसर, विभाग-शिक्षा विभाग
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय,
वर्धा, महाराष्ट्र, भारत

'साहित्य का मुख्य उद्देश्य विचारों के वितान तथा घटनाओं की स्मृति को सुरक्षित रखना है'

बाबू श्यामसुंदर दास

भाषा कौशलः रूपांतर प्राप्त करने की प्रभावी कुँजी

लेफ्टिनेंट मेधा तड़वी और प्रो. दीप्ति ओझा

सारांशः मनुष्य का मूल स्वभाव परिवर्तन प्रगति और जीवन में रूपांतर लाना है। रूपांतर किसी व्यक्ति की आवश्यकताओं, उद्देश्य और प्रयासों के आधार पर हो सकता है। शिक्षा में, रूपांतर तीन प्राथमिक क्षेत्रों के माध्यम से संभव है, सज्ञानात्मक, भावात्मक और मनौदैहिक। इन क्षेत्रों में विभिन्न स्तरों को प्राप्त करने के लिए भाषा सबसे प्रभावशाली उपकरण है। किसी व्यक्ति की सफलता काफी हद तक इस बात पर निर्भर करती है कि वह विभिन्न कौशलों का कितने प्रभावी ढंग से उपयोग करता है, जिसमें भाषा कौशल सबसे महत्वपूर्ण है। 21वीं सदी में मानव ने विज्ञान, प्रायोगिकी, चिकित्सा, समाज, संस्कृति, कला और साहित्य जैसे क्षेत्रों में नवाचारों को एकीकृत किया है। इन उपलब्धियों और नवाचारों को भाषा के माध्यम से निर्मित और प्रस्तुत किया जाता है। मनुष्य विचारों को श्रवण और पठन कौशल के माध्यम से प्राप्त करते हैं, और वे उन्हें कथन और लेखन कौशल के माध्यम से व्यक्त करते हैं। श्रवण, कथन, पठन और लेखन कौशल जीवन के हर पहलू में परिवर्तन लाने की शक्तिशाली कुंजी है। जीवन की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि, व्यक्तिभाषा कौशल का सही समय पर, सही तरीके से, सही जगह पर और सही व्यक्ति के साथ कितना अच्छा उपयोग करते हैं। मनुष्य समाज और संस्कृति का अभिन्न अंग हैं, और वे भाषा के माध्यम से दूसरों के साथ संवाद करके समाज में व्यव्हार करते हैं। 2020 राष्ट्रीय शिक्षा नीति भी भारतीय भाषाओं के महत्व पर ज़ोर देती है। यह व्यक्तियों को खुद को अभिव्यक्त करने, क्षमता निर्माण करने और खुद को सूचारु रूप से प्रस्तुत करने में मदद करता है। इस प्रकार, भाषा कौशल परिवर्तन लाने की प्रभावी कुंजी है।

संकेताक्षर : आषा कौशल, रूपांतर, श्रवण, कथन, पठन और लेखन का अंतर्सम्बन्ध, गतिशील भूमिका, ज्ञान प्राप्त करना, मानव जीवन

प्रस्तावना : शिक्षा मनुष्य को जीवन के प्रत्येक पहलू में सशक्त बनाती है। भाषा शिक्षा शैक्षणिक, सामाजिक, भावनात्मक और समग्र रूप से रूपांतर ला सकती है। यह व्यक्ति के विचारों, वाणी, व्यवहार और व्यक्तित्व में झलकता है। भाषा व्यक्ति के विचार, चिंतन और गुणों को प्रकट करती है। लोग अक्सर अनजाने में भाषा के उपयोग के आधार पर दूसरों का मूल्यांकन करते हैं, उन्हें अन्य चीजों के अलावा नम्र, विनम्र, आक्रमक, दार्शनिक या अच्छे इंसान के रूप में स्वाभाविक रूप से नामकरण करते हैं। इस प्रकार, शिक्षा, सामाजीकरण और व्यावसायिकता के लिए भाषा मानव जीवन का केंद्र है। यह सोचने, कल्पना करने, संचार करने, बातचीत करने, प्रतिक्रिया दर्शाने, विश्लेषण करने, व्यक्त करने और निर्माण करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। संक्षेप में कहें तो समय मानव जीवन में भाषा की गतिशील एवं प्रभावशाली भूमिका होती है।

श्रवण-कथन-पठन लेखन : भाषा कौशल का अंतर्सम्बन्ध : भाषा कौशल सभी भाषाओं का सार्वभौमिक आधार है। मनुष्य जन्म से पहले ही श्रवण के माध्यम से भाषा से जुड़ना शुरू कर देता है। बच्चे सुनकर बोलना सीखते हैं, जिससे उन्हें शब्दों का उच्चारण करने में मदद मिलती है और अंततः वे पढ़ना सीखते हैं। सुनना और पढ़ना ग्रहणशील कौशल हैं, जबकि बोलना और लिखना अभिव्यंजक कौशल हैं। ये श्रवण, कथन, पठन और लेखन कौशल संबंधित, अन्योन्याश्रित और परस्पर जुड़े हुए हैं, अक्सर एक ही सिक्के के दो पहलुओं की तरह काम करते हैं। उदाहरण के लिए, मौखिक पढ़न में बोलना शामिल है, और सुनने में किसी को एक साथ बोलना शामिल है। जब कोई व्यक्ति पढ़ता है, तो वह सुने हुए शब्द या लिखित पाठ को याद करता है और लिखते समय वह विचारों, चिंतन और बोले गए शब्दों को एकीकृत करता है। इस प्रकार, श्रवण, कचन, पठन और लेखन कौशल आपस में जुड़े हुए हैं।

मानव जीवन में श्रवण, कथन, पठन और लेखन कौशल की गतिशील भूमिका : भाषा मानव जीवन का अभिन्न अंग है। हम भाषा के प्रयोग के आधार पर किसी व्यक्ति के विभिन्न आयामों की पहचान कर सकते हैं। पांडा (2017) ने उल्लेख किया है कि, भाषा संचार में एक जटिल प्रणाली को प्राप्त करने और उपयोग करने की क्षमता है, यह विशेष रूप से ऐसा करने में मानवीय क्षमता है। रूसो जैसे विचारकों ने तर्क दिया है कि भाषा की उत्पत्ति तर्कसंगत और तार्किक विचार से हुई है। मानव भाषा में उत्पादकता, पुनरावर्तीता और विस्थापन गुण होते हैं, जो पूरी तरह से सामाजिक बातचीत और सीखने पर निर्भर होती है। इसी प्रकार, लेखक ने भाषा के उचित उपयोग के माध्यम से सामाजिक, शैक्षणिक, मनोवैज्ञानिक, दार्शनिक और व्यावसायिक विकास का अनुभव किया है। इस शोध पत्र को लिखने का उद्देश्य भाषा कौशल का उपयोग करके भाषा का उत्सव मनाना है। भाषा जीवन के हर चरण में प्रगति, उपलब्धियाँ, अच्छे रिश्ते, बेहतर सामाजिक जीवन और सार्थक जीवन के लिए सहायक होती है, जिससे व्यक्ति खुद को और दूसरों को उचित रूप से समझने में सक्षम हो जाता है। इस प्रकार, भाषा कौशल मानव जीवन के विभिन्न आयामों के साथ एक गतिशील व्यक्तित्व बनाने की शक्ति रखता है।

ज्ञान और कौशल प्राप्त करने के लिए एक उपकरण के रूप में भाषा : मनुष्य किसी भी विषय में विशिष्ट भाषा का

उपयोग करके जान या कौशल प्राप्त कर सकता है। प्रत्येक विषय की अपनी भाषा, संरचना, प्रकृति और दर्शन होता है। इसकी बेहतर समझ से व्यक्ति ज्ञान प्राप्त कर सकता है। ग्रहणशील भाषा कौशल पर अच्छी पकड़ रखने वाले लोग अपनी विचार प्रक्रियाओं को बदल कर समझ सकते हैं, कल्पना कर सकते है, विश्लेषण कर सकते हैं, संश्लेषण कर सकते है, निर्माण कर सकते है और आलोचना कर सकते हैं।

अभिव्यंजन कौशल व्यक्ति को अपने विचार चिंतन, इच्छा और महत्वाकांक्षा को व्यक्त करने का अवसर प्रदान करते हैं। पांडा (2017) ने दर्शाया है कि "रूसो जैसे विचारक के तर्क अनुसार भाषा की उत्पति तर्कसंगत और तार्किक विचार से हुई है। मानव भाषा में उत्पादकता पुनरावर्तिता और विस्थापन गुण होते हैं, जो पूरी तरह से सामाजिक बातचीत और सीखने पर निर्भर होती है। इसी प्रकार, स्वयं को अभिव्यक्त करने, समझाने और दूसरों द्वारा समझे जाने के लिए भाषा का उपयोग करना एक मानव-सहज स्वभाव है।"

भाषा कौशल क्षमता निर्माण को प्रोत्साहित करता है : एल्विन टॉफसर से अपनी पुस्तक 'द थर्ड वेव' में उल्लेख किया है, आने वाले वर्षों में, लोगों के पास बोलने पर अच्छी पकड़ हो सकती है, लेकिन लिखने में उतने कुशल न भी हो सके। लेखन के लिए विभिन्न पहलुओं या संदर्भा के साथ विषय के अनुसार रचनात्मक रूप से शब्दों को एकीकृत करने, सोचने, महसूस करने, व्यवस्थित करने, जोड़ने, संश्लेषण करने, कल्पना करने, व्याख्या करने, आलोचना करने और शब्दों का उपयोग करने की क्षमता और इसका प्रयोजन करने की क्षमता की आवश्यकता होती है। यह प्रक्रिया विशिष्ट क्षेत्र, आवश्यकता या उद्देश्य के अनुसार विचारों को उचित या वांछनीय रूप से व्यक्त करने के लिए अतिरिक्त प्रयास की मांग करती है। इस प्रकार, भाषा का उपयोग क्षमता निर्माण, विभिन्न उप-कौशलों को बढ़ाने का अवसर प्रदान करता है। अतिरिक्त प्रयास के साथ भाषा का उपयोग करने की यह उत्पादक प्रक्रिया व्यक्तियों को उत्पादक कार्य करने की क्षमता बढ़ाने के लिए प्रोत्साहित करती है।

मनोवैज्ञानिक पहलुओं पर श्रवण, कथन, पठन और लेखन कौशल का प्रभाव : भाषा सीखना और उसका प्रयोग एक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है। जिस प्रकार आकर्षण का नियम काम करता है, उसी प्रकार भाषा का प्रयोग भी हमारे विचारों और कार्यों पर प्रभाव डालता है। जब कोई व्यक्ति सुनता और पढ़ता है, तो यह उनकी विचार प्रक्रियाओं को प्रभावित कर सकता है। यह, बदले में, उनके बोलने, लिखने और अन्य कार्यों में परिलक्षित होता है। सुनने और पढ़ने के माध्यम से, मनुष्य मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं के माध्यम से विचारों को समझते हैं, जिन्हें फिर उनके कौशल और उत्पादक कार्यों के माध्यम से व्यक्त किया जाता है। सकारात्मक या नकारात्मक पुष्टि में भाषा का उपयोग मनोदशा, आत्मविश्वास, आत्मसम्मान, व्यवहार और कार्यों पर प्रभाव डालता है। यह वांछनीय बातचीत और आत्मनिरीक्षण के माध्यम से स्वयं और दूसरों के साथ संबंधों को मजबूत करने में मदद कर सकता है। यह मनुष्यों को उचित दृष्टिकोण के साथ पहुँचने योग्य बनने में मदद करता है, जिससे उनकी क्षमता, दक्षता और योग्यता मजबूत होती है। इस प्रकार, भाषा व्यक्ति के जीवन में सूक्ष्म और स्थूल स्तर पर मनोवैज्ञानिक रूप से प्रभाव डालती है। यह कार्यों को उत्साहपूर्ण रु पसे पूरा करने की प्रक्रिया को प्रतिबिंबित करता है, जिसके परिणामस्वरूप मनोवैज्ञानिक पहलुओं के साथ भाषा के वांछनीय उपयोग के माध्यम से फलदायी परिणाम प्राप्त होते हैं।

सफलता प्राप्त करने में भाषा कौशल की उत्प्रेरक भूमिका : आज के युग में कौशल, प्रतिभा और प्रदर्शन का प्रस्तुतीकरण महत्वपूर्ण है। भाषा का उचित प्रयोग और अलंकारों के साथ उसकी अभिव्यक्ति भी आवश्यक है। हालांकि, यदि यह हार्दिक या वास्तविकता पर आधारित नहीं है तो यह बहुत प्रभावी नहीं है। केवल शब्दों, विचारों और भावनाओं के सौंदर्यीकरण से अधिक महत्वपूर्ण मौलिकता के साथ रचनात्मकता है। भाषा का सही समय पर, सही तरीके से, सही परिस्थिति में और सही व्यक्ति के साथ प्रयोग करने से सफलता मिल सकती है। उद्देश्यों को प्राप्त करने और कार्यों को पूरा करने के लिए आवश्यक जान और अभिव्यंजक कौशल के माध्यम से इसका प्रतिनिधित्व महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। भाषा स्वयं और दूसरों के साथ संचार के माध्यम से नवाचार और लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए उत्प्रेरक के रूप में कार्य करती है।

आनंद के लिए भाषा : प्रसन्न रहना सफलता का उच्चतम स्तर है, इसलिए आम तौर पर हर इसान खुश रहना चाहता है। भाषा का उपयोग आनंदमय होना चाहिए, जिसका प्रभाव दैनिक जीवन, शैक्षणिक विकास, व्यावसायिक उन्नति, रिश्तों और उपलब्धियों पर प्रभाव डालता है। श्रवण, कथन, पठन और लेखन कौशल के उप-कौशल आत्म-विकास में सहायक हैं और एक फलदायी एवं सार्थक जीवन में योगदान करते हैं। भाषा कौशल क्षमताएँ जीवन के हर हिस्से में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। अक्सर वे व्यक्ति में छपि हुई प्रतिभाओं और कौशलों को उजागर कर देते हैं। साहित्य के विभिन्न रूप जैसे कहानियाँ, उपन्यास, कविताएँ और अन्य प्रकार, मानव स्वभाव को प्रभावित करते हैं, जीवन को बेहतर बनाने के लिए उनकी प्राथमिकताओं और विकल्पों का पोषण करते हैं। उदाहरण के लिए, नाटक आनंद ला सकता है, महत्वपूर्ण संदेश दे सकता है और आनंद और मनोरंजन के माध्यम से जीवन में वांछनीय परिवर्तन ला सकता है। जैसा कि कहा गया है, 'हम खुशी नहीं खरीद सकते, लेकिन हम एक किताब खरीद सकते हैं, और एक किताब खुशी ला सकती है।'

भाषाः समाज, संस्कृति और मानवता का अभिन्न अंग : भाषा समाज एवं संस्कृति का अभिन्न अंग है। प्रत्येक भाषा सांस्कृतिक मूल्यों और जीवनशैली को प्रतिबिंबित करती है। वास्तव में, भाषा समाज और संस्कृति का पोषण करती है, जैसे समाज और संस्कृति भाषाओं का पोषण करती है। भाषा का

अपना सौंदर्य और समाज में विशिष्ट स्थान होता है। नई शिक्षा नीति भारतीय भाषाओं के महत्व पर जोर देती है। उनकी मौलिकता और सुंदरता को उजागर करती है। साहित्य समाज और संस्कृति का दर्पण होने के कारण विरासत और अतुल्य पहलुओं को ऐतिहासिक रूपों में संरक्षित करता है।

निष्कर्ष : अंततः, मानव स्वभाव जीवन में परिवर्तन चाहता है। अवलोकन, अनुभव, कार्यान्वयन और शिक्षण के आधार पर, यह स्पष्ट है कि परिवर्तन के अवसर पैदा करने के लिए भाषा एक प्रभावी उपकरण है। यह परिवर्तन व्यक्ति की आवश्यकता, उद्देश्य और प्रयासों के आधार पर तीनों क्षेत्रों संज्ञानात्मक, भावनात्मक और मनोदैहिक में संभव है। भाषा कौशल मनुष्य को जीवन के हर पहलू में आगे बढ़ने और मजबूत करने का वातावरण प्रदान करता है। इस प्रकार, भाषा कौशल एक व्यक्ति की दक्षता और क्षमता को बढ़ाकर उसे समाज का सक्षम और उत्पादक सदस्य बनाता है।

संदर्भ ग्रंथः

- आर्या एस. (2008) हिन्दी शिक्षण, रजत प्रकाशन, नई दिल्ली
- कैरोल.जे.बी. (1956) भाषा विचार और वास्तविकता बेंजामिन ली के चयनित लेखन, जॉन विली एंड संस., न्यूयॉर्क
- चांद भारती (2017). पाठ्यक्रम में भाषा नीलकमल प्रकाशन प्रा. लिमिटेड, हैदराबाद
- कौर और कल्सिया (2017) पाठ्यचर्या में भाषा ए.पी.एच. प्रकाशन निगम., नई दिल्ली
- राव.पी (2016) पाठ्यक्रम दृष्टिकोण, प्रक्रियाओं और कौशल में भाषा, कनिष्क पब्लिशर्स, नई दिल्ली
- विडोसन. एच.जी. (1978), भाषा को संचार के रूप में पढ़ाना, लंदनः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस., लंदन

आसिस्टेंट प्रोफेसर,
शिक्षा केंद्र,भारतीय शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान,
गांधीनगर-382016, गुजरात
मोबाइल नंबरः 9408080350

प्रो. दीप्ति ओझा
पूर्व प्रोफेसर,शिक्षा एवं मनोविज्ञान संकाय
शिक्षा विभाग वडोदरा-390002
महाराजा सयाजीराव यूनिवर्सिटी ऑफ बरोडा
गुजरात

कवि का मन

कविता

अमर बानियाँ 'लोहोरों'

अटल होता है
चंचल होता है
कवि मन,
लेकिन निष्कपट होता है
और निबिड़ होता है
कवि मन।
विशाल होता है
सुन्दर होता है
कवि मन
और कोमल होता है
तथा निर्मल होता है
कवि मन।

वह बन्धना नहीं चाहता
किसी विज्ञापन में
पीर पराई पर
दुखी होता है, औरों की पार पर
वह रोया होता है, औरों की पीर पर
वह रोया होता है
और जगत् की रमणीयता में
वह शून्य में अथाह रम्य
एकान्त एकान्त भी मुस्कराता है
कहीं पागल-पागल की तरह होता है
कवि के भीतर का मन
निश्चय असाधारण होता है
किसी मन के भीतर का मन।

अपने प्राणों की तरह
समझता है प्राणियों को
स्वजन समझता है मानव को
साझा घर समझता है विश्व को
ऐसा ही होता है कवि का मन।

अभिलाषा जिसकी
सत्यं-शिवं-सुन्दरम्
मूल मन्त्र उसका
वसुधैव कटुम्बकम्
ठीक ऐसा ही होता रहे
नितान्त कवि का मन
नितान्त कवि का मन।

शब्दाश्रम, समदूर-पोस्ट, गान्तोक
सिक्किम-737102

लोकतंत्र के चौथे स्तम्भ का बदलता स्वरूप : समकालीन हिंदी कहानी के विशेष संदर्भ में

डॉ. अंजली जोसफ

संचार माध्यम को लोकतंत्र का चौथा स्तंभ कहा जाता है। मीडिया जो कुछ संप्रेक्षित करता है जन- मन के रुपायन में तथा संस्कृति के निर्माण में उसकी भूमिका बड़ी होती है। परन्तु आज मीडिया बाज़ार के हस्तक्षेप से परे नहीं। लाभाधिष्ठित होकर कार्य करने की प्रक्रिया मीडिया के क्षेत्र में भी आ पहुँची हैं। लाभ कमाने के उन्माद में मीडिया 'उद्योग' के रूप में परिणत हो रहा है, जिसके फलस्वरूप मीडिया अपनी छवि बदल रही है।

वर्तमान समय में मीडिया का स्वरूप बदल रहा है। जो 'मुनाफे' को अपना परम लक्ष्य बना रहा है। "पिछले दो दशक में यहाँ मीडिया का असीम विस्तार हुआ है। जिसने न्यूज मीडिया के परिदृश्य को इस तरह बदला है कि अब वह सामाजिक सरोकारों से पीछा छुड़ाते हुए पूरी तरह मुनाफा कमाने की दौड़ में शामिल है।"[1] याने मीडिया अब व्यवसाय के रूप में बदल गया है। देश, समाज, आम आदमी के प्रति उत्तरदायित्व रखने वाली संस्कृति अब मीडिया में लगभग नहीं रह गयी है।

सामाजिक आर्थिक धार्मिक क्षेत्रों में उथल-पुथल मचाने के लिए मीडिया अब मज़बूर है। धार्मिक उन्माद फैलाने, गरीबों के यथार्थ से मुँह मोडने, राजनेताओं, खिलाडियों, अभिनेताओं से संबन्धित खबरों महत्वपूर्ण बनाने का कार्य यदि मीडिया करता है तो इसके पीछे लाभ की इच्छा ही है। वैश्विक बाज़ार के फैलाव के कारण मीडिया स्वयं 'ताकत' बन रहा है।अपने कर्तव्य से परे व्यवसाय में बदलने वाले मीडिया लोगों को गुमराह करते हैं और उनकी सोच को बदल देता है। पीयूष पंत के मुताबिक, "भुमण्डलीकरण के दौर में आर्थिक उदारीकरण के चलते बाज़ारोन्मुखी विदेशी पुंजी की आवाजाही बढ़ी है उसने मीडिया जगत् को भी एक ऐसे बाज़ार में तब्दील कर दिया है जहाँ खबरों का सीधे-सीधे सौदा होने लगा है। विज्ञापन से चलकर मीडिया नेट के माध्यम से प्रायोजित खबरों से गुज़रते हुए मीडिया के व्यावसायीकरण के सफर में अब 'पेड- न्यूज़' का भस्मासुर अखबारों और खबरी चैनलों की विश्वसनीयता को लीलने में आमादा है।"[2] इसमें शक नहीं मीडिया बाज़ार की कठपुतली बनकर संस्कृति के क्षेत्र में विकृति का निर्माण कर रही है। समकालीन हिन्दी कहानियाँ इस संकट को अभिव्यक्ति देती है।

वर्तमान समय में मीडिया अपने लक्ष्य से हटकर चल रही है। आज वह सूचना देने का काम मात्र नहीं बल्कि हमारे सोच-विचार में बदलाव लाने में भी प्रयुक्त है। बाज़ार और उसके मुल्यों के तहत मीडिया नयी भुमिका अदा करती है जो काफी भयावह और आक्रामक है। वैसे भी सांप्रदायिक भावना व्यक्ति के दिमाग से जुडी है इसको फैलाने का उच्चतम मार्ग मीडिया ही है। असगर वजाहत की कहानी 'जख्म' में मीडिया और सांप्रदायिक वैमनस्य के गठबंधन का ज़िक्र हुआ है। विपणन के अनुसार खबरों को बनाते - मिटाते हैं। मीडिया में प्रसारित होनोवाली खबरों से आम जनता प्रभावित होते हैं। कहानी के मुताबिक, 'मिसाल के तौर पर इस तरह के शीर्षक थे- "मुसलमानों के खूना से होली खेली गयी या 'भारत में मुसलमान होना गुनाह है', 'क्या भारत के सभी मुसलमानों को हिन्दू बनाया जायेगा' या 'तीन हज़ार मस्जिद, मन्दिर बना ली गयी है।' उत्तेजित करनेवाले शीर्षक के नीचे खबरें लिखने का जो ढंग या वह भी बड़ा भावुक और लोगों को मरने-मारने या सिर फोड लेने पर मजबूर करनेवाला था"[3] मीडिया लोगों को गलतफहमी का शिकार बनाता है और धार्मिक वैमनस्य का बीज बोने में मदद देता है। यह मीडिया के स्वार्थी और मुनाफाखोर रवैया है। इस पंक्ति में अखिलेश की कहानी 'अंधेरा' है जिसमें मीडिया द्वारा प्रचारित सांप्रदायिक दंगों का जीवन्त चित्रण मिलता है। स्थिति जितनी भयंकर होती है उससे भी ज्यादा भयंकर बनाकर टी वी चैनलों में दिखाते हैं। कहानी में बताया है कि, "सिर पर भगवा पट्टी बाँधे और गले में भगवा दुपट्टा डाले लोग मोटर साईकिलों जीपों और ट्रकों में सवार होकर दौड़ रहे थे। उनके हाथों में तलवारों, रिवाल्वर या त्रिशूल थे। .... कैमरा यहाँ से उठकर बस्ती के अन्दरूनी रिहायशी हिस्से में पहुँचता है। कुछ स्त्रियाँ भागी थीं तो बलात्कार के बाद उनके पैर काट डाले गए थे।"[4] दरअसल आक्रामक घटनाओं को माध्यमों में बार-बार दिखाने से समाज में हिंसात्मक प्रवृत्तियों को दुबारा पैदा करने में बाध्य करता है। यह एक और सांप्रदायिक आतकंवादी शक्तियों को पनपने तथा शक्ति प्रदर्शन दिखाने का अवसर प्रदान करता है तो दुसरी ओर मीडिया की रेटिंग बढाने का कार्य भी करता है। इसके पीछे काम करनेवाला तत्व भी 'मुनाफे' की मानसिकता है। इसके अलवा मीडिया धर्म को पण्य वस्तु बनाकर उसे व्यावसायिक हित का साधन बनाता है। प्रदर्शनीयता और दिखावटीपन के जरिए धर्म महज एक उपभोग वस्तु है। ईश्वर के नाम पर चल रहे इस षड्यंत्र में मीडिया अपनी सारी सहमति दे रही है। इसके पीछे काम करनेवाला तंत्र मुनाफा ही है। राजकुमार राकेश की कहानी 'अदृश्य अवतार और भटकती आत्माएँ' इस दृष्टि से उल्लेखनीय है। कहानी

डिंगा सिंह सरीन का कार खरीदने से जुड़ी है। कहानी के आरम्भ में मीडिया के जरिए धर्म का व्यावसायिक होने का कुछ अंश मिलता है। कहानी के मुताबिक, "जब से हिन्दुओं के देवी-देवता, भगवान और कई-कई अवतार इधर टी.वी सेटों के पदों पर घर घर में आ विराजे थे, तथा अर्थविज्ञों ने नई आर्थिक नीतियों व विश्वबंधुत्व की नई अवधारणाओं का पटाक्षेप किया था, सभी से डिंगा सिंह सरीन की आस्था भी घोर अस्तित्ववादी हो चली थी।"[5] याने धर्म और धार्मिक प्रतीकों को माध्यम बनाकर मीडिया लाभ कमाती है।

मीडिया ने धार्मिक क्षेत्र में मात्र नहीं बल्कि सामाजिक संरचना में भी हस्तक्षेप किया है। सामाजिक हित जब व्यावसायिक हित का रूप धारण करता है तो समाज को विकृत करनेवाले कारकों को बढ़ावा मिलता है। मीडिया आजकल सामाजिक हित की अपेक्षा व्यावसायिक हित को ज्यादातर प्रसारित करता है। अमित कुमार सिंह के शब्दों में, "भुमण्डलीकरण के वर्तमान दौर में मीडिया मुनाफा कमाने का नवपूँजीवादी प्रतीक बन गया है। मुनाफाखोरी के घोषित अघोषित लक्ष्य को पूरा करने में मीडिया न केवल सामाजिक सरोकारों से ही विमुख हुआ है बल्कि यह मीडिया एथिक्स के परिपालन में भी गंभीर दिखाई नहीं देता है।"[6] अतः मीडिया समाज में घोर स्वार्थ, व्यक्तिवादिता, संवेदनहीनता, अर्थकेन्द्रिता बढ़ाता है जिससे सामाजिक संरचना में बाधायें उत्पन्न होने लगती हैं।

वैश्वीकरण के तहत नारी की स्थिति में आश्चर्यजनक बदलाव आए हैं। वे परंपरागत बेडियों को तोड कर आजादी के पंखों में उड़ रही है। भारतीय समाज की महिलायें अपने घर की चार दिवारी से मुक्त होकर मर्दों की दुनिया में पैर जमा रही है और सारी दुनिया पर अपने हस्ताक्षर डालने की कोशिश में है। यह बाज़ार का छद्म रूप है। ऐसी संकल्पनायें असल में गुलामी एवं शोषण की गंभीर बेडियों की शुरुआत है। मीडिया इन विचारों को पोषित करता है।बाजारीकरण के युग में स्त्री के दो रूप सामने आते है एक तो भोग्या का और दूसरा उपभोक्ता । इसकेलिए मीडिया विकृत तरीका अपनाकर स्त्री को इसमें कैद कर रखते हैं। प्रभा खेतान के अनुसार, "मीडिया ने उसके मन में बैठा दिया है कि यदि वह स्वयं को मीडिया द्वारा प्रस्तुत छवि के अनुकूल ढाल सकेगी तो वह एक सफल गृहणी और ममतामयी माँ लगेगी। उसका भी यौन जीवन आनन्द से भरपूर होगा। उसे भी कैरियर की सीढ़ियाँ उपलब्ध होंगी। यदि वह मीडिया द्वारा प्रस्तुत छवि के अनुकुल नहीं ढल पा रही, दुसरों का नज़र में वह अवांछित है।"[7] यह मीडिया द्वारा बाज़ार का कुचक्र है।

जनसंचार माध्यमों तथा प्रिंट मीडिया में होनोवाली नारी छवि कामोत्तोजक प्रतिमानों को सामने रखते है। खासकर विज्ञापनों में नारी का उपयोग देहिक धरातल पर ही किया जा रहा है जो आम जनता को मानसिक तौर पर गुलाम बना रहा है। उदय प्रकाश की कहानी 'पालगोमरा का स्कूटर में इसका नमूना देख सकते है। कहानी में गंगाराम होस्पिटल के सफाई कर्मचारी राम औतार आर्य की सत्रह साल की बेटी सुनिला के बारे में कहा है, "किसी टी. वी विज्ञापन में वह आठ फूट बाई चार साईज के विशाल ब्लेड के मॉडल पर नंगी सो गयी।"[8] इसी प्रकार बिहार की प्राईमरी स्कूल टीचर, आशा मिश्रा अपना काम छोडकर विज्ञापन में प्रस्तुत होती है "उसने किसी विज्ञापन में एक बलिष्ठ काले रंग के अरबी घोडे की खुरदरी पीठ ब्लैक हॉर्स नामक बियर की बोतल निकालकर छातियों उडेल ली थी और घोड़े की पीठ बैठी बैठी वह खुद बियर की झाग में बदल गयी थी।"[9] जिससे मीडिया के द्वारा उत्पादों की बिक्री ज़बरदस्त हो जाता है। दरअसल मीडियावाले स्त्री की लोभनीय छवि एवं देह के साथ जोडकर अपने उत्पादों को बेचता है वहाँ भी लाभ की चिन्ता सशक्त है।

इसी प्रकार सौन्दर्य प्रतियोगिताओं की वास्तविकता को चित्रित करनेवाली कहानी है पंखुरी सिंह की 'समानान्तर रेखाओं का आकर्षण'। कहानीकार दिखाना चाहती है सैन्दर्य प्रतियोगितायें असल में बाज़ार के लिए बनायी गयी एक कुटिल तंत्र है जिसमें सुन्दिरयाँ इस तंत्र को समझे बिना बाज़ार द्वारा निर्मित छद्म रूप में फँस जाती है। बाज़ार और मीडिया मिलकर फैशन शो के जरिए स्त्री देह को बिकाउ बना देता है। मुनाफा केन्द्रित इस प्रतियोगिता की असलियत के संबन्ध में कहानी में इस प्रकार बताया है कि, "हड्डियों के ऊपर लगी माँसपेशियों को बेहतर और बेहतर आकर देने के लिए, हड्डियों और माँसपेशियों के बीच के सुराखों धमनियों और शिराओं के इर्द-गिर्द जमी चर्बी की फालतु परतों को निकाल बाहर करने के लिए। प्रतियोगिता की यही शर्त थी की जो सबसे अधिक चर्बी घटा सकेगा, वह विजयी होगा, विक्टर ।"[10] उस प्रकार मीडिया स्त्री को मात्र 'दैहिक' मान्यता देकर उसे उपभोग की वस्तु बनाकर बाजार के लिए मुनाफा बढ़ाने की उपकरण बना देता है। हर विज्ञापन में स्त्री है कहने के लिए अवसर है लेकिन सूक्ष्मता से देखें तो वह वस्तु में तब्दील होती है। स्त्रियों के लिए बुद्धि नहीं सैन्दर्य ही आवश्यक है ऐसी मानसिकता प्रदान करते है । बड़ी तादाद में खुले रहे ब्युटीपार्लर और से सौन्दर्य प्रतियोग्यता में हो रही वृद्धि इसी बाज़ार का परिणाम है। शालीनता को भी विज्ञापित किया जाता है। स्वतंत्रता को भी बाजार अपने ढंग से विज्ञापित करता है जिसमें कपड़े उतारना 'बोल्डनस' की परिधि में लाया जाता है। मीडिया केवल नारी को मुनाफे की दृष्टि से देखता परखता संभालता है। इस दृष्टि से सरिता शर्मा की कहानी 'वैक्यूम'

साइबर सेक्स का परिचायक है। कहानी की नारी तलाकशुदा है। जिसका परिचय कम्प्यूटर सेलस मैनेजर से होता है। आखिर यह परिचय ऑनलाईन रोमान्स तक पहुँच जाता है। कहानी के मुताबिक, "तुम भी किसी दिन बोल्ड बनो न।"[11] यहाँ पुरुष कपडे उतारकर बोल्ड बनने को कहता है। याने कपडे उतारने का मतलब है 'बोल्ड बनना' असल में यह बोल्डनेस और स्वतंत्रता की संकल्पना एक मिथ्या है जो कि बाज़ार की देन है। इससे स्पष्ट है कि मीडिया और बाज़ार नये- नये तरीके अपनाते है जिसमें स्त्री को केवल बिकाउ और उपभोग की वस्तु के रूप में रखा गया है। लाभ भी इसमें निहित है।

उपभोग की वस्तु बनाने के साथ-साथ मीडिया उसे उपभोक्ता भी बना देता है। उसे जीवन भर उपभोग में डुबाकर सामग्रियों को गढ़ने की लालसा में धकेल देने में भी मीडिया कार्यरत है। संतोष दीक्षित की कहानी 'एक सुखी शहरी का दुःख में' इसकी झलक मिलती है। कहानी की नारी पात्र पर बाज़ार हावी है। वह बाज़ार के अनकूल अपने को बनाने के प्रयास में है। कहानी के मुतबिक, "जानते हो जी, रोटी बनानेवाली मशीन भी आ गई है बाज़ार में... हम तो सबसे पहले लेगें।"[12] याने उत्पादों की बिक्री माल नहीं उसे खरीदने के लिए भी स्त्री को ललकारती है। यहाँ उपयोग के खातिर उपभोग को बढाये जाने की साजिश चलती है। अतः बाजार युक्तमीडिया एक तरफ स्त्री को उपभोक्त में और दुसरी तरफ उपभोग की वस्तु के रूप में, दोनों ही आयामों से बाज़ार उसका शोषण करता है। जिस समाज में स्त्री का हाल बदतर है वहाँ बच्चे की स्थिति भी दयनीय रहती है। वे आजकल मीडिया में बिकते नज़र आते है । इस सिलसिले में हरनोट की कहानी 'मोबाइल' बाज़ारवादी समाज में विज्ञापन माल के रूप में परिणत बच्चे की अमानवीय कहानी है। मोबाइल कम्पनी अपने विज्ञापन के लिए बच्चे का इस्तेमाल करते हैं। बाजार अपने लाभ के खातिर बच्चों की मासूमियत को भी बिकाउ बना देता है।

बाज़ार में संवेदना और संबन्धों की कोई अहमियत नहीं है। अगर है तो लाभ कमाने के लिए मात्र। मीडिया की संवेदनहीनता को प्रस्तुत करनेवाली कहानी है नासिरा शर्मा की 'इब्ने मरियम'। यह कहानी भोपाल गैस दुर्घटना पर आधारित है। दुर्घटना का वातावरण ताहिर बटुआ को पागल बना देता है। मीडियावाले इस पागलपन को बेचकर पैसा कमाने पर तुले है। उसे जीवन्त बनाने के लिए कृत्रिम वातावरण तैयार करते हैं। जिससे ताहिर का दिमागी सन्तुलन बिगड जाता है। कहानी में बताया है कि, "उनके चेहरे पर इस वक्त कुछ ऐसा था जो अच्छे-अच्छे मजबुत दिलवालों का दिल पिघला सकता था। बेचारगी और भूख का इस सरापा तस्वीर को कैमरामैन आगे बढ़कर अपने कैमरे में कैद करने में कामयाब हो गया।"[13] इस प्रकार मीडिया टि. आर. पी रेटिंग बढ़ाने के लिए लोगों को आकर्षित करने के विकृत तरीके अपनाती है जिसमें संवेदनायें महज़ व्यवसाय है। मिथ को बनाने मिटाने में भी मीडिया अहम भुमिका निभाते हैं। संजीव की कहानी 'लिटरेचर' साहित्य द्वारा मिथ पैदा करने तथा बढ़ाने में मीडिया के योगदान पर प्रश्नचिहन है। कहानी में दवा पहले बनाने का षड्यंत्र है और रोग बाद में जिस के लिए दवा कंपनी मीडिया की सहायता लेता है। कहानी में बताया है कि, "उस दवा का रोग आपको तैयार करना है, उसके लक्षण उसके एफेक्टस। पहले आप लिटरेचर तो तैयार करो, फिर एक धाँसु सा नाम भी आप दे दोगे।"[14] लाभ की मानसिकता ही यहाँ मुख्य है। ध्यान देने की बात यह है कि एक ओर यहाँ मीडिया द्वारा बाज़ार का फैलाव होता है तो दूसरी ओर मीडिया का बाज़ारीकरण होता है।

बाज़ार की कठपुतली बनकर मीडिया पुरानी सामंती संस्कृति को पुष्ट कर रही है। इसके फलस्वरूप संपन्न वर्ग पनप रहे हैं और पिछड़े वर्ग की स्थिति हाशियेकरण को छू रही है। कभी-कभी ऐसा भी होता है की मीडिया में दलितों पर होनेवाले अत्याचारों के दृश्यों को सवर्ण मानसिकता रखनेवाला मनोरंजन की दृष्टि से देखते है। प्रमोद रंजन के मुताबिक, "मसला यहाँ दिखाने या न दिखाने का नहीं है मामला यहाँ दिखाई जानेवाली खबरों के कम्मोडिफिकेशन का है।... मतलब चैनलों में जो भी दलित आएग, अल्पसंख्यको से जुडी जो भी खबरे आएगी, वह किस रूप में आएँगी? उससे जो छवि निर्माण होगा, इमेज बिलिंडग होगी, वह किस किस्म की होगी?"[15] मीडिया की दृष्टि यहाँ साफ है, लाभ से बढकर कुछ भी इसमें नहीं है।ओमप्रकाश वाल्मीकी की कहानी 'घुसपैठिए' उच्च शिक्षा संस्था से जुडी दलित शोषण से है। साथ ही इसमें जातिगत भेदभाव से मजबूर आत्महत्या करनेवाले दलित वर्ग का चित्रण संचार माध्यम किस प्रकार करता है और उसके प्रति मीडिया का नज़रिया भी कहानी संकेत देती है। दलितों के प्रति समाज पहले से ही संवेदनहीन रहा था और इस प्रवृत्ति को बाज़ार मीडिया के ज़रिए और भी अमानवीय बना रहा है। कहानी में इसका ज़िक्र मिलता है, "अखबारों को भी रपट भेजी थी जिसमें दलित छात्रों के उत्पीड़न को मुख्य मुद्दा बनाया था। लेकिन अखबारों ने इसे रेगिंग कहकर छापा। दलित छात्रों के साथ होनेवाली ज्यादतियों का कहीं जिक्र तक नहीं था।"[16] इस प्रकार संपन्न वर्गों की खुशी तथा फायदे की मानसिकता में दलित उत्पीडन जैसे संवेदनशील मुद्दे मीडिया में उन्हें हाशियेकृत कराया जाता है।

अतः बाज़ार की कठपुतली बनकर मीडिया अपनी शैली एवं भाषा से समाज में एक बड़ी जगह 'छेक' (occupy)

कर लेता है। भारत जैसे तीसरी दुनिया के देशों की जनता जिसमें आत्मविश्वास की कमी होती है वह इसका सहज शिकार बन जाती है। राजनीतिक धार्मिक-सांस्कृतिक-सामाजिक वर्चस्व के रूप में हस्तक्षेप करके बाज़ार की स्थापना करता है। यहाँ गुलामी की मानसिकता एक भिन्न और नये रूप से कायम होने लगती है। इस प्रकार बाज़ार से होता हुआ मीडिया संस्कृति एवं जनमन में हस्तक्षेप करता है। समकालीन हिन्दी कहानी में मीडिया और बाज़ार को विभिन्न आयामों से आँकने का प्रयास किया है और साथ ही जनता को जागरूक रहने का और प्रतिरोध का आह्वान भी देती है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. भुपेन सिंह, समयांतर फरवरी 2011, पृ. 52
2. पंकज बिष्ट (सं), मीडिया, बाज़ार और लोकतंत्र, शिल्पायन, दिल्ली, 2022,पृ. 105
3. असगर वजाहत, उनका डर तथा अन्य कहानियाँ, शिल्पायन, दिल्ली, 2004, पृ. 89
4. अखिलेश, अंधेरा, राजकमल प्रकाशन ,नयी दिल्ली, 2003 , पृ.178
5. राजकुमार राकेश, साउथ ब्लॉक में गाँधी, आधार प्रकाशन, पंचकूला, 2002,पृ. 62
6. अमित कुमार सिंह, भूमण्डलीकरण और भारत : परिदृश्य और विकल्प, सामयिक प्रकाशन,नयी दिल्ली, 2009, पृ. 157
7. प्रभा खेतान, भूमंडलीकरणः ब्राड संस्कृति और राष्ट्र, सामयिक प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2010,पृ.233
8. उदय प्रकाश, पांलगोमरा का स्कुटर, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2012, पृ. 37
9. वही, पृ-38
10. पंखुरी सिंहा, किस्सा-ए-कोहनूर, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, 2008, पृ. 7
11. सरिता शर्मा, मुबारक पहला कदम, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2012, पृ. 350
12. संतोष दीक्षित, ललस, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2004, पृ. 149
13. नासिरा शर्मा, इब्ने मरियम, किताब घर, प्रकाशन, नयी दिल्ली,1994, पृ. 139- 140
14. संजीव की कथा यात्राः तीसरा पडाव, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2008, पृ.480
15. सं.अभयकुमार दुबे, हिन्दी आधुनिकता एक पुनर्विचार खण्डः1, वाणी प्रकशन, नयी दिल्ली, 2012,पृ.257
16. ओमप्रकाश वाल्मीकि, दस प्रतिनिधि कहानियाँ, किताब घर, प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2013, पृ. 81

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग,
निर्मला कॉलेज,मुवाट्टुपुषा,
एर्णाकुलम, केरल, मो-949633294

कविता

नियति

परवूर सोमनाथन

नियति तू इक देवी है।
धरती तेरा बगीचा है।
सभी मानव उसमें
नाना-वर्ण के सुमन हैं।

कितने मानव-सुमन,
नाश-नष्ट करता है तू
विकसित होने के पहले
भूतल पर उन्हें सुलाता है।

मानव-जीवन तेरा
खिलौना क्या,
कई तुझे तारीफ करता है।
कई तुझे शाप देता है।

तू देता है कभी पतन,
तू देता है कभी उन्नति,
तू देता है कभी अर्थ,
तू देता है कभी अनर्थ।

विपत्ति के आने पर,
तुझ पर सौंपता है उसे
शाँति पाते हैं मानव सब
आकुल बिना कर्म-रत होते हैं।

हिंदी प्रचारक
उदया हिन्दी कॉलेज
दक्षिण परवूर
कोल्लम।

'वही भाषा शक्ति-संपन्न और सजीव मानी जाती है, जो दूसरी भाषा के शब्दों को ग्रहण कर उन्हें अपने रंग में रंग ले।।'

- बाबू श्यामसुंदर दास

सुशीला टाकभौरे की कहानी 'सिलिया' में दलित नारी अस्मिता

अखितामोल.एम.ए

शोध सार: हमारी सामाजिक व्यवस्था में जाति, धर्म, वर्ग, वर्ण के नाम पर बहुत बड़े जनसमुदाय को तमाम सुखसुविधाओं और मानवीय अधिकारों से सदैव वंचित रखा गया है । इस जन विभाग को आम तौर पर दलित नाम से पुकारे जाते है। जो दलित पहले मूक पशु जैसे चुप थे।आज वे अपने अधिकारों के प्रति सजग हो उठे है और प्रतिरोधर्मी भी। दलितों का प्रतिरोध एक लिखित परंपरा के रूप में आज हमारे बीच मौजूद है। इस लिखित परंपरा को दलित साहित्य की कोटी में रखा जा सकता है। हिंदी साहित्य दलित जीवन को लेकर महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। दलित साहित्य दलितों की व्यथा - कथा का साहित्य है। यह शोषित सामान्य जनता का साहित्य है। इसीलिए दलित साहित्य जातिव्यवस्था को नकारता है। दलित साहित्य असल में दबे कुचले लोगों की आवाज़ व्यक्त करने का प्रयास कर रहा है। इसलिए दलित साहित्य विद्रोही एवं संघर्षरत मानव की है। श्रीमती सुशीला टाकभौरे हिन्दी दलित साहित्य का एक महत्वपूर्ण हस्तक्षेप है। अपने जीवन यथार्थ को उन्होंने अपनी रचनाओं में उकेरा है। बूढ़े, युवालोग, बच्चे आदि की समस्या को उन्होंने अपने साहित्य का विषय बनाया है।उनकी कहानी समाज में फैले दलित विरोध को रेखांकित करती है। दलित चेतना के विकास को लक्ष्य करके उन्होंने साहित्य जगत में अपनी कलम चलायी है। स्वानुभूतिओं की अभिव्यक्ति उनकी कहानियों को महत्वपूर्ण बनाया है। वे अम्बेडकर विचारधारा की सबसे बड़ी खासियत रहे हैं। दलित मुक्ति, दलित नारी मुक्ति, शिक्षा, समानता, भाईचारा, शोषण मुक्त समाज आदि मुद्दों पर उन्होंने अधिक बल दिया है।

बीज शब्द: दलित साहित्य,दलित समस्या, दलित चेतना, शिक्षा, समानता, दलित मुक्ति ।

मूल आलेख: श्रीमती सुशीला टाकभौरे की सशक्त कहानी है 'सिलिया'। एक दलित नारी के आत्मसम्मान एवं गौरव की बातों की चर्चा इस कहानी में की गई है। दलित स्त्री होने के कारण सुशीला टाकभौरे दलित नारी की सभी विषमताओं का अनुभवी है साथ ही साथ प्रतिरोधर्मी भी है। इसलिए उन्होंने इस कहानी में नारी के सशक्त रूप को दिखाया है। 'सिलिया' कहानी की नायिका सिलिया शिक्षित होने की अदम्य इच्छा रखनेवाली स्त्री है। आत्मसम्मान के साथ अपने समाज को सुधारने की चाह करनेवाली है। दलित स्त्री को आगे बढ़ाने की शक्ति, मार्गदर्शन और प्रेरणा 'सिलिया' कहानी से पाठक को मिलते हैं।

'सिलिया' कहानी की नायिका सिलिया भंगी जाति का प्रतिनिधित्व करती है। सिलिया में उच्च शिक्षा के प्रति आग्रह है। वह अपने समाज को सुधारना चाहती है। सिलिया असल में अंधकार में डूबे हुए दलित समाज के रास्ते में प्रकाश डालना चाहती है। वह मन ही मन निर्णय लेती है कि "मैं बहुत आगे तक पढ़ाई करूँगी, शिक्षा के साथ अपने व्यक्तित्व को भी बड़ा बनाउंगी। उन सभी परंपराओं के करणों का पता लगाऊँगी, जिन्होंने उन्हें अछूत बना दिया है।"[1] यहाँ परंपरा के खिलाफ आवाज़ बुलन्द करनेवाली परिवर्तन की इच्छा या आशा रखनेवाली सशक्त नारी के रूप में सिलिया का चरित्र पाठक के सामने है।

पढाई के रास्ते में सिलिया को कई प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है । फिर भी वह इस विपरीत परिस्थितियों के बीच भी मैट्रिक पास होती है। सवर्णों से सिलिया को कई प्रकार की समाजिक पीड़ाएँ सहनी करना पड़ती हैं। लेकिन सभी प्रतिकूल परिस्थितियों का सामना कर वह आगे बढ़ती है। आत्मसम्मान ने जीने की अत्यन्त चाह उसके व्यक्तित्व में है। प्रतिरोध और विद्रोह की आग उसके भीतर है। उससे सिलिया को लड़ने की शक्ति मिल जाती है। कहानी में युवा नेता सेठीजी शूद्र वर्ण की लड़की से शादी करना चाहता है। यह घोषणा करके वह अखबार में विज्ञापन देता है। सब लोग सिलिया की ओर देखते हैं। लेकिन सिलिया अपना विरोध व्यक्त करती है "हम क्या इतना लाचार है? आत्मसम्मान रहित है? हमारा अपना भी तो कुछ अंह भाव है, उन्हें हमारी ज़रूरत है, हम को उनकी ज़रूरत नहीं, हम उनके भरोसे क्यों रहेंगे।"[2] सवर्ण लोगों की दया यातना कर एक भिखारिन के रूप में जीने वह मंजूर नहीं थी। वह खुद को एक व्यक्ति मानती थी और व्यक्ति के रूप में स्वतन्त्र होकर जीना चाहती थी। अम्बेडकर विचारधारा का संदेश सिलिया के माध्यम से यहाँ व्यक्त हो गया है। वह अपने आत्मसम्मान और गौरव को सबसे महत्वपूर्ण मानती हैं। उसने पहचान लिया था कि शिक्षा के ज़रिए ही वह आत्मसम्मान के साथ जी सकती है। एक दिन सिलिया स्पोर्ट्स के कार्यक्रम के लिए शहर जाती है।तब वह अपनी सहेली हेमलता ठाकुर की बहन के ससुराल में जाती है। सिलिया से बहन की ससुराल जाति पूछ्ती है। वहाँ सिलिया का स्वागत सत्कार हुआ था। जाति नाम सुनकर उसकी सास पानी पीने की गिलास वापस लौटा लेती है। सिलिया उस वक्त बहुत प्यासी है। लेकिन वह पानी पी नहीं सकी। कारण वह अछूत है। कहानी में संकेत है "मौसी जी जानती थी कि उसे प्यास लगी है, पर जाति का नाम सुनकर पानी का गिलास लौटा ले गई।"[3] उसी वक्त सिलिया को हुए प्यास केवल पानी से मिटा नहीं जा सकता। क्योंकि वह

प्यास सिलिया के आत्मसम्मान, आत्म गौरव, आत्म रक्षा पर हुए अत्याचार का प्यास था। अस्पर्श एवं छुआछूत से अपमानित सिलिया अपने आत्मसम्मान के प्रति सजग हो उठी। इसलिए वह आगे पढ़कर समाज पर अपना आस्तित्व की स्थापना करने की कौशिश करती है और इस कार्य में सफल बन जाती है। कहानी में संकेत है "वह चिनगारी है जो मशाल बनकर अपने जाति समुदाय की प्रगति के मार्ग को प्रकाशित करेगी। वह जीवन भर कोशिश करेगी कि समाज इन बातों को समझे, उसके मर्म को जाने, सम्मान-अपमान के भेद को समझे और सही रूप से सम्मान का हकदार बने।"[4]

कहानी में हम देख सकते है कि सिलिया अंत में दलित आन्दोलन का सक्रिय कार्यकर्ता, समाजसेवी, कवयित्री साहित्य जगत के जाने माने लेखिका आदि अनेक विशेषणों का अधिकारी हो जाती हैं। एक साहित्य संस्था द्वारा आयोजित कार्यक्रम में सिलिया को मुख्य अतिथि के रूप में बुलाया जाता है। मंत्री सिलिया को शाल, सम्मान पत्र, सम्मान स्मृति चिह्न और पुष्पमाला देते हैं। सदस्यों ने सिलिया को तालियों की गड़गड़ाहट के साथ स्वागत किया। भाषण देते वक्त एक सुन्दर सवर्ण युवती ने शीतल पानी का गिलास अत्यन्त आदर के साथ सिलिया की ओर बढ़ाती है। भाषण के बीच पानी की घूंटे सिलिया क्षण भर अपनी पुरानी स्मृतियों में डूब जाती है। अत्यन्त गर्व और आत्मसम्मान के साथ सिर उठाकर सिलिया ने सामने बैठे जनसमूह के सामने अपने परिवर्तनवादी विचारों को रखा। यहाँ एक दलित नारी की अस्मिता का चित्रण सशक्त रूप से व्यक्त हो गया है। सिलिया अपनी गौरव के लिए संघर्ष करती रही। इसका परिणाम सिलिया को हमेश मिल जाती। अपने निर्णय को साकार करने में वह सफल हो गई। नारी की अस्मिता को अत्यन्त गंभीर रूप से प्रस्तुत किया गया है।

निष्कर्ष : दलित समाज आज शिक्षित हो रहा है। दलित समाज के स्त्रियों को भी सम्मान के साथ पढ़ने का मौका प्राप्त है। इसका संकेत सुशीला टाकभौरे की कहानी 'सिलिया' दिखाती है। उनकी कहानियाँ दलितों को आत्मसम्मान प्रदान करनेवाली है। जातिव्यवस्था के खिलाफ आक्रोश व्यक्त करके छुआछूत एवं अस्पृश्यता के अमानवीय बातों को उनकी कहानी पेश करती है। टाकभौरे जी की इस कहानी में प्रतिरोध की चेतना उभरकर आयी है। दलितों को अपमान एवं तिरस्कार से मुक्ति दिलाना, अन्याय के खिलाफ प्रतिरोधधर्मी बनाना, मानवाधिकार पाने के लिए संघर्षरत बनाना यही उद्देश्य कहानी में आद्यंत विद्यमान है।

शोध छात्रा
महाराजास कॉलेज, एरणाकुलम।

छठवाँ तत्व

कविता

रघुवीर शर्मा

छः तत्वों से बना है मेरा शरीर
पृथ्वी
जल
वायु
अग्नि
आकाश
और
तुम्हारे लिए मेरी भावनाएँ!

आएगा एक दिन
जब मिट्टी में
मिल जाएगा
यह शरीर
पंच तत्त्व विलीन हो जाएंगे
पंच तत्त्वों में।

सोचता हूँ मैं
क्या होगा

तुम्हारे लिए मेरी भावनाओं का?

वे कहाँ विलीन होंगी?
क्या वे कहीं विलीन भी होंगी?

संभव है
वे इस अनंत ब्रह्मांड में
चक्कर काटती रहेंगी
अनंत काल तक ।

उपनिदेशक
राजभाषा विभाग, गृहमंत्रालय
मोबाइल-9818484865
ईमेलः raghubir75@gmail.com

'हिंदी राष्ट्रीयता के मूल को सींचती है, और उसे दृढ़ करती है।'

- राजर्षि पुरुषोत्तमदास

सुमित्रानंदन पंत जी के काव्य में प्रकृति-लघु परिचय

डॉ.शालिनी सी

सुमित्रानंदन पंत का जन्म कौसानी नामक एक सुंदर प्रदेश में हुआ था। प्रकृति की गोद में पालन-पोषण हुआ था। स्वयं पंतजी कहते हैं कि 'कविता करने की प्रेरणा मुझे सबसे पहले प्रकृति निरीक्षण से मिली है। जिसका श्रेय मेरी जन्मभूमि कुमान्चल प्रदेश का है। पंतजी की कविता का मुख्य विषय भी प्रकृति का चित्रण है।

पंतजी, की प्रारंभिक कविता में एक कौतूहल का भाव झलकता है। वे कहते है कि अगर मेरी कविता समझनी है तो आप मेरे साथ हिमालय की तलेटी में चलिए, वहाँ पर अल्मोड़ा नामक एक जगह है, वहाँ से 32 मील दूर मेरी जन्मभूमि है जो प्रकृति से भरपूर है। प्रकृति निरंतर नए रूप-धारण करती है। बस उसी से मुझे प्रेरणा मिली है। मैं मातृहीन तब प्रकृति की गोद में से ही मुझे माता का प्रेम मिला। पंतजी अपनी कविता में प्रकृति के सारे अंगों पर लिखा है। जैसे फूल, पते चिड़िया, बादल, इंद्रधनुष, तारे, चाँद, नदी, झरना, उषा, संध्या, वसंत, पतझर आदि। प्रकृति के प्रति अपने मन में प्रेम हैः

'छोड़ दुमों की मृदु छाया / तोड प्रकृति से भी माया। / बाले, तेरे बाल-जाल में कैसे उलझा दूँ लोचन।

इस पंक्तियों में कवि प्रकृति सौंदर्य को ही अधिक महत्वपूर्ण मानता है। प्रकृति के मनोरम रूपों का मधुर और सरस चित्रण मिलता है। 'आँसू की बालिका और पर्वत प्रदेश में पावस 'आदि कविताओं में मास्मरिक एवं मनोहर चित्रण मिलता है। प्रभात में चिड़ियों की आवाज सुनकर वे पक्षी से पूछते हैं कि प्रभात होने की बात तुझे कैसे पता, किसने बताई, तू जो गीत गाता है, वह तुझे किसने सिखाया?

प्रथम रश्मि का आना रंगिणी,/तूने कैसे पहचाना?/कहाँ-कहाँ है बाल विहंगिनी/पाया पाया तूने यह गाना।

इस प्रकार प्रभात और पक्षी के साथ कवि अपना भाव व्यक्त करते है। एक स्थान में फूल के पास आँख निकलकर घूमनेवाले मधुकर या भ्रमर को देखकर कहते हैं कि हे भ्रमर तेरे गीत मुझे भी सिखाओ ताकि मैं भी फूलों के प्यालों से मधुपान कर सकें,

सिखा दो ना, है मधुप कुमारी/ मुझे भी अपने मीठे गान,/ कुसुम के चुने कटोरों से,/मुझे करा देना, कुछ-कुछ मधुपान।"

इस प्रकार कवि फूल और भ्रमर के बीच अपना तादाम्य प्रकट करता है। पंतजी प्रकृति प्रेमी थे। प्रकृति के सामने अन्य सब चीज़ों को कोई प्रधानता नहीं मानते। किन्तु कवि धीरे-धीरे अपने विचार में कुछ परिवर्तन लाया है और मानव को अधिक महत्वपूर्ण स्थान देता है। वे मानते है कि दुनिया का यह जीवन एक सुंदर वस्तु है और उसमें बढ़कर कोई वस्तु भी नहीं।

दूर-दूर आसमान में तारे चमकते हैं, उसे देखकर कवि को ऐसा लगता है मानो कोई उसे निमंत्रण दे रहा है। वह निमंत्रण मौन भाषा में था। "न जाने नक्षत्रों से कौन निमंत्रण देता मुझको मौन।"

कहा जाता है कि कवि पंतजी पहले प्रकृति से इतना नजदीक नहीं रहे। उसने माँ की मृत्यु के बाद ही उस दुःख को भूलने के लिए प्रकृति को अपने साथी के रूप में से लिया। पंत जी का जीवन प्रकृति की गोद में पला था।

जिसने कोमल बन सिखलयाया तुमको गाना/ मृदु गुंजन पर बतलाया मधु संचय करना/फूलों की कोमल बाँहों के आलिंगन भर/जिसमें रंगों की भावुक तूलि से तुमने/शोभा के पदताल रंगे, मनुज का मुख आँका/जिससे लेकर मधु स्पर्श शब्द रस गन्ध दृष्टि/तुमने स्वर निर्झर बरसाए सुख से मुखरित।'

प्रस्तुत पंक्तियों में कवि प्रकृति का सुंदर चित्रण करते हैं। मातृहीन होने के कारण संभवतः वह साहसी व्यक्ति नहीं थे, और लड़ना व झगड़ना उनके स्वभाव के विरुद्ध था। खेल कूद भी साथियों के साथ अच्छा नहीं लगता। प्रायः वे अकेले ही घर के निकट एकांत स्थान में बैठकर आकाश की ओर, हिमलाय पर्वत को, जंगल के फूल आदि को देखकर न जाने मन ही मन क्या अनुभव करता था जिसे तब शब्दों, भावों, विचारों में वाणी नहीं दे पाता। एकांत प्रिय पंतजी सुकुमार भावुकता के रहे थे। कवि पंत का जीवन प्रकृति की गोद में पला था। माँ की ममतामयी गोद छीन जाने के बाद प्रकृति ने उन्हें अपनी गोद में पाला था।

'जो बालसहचरी रही तुम्हारी स्वप्न प्रिया,/जो कला मुकुर बन गयी तुम्हारे हाथों में-/तुम स्वप्न धनि हो जिसके बने अमर शिल्पी।'

पंतजी प्रेम और सौंदर्य के कवि है। कवि जीवन के शुभारम्भ से ही प्रकृति की सौंदर्य पर जुड़े रहे थे। प्रकृति उसे हमेशा लुभाती रही, प्यार करने लगी। प्रकृति का यही मनोरम रूप उसके विचारों को सुंदरता प्रदान करता है। कवि जीवन का विकास प्रकृति के साथ जोड़ते हैं। वृक्षों की ऊँचाई को मनुष्य की अकाँक्षाओं से तुलना करते हुए कहते है कि -

"गिरिवर के उर से उठ-उठ कर/उच्चाकांक्षाओं से तरुवर/ है झाँक रहा नीरव नभ भर/अनिमेष अटल कुछ चिंता पर।"

पंत के विचारों को आलम्बन देने लिए प्रकृति एक साधन नहीं है। नदी, पर्वत, बादल, समुद्र, पेड़-पौधे आदि को अपनी भावना में लेकर कविता रचने लगे। कहते हैं कि कवि ने अपनी रचनाओं के सौंदर्य को बढ़ाने के लिए प्रकृति का सहारा लिया। अपने विचार को प्रभावशाली बनाने के लिए अलंकारों के माध्यम से प्रकृति के विभिन्न रूपों का वर्णन किया। पंत के लिए

प्रकृति के मनुष्य के समान है यही उसका साथी है, उसके जीवन के साथ सदा रहती है, मचलती है।

"कभी पक्षियों बच्चों से हम/सुभग सीप सा पंख पसार/ समुद्र पेअर तो रुचि ज्योत्स्ना ने/पकड़ इंद्र के कर सुकुमार।"

कवि के लिए प्रकृति ईश्वरीय सत्ता के समान है। प्रकृति सदा ईश्वर के रूप में विद्यमान है। पंतजी की भाषा शुद्ध एवं सुमधुर है। कवि ने अपने भावों का चित्रण कोमलकांत पदावली के माध्यम से किया है। कवि की भाषा इतनी जानदार है कि वह चलते हुए चित्र की तरह प्रस्तुत है।

"बासों का झुरमुट / संध्या का झुटपुट / हैं चहक रही चिडिया / टी.वी.टी दुर-दुर।

कवि को शब्दों की अंतरात्मा का ज्ञान था। यह कवि पूर्ण रूप से जानते थे। कवि ने शब्दों का प्रयोग बड़ी सतर्कता से किया है:

"अनिल-पुलकित स्वर्णजल लोभ / मधुर नूपुर, ध्वनि खग कुल रोल।"

अपनी भाषा को और भी बढ़ाने के लिए पंत जी ने अपनी रचना में कहावतों या लोकोक्तियों का प्रयोग किया है।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि कवि पंतजी भावात्मक और कलात्मक पक्षों में भी बड़े निपुण थे। यह भी नहीं रचनाओं में भाव सम्प्रेषण एवं भाषा प्रयोग के क्षेत्रों में अपनी पूरी कुशलता का परिचय दिया गया है। पंतजी के भावों को जितने सुकुमार मानते है उतने ही उनकी भाषा शैली की भी कोमलता स्वीकार की जाती है। आपकी विशेषताओं के कारण यानी सुमधुर, कोमल एवं सौंदर्ययुक्त रचनाओं के कारण उन्हें 'सुकुमार कवि' नाम से अभिहित किया गया है। पंत जी प्रकृति का सौंदर्य का वर्णन करते-करते प्रकृति में मुग्ध हो जाते हैं। इसलिए वह प्रकृति चित्रण के कवि है, उनकी सारी रचनाओं में प्रकृति की मनोरम चित्रण मिलता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(1) हिंदी के प्रतिनिधि कवि डॉ.विजय प्रकाश मिश्र

(2) आधुनिक निबंध - रामप्रसाद किचलू

(3) प्रगतिवादी कवि सुमित्रानंदन पंत के काव्य में ग्रामीण चेतना डॉ जाया पटेल

हिन्दी विभाग, सरकारी वनिता कॉलेज
तिरुवनन्तपुरम केरल - 695 014

कविता

पहनूँ क्यों पायल मैं?

मलयालम फिल्मी गीतः एन्तिनी चिलङ्ककळ् का अनुवाद)

मूल : ओ एन वी कुरुप

अनुवाद : के जनार्दनन नायर

पहनूँ क्यों पालय मैं?
पहनूँ क्यों कंकण मैं?
पास न आवे तो मेरा प्रेमी
वासंती फूलों में जब बेसुध होते भँवर
तो दिवा-सपनों में डूब गयी मैं
बासित तेल लगाकर, बालसंवार के
काजल लगाना भी भूल गयी मैं
आहा, भूल गयी मैं
पहनूँ क्यों पायल मैं?
पहनूँ क्यों कंकण मैं
पास न आवे तो मेरा प्रेमी।
कोटि उषाएँ एक साथ उदित
जैसा वह तेजस्वी मुख मैं कब देखूँ
नीचे नमन कर खड़ा नलिन हूँ मैं
नाथ गले लगा के सहलाये न?
नाथ सहलाये न?
पहनूँ क्यों पायल मैं?
पहनूँ क्यों कंकण मैं?
पास न आवे तो मेरा प्रेमी
पहनूँ क्यों पायल मैं.....

पूर्व हिंदी प्रचारक
केरल हिंदी प्रचार सभा

'देवनागरी लिपि की वैज्ञानिकता स्वयंसिद्ध है'

-आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी

कृषक जीवन की कालातीत समस्याएँः विवेकी राय की कहानियों में

डॉ जूलिया इमैनुएल

आधुनिक हिंदी साहित्य के इतिहास पर दृष्टि डालने पर प्रतीत होता है कि प्रेमचंद और उनके समकालीन लेखकों ने जो ग्राम्य जीवन और कृषक संस्कृति की करुणा, श्रम और सौंदर्य से परिपूर्ण विराट गाथा रची थी, वह मधुर सरिता सी प्रवाहित होते हुए भी कालांतर में कहीं उसका निर्मल सरगम विलुप्त सा हो गया। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद, भारतीय नेतृवर्ग की तरह, साहित्यकारों का ध्यान भी एक बार फिर भारतीय संस्कृति के मूल क्षेत्र ग्राम-जीवन की ओर आकृष्ट हुआ। नई कहानी की शुरुआत ग्राम-जीवन से ही होती है। जमींदारी की समाप्ति, सामुदायिक विकास योजनाओं के आरंभ, पंचायत, सहकारिता के सपनों तथा धरती से जुड़ी नेहरू-युग की आशावादिता ने कथाकारों तथा पाठकों को एक साथ आकर्षित किया। लेकिन 'नई कहानी' की यह शुरूआती चेतना आगे चलकर 1960 के पश्चात् नेहरू-युग के अंत तक आते ग्राम एवं किसान जीवन से सर्वथा अलग एक मोड़ लेने लगी। तब से कहानियों की मुख्य संवेदना नगर और महानगर केंद्रित हो गई, और जो कुछ कहानियाँ आंचलिक परिदृश्य में लिखी गईं, उन्हें प्रेमचंद की कहानियों जैसी सार्वभौम लोकप्रियता और चित्रण की प्रामाणिकता प्राप्त नहीं हुई। इस संदर्भ में, समस्त अभावों के बावजूद, ग्रामीण कथा लेखन में अपनी विशेष पहचान कायम करने वाले कथाकार हैं विवेकी राय।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद गाँव के जीवन और ग्रामीणों की मानसिकता में आए बदलाव का यथार्थपरक चित्रण विवेकी राय की कहानियों में उभरकर सामने आया है। 'नई कोयल', 'गूँगा जहाज़', 'बेटे की बिकी', 'कालातीत', 'चित्रकूट के घाट पर' आदि उनके प्रसिद्ध कहानी संग्रह हैं। विवेकी राय की प्रतिबद्धता किसी विचारधारा के प्रति नहीं, बल्कि ग्रामीण जनता के प्रति है। उन्होंने गाँव एवं किसानों की आत्मा का साक्षात्कार किया है और किसान जीवन के प्रति आधुनिक कथाकारों की उपेक्षा-वृत्ति का भी उन्होंने डटकर विरोध किया।

स्व. लालबहादुर शास्त्री के 'जय जवान जय किसान' नारे पर उन्होंने लिखाः

'जवान और किसान दो नहीं हैं। सीवान में जो किसान है, सीमा पर वही जवान है। गाढ़े वक्त पर राष्ट्र किसान से एक ओर उसका पसीना माँगता है तो दूसरी ओर उसका खून भी माँगता है। किसान ने खुशी-खुशी खून-पसीना दिया, किंतु सरकार ने यदि किसान की उपेक्षा की तो साहित्य ने एकदम अपने क्षेत्र से उसे, उसकी सुख-दुःख की अनुभूतियों और संवेदनाओं को उड़ा ही दिया।' जिस प्रकार राजनीति और अर्थव्यवस्था के क्षेत्र में ग्राम-जीवन की उपेक्षा कर हमने अपने ही देश में अन्न की भिक्षा माँगने की स्थिति उत्पन्न की, उसी प्रकार नई कहानी, जो ग्राम-जीवन की नई संभावनाओं की संदेशवाहक बनकर आई थी, उसे दबा दिया गया और उसके स्थान पर नगर-बोध से ग्रस्त भिक्षाजीवी कहानियाँ प्रतिष्ठित होने लगीं। आधुनिकता की माँग इस हद तक प्रतिफलित हुई कि कथा-साहित्य ग्राम-जीवन, कृषक जीवन आदि से अछूता रहा और लोककथाएँ नई कहानियों से बिल्कुल अप्रत्यक्ष हो गईं।

कथा-साहित्य की इस विध्वंसित अवस्था पर विवेकी जी काफी चिंतित हैं, जहाँ ग्रामीण जीवन और लोककथाएँ पृष्ठभूमि में चली गई हैं। उनकी कहानी 'तिला - मूँगा' आधुनिक सभ्यता के हृदयहीन यांत्रिकरण और ग्रामीण सहृदयता के लोप को अत्यंत मार्मिक ढंग से चित्रित करती है। लेखक आधुनिक ज़िंदगी की यंत्रवत स्थिति और सहृदयता भरी कहानियों के अकाल को यूँ उकेरते हैंः 'आदमी पूरा मशीन, एकदम काम-काजी हो गया है। क्षण-भर विराम नहीं, हृदय को ठहरने-भर कहीं कोमल भूमि नहीं। कागज़ की नाव, लोहे की जीभ, और स्वार्थ का पहाड़। नयी पीढ़ी के पास कॉलेज और विश्वविद्यालयों की सनदें हैं, समाचार पत्र हैं, सिनेमा के गीत हैं और एकदम गतिशील साहित्य है, परंतु ये कहानियाँ कहाँ हैं?... नया आदमी रोशनी के सामने बैठकर आधी आधी रात तक पढ़ता है, मोटी-मोटी पुस्तकों में डूबता-फिरता है, एकदम गुमसुम, चुपचाप। क्या दूसरों से, अपने छोटों से, उन पोथियों की खान से निकालकर कुछ लेन-देन करता है? क्या कुछ कहता-सुनता है? कितने कथा-सम्राटों की आधुनिक कथाएँ लोग कहते-सुनते हैं? ओफ़! जब पुरानी पीढ़ी एकदम ख़त्म हो गई तो यह 'लोककथा' की सरसता एकदम अजायबघर की चीज़ हो जायगी।'

विवेकी राय आधुनिक शिक्षा और शहरी जीवन पर तीखा कटाक्ष करते हैं। ज्ञान अब सिर्फ कागज़ की नाव है। 'हृदय को ठहरने-भर कहीं कोमल भूमि नहीं' – यह पंक्ति आधुनिक जीवन की सबसे बड़ी त्रासदी है, जहाँ भौतिक गतिशीलता तो है, लेकिन मानवीय भावनाओं के लिए कोई ठहराव नहीं है। यह सच ही है कि आज कुल साहित्य-भूमि कॉफी हाउस, रेस्त्रां, पार्क, सड़क, सिनेमा, फ्लैट्स, लड़कियों और ऑफिसों आदि में सिमट गया है, और नए साहित्यकार अपने देश के सबसे विशाल वर्ग के प्रति उपेक्षावान होते जा रहे हैं। दुख की बात है कि किसान के जीवन के प्रति आधुनिक भावबोध के क्षेत्र में कोई आकर्षण नहीं रहा है। भारत देश को ग्रामों का देश कहा जाता है, क्योंकि भारत के 70 प्रतिशत लोग ग्रामों में रहते हैं। जब स्वराज्य आया तो उसका राजरथ भारत के दो-तिहाई से ज्यादा लोग बसे इन गाँवों की ओर न जाकर नगरों की ओर बढ़ गया।

विडंबना की बात यह है कि सारा विकास गाँव के नाम पर ही आया, परन्तु वह नगरों में सिमट गया। चुनाव के दौरान अपने निर्वाचन क्षेत्र में वोट माँगने आने वाले राजनीतिज्ञ भी विजयी होने पर नगर में बसना पसंद करते हैं, और उनका दर्शन गाँव वालों को पाँच साल में सिर्फ एक बार मिल पाता है।

स्वतंत्रता ने गाँव में केवल आर्थिक नहीं, बल्कि गहरे सामाजिक और जातिगत परिवर्तन भी लाए। विवेकी राय की कहानियाँ गाँव के इस बदल चुके सामाजिक ताने-बाने को प्रामाणिकता से प्रस्तुत करती हैं, जहाँ सदियों पुरानी सामंती व्यवस्था ढह रही है और नई सामाजिक चेतना उभर रही है। 'चुनाव चक्र' कहानी केवल राजनीतिक छल का ही नहीं, बल्कि गाँव के भीतर दलितों में आए आत्म-सम्मान और अधिकारों की माँग की चेतना को भी दर्शाती है। आजादी ने छोटे जात वालों और बनिहारों को वोट की शक्तिदी, जिससे पुरानी सत्तावादी जातियाँ उनसे वोट माँगने के लिए उनके द्वार तक आने को मजबूर हुईं। विवेकी राय की 'चुनाव चक्र' नामक कहानी में स्वतंत्रता प्राप्ति के बीस साल बाद हो रहे चुनाव की चहल-पहल का चित्रण हमारे सामने प्रस्तुत होता है। स्वराज्य आने पर छोटे जातवालों और बनिहारों की ज़िंदगी में आए मात्र फर्क यही था कि बड़े-बड़े आदमी चुनाव के दौरान इन सर्वहारा वर्ग के द्वारा पवित्र करने आने लगे। कहानी में अवसरवादी नए युग के नेताओं का दावा है तुम्हें चमार से हरिजन बना दिया, अब तुम्हें खुशहाल बनाने जा रहे हैं। गरीबी मिटाने के लिए, देश को सुखी बनाने के लिए हमें वोट दीजिए। लेकिन बीस साल बाद भी न आए इस 'आनेवाले' स्वर्ग पर इन चमार लोगों का विश्वास खत्म हो चुका था। उम्मीदवार श्रीनाथ पाण्डेय उसे विश्वास दिलाना चाहता है कि अभी तो सुख का बीज बोया गया है, अब वह धीरे-धीरे होगा। भूमिहीन और सर्वहारा वर्ग के प्रतिनिधि वह घुरहु चमार भी अब दूध का दूध और पानी का पानी करना सीख गया है और वह इसका उत्तर देता है – "मालिक, अधिक दिन बीत जाने पर बीज नहीं जमता है तो समझा जाता है कि सड़ गया अथवा जमते ही मुरझा जाता है तो शंका होती है। बीस वर्ष हो गया न?" आनेवाले 'अच्छे दिन' की प्रतीक्षा में कई साल बीत चुके हैं। अब भी इस न आनेवाले 'सुनहरे भविष्य' का इंतजार करनेवालों की आँखों पर पड़े परदे काश उठ जाएँ तो इस विकराल सत्य का असली रूप नज़र आएगा। घुरहु चमार अब केवल गरीबी का शिकार नहीं है; वह सत्ता के वादों की विफलता को तर्कसंगत ढंग से चुनौती देने वाला एक चेतन नागरिक है। वह जानता है कि राजनीतिक बराबरी (वोट की बराबरी) आर्थिक और सामाजिक बराबरी सुनिश्चित नहीं करती, जैसा कि उसका यह कथन स्पष्ट करता है: 'बोट की बराबरी कानी कौड़ी का काम नहीं करेगी। 'यह दिखाता है कि स्वतंत्रता के बाद भी, ग्राम्य समाज में जातिगत तनाव और आर्थिक असमानता बनी हुई है, भले ही राजनीतिक समीकरण बदल गए हों। विवेकी राय इस सूक्ष्म परिवर्तन को रेखांकित करते हैं कि जहाँ ज़मींदारी समाप्त हुई, वहाँ सत्ता का नया केंद्र उभर आया, जिसमें गरीबों और दलितों की भागीदारी केवल एक चुनावी उपकरण मात्र रह गई।

स्वराज्य मिलने पर किसानों ने भी अपने खेतों में नए सपनों को खिलते देखा था। लेकिन वह आशावाद बहुत जल्द ही टूट गया और उन्होंने बहुत जल्द ही उस कटु सच्चाई को पहचान लिया कि उनकी स्थिति जैसे अंग्रेज़ के राज में रही, वैसे ही आज़ादी मिलने पर भी है। स्वतंत्रता प्राप्ति की 78 वीं वर्षगाँठ मनाने वाले इस साल भी स्थिति कुछ बदली नहीं है। विकिपीडिया में 'भारत में किसान आत्महत्या' पर एक पेज भी है, जिसके अनुसार प्रतिवर्ष दस हज़ार से अधिक किसान आत्महत्या की रिपोर्ट दर्ज की जा रही है। विकिपीडिया कहता है – "1970 के दशक से भारत में किसानों द्वारा आत्महत्या करने की घटना को संदर्भित करती हैं , जो कि ज्यादातर निजी जमींदारों और बैंकों से लिए गए ऋण को चुकाने में असमर्थता के कारण होती हैं। .....कार्यकर्ताओं और विद्वानों ने किसान आत्महत्याओं के लिए कई परस्पर विरोधी कारण पेश किए हैं, जैसे कि किसान विरोधी कानून, उच्च ऋण बोझ, खराब सरकारी नीतियाँ, सब्सिडी में भ्रष्टाचार, फसल की विफलता, मानसिक स्वास्थ्य, व्यक्तिगत मुद्दे और पारिवारिक समस्याएँ।

राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो के आंकड़ों से पता चलता है कि 1995 से 2014 के बीच 296,438 किसानों ने आत्महत्या की थी, 2014 से 2022 के बीच नौ वर्षों में यह संख्या 100,474 थी। 2022 में, भारत में कृषि क्षेत्र से जुड़े कुल 11,290 व्यक्तियों (5,207 किसान और 6,083 कृषि मजदूर) ने आत्महत्या कर ली है, जो देश में कुल आत्महत्या पीड़ितों का 6.6% है। 2015 में जब 12602 किसानों ने आत्महत्या कर ली, और संसद में इस पर उठे प्रश्न के तत्कालीन केंद्र कृषि मंत्री राधा मोहन सिंह के उत्तर के अनुसार, ये आत्महत्याएँ कर्ज का बोझ बढ़ने से उसे वापस नहीं कर सकने पर नहीं, बल्कि प्रेम विफलता, लैंगिक शक्तिहीनता, पारिवारिक संघर्ष, नशीली दवाओं का व्यसन आदि के कारण थीं।

सरकार की तमाम कोशिशों और सच्चाई पर पर्दा डालने वाली इन दावों के बावजूद भी कर्ज के बोझ तले दबे किसानों की आत्महत्या का सिलसिला नहीं थम रहा। विपक्ष के नेता इन समस्याओं को सरकार के खिलाफ प्रयोग करने योग्य हथियार मानते हैं। एक ओर गरीबी, अज्ञान, अंधविश्वास आदि के कारण परंपरागत ढंग से खेती करने से अच्छी उपज नहीं मिलती, और दूसरी ओर भ्रष्टाचारी राजनीति, नेताओं का स्वार्थ, सरकारी अधिकारियों की निष्क्रियता आदि मिलकर आज किसानों की रीढ़ तोड़ रहे हैं। इसी संदर्भ में 'चुनाव चक्र' के घुरहु चमार का कथन बहुत समीचीन प्रतीत होता है– '.... जो पद पर जाकर बैठेगा, वह अपना पेट भरेगा.... जनता केवल साँचा है। छत तैयार होने पर ढहा दी जाती है। 'स्वराज्य मिलने पर 'हमारा तुम्हारा दर्जा बराबर होना, चमार और महाराज साहब का वोट समान होना' जैसी नेता की मनमोहक बातों को घुरहु मुंहतोड़

जवाब देता है– 'वोट की बराबरी कानी कौड़ी का काम नहीं करेगी।'

ग्रामों में विपत्तियों की कोई सीमा भी नहीं है। बाढ़ और अकाल जैसी प्राकृतिक दुर्घटनाओं के साथ-साथ बेचारे किसानों को अपने बचा-खुचा अनाज और माल चुरानेवालों का भी सामना करना पड़ता है। 'बाढ़ की यमदाढ़ में' नामक कहानी में तूफानी प्रलय के विकराल घेरे के बीच चोरों की डकैती को भी न्यायोचित मानकर बूढ़े बाबा कहते हैं –"घर में पूँजी भाग नहीं। बाहर कोई काम नहीं। कहीं से ऋण या उधार भी नहीं मिल रहा है। बनिहारी भी ऐसे में कौन कराए। मुट्ठी भर दाने तक को मोहताज ये परम बेकार, अनपढ़, गंवार जवानी की जलती बेला में चुप बैठकर क्या करें?' सभ्य समाज के सारे नियमों को अप्रासंगिक बना देने वाली ऐसी गरीबी में भूख के आगे सभी कानून असंगत प्रतीत होते हैं।

किसानों के दुःख भरे जीवन को 'आकाश वृत्ति' नामक कहानी में उकेरा गया है। किसान सालों के कर्ज चुकाकर खेत छुड़ाने का सपना देखने लगता है, तभी एक दिन घंटे भर ओले पड़ते हैं और पलक झपकते ही खेत और सपने दोनों नष्ट हो जाते हैं। 'सर्वनाश का यह नगाड़ा तो हम किसानों के सिर पर जीवन भर बजता है। विपत्ति है धैर्य रखो। कट जाएगी।'कहानी में कुमार बाबा का कथन है– 'खेती जैसा कच्चा सौदा कुछ नहीं... सब बड़े की बात है।' पाई-पाई जोड़कर अपने सपनों के साकार होने वाला दिन का इंतजार किए सीतन्न नामक किसान अपने वर्षों की साध क्षण भर में बरबाद होते देखकर पागल हो जाता है। लेखक सोचता है कि पत्थर में दबकर निष्पन बनने वाला वर्तमान नहीं, किसानों का भविष्य ही है। 'अभी बाढ़ का घाव भरा नहीं था, अभी पिछले वर्ष के प्राकृतिक कोप से टूटी कमर सीधी भी नहीं हो पाई थी कि यह नई चोट आकर बहुत बेमौके भरपूर बैठ गई। बैठ गया सारा उल्लास, सारी उमंग और जीवन की आशा।' सबकुछ नष्ट हो जाने पर आत्महत्या करने को सोच रहे महेश को यह कहकर धीरज बंधाने की कोशिश करता है कि मन छोटा करने की कोई जरूरत ही नहीं है, इसलिए कि यह एक साल की बात नहीं है। 'सर्वनाश का यह नगाड़ा तो हम किसानों के सिर पर जीवन भर बजता है। विपत्ति है, धैर्य रखो। कट जाएगी।'

हम जानते हैं कि सिगरेट और दारू सेहत के लिए हानिकारक हैं। फिर भी इनके व्यापारी लाखों-करोड़ों कमाते हैं। विडंबना की बात यह है कि ज़िंदगी की मूलभूत ज़रूरत की चीज़ अन्न उत्पन्न करनेवाला किसान अपनी पूरी ज़िन्दगी गरीबी में गुज़ारता है। विवेकी राय की 'हाय रे परान' कहानी में हलवाहा कहता है कि खेती और अमीरी में कोई मेल नहीं है। पैसा बचाकर जूता खरीदने का सुझाव सुनकर शिवधारी बाबा कहता है– 'खेती में पैसा कहाँ बचता है बच्चा? पैसा बचानेवाले और रास्ते हैं। यह सस्ता पेशा है। सब काम सस्ते में होता है। सस्ते ढंग से रहा भी जाता है। इसी में आराम है... हम लोग बादशाह हैं। जैसे चाहें रह सकते हैं। किसी के गुलाम थोड़े हैं। इसलिए तो यह जीवन हमको बहुत पसंद है और अगर कोई ले चलकर दिल्ली की गद्दी पर बैठाए तो भी इतना आराम नहीं मिलेगा। 'तमाम चोर-चपाटी, पत्थर-पानी, हवा, बाढ़-वर्षा, अकाल और बढ़ने वाले बाज़ार भाव के बीच भी किसानी जीवन पर गर्व महसूस करने वाले इन अभागे किसान कल के सुख की इंतजार में हैं। 'वह लगता है कि अब आया, अब आया, पर कभी नहीं आता। जोत-बोकर फसल खड़ी की और आसमान ने सत्यानाश कर दिया।'

विवेकी राय की कहानियाँ केवल बूढ़े किसानों या मजदूरों तक ही सीमित नहीं हैं, बल्कि वे नई पीढ़ी की आकांक्षाओं और उनकी निराशा को भी व्यक्त करती हैं। गाँव के युवा अब केवल खेती तक सीमित नहीं रहना चाहते; उन्होंने शिक्षा प्राप्त की है और बेहतर जीवन की ओर देखते हैं, लेकिन ग्रामीण परिवेश उन्हें यह अवसर नहीं देता। शिक्षा का प्रसार गाँव तक पहुँचा है, लेकिन रोजगार के अवसर नहीं। गाँव के स्कूलों और कॉलेजों से सनदें लेकर निकले युवा जब खेती में लाभ नहीं देखते, तो उनका एकमात्र विकल्प पलायन बचता है। वे शहर या महानगरों की ओर जाते हैं, जहाँ वे अक्सर अकुशल या अर्ध-कुशल मजदूर बनकर रह जाते हैं। यह पलायन गाँव में श्रम और पूंजी दोनों का अभाव पैदा करता है, जिससे कृषि और भी अधिक अलाभकारी हो जाती है।

खेती से लाभ उठानेवाले बिचौलिये और व्यापारी हैं। अन्न को बनानेवाले किसान की नियति में गरीबी ही लिखा है। इसलिए ही 'घाट घाट का पानी' कहानी का पात्र महेन्द्र इस सच्चाई को समझकर अपने खेत में उपज अन्न का व्यापार खुद ही करना चाहता है– 'लक्ष्मी व्यापार में रहती है... हमारे यहाँ लोग गरीब क्यों हैं? वे उद्यम-व्यवसाय नहीं करते हैं। हम लोग खेती करते हैं मगर उसका सारा रस तो ये व्यापारी उड़ा देते हैं!' कृषि से मोहभंग और शहरी उद्यम की ओर आकर्षण को दर्शाता है। यह दिखाता है कि शिक्षित युवा वर्ग पारंपरिक कृषि को 'सस्ता पेशा' (जैसा कि 'हाय रे परान' में शिवधारी बाबा कहते हैं) मानकर छोड़ रहा है। विवेकी राय इस पीढ़ीगत संघर्ष को दिखाते हैं: एक ओर वह पुरानी पीढ़ी है जो किसानी जीवन पर गर्व करती है ('हम लोग बादशाह हैं... किसी के गुलाम थोड़े हैं'), और दूसरी ओर नई पीढ़ी है जो खेती को छोड़कर शहर की मशीनरी में एक छोटा-सा पुर्जा बनने को मजबूर है।

बदलते युग की जरूरतों और समाज और समय के परिवर्तनों के साथ खुद को नए साँचे में ढालने में सफल हुए कई ऐसे किसान भी थे जिनके लिए कृषि एक अतिरिक्त धंधा के अलावा कुछ नहीं रहा। गाँवों के परिवर्तित परिवेश और नए युग के ऐसे किसानों का परिचय विवेकी जी अपनी कहानी 'पदयात्रा' में देते हैं। उस किसान महाशय के महल जैसे घर में पहले नौकर से मिलना पड़ता है। फिर नौकर के बुलाने पर एक घंटे तक इंतजार करने के बाद ही वह किसान मालिक से मुलाकात होती

कविता

काली आपने ही बनाए है हमें

दिव्या राणी के एस

कहती है नारी शक्ति है
सहन क्षमता की मूर्ति है
भूमि से बढ़कर रखती है
सहनता अपने अंदर समाती है
लेकिन अक्सर वह छेडी जाती है
लडती है झूंझती है संसार से
कहती है शांति स्वरूप है
उसी का बंवाल उठता है
सब दायरा वह जब तोड़ती है
हदें पार करती है क्षमा की
ग़लती क्या है उसकी
अपना मत जब रखती है
विरोध जब दृढ़ स्वर में
प्रकट करती है आंसू के रण में
अपना अस्तित्व झलकती है
आत्म गर्व की है खींचती लकीरें
प्यास काटने के बीच काटती
अपने सपनों के पंख फिर भी
दोषी ठहराई जाती है
कैसी माँ हो कैसी बीवी हो
सुनकर आँखें बंद करती है
आँसू बहाती फिरती तो
नारी वह कितनी प्यारी है
गौरी समान न्यारी है
अपने दायरे में प्रतिष्ठित हैं
नारी वह माँ अंबा है
पर दूसरों को जब दायरा के नाप सिखाती है
लांघती है जब क्षमा की लक्ष्मण रेखाएँ
आवाज़ ज़रा ऊँची करती है
अपने शब्दों को दर्ज करती है
अक्सर शुरू दुनिया ही करती है
लेकिन कोसा उसी को जाती है
छोरी इतना क्यूं अखडती है
गौरी जब काली बन जाती है
पचती नहीं है संसार को
काली जब भू पर उतरती है
भक्त नाराज़ हैं खून भरी जीभ से
काली हमें निज जीवन में
बख्शती नहीं है संसार को
हम गौरी बनने आए हैं
सज-धज कर ही दुनिया बसाने आई है
केवल आनंद शांति से है
खून की बूंदें संसार ही पिलाती है
शौक नहीं है काटने की
महिषासुर का गला आक्रोश से
कटवाने की ललकार तुम्हीं को रहती है
तब हाहाकार करते फिरते हो
एक हाथ दूर तो रहा करो
हम से पंगा मत लिया करो
काली को काया में श्रम से छुपाकर रखा है
नोचकर बाहर तुम ही लाते हो
खून तो तुम्हारे दिमाग में दौड़ता है
इसलिए हमें खून के प्यासी मत कहो
हम गौरी बनने ही जन्मे हैं
काली आपने ही बनाए हैं हमें।

ताप़विलाकत्तु वीडु
कुरियात्ति, मनक्काड, तिरुवनंतपुरम।

है। फिर घंटों तक उसने दुनिया के सभी विषयों जैसे भ्रष्टाचार, महँगाई और बेकारी जैसे विषयों पर भाषण भी देता है। वह गाँव का ग्राम प्रधान है और साथ में वकालत भी करता है। कहानी का यह पात्र इस सच्चाई को साबित करता है कि अगर कोई किसान धनी होता है तो खेती उसके लिए आमदनी का अतिरिक्त स्रोत मात्र होता है।

किसान जीवन की इन सारी खामियों के बीच भी हम अखबार में ऐसी खबर भी पढ़ते हैं कि विदेशों में लाखों रुपये वेतन मिलने वाला काम छोड़कर भी कई नौजवान खेती कर रहे हैं। यह बात इस सच्चाई की गवाही देती है कि दुनिया के सभी काम-धंधों में सबसे महत्वपूर्ण पेशा है खेती-बारी और इसे माननेवाले भी अनेक हैं। इसलिए ही 'घाट घाट का पानी' कहानी का महेन्द्र कहता है कि धरती ही स्थायी धन है। यह जिसके पास है, वही असली राजा है। 'यदि मालिक भुजा-पौरुष दे तो आदमी किसानी करे। दो बैल भी हों, थोड़ा खेत भी हो, न उधो का लेना, और न माधो का देना हो तो क्या आनंद की बात है! चतुर हलवाहा हो, मुस्तैद किसान हो तो खेत से सोना बरस सकता है। खूब जोतें खेतों को और खूब हरा-हरा चारा दें। क्या मास्टरी में रखा है? तुम भी खेती करो।'

विवेकी राय की कहानियाँ केवल ग्रामीण विपदाओं का चित्रण नहीं हैं, बल्कि यह उस अटूट धैर्य और गौरव का भी दस्तावेज़ हैं जो भारतीय कृषक जीवन का मूल स्वभाव है। यह बिल्कुल सच है कि जब बीसवीं शती के अंतिम चरण के भारतीय कृषक जीवन का इतिहास लिखा जाएगा, तो विवेकी राय की कहानियाँ दस्तावेज़ का काम करेंगी।

विभाग अध्यक्षा एवं सहायक आचार्या
हिन्दी स्नातकोत्तर एवं अनुसंधान विभाग
निर्मला कॉलेज(स्वायत्त), मूवाट्टुपुष़ा

युद्ध उन्माद की ग्लोबल चुनौतियों का दस्तावेज़ : डॉ. अजय शर्मा कृत 'खारकीव के खंडहर'

पूजा देवी / डॉ सपना शर्मा

डा.अजय शर्मा पंजाब प्रांत के हिंदी साहित्यकारों में एक प्रतिष्ठित साहित्यकार हैं । यह अपने प्रतिभाशाली व्यक्तित्त्व के कारण हिंदी साहित्य में उज्ज्वल नक्षत्र के समान देदीप्यमान हैं। यह एक ऐसे सक्रिय लेखक हैं जो वर्तमान में राष्ट्रीय तथा अंतरराष्ट्रीय स्तर के मुद्दों को आधार बना कर लेखनी चलाते हैं तथा साकार दृश्य उपस्थित करते हैं। डा. पान सिंह के अनुसार "इनका कोई भी उपन्यास काल्पनिक नहीं, बल्कि यथार्थ जीवन पर आधारित है। अजय शर्मा एक अद्भुत रचनाकार हैं जो अपने आसपास के परिवेश, समाज से अपनी कथाएँ उठाते हैं जो लगभग उनका अपना ही भोगा हुआ यथार्थ है।अपना ही देखा हुआ समाज है।"[1]

'खारकीव के खंडहर' डॉ. अजय शर्मा का सोहलवाँ उपन्यास है। इसका प्रकाशन 'साहित्य सिलसिला पब्लिकेशन' से सन् 2024 को हुआ है।इस उपन्यास में बड़े विस्तृत रूप में बताया गया है कि यूक्रेन तथा रूस के बीच हुए युद्ध के दौरान आम जानता को किस प्रकार इस भयंकर त्रासदी का सामना करना पड़ा। यह एक सर्वविदित तथ्य है कि जब भी किन्हीं दो देशों के बीच युद्ध होता है तो सब से ज़्यादा दुष्प्रभाव आम नागरिकों को ही भुगतना पड़ता है।

प्रस्तुत उपन्यास का नायक वासुदेव डाक्टरी की पढ़ाई के लिए यूक्रेन गया हुआ है । यूक्रेन की रहने वाली दीमा उपन्यास की नायिका है। जो स्त्रीशक्तीकरण का प्रतिनिधित्व करती है। लिलिया दीमा की जुड़वां बहन है, डेनिम रूस का रहने वाला है। लिलिया और वासुदेव तथा दीमा और डेनिम के बीच प्रेम प्रसंग दिखाया गया है। उपन्यासकार ने पात्रों के माध्यम से बड़ी निपुणता के साथ प्रेम और भाईचारे के भावों को उद्धृत किया है।

प्रस्तुत उपन्यास में कथानक की शुरुआत भारतीय युवक (वासुदेव) से होती है। जो यूक्रेन में मेडिकल की पढ़ाई करने गया था और युद्ध की भयानक स्थिति में घिर जाता है लेकिन भारत सरकार की सहायता से वह तथा उसके जैसे अन्य भारतीय छात्र भी सुरक्षित अपने देश पहुँच जाते हैं उपन्यास के नायक वासुदेव के माध्यम से लेखक कहते हैं कि "मोदी सरकार के ऑपरेशन गंगा ने सब की ज़िंदगी को सुरक्षित अपने देश पहुँचा दिया। हम लोग बौने हैं। अगर सरकार कुछ नहीं करती तो पता नहीं हमारा क्या होता।"[2]

यूक्रेन से भारतीय बच्चों के साथ-साथ अन्य देशों के बच्चे भी अपने-अपने देश बिना डाक्टर बने लौटते हैं। उपन्यास में सत्तर हज़ार के लगभग की संख्या में बच्चे अलग-अलग देशों से आए हुए बताये गए हैं जो डाक्टर बनना चाहते हैं परन्तु युद्ध की त्रासदी के कारण उनका ये सपना अधूरा ही रह जाता है। इसी प्रकार न जाने कितने विद्यार्थियों के सपने युद्ध की भीषण आग में जल कर भस्म हो गए हैं। माता-पिता ने लोन ले-लेकर, अपने खेत-खलिहान बेचकर अपने बच्चों को डाक्टर बनने के लिए विदेश भेजते हैं, ताकि बच्चे अपना डाक्टर बनने का सपना साकार कर सकें। पुनीत के शब्दों में, "यूक्रेन जाने से पहले खेती करने वाली सारी ज़मीन की रजिस्ट्री बैंक में रखकर लोन लिया था । उसकी किस्तें दे रहे हैं। हर तरह की उम्मीद ख़त्म हो चुकी है । पहले घर के लोग और मैं सोचते थे कि डाक्टर बनकर इस कर्ज़ को चुका देंगे। लेकिन अब वह टेढ़ी खीर लगती है।"[2]

भारत में बढ़ती जनसंख्या के कारण भारत का युवा वर्ग शिक्षा ग्रहण करने के लिए विदेशों में पलायन कर रहा है। क्योंकि भारत में सरकारी कॉलेजों की संख्या बहुत कम है, इसके अभाव के चलते बहुत सारे बच्चों का डाक्टर बनने का सपना पूरा नहीं हो पता। और भारत में प्राइवेट कॉलेज में पढ़ाई करना बहुत महंगा पड़ता है। रूस-यूक्रेन युद्ध के कारण यूक्रेन में पढ़ रहे छात्रों का शैक्षिक स्तर पर बहुत नुकसान हुआ है। यूक्रेन में जिन विद्यार्थियों को डाक्टरी की पढ़ाई करते हुए दो-तीन साल हुए हैं, उन्हें फिर से पहले साल में एडमिशन लेनी पढ़ रही है। लेखक कहते हैं कि "जिन स्टूडेंट्स के तीन साल पूरे हो चुके हैं, उन्हें छह महीने या फिर एक साल पीछे एडमिशन मिलेगी।"[4] इस प्रकार रूस-यूक्रेन के युद्ध के कारण कई लाखों युवाओं की पढ़ाई प्रभावित हुई है। यूक्रेन में विभिन्न देशों से डाक्टर बनने का सपना लेकर आए विद्यार्थियों को अपनी अधूरी डिग्री के साथ लौटना पड़ा।

युद्ध के परिणाम : युद्ध कभी भी देश को विकसित नहीं होने

देता । युद्ध मानव जाति को नष्ट करते हैं , इसकी पुष्टि हमारा इतिहास और हमारी संस्कृति करती है। संसार में बहुत से उदाहरण भरे पड़े हैं।युद्ध केवल मृत्यु और विनाश का कारण बनता है तथा मानवता की हानि को उत्पन्न करता है। युद्ध में विकसित तथा अल्पविकसित देश दोनों को बद से बदतर स्थिति का सामना करना पड़ता है।बड़े-बड़े विकसित शहर तबाह हो कर खंडहर हो जाते हैं। युद्ध के बाद उन बर्बाद हुए शहरों को विकसित होने में सदियाँ लग जाती हैं। रूस और यूक्रेन के युद्ध के कारण की बात की जाए तो रूस को यूक्रेन की नाटो के साथ निकटता अखरती थी, रूस चाहता है कि यूक्रेन नाटो में शामिल न हो, लेकिन यूक्रेन निरंतर नाटो के समीप जा रहा था, जिसके कारण रूस ने यूक्रेन पर आक्रमण कर दिया।

रूस कभी सोवियत संघ का हिस्सा हुआ करता था। सन् 1991 में यूक्रेन सोवियत संघ से अलग हो गया था तथा अपना एक स्वतंत्र देश स्थापित किया था। रूस की तुलना में यूक्रेन क्षेत्र फल की दृष्टि में बहुत छोटा है और रूस इस पर अपना वर्चस्व बनाना चाहता है। ताकि यूक्रेन रूस के अधीन हो जाए। दोनों देशों की आपस की कश्मकश के चलते लोगों की अकाल मृत्यु हो रही हैं।कई परिवार बिछुड़ गए हैं, लाखों स्त्रियाँ विधवा हो गई हैं, बच्चों का बचपना छिन गया है , बच्चे अनाथ हो गए हैं।

उपन्यासकार ने युद्ध लड़ने वाले सैनिकों की मनोस्थिति को भी दर्शाया है कि वे लड़ना नहीं चाहते, लड़ना उनकी मजबूरी है। सैनिक होना उनका दुर्भाग्य है। सत्ता की भूख, अंधी राजनीति और सीमा सुरक्षा के भय को ले कर चल रहे इस युद्ध रूपी आग में मानवता का हनन होता है। युद्ध के दौरान कुछ सैनिकों द्वारा दुश्मन देश की मासूम व निर्दोष स्त्रियों का शोषण होता है ,इसका भी उपन्यास में बखूबी वर्णन किया गया है, यूक्रेन की एक महिला कहती है कि "हमारे साथ कई फौजी अफसरों ने शारीरिक संबंध बनाए। जब उनका मन भर गया तो फौजियों के सामने डाल दिया गया, जैसे जानवरों को चारा डाल दिया जाता है।"[5] युद्ध के संबंध में उपन्यासकार दीमा की दादी के माध्यम से कहते हैं कि "सत्ता में अंधे लोगों की आँखें और कान हमेशा बंद होते हैं, अगर खुलते हैं तो केवल सत्ता हड़पने के लिए।"[6] शासकों की बड़ी-बड़ी महत्वाकांक्षाओं के कारण ही युद्ध होते हैं। युद्ध के वातावरण में मनुष्य में मानवता मर जाती है, संवेदना ख़त्म हो जाती है, जीवन के साथ-साथ मृत्यु का एहसास होता है। आम लोगों को युद्ध की भयंकर त्रासदी से लड़ना मजबूरी बन जाती है। स्त्री-पुरुषों को जबरन सेना में भर्ती की जाती है, कई निर्दोषों की हत्या होती है, युद्ध के चलते लोगों के व्यापार ठप्प हो जाते है, जिसके परिणामस्वरूप आर्थिक स्थिति भी खराब हो जाती है।

प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने केवल यूक्रेन की भयानक दशा ही नहीं दिखायी, बल्कि उसके भयंकर परिणामों को भी विवेचित किया है। रूस जो बहुत शक्तिशाली देश है उसके भी जान-माल और हथियारों के नुक़सान इसमें दिखाया गया है।

विदेश में भारतीय संस्कृति : सबसे बड़ी बात यह है कि हमारे भारत की हज़ारों साल पुरानी संस्कृति चलती आ रही है। हमारी संस्कृति में एक परिवार है, जैसे - दादा-दादी, चाचा-चाची,आदि। लेकिन अब वह पुराने वाला संयुक्त परिवार बहुत कम देखने को मिलता है। रामधारी सिंह दिनकर लिखते हैं "संस्कृति ज़िंदगी का एक तरीका है और ये तरीका सदियों से जमा हो कर समाज में छाया रहता है, जिसमें हम जन्म लेते हैं।"[7]

भारत में वसुधैव कुटुंबकम् की अवधारणा बहुत प्राचीन है। यहाँ पूरे विश्व को एक परिवार के समान समझा जाता है। उपन्यासकार ने भारतीय सांस्कृतिक अस्मिता को सुरक्षित रखते हुए समस्त विश्व को वसुधैव कुटुंबकम् के एक सूत्र में बांधने का प्रयास किया है। लेखक कहते हैं कि "भारत हमेशा सरबत दा भला की बात करता है।"[8]

प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने भारतीय युवक वसुदेव और यूक्रेनियन लिलिया नामक लड़की के प्रेम प्रसंग का उल्लेख किया है। यूक्रेनियन दीमा और रशियन डेनिम के बीच प्रेम प्रसंग का वर्णन है। यह सभी यूक्रेन के एक। मेडिकल कॉलेज में एक-दूसरे से परिचित होते हैं तथा उसके बाद इनकी आपस में अच्छी मित्रता हो जाती है। किंतु दुर्भाग्यवश युद्ध रूपी त्रासदी के कारण एक-दूसरे से बिछुड़ जाते हैं। कुमुद शर्मा कहती हैं कि "इस तरह वसुधैव कुटुंबकम् की भावना रखने वाले भारत की दृष्टि में विश्व हमेशा से ही एक परिवार रहा है, जिसके अंतर्गत समन्वय और सहयोग की बात है। इसमें समग्र जगत को एक ही परम तत्व की अभिव्यक्ति मानते हुए बिखरे हुए मानव समाज को एक ही परिवार का हिस्सा माना गया है।"[9]

यूक्रेन में वासुदेव तथा अन्य भारतीय छात्रों द्वारा यूक्रेनियन तथा अन्य देशों के छात्रों के साथ होली खेलते हुए दिखाया गया है और उसमे दीमा तथा लिलिया भी होली खेलने का आनद लेती हैं।दीमा और लिलिया वासुदेव से होली के त्योहार के बारे

में पूछती हैं कि कलर फेस्टिवल क्यों मनाया जाता है ? तो वासुदेव कहता है कि "यह बुराई पर अच्छाई की जीत का प्रतीक है।"[10] वासुदेव द्वारा होलिका दहन की कहानी भी सुनाई जाती है। यही एनएचआई जब यूक्रेन की सेना में दीमा भर्ती होती है उसके उपरांत वह जब डेनिम से मिलने जाती है तो वह अपने माथे पर वासुदेव द्वारा दी गई बिंदी लगा के आ जाती है। और बिंदी के बिना भारतीय स्त्री का शृंगार अधूरा माना जाता है। जीका प्रभाव विदेश में भी देखने को मिलता है। प्रस्तुत उपन्यास में दीमा वासुवेद से कहती है कि "आज में अपने महबूब से मिलने जा रही हूँ कोई मज़ाक नहीं है।"[11] इस प्रकार उपन्यास में विदेशीय लोगों को भारतीय संस्कृति से प्रभावित दिखाया है।

यह उपन्यास आदर्शोन्मुखी एवं यथार्थपरक है। इसमें उपन्यासकार ने सरल, सहज एवं बोलचाल की भाषा का प्रयोग किया है।गंभीर भावों को अभिव्यक्त करने हेतु कई कहावतों, मुहावरों, लोककथाओं तथा पौराणिक कथाओं का सहारा लिया गया है और प्रतीकात्मक/बिम्बात्मक भाषा का प्रयोग किया गया है। उदाहरण के लिए, "बड़ी शक्तियों वाले देश बगुले के रूप में छोटे देशों को मछलियाँ समझते हुए उन्हें अपने पाँवों में दबा कर रखते हैं, ताकि वे भाग न सकें।"[12] यहाँ बगुले और मछलियाँ प्रतीक के तौर पर प्रयोग की गई हैं, जोकि बढ़िया प्रतीक हैं। पंजाबी संस्कृति को दर्शाने के लिए वहाँ प्रचलित बोलियों का प्रयोग भी उपन्यास में प्रयोजनीय रूप में मिलता है जैसे -

"नचण वाले दी अड्डी न रहंदी / गौंण वाले दा मुँह / बोली मैं पावाँ/नच गिद्दे विच तूँ।"[13]

उपन्यास में कहीं-कहीं काव्यात्मकता का प्रयोग दर्शनीय है। उदाहरण स्वरूप -

"सब रोने पर आमादा है/यूक्रेन रो रहा है/रूस रो रहा है/हाहाकार मची।"[14]

इस प्रकार लेखक ने उपन्यास में वर्णनात्मक, विवरणात्मक, चित्रात्मक शैली, प्रतीकात्मक एवं बिंबात्मक शैली के साथ-साथ काव्यात्मक शैली का भी प्रयोग किया है।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि यह उपन्यास एक तरफ़ राजनीतिक षडयंत्र का आईना दिखाता है तो दूसरी तरफ़ नारी सशक्तिकरण का प्रतीक बनकर उभरता है। उपन्यासकार ने देश प्रेम, भाईचारे, एवं राष्ट्रीयता का संदेश देते हुए लिखा है कि "हमारा प्यार, हमारा मज़हब और हमारी कौम, सब कुछ प्यार से शुरू होता है और प्यार पर ख़त्म ।भगवान ने हमें प्रेम देकर भेजा है। पता नहीं हम प्रेम को क्यों भूल जाते हैं।"[15] उपन्यास की प्रमुख पात्र दीमा युद्ध से डर कर घर नहीं बैठती बल्कि सैनिक के रूप में युद्ध में भाग लेती है और ईमानदारी से अपने दायित्व को निभाती है और अपने प्रेमी डेनिम के साथ मिलकर शांति, प्रेम तथा भाईचारे का संदेश देने का प्रयास करती है।

संदर्भ सूची :

1. डॉ.अजय शर्मा, कुमुदिनीर, प्रलेक प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, महाराष्ट्र, 2022, पृष्ठ 8
2. डॉ.अजय शर्मा, खारकीव के खंडहर, साहित्य सिलसिला पब्लिकेशन, जालंधर, 2024, पृष्ठ 23
3. वही, 72, 4. वही, 22, 5.वही, 7, 6.वही, 84
7. रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, लोक भारती प्रकाशन, दिल्ली, 2011, पृष्ठ 35
8. डा. अजय शर्मा, खारकीव के खंडहर, साहित्य सिलसिला पब्लिकेशन, जालंधर, 2024, पृष्ठ 31
9. कुमुद शर्मा, भूमंडलीकरण और मीडिया, ग्रंथ अकादमी, नई दिल्ली, 2003, पृष्ठ 17
10. डा. अजय शर्मा, खारकीव के खंडहर, साहित्य सिलसिला पब्लिकेशन, जालंधर, 2024, पृष्ठ 18
11. वही, 19, 12.वही, 41, 13.वही, 94,14.वही, 117
15. वही, 128

डॉ. सपना शर्मा
(असिस्टेंट प्रोफेसर)
हिंदी-विभाग, गुरु नानक देव यूनिवर्सिटी, अमृतसर।

पूजा देवी, शोध छात्रा, हिंदी विभाग
गुरुनानाक देव विश्वविद्यालय, पंजाब।

'हिंदी भाषा की शक्ति का प्रवाह बदला नहीं जा सकता।'

-महामना मदनमोहन मालवीय

दलित-स्त्री विमर्श और कौशल पंवार ('जोहड़ी' कहानी संग्रह के संदर्भ में)

डॉ. गोपाल जीनगर

शोध-सार:'जोहड़ी' कौशल पंवार की चुनी हुई कहानियों का संकलन है जो अनायास ही दलित-स्त्री विमर्श की राह तैयार करता है। इस संकलन की पंद्रह कहानियाँ सामंती वर्चस्व के विरुद्ध आवाज उठाते हुए समानतापूर्ण जीवन के अधिकारों हेतु सामूहिक चिंतन की जरूरत पर बल देती है। प्रमाणिकता और सहज जीवन की प्रस्तुति ही इन कहानियों की सबसे बड़ी शक्ति और सामर्थ्य है। यह कहानी संग्रह न केवल पितृसत्तात्मक समाज के टूल्स की पड़ताल करता है बल्कि दलित जीवन की समस्याओं, उनकी कमजोरियों, पारिवारिक अंतर्विरोध और समाज में जाग्रति होने की जरूरत पर बराबर विचार करता है। यहाँ शराब से बर्बाद होते परिवार, यातनापूर्ण स्थितियों की स्मृतियों के दंश और बार-बार वर्तमान से अतीत की और लौटती हुई कथा है।

बीज शब्द - दलित साहित्य, दलित स्त्रीवाद, स्त्री आन्दोलन, कौशल पंवार, वंचित समाज, दलित लेखक, दलित लेखन

पुरुषों के समक्ष स्त्रियों की राजनीतिक, सामाजिक और शैक्षणिक जगत का आंदोलन जिसे कुछ वर्ष पहले तक नारीवाद कहा जाता रहा। उसके लिए अंग्रेजी में feminism शब्द प्रचलित है। वैसे तो नारीवादी आंदोलन की शुरुआत ग्रेट ब्रिटेन और अमेरिका में हुई थी लेकिन इसकी जड़ें अठारहवीं सदी की मानवतावादी और औद्योगिक क्रांति में निहित है।

यद्यपि स्त्रियों के लिए व्यापक अवसर प्रदान किए जाने की आवाज़ पहले उठ चुकी थी, जिसमें पहला और महत्वपूर्ण दस्तावेज (1792 ई.) स्त्रियों के अधिकारों की बहाली का था। फ्रांसीसी क्रांति के दौरान भी कई महिला संगठनों ने मांग की थी कि उन्हें आजादी, समानता और भ्रातृत्व का व्यवहार बिना किसी लिंग भेद के लागू होना चाहिए लेकिन यह आंदोलन उस समय नियोजन की संहिता लागू होने के कारण ठंडे बस्ते में चला गया। तत्पश्चात "नारीवादी आंदोलन तब चर्चा में आया जब 1848 में एलिजाबेथ कैंडी स्टैंटन, लुकरेसिया काफिन मोर और कुछ अन्य ने न्यूयॉर्क में एक महिला सम्मेलन करके नारी स्वतंत्रता का एक घोषणापत्र जारी किया।"[1] जिसमें पूर्ण कानूनी समानता, पूर्ण शैक्षिक समानता, व्यवसाय के अवसर, समान मुआवजा और मजदूरी कमाने के साथ वोट देने के अधिकार की मांग की गई थी। इस तरह नारीवादी आंदोलन पश्चिमी दुनिया में पैदा हुआ। एशिया में नारीवादी आंदोलन का जन्म तब हुआ जब लोकतांत्रिक अधिकारों के प्रति चेतना जागृत हुई; तभी आधी जनता को उनकी बुनियादी अधिकारों से वंचित रखे जाने के अन्याय के प्रति जागरूकता के साथ, एशिया में नारीवादी चेतना राजनीतिक जागरू कता के ऐतिहासिक समय में ही परवान चढ़ी। उन्नीसवीं और बीसवीं सदी में विदेशी शासन और सामंती शासकों की निरंकुशता के विरुद्ध खड़े हुए इन आंदोलनों के दौरान नारीवादी धारणा को बल मिला। भारत के आरंभिक नारीवादी या स्त्री विमर्श के पैरोकारों में सावित्रीबाई फुले और फातिमा शेख का नाम महत्वपूर्ण हैं। इन दोनों के साथ उन्नीसवीं सदी के उतरार्द्ध में पंडिता रमाबाई ने नारी अधिकारों के लिए सशक्त विचार प्रस्तुत किये। इनके साथ कुछ पुरुष भी शिक्षा के प्रति अलख जगा रहे थे उनमें ज्योतिबा फुले का नाम उल्लेखनीय हैं। उन्होंने वंचित जातियों के साथ स्त्री शिक्षा का प्रसार किया। प्रो. वीरभारत तलवार भी उनके शिक्षा संबंधी योगदान को रेखांकित करते हैं कि "नवजागरण के दौर में फुले अकेले ऐसे सुधारक थे जिन्होंने सरकारी शिक्षा के वर्गीय चरित्र पर ऊँची जातियों के वर्चस्व को तोड़ने का बीड़ा उठाया और हंटर आयोग को दिए अपने बयान में उन्होंने ब्राह्मणों का वर्चस्व सीमित करने के लिए निम्न वर्गों के बीच प्राथमिक शिक्षा के प्रसार पर जोर दिया था।"[2] लेकिन हिंदी साहित्य में स्त्री विमर्श राजेंद्रबाला घोष, महादेवी वर्मा, सुभद्राकुमारी चौहान की रचनाओं में परिलक्षित रहा। स्त्री विमर्श को हिंदी साहित्य की मुख्यधारा में स्थापित करने वालों में राजेंद्र यादव जैसे संपादकों का नाम महत्वपूर्ण है। इन्होंने समाज में उन आवाजों की वकालत की जो सदियों से साहित्य और समाज में हाशिए पर थी। हिंदी साहित्य में 'हंस' जैसी पत्रिकाओं ने उपेक्षित स्त्रीवादी लेखिकाओं के लिए वाल्तेयर की भूमिका निभाई जिसके परिणामस्वरूप कृष्णा सोबती, मन्नू भंडारी, मृणाल पांडे और अनामिका जैसी वरिष्ठ लेखिका का साहित्य में हस्तक्षेप मौजूद है। इस तरह समाज में उपेक्षित प्रतिभा को समयानुसार अवसर मिलने पर वह फलती-फूलती है। उनके अनुभव लेखनी में शब्दबद्ध होकर दुनिया को प्रगतिशील राह देती है। वह नदी के वेग के समान निरंतर प्रवाहित होकर अपने आसपास निर्मलता और स्वस्थ वातावरण फैलाती हैं। इन विमर्शों ने भी व्यक्ति विशेष को निशाना बनाए बिना समाज को नैतिकतावादी बनाया हैं क्योंकि इसने व्यक्ति को स्वयं के अंदर झांकना सिखाया है और बताया है कि हम स्वयं में बदलाव करके समाज के समक्ष उदहारण पेश करें।

नब्बे के दशक के बाद हिंदी साहित्य में दलित विमर्श के छुटपुट अंश दलित साहित्यकारों की रचनाओं के रूप में सामने आए। दलित नारीवाद का जन्म भी दलित पैंथर और नारीवादी जैसे आंदोलनों के गर्भ से हुआ । इसने स्त्री विमर्श के अंतर्गत उन मुद्दों को आवाज प्रदान की जो वंचित वर्ग की महिलाओं से सबंधित थे। स्त्री विमर्श मुख्यतः पुरोहित वर्ग की महिलाओं के मुद्दों को केंद्र में रखता रहा। इनका संघर्ष उन प्रश्नों

से वंचित है जो दलित महिलाओं से जुड़े थे। इनमें मुख्य प्रश्न जातिवाद और पितृसत्ता के थे । इन मुद्दों पर पहले-पहल ध्यानाकर्षण रजनी तिलक जैसी महिला कार्यकर्ता और साहित्यकार ने किया और इसी फेहरिस्त में सुशीला टाकभौरे, रजत रानी मीनू, कौशल्या बैसंत्रि और कौशल पंवार के नाम प्रमुख है।

कौशल पंवार का संबंध हरियाणा से है। वह वर्तमान में प्रोफेसर के रूप में कार्यरत है। कौशल पंवार का एक मुख्य कहानी संग्रह 'जोहड़ी' है जो राष्ट्रीय पुस्तक न्यास की महिला लेखन प्रोत्साहन योजना के अंतर्गत एक महत्वपूर्ण कड़ी है। 'जोहड़ी' उनकी चुनी हुई कहानियों का संकलन है जो अनायास ही दलित-स्त्री विमर्श की राह तैयार करता है। इस संकलन की पंद्रह कहानियाँ सामंती वर्चस्व के विरुद्ध आवाज उठाते हुए समानतापूर्ण जीवन के अधिकारों हेतु सामूहिक चिंतन की जरूरत पर बल देती है। प्रमाणिकता और सहज जीवन की प्रस्तुति ही इन कहानियों की सबसे बड़ी शक्ति और सामर्थ्य है। यह कहानी संग्रह न केवल पितृसत्तात्मक समाज के टूल्स की पड़ताल करता है बल्कि दलित जीवन की समस्याओं, उनकी कमजोरियों, पारिवारिक अंतर्विरोध और समाज में जाग्रति होने की जरूरत पर बराबर विचार करता है। यहाँ शराब से बर्बाद होते परिवार, यातनापूर्ण स्थितियों की स्मृतियों के दंश और बार-बार वर्तमान से अतीत की ओर लौटती हुई कथा है। इसमें गरीबी और साधन हीनता इंसान को सबक सिखाते हैं इसी में सामूहिक प्रतिरोध की ओर जाने का बोध पनपता है। इनकी कहानियों का परिवेश मुख्यतः हरियाणा और दिल्ली के आसपास का रहा है। कहानी संग्रह की भूमिका में लेखिका लिखती है कि "जिस तरह के परिवेश में पली-बढ़ी हूँ उसका वातावरण मेरे अपने समाज में घट रही घटनाओं को मैंने अपनी कहानियों में जगह दी है।"[3] कौशल पंवार की कहानियाँ उस परिवेश से आती है जहाँ के नागरिक मूलभूत सुविधाओं से भी वंचित है। अर्थात् ग्रामीण परिवेश से यहाँ भूमिहीन मजदूर-किसान जातिवाद के दंश से पीडित है, साथ ही वह आजीविका के प्रश्नों से भी लगातार जूझ रहा है। क्योंकि गाँव आज भी जाति व्यवस्था को सुदृढ़ता प्रदान करने वाली भौगोलिक इकाई के रूप में हमारे समक्ष हैं । औपनिवेशिक शासन के समय जाति और गाँव के ठोस संबंधों की जानकारी मिलती हैं जब "राजस्व प्रशासन स्थापित करते समय अंग्रेजों ने भारत के विभिन्न क्षेत्रों में कई तरह के भूमि और ग्राम सर्वेक्षणों की शुरुआत की। ऐसे कई राजस्व-प्रशासक थे जो मानवशास्त्रीय अभिरुचियों से संपन्न विद्वता से लैस थे । उन्होंने एक राजस्व इकाई के रूप में ग्राम को अपने काम का केंद्र बनाया। इस तरह गाँव को भारतीय समाज का सबसे छोटा नमूना मानाने का विचार विकसित हुआ। गाँव भारत के एक लघु ब्रह्माण्ड के रूप में उभरा जिसका सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक गठन जाति के आधार पर होता था और जाति की धार्मिक विचारधारा उसे वैधता प्रदान कराती थी। जाति की इस ग्राम दृष्टि में जाति के जरिए गाँव या गाँव के किसी समूह का श्रेणीबद्ध समाज परिभाषित होता था।इस विचार ने गाँव की एक ऐसी छवि बनाने में योगदान दिया जिसमें बह स्थिर और अपरिवर्तनशील समाज-व्यवस्था मान लिया गया।"[4] करीब ढाई सौ वर्ष पहले तक यूरोपियन और पुर्तगाली अध्येता ही जाति के बारे में जानकारियाँ देते रहे लोगों के पेट के प्रश्न को लक्ष्य करके लेखिका सोच रही है "यूं तो उसने पिताजी को बचपन से लेकर आज तक मेहनत और सिर्फ मेहनत करते हुए ही देखा था लेकिन उसी मेहनत को आज मैं पहली बार महसूस कर रही थी ट्रक ट्रॉली का डाला पकड़ कर बैठी थी वह अचानक चक्कर आने से उसका सीना ताले की कुंडली से टकरा गया।"[5] इस तरह आजीविका के संकट में दलित स्त्री को विपरीत परिस्थितियों में उन व्यक्तियों और पुरुषों के साथ कार्य करने को बाध्य होना पड़ता है जहाँ उनकी अस्मिता और आत्मा के साथ खिलवाड़ किया जाता है। लेखिका भी दिहाड़ी करते समय ऐसे ही लोग का शिकार हो जाती है लेकिन उसे अपनी माँ की बात याद आ जाती थी कि दिहाड़ी मजदूरी करते समय ऐसी बातें सहन करनी होती है केवल काम ही करना नहीं होता है बल्कि उनकी बातें भी सुननी पड़ती है। उनका विरोध करना अपने ही रोजी रोटी पर लात मारने के समान होता है और इन्हीं परिस्थितियों का फायदा उठाकर सामंती चोला ओढ़े पुरुष स्त्रियों का शोषण करते हैं। दिहाड़ी कहानी के ठेकेदार का बेटा भी "मजदूर औरतों के सामने पूरा दिन खड़ा रहेगा, वह घूरता रहेगा शरीरों को जैसे भूखा भेड़िया लोमड़ी को घूरता है।"[6] किसी व्यक्ति विशेष का हावभाव भी महिलाओं को कार्यस्थल पर असहज करता है। कई बार शोषण की संरचना कहानी के कथानक में छिप जाती है लेकिन लेखिकाओं की महीन स्त्री-दृष्टि ऐसी घटनाओं के माध्यम से सामने आती है। यह संग्रह कार्यस्थल पर महिलाओं के शोषण की समस्या को पुरजोर तरीके से उठाता है। कार्यस्थल पर महिलाओं का संरक्षण महिलाओं द्वारा ही किया जाए तो स्थिति कुछ बेहतर हो सकती है।

भारतीय परिवेश की महिलाएँ (विशेषकर दलित महिलाएं) जो आजीविका के संघर्ष के कारण निम्न स्तरीय कार्य करने को मजबूर है वहाँ पर उन्हें अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। कहानी की पात्र को भी अनेक जगह असहज होना पड़ता है तो "बतेरी को भी काम करते हुए ऐसा लगता है कि जैसे किसी की आँखें उसी की ओर है उसे घबराहट सी हो रही थी।"[7] इतना सब कुछ सहने के बाद भी इन सब के बदले मजदूरों को महीनों लटकाकर दिहाड़ी के रुपए मिलते और बड़ी-बड़ी गालियाँ मिलती जो बिना कारण के कई बार सहन कर ली जाती है। ऐसी गालियाँ माँ या बहन से जुड़ी होती थी। आलोचकों के द्वारा दलित साहित्य में प्रयुक्त गालि-गलोच की भाषा के प्रयोग पर आपत्ति दर्ज की है लेकिन दलित साहित्यकार उक्त भाषा को बिना राग-द्वेषपूर्ण भाव से प्रयोग करते है। वह अपने लेखन में केवल उन्हीं शब्दों को, समाज को लौटा रहे होते हैं जो शब्दावली उन्हें तथाकथित सभ्य समाज से प्राप्त हुई हैं।

स्त्रीवादी आंदोलन का मुख्य उद्देश्य पुरुष सत्ता के शोषण से मुक्त होना है तथा स्त्री मुक्तिके रास्ते तलाशना है । स्त्री विमर्शकारों का मानना ठीक वैसा ही है जैसा फ्रेडरिक एंगेल्स मानते हैं कि 'विवाह कोई सामाजिक बंधन ना होकर एक सामाजिक समझौता है' क्योंकि विवाह स्त्रियों को पुरुषों के अधीन कर सकता है और विवाह विभिन्न प्रकार के सामाजिक बंधनों का निर्माण करता है जो पितृसत्ता को बनाए रखने के लिए मुख्य कारक में से एक है। 'क्योंकि वह स्त्री थी' कहानी की पात्र अनु इस सामाजिक बंधन के किले को ध्वस्त करती हुई कहती है कि "एक विवाहित स्त्री के लिए पर पुरुष के बारे में सोचना भी घोर अपराध की श्रेणी में आता है सारे धर्म शास्त्र पुराणों के व्याख्यान यही तो संदेश देते हैं युवा नामक संस्था उसी की घेराबंदी के लिए तो बनी है।"[8] सिमोन दी बोउवार कहती है कि 'स्त्री पैदा नहीं होती है, बनाई जाती है।'

शासक वर्ग विभिन्न प्रकार से प्रलोभन देकर शोषण के विभिन्न रास्ते अख्तियार करता है। शोषित वर्ग परिपक्व विचारधारा और शिक्षा के अभाव तथा जीवन के अनुभव की कमी के कारण ऐसे जाल में फँस जाता है यह मानसिक और शारीरिक रूप से उसे दीर्घकालीन समय तक प्रभावित करते रहते हैं। ऐसे प्रलोभन झूठे वादे और ऊँचे ख्वाब दिखाकर दिए जाते हैं। लेखिका विश्वविद्यालय के परिसर से संबंधित होने के कारण वह शिक्षा के क्षेत्र में महिलाओं के साथ प्रलोभन देकर हो रहे ऐसे ही शोषण/यौन शोषण से रूबरू है और उनकी कहानी 'प्रतिरोध' शायद उसी अनुभव की एक झलक मात्र है । यह कहानी शिक्षा की ऑड़ में दलित और वंचित समुदाय की शोषण की स्थिति को बयाँ करने के साथ ही विश्वविद्यालय के यथार्थ और शिक्षा के माध्यम से शोषण के लिए उपयोगी टूल्स या हथियारों की पोल खोलती है। इस कहानी की पात्र अनु और अन्य छात्राएँ ओमप्रकाश के दिए लालच में आकर अनेक मानसिक समस्याओं का सामना करती हैं। ओमप्रकाश कभी छात्राओं को अश्लील नजरों से और हरकतों से परेशान करता है तो कभी विभिन्न परीक्षाओं में उत्तीर्ण करवाने का प्रलोभन देकर उनका दैहिक शोषण करता है। विश्वविद्यालय परिसर में ओमप्रकाश का खौफ ऐसा था कि "अक्सर लड़कियाँ उसे देखकर अपना रास्ता बदल लेती थी। ताकि उसकी गंदी नजरों का सामना ना करना पड़े लड़कियों को बहुत परेशान करता था वह।"[9] ओमप्रकाश ने कभी नेट की "परीक्षा उत्तीर्ण करवाने का प्रलोभन देकर उसका यौन शोषण करना चाहता था लेकिन वह ओमप्रकाश की सारी साजिशों को समझ गई थी।"[10] कौशल पंवार की कहानियों में केवल स्त्री का शोषण ही नहीं दिखाया गया है बल्कि पुरुषवादी और पितृसत्तात्मक समाज के विरुद्ध प्रगतिशील महिलाओं और तरक्कीपसंद व्यक्तियों का विरोध भी दर्शाया गया है। इसी कहानी में देखते हैं कि नेहा का प्रतिरोध ध्यान आकर्षित करता है। "उसके मंसूबे किसी भी कीमत पर पूरी नहीं होने देगी। औरों की तरह कमजोर होकर पुरुष के सामने घुटने नहीं टेकेगी, किसी भी कीमत पर नहीं।"11 इस तरह जोहड़ी कहानी संग्रह पितृसत्तात्मक व्यवस्था के विरुद्ध प्रखर विरोध दर्ज करता है । इस संग्रह की कई कहानियाँ पुरुषवादी मानसिकता की परत दर परत कलाई खोलती है।

कौशल पंवार एक दलित लेखिका होने के कारण उनका स्त्रीवाद मात्र पितृसत्तात्मक समाज के विरुद्ध प्रतिरोध क्या आगे जाकर जातिवाद का प्रतिरोध करता है क्योंकि दलित नारीवाद की मान्यता है। आंबेडकर की उस बात से सहमत है कि "वह (मनु) यह जानता है कि स्त्री द्वारा अपनी स्वतंत्रता दुरुपयोग करने या शुद्र के साथ विवाह करने की उसकी इच्छा होने से वर्ण व्यवस्था नष्ट हो गई थी। मनु स्त्री की स्वतंत्रता से क्रुद्ध था और उसे रोकने में उसने उसकी स्वतंत्रता से वंचित कर दिया।"[12] इस प्रकार हम देख सकते हैं कि नारी की परतंत्रता जाति व्यवस्था को यथास्थिति प्रदान करती है। यदि नारी स्वतंत्र है तो वह अन्य वर्ण में प्रेम विवाह करेगी। परिणामस्वरूप इससे वर्ण व्यवस्था को हानि होगी। इसलिए मनु की संहिता नारी की स्वतंत्रता के पक्ष में नहीं रही। अतः नारी मुक्ति जाति व्यवस्था के विनाश के साथ ही संभव है। ऐसा मत दलित स्त्रीवादी चिंतकों का है। यही कारण है कि कौशल पंवार की कहानियाँ वर्ण व्यवस्था का विरोध करती है। कौशल पंवार की जोहड़ी, प्रतिरोध, क्योंकि वह स्त्री थी, स्पीड ब्रेकर इत्यादि कहानियाँ जाति व्यवस्था की समस्या को परिलक्षित करती है।

पानी के उपयोग की समस्या डॉ. आंबेडकर के दलित आंदोलनों के केंद्र में रही। इसका सबसे उत्कृष्ट उदाहरण चवदार तालाब सत्याग्रह और महाड़ सत्याग्रह है। जब दूसरा महाड़ सम्मेलन दिसंबर, 1927 में बुलाया गया। यहाँ बाबा साहेब आंबेडकर ने जो भाषण दिया उसमें उन्होंने जाति व्यवस्था के समूल नाश का आह्वान किया। उन्होंने फ्रांसीसी क्रांति के मूल्यों का हवाले दिया और सम्मेलन की तुलना वर्साय में आयोजित स्टेटस जनरल से भी की जहाँ पहली बार थर्ड स्टेटस के लोगों ने एक सामूहिक और औपचारिक पद्धति से अपने विद्रोह का ऐलान किया था। इस प्रसिद्ध व्याख्यान में वे कहते हैं कि "सबसे पहले हमारा विरोध कर रहें उन लोगों को बता देना चाहता हूँ कि इस चवदार तालाब का पानी ना पीने से हम मर जाने वाले नहीं हैं। औरों की तरह हम भी मनुष्य है, हम तो बस यह साबित करने के लिए तालाब तक जाना चाहते हैं। यह सम्मेलन की इस भूमि पर समानता की युग का सूत्रपात करने के लिए बुलाया गया है। अस्पृश्यता और अंतर जाति विवाह से हमारी सारी समस्याएँ खत्म नहीं होगी न्यायालय सेना, पुलिस और वाणिज्य से लेकर तमाम सरकारी महकमों को हमारे लिए खोला जाना चाहिए।"[13] इस तरह दलित स्त्रीवाद छोटे-छोटे प्रश्नों से झूझता है जहां किसी व्यक्ति विशेष को पानी की उपलब्धता ही समाज में नहीं है। इस समस्या को 'वर्दी' कहानी में नेहा के माध्यम से भी अंकित किया है। हम किसी भी दो सजीव या निर्जीव तत्वों में भिन्नता संकेत करने के लिए कई प्रकार के रंगों

का प्रयोग करते हैं। यह वर्दी विद्यार्थी की वर्दी नहीं होकर सामाजिक भेदभाव की वर्दी है जो उन्हें अन्य उच्च वर्ण के विद्यार्थियों से भिन्न करती है। "सारी लड़कियाँ स्कूल में सफेद रंग की यह गुलाबी रंग की वर्दी पहन कर आती है लेकिन जो वर्दी मेरी है; उसका रंग सफेद है ना गुलाबी। बल्कि यह तो नहीं ली है जो दूर से ही सबसे अलग नजर आती है।"[14] कई सालों के ऐतिहासिक परिदृश्य में दलितों ने जो सामाजिक अलगाव सहा, जो उत्पीडन सहा तथा शोषण और भेदभाव ने उनके मस्तिष्क में अलगाव की एक रेखा खींच दी। ऐसी विषमताओं और विसंगतियों को ध्यान में रखकर ही लेखिका के साहित्य का अध्ययन किया जा सकता है। यह समाज में अति गहराई तक व्याप्त है, यह एक ऐसा खोल है जिसे हर व्यक्तिहाथ में रखता है और यथा अवसर इसे पहने धारण कर लेता है। इसलिए इस व्यवस्था का उच्छेदन संभव नहीं हो पाया है। ओमप्रकाश वाल्मीकि लिखते है कि "भारतीय समाज-व्यवस्था ने वर्ण-व्यवस्था का एक ऐसा जिरहबख्तर पहन रखा है, जिस पर लगातार हमले होते रहे हैं फिर भी वह टूट नहीं पाई। बीसवीं सदी में सबसे बड़ा हमला डॉ. अम्बेडकर ने किया और बौध्द धर्म को पुनर्जीवित किया। वर्ण-व्यवस्था के स्वरूप में बदलाव दिखाई पड़ा। इस व्यवस्था को तोड़ने के लिए जाति-व्यवस्था का टूटना ज़रूरी है, तभी समाज में समरसता उत्पन्न हो सकती हसी, और साहित्य में उपजी विभ्रम की स्थिति से भी मुक्त हो सकते हैं।"[15] इस कहानी में दलित स्त्री का शोषण एक सामाजिक पहलू को इंगित करता है जो कि मुख्यधारा का नारीवादी विमर्श संकेत भी नहीं करता है यही वह बिंदु है जहाँ से दलित नारीवाद को अपनी अलग वैचारिक लाइन लेनी पड़ती है। इसी प्रकार 'जोहाड़ी' कहानी में भी दिखाया गया है कि मुख्य पात्र को पूजा स्थल पर निम्न सामाजिक स्थिति होने के कारण नहीं जाने दिया जाता है।

दलित समाज से जुड़े विभिन्न सवालों को हमारे समक्ष रखती है। क्योंकि इस संग्रह की कहानियां सम्पूर्ण दलित समाज से जुडी हुई हैं। इस संग्रह की कहानियाँ इस प्रकार हम देखते हैं कि कौशल पंवार की कहानियाँ पुरुषवादी तंत्र की बुराइयों को सामने रखकर उसका रेशा-रेशा खोल देती है। यौन हिंसा, कार्यस्थल पर असुरक्षा, घरेलू हिंसा इत्यादि प्रश्नों के साथ जाति व्यवस्था के सवालों से भी रूबरू होती है। उनकी कहानियाँ ज़मीन से जुड़ी हुई है अनुभूति और अपने आसपास के कड़वे अनुभवों पर उनकी नज़र बनी रहती है।

सन्दर्भ

1. अमरनाथ, आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, पृ.385
2. वीरभारत तलवार, रस्साकशी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण,2016 पृ.46
3. कौशल पंवार, जोहडी, नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली, सं.2019, पृ.7
4. संपा.अभय कुमार दुबे, लोकतंत्र के सात अध्याय(धीरू भाई सेठ का आलेख-नये मध्यवर्ग का उदय : जाति व्यवस्था, वर्ग-रचना और लोकतांत्रिक राजनीति) वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2018
5. कौशल पंवार, जोहडी, नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली संस्करण 2019, पृ.2
6. वही, पृ.6
7. वही, पृ.40
8. वही, पृ.59
9. वही, पृ.98
10. वही, पृ.102
11. वही, पृ.102
12. संपा रजनी तिलक, डॉ.अंबेडकर और स्त्री चिंतन के दस्तावेज, स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली प्रथम संस्करण 2018
13. क्रिस्तोफ जोफ्रेलो, भीमराव आंबेडकर एक जीवनी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2019 पृ.63
14. कौशल पंवार, जोहड़ी, पृ.14
15. ओमप्रकाश वाल्मीकी, दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, चौथा संस्करण 2022, पृ.59-60

सहायक आचार्य
भारती कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय

जीवन - सत्य

योगेन्द्र कुमार

देखता हूँ जब भी,
बहुमंजिले घर की छत से,
झाँककर नीचे ज़मीन को
अक्सर डर जाता हूँ,
फिर सोचता हूँ अनमना सा,
कितने बेख़ौफ़ हैं,
ये ज़मीन पे चलने वाले।

जी-19, बीटा-2
ग्रेटर नोयडा (उ.प्र)-201310

शोषण की दास्तान : ' राजा, जंगल और काला चांद ' में

डॉ.श्रीकला एस.आर

इतिहास और कल्पना के सहारे आदिवासी जीवन के विभिन्न कथा संदर्भों से संजोया गया 'राजा, जंगल और काला चाँद' श्री तरुण भटनागर का सन् 2019 में प्रकाशित आदिवासी उपन्यास है। इकतालीस अध्यायों में विभक्त उनका प्रस्तुत उपन्यास विभिन्न आदिवासी मुद्दों को लेकर पाठकों के सामने आता है। यह छत्तीसगढ़ के बस्तर जिले की पुरानी यादों को टटोलता है। किस्सागोई शैली में शब्दबद्ध यह उपन्यास भारत के इतिहास के करीब चार सौ सालों की घटनाओं पर केंद्रित है। इस रचना में आदिवासी दुनिया का, बाहर की दुनिया से टकराहट का वर्णन मिलता है। उपन्यास में प्रयुक्त शब्दों को मुख्य मुद्दे के अनुसार चयनित करना उपन्यासकार की खासियत कह सकते हैं, जैसे उपन्यास की शुरुआत में मुहम्मद बिन तुग्लक के कथा संदर्भ में अरबी - फारसी शब्दों की भरमार महसूस होती है तो उपन्यास के प्रमुख पात्र जिनके सहारे कथा आगे सुनाई जाती है वहाँ तत्कालीन देशज शब्दों का प्रयोग मिलता है।

कथावस्तु की नज़र में प्रमुखतया तीन हिस्सों में 'बस्तर' के इतिहास से सरोकार रखनेवाले उपन्यास का प्रथम हिस्सा मुहम्मद बिन तुगलक के भारत आक्रमण का और उसके आधिपत्य का किस्सा दूसरा राजा का किस्सा और तीसरा जंगल का किस्सा है। बस्तर की राजनीति में राजा की अहम भूमिका है। राजा आदिवासियों के लिए ईश्वर के समान है। अंग्रेजी शासन से भारत को जो आज़ादी मिली, इसे स्वीकार करना राजा कभी नहीं चाहता है। वे अपना अधिकार बनाए रखना चाहते हैं। बस्तर के राजा जानते थे कि उनकी स्थिति अन्य राजाओं से बिलकुल अलग है। बस्तर में राजा के इशारे पर कायनात चलती थी। पूरे इलाके पर उनकी हुकूमत थी। उन्हें अपनी शक्ति पर पूरा विश्वास था। वे गुरुर में थे। उनका हुकुम जंगल के लिए सबसे बड़ा हुकुम था। जंगल उनकी हुकूमत के सामने नतमस्तक थी।

आदिवासियों का इलाका 'बस्तर' जो दंडकारण्य नाम से पहले जाना जाता था, वहाँ राजा को अधिकार कैसे प्राप्त हुआ, इस प्रकार है- तुग्लक के आक्रमण से पराजित वारंगल के राजा रुद्रप्रताप के आदेशानुसार उनका भाई अन्नाम देव दंडकारण्य पहुँचते हैं। घने पेड़ों से भरे जंगल उनको अजीब - सा लगता है । वे वहाँ कोई गाँव न देखा, न कोई घर। उन्हें लगता है, "जो महलों में रहते हैं, कोई फौलादी बुर्ज जिनके चैन की हिफाजत करती है, कोई किला जिनका घर होता है... वे फिर लौट नहीं सकते। कहाँ लौट पाया कोई सुल्तान या कोई राजा?"[1]

जब हुकूमत बदलते हैं तो लोग भी पराए हो जाते हैं। उलुग खान अब दिल्ली का सुल्तान बन गया। उसने अपना नया नाम रखा है - मुहम्मद बिन तुगलक। उसने जल्दी सुल्तान बनने के लिए अपने पिता को षडयंत्र रचकर मारा। वारंगल के लोग अब उनकी सुनते हैं। उसे अपना राजा मानते हैं। जब अन्नाम देव जंगल पहुँचते हैं तब उन्हें मालूम हो जाता है कि जंगल की बोली में 'राजा' नया शब्द है। राजा जानते थे कि इस जंगल में राज करने के लिए उन्हें बड़ी जुगत लगानी होगी। जंगल को 'राजा' शब्द समझ न आता था। उनकी हुकुमत आदिवासियों के लिए नयी थी। जंगल में हुकूमत एक अजूबा थी। धीरे - धीरे राजा आदिवासियों से मित्रता साबित करते हैं। उन्हें विश्वास दिलाते हैं कि राजा उनका संरक्षक है। इस प्रकार जंगल के लोगों को 'राजा' शब्द अनुशासन का शब्द बन जाता है। वे राजा का आदर करने लगे ।

कई साल बीत गए। पीढ़ियों से राजा का अधिकार जंगल में कायम होता रहा। अंग्रेज़ भारत आए। वे भारत के कई इलाकों को अपने अधीन में रखा। जंगल के लोग परेशान थे कि ये लोग जंगलों पर कब्जा कर लेगा। दुर्वाराव और दोरला नामक आदिवासी इनको लेकर व्याकुल थे। दोराला जंगल के राजा की बातों का समर्थन करता है। "राजा कहते है, यह गौरे (अंग्रेज)और कालों की लड़ाई नहीं है। यह हमारे जंगलों की लड़ाई है।"[2]

दुर्वाराव, दोरला को लेकर जगदलपुर जाता है क्योंकि वह उसे यह दिखाना चाहता है कि किस तरह गौरा, आदिवासियों के जंगल काट रहे हैं, किस तरह जंगल को खत्म कर रहे हैं। जगदलपुर के आसपास लगी बड़ी-बड़ी आरा मिलों को देखकर दोरला भौंचक्का रह गया। बैलगाडियों की एक लंबी लाइन मिल के भीतर लगी थी। दुर्वाराव शोषण के खिलाफ लड़ने का निर्णय लेता है और अपनी राय राजा के सामने प्रस्तुत करता है । तब राजा अपना मत प्रकट करता है, "दुनिया कोई जंगल नहीं है दुर्वाराव! दुनिया में हर कोई अपने राजा को चाहता है, उसका मान करता है। एक राजा की तरह उसका मान करता है। दुनिया जंगल की तरह खुद में डूबी और अनमनी नहीं है , वह अपने राजा के लिए लड - मर सकता है।"[3] क्योंकि हुकूमत का और एक अजीब - सा खौफ राजा को खाए जा रहा था। उसे पता था कि वह अब नाम मात्र का राजा है। असली सत्ता अंग्रेजों के हाथ में है।

जंगल के लोगों को यह समझाने में मुसीबत थी कि वे प्रतिक्षण शोषण के शिकार हो रहे हैं । जंगल की कटाई होती रही। वे यह भी नहीं जानते कि आखिर जंगल के राजा का अहमियत क्या-क्या है और वह कैसे उनकी रक्षा कर सकते हैं। दुर्वाराव आदिवासियों को समझाने की कोशिश करता है कि हमें अंग्रेज़ों के विरुद्ध लड़ना चाहिए। इसलिए राजा की मदद करना ज़रूरी है। लोग लड़ने को तैयार हो गए। दुर्वाराव ने एक सैनिक की टुकड़ी तैयार कर ली। लेकिन जमींदारों को आदिवासी इलाके की जमीन देने का वादा करते हुए अंग्रेज़ जमींदारों के सैनिकों को साथ लेकर आदिवासियों को अपने अधीन में रख लेता है। उनके हाथों में हथकड़ी थी। अंग्रेज़ हुक्मरान चिल्लाता रहा- "हमें सिर्फ दुर्वाराव चाहिए, हमें बाकी किसी से कोई गिला-शिकवा नहीं।"[4] दुर्वाराव आदिवासियों की जान खतरे में डालना नहीं चाहता था। इसलिए वह अंग्रेजों के आगे सिर चुकाया । अंग्रेज दुर्वाराव के हाथ- पाँव बाँधने लगे । दुर्वाराव की फाँसी की खबर मिलने पर दोरला जंगल में अपने लोगों को इकट्ठा करता है । वह आदिवासियों से कहने लगा, "जंगल की हुकूमत

राजा की हुकूमत है। जिस दिन राजा की हुकूमत कायम हो गई यह जान लो कि गोरा अंग्रेज जंगल छोड़कर चला जाएगा और इस तरह जंगल बच जाएँगे।"[5]

राजा की हत्या की गई। यह खबर जंगल के लोगों तक पहुँचा ही नहीं था। उनका विचार है राजा मर नहीं सकता। राजा अमर है। जो खबर आई, सब झूठ है। राजा को मारनेवाला हथियार पानी हो जाते हैं। "राजा कभी मरता नहीं। वह बस शक्ल बदल लेता है जो हथियार राजा को मारने उठता है और पानी बन जाता है। जो व्यक्ति राजा को मारने उसपर हमला करता है, वह कोढी हो जाता है। जो राजा के बारे में अनिष्ठ सोचता है उसका नष्ट होना तय है। राजा को मारा नहीं जा सकता वह अमर होता है।"[6] जंगल के बाहरी लोग जंगल में रोड बनाना चाहते हैं ताकि आसानी से जंगली चीज़ों को शहरों में पहुँचाया जा सके। सरकार ने यह काम सुनार के ऊपर रखा। सबसे पहले जंगल के लोगों को समझाना चाहिए कि यह राजा की हुकूमत है ।

गाँव की थानागुडी में चौकीदार राजा के हुक्म को पढ़कर जंगल के लोगों को सुनाता है कि राजा बाहर नहीं आ सकता, उनका राजदंड भेजा गया जो राजा की हुकूमत का निशान है। राजा ने महल से बाहर जाना बकर दिया है। राजा की जगह उनका राजदंड भेज रहा है। राजदंड आने का मतलब है, राजा का खुद आना - जाना। जंगल में रोड बनाने का काम आदिवासियों के ऊपर रखा। उन्हें यह काम श्रमदान के रूप में करना है। उन्हें पैसे नहीं देते। सामग्री जो खर्च होता है, वह सरकारी राजकोष से उठाया जा सकता है। जंगल के हजारों लोग इकट्ठे होकर रोड के निर्माण का काम करते रहे । इसी बीच डॉ. राजू वहाँ पहुँचते हैं। बिना वेतन के भारी काम बेचारे आदिवासियों से करवाते देखकर वह क्रुद्ध हो जाता है । डॉ. का आक्रोश सब कहीं गूँजने लगा, "हर काम की कीमत होती है। हर काम में किसी न किसी का पेट लगा है। उसे अपने काम के बदले उसकी कीमत चाहिए ताकि वह अपने परिवार का और खुद का पेट भर सके। पर कुछ लोग कीमत नहीं देना चाहते। वह जो लुटेरे हैं,चोर हैं, आततायी है, जो गरीब के हिस्से को मारना चाहते हैं, वे गरीब से मुफ्त में काम करवाना चाहते हैं। यह समझना ज़रूरी है... ।"[7]

बियावान जंगल में डॉ. के उस एकांतिक घर से दूर-दूर तक सिर्फ और सिर्फ जंगल ही जंगल थे । लेकिन अब जंगल की स्थिति दयनीय है। विकास के नाम पर जंगल कटाये जा रहे हैं। जंगल की बहुमूल्य औषधियाँ कटाई जा रही हैं। डॉ. चिल्लाने लगे, "यह सब जो हो रहा है, फरेब है। लोगों की चालबासी है । वे तुम सबसे रोड का यह काम मुफ्त में करवाना चाहते हैं। इसलिए उन्होंने राजाज्ञा का सहारा लिया है यह राजाज्ञा नकली है। यह हम सबका अपमान है। एकदम गलत है।"[8] डॉक्टर आगे कहने लगा, "राजा अब इस दुनिया में नहीं है। राजा मर चुका है राजा को मरे बहुत वक्त हो गया। यह जानना होगा कि राजा अब नहीं है..... अब जो यह काम हो रहा है, यह सरकार कर रही है।अरे! जब राजा ही नहीं है तो उनकी आज्ञा कहाँ से आएगी?"[9]

रोड के दोनों तरफ हजारों की संख्या में जंगल के लोग काम करने में मग्न थे। कुछ लोग आग की भट्टी में डामर पिघलाने का काम कर रहे थे तो कुछ लोग पिघले डामर को रोड पर उडेलने में लगे थे। उन लोगों ने कोमल टहनियों और पत्तों को अपने पैरों में सुतली से बाँध रखा था। उनकी देह पर नाम मात्र के कपड़े थे। चारों ओर अजीब - सा शोर था। तेजी से काम करने के लिए ठेकेदार के लोग चिल्ला रहे थे। डामर सर पर रखे औरतों को कतारबद्ध करने के लिए ठेकेदार के आदमी खडे थे। कई आदिवासियों के पैरों पर घुटने तक जलने और छिलने के घाव थे। कुछ घाव पर पट्टी बंधी थी और कुछ खुले हुए थे पतली काली टांगों पर डामर की पापड़ियाँ चिपकी थी। ठेकेदार का आदमी इन आदिवासियों को खूब दारु पिलाता था। जब-जब वे भूखे होते, ठेकेदार उन्हें दारू पिलवाता। दारू पीकर वे सब जानवरों की तरह काम में जुड जाते थे। सुबह - शाम बस दारू और फिर थककर, जलकर निढाल होने तक वे सब जुडे रहते थे। वहाँ जले के इलाज के नाम पर सिर्फ पानी था। एकाध दिन कोई डॉक्टर आया करता था। जंगल के लोग डॉ.राजू को गालियाँ और शाप देने लगे। वे डॉ. पर आक्रमण करने लगे। सब कहीं कुहराम मच गया। डॉक्टर बेचैन थे। वह कहीं दूर भागने की कोशिश कर रहा था। डॉ. जल्दी में शशांक के घर पहुँचा और कहने लगा कि बाहरी दुनिया को भी यह खबर मिलनी चाहिए कि जंगलों में अब क्या हो रहा है। डॉ. के कहे अनुसार शशांक लिखने लगता है, "आपके समाचार पत्र के लोगों को एक बार इस गाँव आकर इस घटना की रिपोर्टिंग करनी चाहिए। जो राजा मर चुका है उसे जिंदा बताकर कैसे तो लूट यहाँ हो रही है। सड़क का काम जंगल के लोगों से करवाएँगे। राजाज्ञा के नाम पर जंगल के लोग मुफ्त में काम करेंगे। सरकार के लोग फर्जी मस्टर बनाएँगे और लेबर का सारा पैसा खा जाएँगे। यह एक महत्वपूर्ण खबर है। कम से कम आपके समाचार पत्र से तो अपेक्षा है कि बड़े शहरों और राजनीति के अलावा भी अन्य बातों को जगह दें। यह ठीक है कि यहाँ पहुँचना कठिन है। बेहद मुश्किल। पर यह जोखिम जो उठाना होगा... ।"[10]

इस प्रकार आदिवासियों के शोषण से संबंधित विभिन्न मुद्दों को पाठकों के समक्ष रखनेवाला "राजा, जंगल और काला चाँद" नामक उपन्यास आदिवासी जीवन का सच्चा चित्र उकेरता है । इतिहास को कल्पना के सहारे पिरोकर लिखे गये प्रस्तुत उपन्यास के विभिन्न संदर्भ मासूम आदिवासियों के शोषण का दस्तावेज़ है। लेखक श्री.तरुण भटनागर स्वयं बस्तर के रहने वाले हैं। इसलिए अनुसंधान और अनुभवों से अर्जित सच को रोचक उपन्यास का रूप देने में वे पूर्णतया सफल हुए हैं। उन्होंने आदिवासियों के दुःख - दर्द और आक्रोश भरे जीवन की पड़ताल की जो इतिहास में दर्ज है और उनका प्रस्तुत उपन्यास हिन्दी उपन्यास साहित्य में हमेशा चर्चित रहेगा ।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. राजा, जंगल और काला चाँद, तरुण भटनागर, पृ.सं. 19
2. वही, पृ.सं. 43 3.वही, पृ.सं. 48 4.वही, पृ.सं. 52
5. वही, पृ.सं. 53 6.वही, पृ.सं. 135 7.वही, पृ.सं. 139
8. वही, पृ.सं. 139 9.वही, पृ.सं. 140 10.वही,पृ.सं. 142

प्रोफसर, हिन्दी विभाग
यूनिवर्सिटी कालेज, तिरुवनन्तपुरम

इक्कीसवीं सदी की हिंदी कविताओं में चित्रित स्त्री चेतना (निर्मला पुतुल की कविताओं के विशेष संदर्भ में)

परवीज़ पाशा.एस/डॉ. प्रभुसेन

प्रस्तावना: इस संसार में मानव ने बहुत उन्नति कर ली है। आधुनिक कहे जानेवाले मानव ने सभी क्षेत्रों में विकास किया है किंतु वैचारिक तौर पर आज भी पुरातन पंथी है। आज स्त्री को पुरुष के बराबर समझा जाता है, पर क्या यह सच है? इस पितृसत्तात्मक व्यवस्था में हमेशा से ही स्त्रियों को पुरुषों से कमजोर माना गया है। स्त्री को केवल उपभोग की वस्तु समझा जाता रहा है। हम आधुनिकता से उत्तर आधुनिकता की ओर बढ़ रहे हैं, पर स्त्री के प्रति समाज का दृष्टिकोण आज भी बदला नहीं है। आदिवासी और दलित स्त्रियाँ बलात्कार की शिकार होने के लिए अभिशप्त हैं। आज के भारत की यह भयंकर सच्चाई है। गाँव-देहात में रहने वाली आदिवासी स्त्रियों को राज्य की सुरक्षा मिलने की दूर-दूर तक आशा नहीं है। हर दिन समाचार-पत्रों में छपने वाली बलात्कार, हिंसक हमले, नंगा घुमाने, चुहल के नाम पर प्रताडित करने तथा हत्या कर देने की घटनाएँ सामने आती हैं। आदिवासी साहित्य में स्त्रियों के बहुत से सवालों को महत्व मिला है। इसमें इस समाज की प्रताड़ित स्त्रियों की पीड़ा और वेदना, उनकी अंतर्वेदना, उनकी कराह, चीख और मदद के लिए उनके द्वारा लगाई जा रही गुहारें, पहाड़ों, जंगलों तथा घाटियों में बज रहे नगाड़े की तरह गूँज उठती हैं।

हिंदी साहित्य की सभी विधाओं में स्त्रियों जीवन पर आधारित रचनाएँ लिखी गई हैं। आज स्त्रियों भी अपनी लेखनी के माध्यम से अपनी मौजूदगी दर्ज कर रही हैं। निर्मला पुतुल ने अपनी लेखनी के माध्यम से स्त्री के सामाजिक, आर्थिक, पारिवारिक और मानसिक स्थिति को उजागर किया है। निर्मला पुतुल की कविताओं में आदिवासी जीवन के अनेक आयामों और परिवेश को देखा जा सकता है। साथ ही स्त्रियों की वेदना, पीड़ा, उपेक्षा को भी मार्मिक रूप में अभिव्यक्त किया है। निर्मला पुतुल की कविताओं में स्त्री अपने दर्द को अभिव्यक्त करने के साथ पुरुष व्यवस्था का भी विरोध करती है।

• **आदिवासी स्त्री की वेदना:** निर्मला पुतुल की स्त्री अपने होने की, स्वयं के अस्तित्व की तलाश करती हुई दिखाई देती है। वह पुरुष प्रधान समाज में घर, परिवार, प्रेम, रिश्ते-नाते संबंधों में अपने स्थान को खोजती है। वह सदियों से किसी न किसी पुरुष पर निर्भर रही। या फिर उसे रहना पड़ा है। या उसे वैसा रहने के लिए बाध्य किया गया है। उसे पिता, भाई, पिता, पुत्र के सहारे जीवन जीना पड़ा है। बचपन से लेकर विवाह तक माता-पिता के घर और विवाह के बाद पति का अनजाना घर, अचानक विवाह होने के उपरांत अनजाने घर में प्रत्येक स्थितियों में स्थापित करना पड़ा है। इसी दर्द, पीड़ा, वेदना को पूरी संवेदना के साथ अपनी कविता में अभिव्यक्त करते हुए कवयित्री कहती हैं- "क्या तुम जानते हो/एक स्त्री के समस्त रिश्ते का व्याकरण/ बता सकते हो तुम/एक स्त्री को स्त्री दृष्टि से देखते /उसके स्त्रीत्व की परिभाषा /अगर नहीं /तो फिर जानते क्या हो तुम / रसोई और विस्तर के मणित में परे /एक स्त्री के बारे में।"

• **आदिवासी स्त्री का स्वतंत्र अस्तित्व और अस्मिता:** स्त्री के स्वतंत्र अस्तित्व और अस्मिता के प्रति यह सचेत भाव निर्मला पुतुल को किसी भी स्त्रीवादी कवयित्री के समकक्ष खड़ा करता है। इतना ही नहीं उसके भाग जो मुट्ठी भर प्रश्न हैं उसमें वह अपने साथी से पूछती है कि उसके लिए यानी पुरुष के लिए स्त्री अस्तित्व के क्या मायने हैं? वर्तमान समय का परिदृश्य स्त्री को उत्पाद में बदल देने को तैयार है। इसलिए अपनी ज़मीन तलाशती व्याकुल स्त्री का रूप निर्मला पुतुल की कविता में उभरा है। यथा- "मैं स्वयं को स्वयं की दृष्टि में देखते/मुक्त होना चाहती हूँ अपनी जाति से/क्या है मात्र एक स्वप्न के /स्त्री के लिए घर संतान और प्रेम?/क्या है?"[2]

• **आदिवासी स्त्री का जीवन:** स्त्री एक स्त्री को अपना जीवन पिता, पति और पुत्र के सहारे ही जीना होता है। इस पितृसत्तात्मक समाज में वह अपने अस्तित्व के साथ अपना स्थान भी तलाशती है। स्त्री को एक ही समय में स्थापित एवं निर्वासित होना पड़ता है। बचपन से लाड़-दुलार से उसे बड़ा करके विवाह के बाद पति के अनजान घर भेजा जाता है। इसी वेदना को व्यक्त करते हुए कवयित्री बयान करती है- "'क्या तुम जानते हो/अपनी कल्पना में /किस तरह एक ही समय में / स्वयं को स्थापित और निर्वासित /करती है एक स्त्री?"[3]

आदिकाल से ही स्त्री को मात्र चार दीवारी में ही सीमित रखा गया। उसकी सारी इच्छाओं का दमन किया गया। जब-जब उसने अपने ऊपर हो रहे अत्याचार का विरोध करना चाहा तब प्रेमवश या क्रोध से पुरुष उसे दबाता चला आया है। पुरुष के लिए स्त्री केवल भोग की वस्तु रही है। भोग के अतिरिक्त पुरुष स्त्री को कभी जान ही नहीं पाया है। कवयित्री 'क्या तुम जानते हो' कविता में कहती है कि- "क्या तुम जानते हो/पुरुष से भिन्न/एक स्त्री का एकांत। /घर प्रेम और जाति से अलग /एक स्त्री को उसकी अपनी जमीन /के बारे में बता सकते हो तुम?"[4]

• **आदिवासी स्त्री का द्वंद्व :** निर्मला पुतुल जी की नजरों में स्त्री पुरुषों के लिए मात्र भोग्य वस्तु रही है। पुरुष ने स्त्री को इसके परे जाकर कभी समझा ही नहीं है, ना ही स्त्री होने का दर्द कभी

महसूस किया है। इसलिए वह पुरुषों से आक्रांत होकर सवाल करती है कि तुम स्त्री के गर्भ में बीज तो छोड़ देते हो पर कभी गर्भवती स्त्री का दर्द, वेदना और पीड़ा तुमने कभी समझा है? महसूस किया है? स्त्री, पुरुष की नजरों में केवल शरीर ही रही है। उससे परे उसने उसे नहीं समझा है। पुरुष ने कभी स्त्रियों की बेदना को जाना ही नहीं है। कववित्री कहती है कि पुरुष स्त्री के गर्भ में बीज तो छोड़ देता है, परंतु गर्भवती स्त्री की वेदना को समझने की कोशिश कभी नहीं करता है। उसने स्त्री को केवल रसोई, गृहस्थी संभालने तक ही सीमित रखा है। इसे छोडकर स्त्री के मन में चल रहे इंद्र को कभी नहीं जाना है। यही कारण है कि निर्मला पुतुल अपनी कविताओं में क्रोध प्रकट करते हुए सवाल करती है- "तन के भूगोल से परे /एक स्त्री के /मन की गाँठ खोल कर /कभी पड़ा है तुमने /उसके भीतर का खौलता इतिहास? /अगर नहीं। /तो फिर जानते क्या हो तुम? /रसोई और बिस्तर के गणित से परे /एक स्त्री के बारे में...।"[5]

• **आदिवासी स्त्री का संघर्ष :** आज विश्व सभ्यता का अधिकांश मानव-समुदाय विस्थापित जीवन जीने को मजबूर है। आदिवासी स्त्रियों को विस्थापन के कारण गंभीर संकटों और समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। इस समुदाय की स्मृतियों एवं इतिहास को मिटाकर उसे हाशिये पर धकेला जा रहा है। आदिवासी स्त्रियों अपनी जीविका के लिए चटाइयाँ, पंखा आदि बनाती है परंतु उनका प्रयोग स्वयं के लिए नहीं कर सकती। इसी विडंबना को कवयित्री 'बाहुमुनी' कविता में अंकित करती हैं- "तुम्हारे हाथों बने पत्तल पर भरते है पेट हजारों /पर हजारों पत्तल भर नहीं पाते तुम्हारा पेट / कैसी विडंबना है कि /जमींन पर बैठ बुनती हो चटाइयाँ /और पंखा बनाते टपकता है /जिन घरों के लिए बनाती हो झाड़ू /उन्हीं से आते हैं कचरे तुम्हारी बस्तियों में।"[6]

निर्मला पुतुल अपनी कविताओं के द्वारा स्त्री की वेदना को व्यक्त करती हैं। स्त्री को पुरुष की तुलना में कमज़ोर माना गया है और उसकी मेहनत की नजरअंदाज किया गया है। निर्मला पुतुल की कविताओं की स्त्री समाज के सारे बंधनों को तोड़कर उन्मुक्त आकाश में विचरण करने की इच्छुक है। जिन बंधनों ने उसे सदैव दबाये रखा उससे वह मुक्ति चाहती है- "एक उन्मुक्त आकाश/जो शब्द से परे हो /एक हाथ जो हाथ नहीं / उसके होने का आभास हो।"[7]

• **आदिवासी स्त्री की अलग पहचान:** आज स्त्री अपनी एक अलग पहचान बनाना चाहती है। वह घर, प्रेम और जाति से परे अपनी जमींन तलाशती है जो केवल उसकी हो। इन कविताओं के द्वारा निर्मला पुतुल स्त्री को मात्र देह समझने वाली मानसिकता का खंडन करती है। कवयित्री आदिवासी स्त्रियों के साथ होने वाले अत्याचार और शारीरिक शोषण को समाज के सम्मुख लाती है। तथाकथित सभ्य समाज में रहने वाले पुरुष ललचाई हुई आँखों से उनकी देह को निहारते रहते हैं- "मेरा सबकुछ अप्रिय है उनकी नजर में /प्रिय है तो बस/मेरे पसीने से पुष्ट हुए अनाज के दाने /जंगल के फूल, फल, लकड़ियों /खेतों में सब्जियों घर मुर्गियों /उन्हें प्रिय है मेरी गदराई देह।"[8]

• **आदिवासी स्त्री की मुक्ति की कामना:** कवयित्री अपनी कविताओं में स्त्री मुक्ति की कामना करती है और उसके लिए संघर्ष करने की राह दिखाती है। स्त्री समाज में अपना स्वतंत्र जीवन चाहती है। निर्मला पुतुल की कविता रवी संभेदना एवं भावना को अभिव्यक्त करने के साथ हमें स्त्रियों की दशा पर चिंतन करने के लिए विवश भी करती है। स्त्री की मुक्ति ही निर्मला की कविताओं का केंद्र बिंदु है। स्त्री को पहचान दिलाना ही इन कविताओं का प्रमुख उद्देश्य है। कवयित्री अपनी कविताओं के माध्यम से स्त्रियों को इतिहास में नई जगह दिलाती है। कवयित्री ने केवल स्त्रियों के शोषण का वर्णन ही नहीं किया बल्कि कविताओं के द्वारा विद्रोह भी व्यक्त किया है। वह निडर होकर अपने ऊपर हुए अत्याचार को सबके सम्मुख प्रस्तुत करते हुए कहती है कि- "'पर तुम ही बताओ यह कैसे संभव है?/ आँख रहते अंधी कैसे हो जाउँ में?/कैसे कह दूँ रात को दिन?/ खून को पानी कैसे लिख दूँ।"[9]

सदियों से पुरुष प्रधान व्यवस्था को सहने बाली स्त्री प्रेम, जाति, समाज से परे आक्रोश प्रकट करते हुए अपना अस्तित्व बनाना चाहती है। निर्मला पुतुल की कविता स्त्री के उन प्रश्नों को उठाती है जो पुरुष प्रधान व्यवस्था की बजह से केंद्र में नहीं आ पाए थे और आज की स्त्री अपने घर की तलाश में निरंतर संघर्षशील दिखाई देती है। वह मुक्त गगन में स्वच्छंद उड़ना चाहती है। सदियों से पितृसत्ताक समाज द्वारा प्रताड़ित स्त्री पुरुष के लिए केवल भोग्या ही रही है। पुरुष ने स्त्री का शोषण और उसपर अधिकार जमाने के सिवाय और कुछ नहीं किया है। पुरुषों ने स्त्री को कभी समझा ही नहीं है। निर्मला पुतुल की कविताओं में स्त्रियों के प्रति गहरी संवेदना झलखती है। मुख्य रूप से कवयित्री निर्मला पुतुल ने आदिवासी स्त्री की वेदना, अत्याचार, संघर्ष को रेखांकित किया है।

संदर्भ सूची :

1. निर्मला पुतुल नगाड़े की तरह बजते शब्द, पृ.सं. 8
2. वहीं, पृ.सं. 9 3. वहीं, पृ.सं. 8 4. वहीं, पृ.सं. 8
5. वहीं, पृ 8 6. वहीं, पृ.सं. 12 7. वहीं, पृ.सं. 9
8. वहीं, पृ.सं. 73 9. वहीं, 11

शोध निदेशक
डॉ.प्रभुसेन, सहायक आचार्य
क.रा.मुक्त विश्वविद्यालय, मैसूर।

शोधार्थी
हिन्दी विभाग
कर्नाटक राज्य मुक्त विश्वविद्यालय
मैसूर, मोबाइल-7829292988

'पिंजर' और 'गुजरात पाकिस्तान से गुजरात हिंदुस्तान' में अभिव्यक्त विस्थापन की विभीषिकाएँ

एम आर गोपिका

सार

अमृता प्रीतम एवं कृष्णा सोबती के उपन्यास 'पिंजर' और 'गुजरात पाकिस्तान से गुजरात हिंदुस्तान' में विस्थापन का मार्मिक चित्रीकरण हुआ है। तुलनात्मक दृष्टिकोण से परखे तो दोनों ही उपन्यासों में सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक आदि स्तर पर अमृता प्रीतम जी एवं कृष्णा सोबती जी ने विस्थापन की त्रासदी का वर्णन किया है। अमृता प्रीतम जी एवं कृष्णा सोबती जी की लेखन शैली अलग-अलग है लेकिन विभाजन की गाथा एक ही कहानी दोहरा रही है- 'असहनीय त्रासदी'। दोनो ही लेखिकाएँ 1947 के भारत-पाक विभाजन को अपनी आँखों से देख चुकीं हैं और दोनों लेखिकाओं के परिवार इस त्रासदी के शिकार भी हुए हैं। अमृता प्रीतम की 'पूरो' विभाजन के पूर्व की घटनाओं से गुज़रती है और कृष्णा सोबती जी की नायिका 'सोबती बाई' विस्थापन के बाद की। इस पेपर में दोनों उपन्यासों में सामाजिक राजनैतिक, धार्मिक, आर्थिक, मानसिक स्तर पर विस्थापन पर प्रकाश डाला गया है। 'पिंजर' एवं 'गुजरात पाकिस्तान से गुजरात हिंदुस्तान' दोनों उपन्यास हमें विस्थापन से साक्षात्कार कराने में समर्थ हुए हैं ।

बीज शब्द : विस्थापन, त्रासदी, नारी, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, मानसिक, शरणार्थी, अपहरण

प्रस्थावनाः

भारत-पाकिस्तान का विभाजन हिंदुस्तान की सबसे बड़ी त्रासदियों में से एक है। हज़ारों-लाखों की संख्या में हिन्दू और मुसलमान मारे गए थे। इस भागदौड़ में सबसे अधिक प्रताडना स्त्रियाँ ही सही थीं। स्त्रियों का अपहरण उस समय सामान्य बात हो गई थी।

अमृता प्रीतम ने 'पिंजर' उपन्यास एवं कृष्णा सोबती ने 'गुजरात पाकिस्तान से गुजरात हिन्दुस्तान में' विस्थापन के विषय को विस्तार से चित्रित किया है, जो एक विशाल कैनवास की तरह है जिसमें विभाजन के दौरान हुए विस्थापन के मानवीय पहलुओं को उजागर किया गया है। दोनो ही लेखिकाओं ने व्यक्तिगत रूप से भारत-पाकिस्तान विभाजन का सामना किया है। अमृता प्रीतम जी एवं कृष्णा सोबती जी दोनों का जन्म एवं बचपन आज के पाकिस्तान में हुआ था लेकिन विभाजन के वक्त उन्हें भारत आ बसना पड़ा था। उनके आँखों देखा विभाजन उनके इन उपन्यासों में अंकित हुआ है ।

भारत-पाक विभाजन और हिन्दी साहित्य

विस्थापन शब्द का अर्थ होता है- एक जगह से दूसरी जगह जा बसना अथवा विस्थापित होना। हिन्दुस्तान के इतिहास का सबसे बड़ा विस्थापन 'भारत-पाक विभाजन' है।

धर्म के नाम पर हुए इस बटँवारे में हज़ारों लोग मारे गए। गाँवों के गाँव खाली हो गए। दोनो देशों में शरणार्थियों की बाड़-सी आ गयी थी। इस हिन्दू-मुस्लिम फूट में सबसे अधिक प्रभाव बच्चों और स्त्रियों पर पड़ा। स्त्रियों का अपहरण किया गया, उनसे जबरदस्ती शादी कर धर्म परिवर्तन भी किया गया । सरकार की सबसे बड़ी समस्या ऐसी स्त्रियों को वापस अपने मुल्क पहुँचाना था। इस क्रूर दास्तान का वर्णन हिन्दी साहित्य में भी देखने को मिलता है।

अमृता प्रीतम जी एवं कृष्णा सोबती जी भी इस करुण गाथा को अंकित करने से पीछे नहीं हटी थी। अमृता प्रीतम एवं कृष्णा सोबती ने विस्थापन पर उपन्यास के अलावा कहानियाँ भी लिखी हैं। 'झूठा सच', 'तमस', 'कितने पाकिस्तान', 'छोटे-छोटे महायुद्ध' आदि देश विभाजन पर आधारित उपन्यास हैं।

'पिंजर' और 'गुजरात पाकिस्तान से गुजरात हिन्दुस्तान' में विस्थापन

'पिंजर' उपन्यास में पूरो नामक नायिका का अपहरण किया जाता है लेकिन यह अपहरण विभाजन के पूर्व घटित होता है। उपन्यास का नायक एवं खलनायक 'रशीद' खानदानी शत्रुता के कारण बदले की आग से पूरो का अपहरण करता है एवं जब पूरो का परिवार उसे वापस अपनाने से इन्कार कर देता है तब उसका धर्म परिवर्तन कर हमीदा नाग उसकी कलाई पर खुदवाता है और पूरो से विवाह कर लेता है। तन-मन से पिंज़र बनी यह पूरो इसके पश्चात भारत-पाक विभाजन को अपनी आँखों के सामने घटित होता देखती है जो पिंजर उपन्यास के इन वाक्यों में है - 'पूरो सब कुछ आँखों से देखती थी, कानों से सुनती थी। उसके अपने गाँव में और आस-पास के गाँवों में भी लोग लोहा इकट्ठा कर रहे थे , भाले और बरछियाँ संभाल-संभालकर अपनी कोठरियों में रख रहे थे।'[1] पिंजर उपन्यास की इन पंक्तियों से समझा जा सकता है कि हिन्दू-मुसलमानों की आपसी घृणा एवं शत्रुता कितनी अधिक थी ।

कृष्णा सोबती जी के उपन्यास 'गुजरात पाकिस्तान से गुजरात हिन्दुस्तान' की नायिका का नाम 'कृष्णा सोबती बाई' है। विभाजन के दौरान शरणार्थियों पर क्या बीती इसका उदाहरण है सोबती बाई। सोबती बाई का जन्म आज के पाकिस्तान के गुजरात नामक जगह पर होता है। सोबती बाई के कुछ रिश्तेदार विभाजन से पूर्व ही भारत में रह रहे थे। जब देश का बटँवारा होता है तब सोबती बाई भारत के दिल्ली में परिवार समेत आ जाती है। अपनी नौकरी के सिलसिले में वह गुजरात एवं राजस्थान की सीमा पर पड़ने वाले 'सिरोही' में आ जाती है एवं सिरोही के नन्हे राजकुमार तेजसिंह की गवर्नेस पद पर काम करती है। कृष्णा जी अपने इस उपन्यास की नायिका 'सोबती बाई' के माध्यम से भारत आए शरणार्थियों की आर्थिक स्थिति उनके मानसिक तनाव और अलगाव का चित्रण बड़े मार्मिक ढ़ग से पेश किया है। 'सोबती बाई' को शरणार्थी होने के कारण कई भेद-भाव का सामना करना पड़ता है। सोबती बाई देखती है कि कई लोग कुटियाँ बनाकर रहते हैं। जिनके रिश्तेदार भारत में पहले से बसे हुए थे, वहाँ शरणार्थियों की भीड़ लग गई। सोबती बाई के अपने बड़े मौसा-मौसी भारत में पहले से बसे हुए थे, उनके घर भी कई रिश्तेदार आकर रुके। सोबती बाई के छोटे मौसा-मौसी को भी अपने कारोबार नए से आरंभ करना पड़ा।

वहाँ कई अन्य शरणार्थी भी होते हैं जिनका अब कोई नहीं बचा, ऐसे लोग पागलों की तरह भटकते फिरते हैं। सोबती बाई देखती है कि उनकी अपनी नानी खामोश रहने लगी थी और पुराने दिनों को याद कर अफसोस होती थी। जब यह सब तनाव सोबती बाई के शमन से अधिक हो जाता है वह अपनी सिरोही की नौकरी त्याग कर अपने परिवार के पास दिल्ली लौट आती है।

अमृता प्रीतम जी ने यह उपन्यास सन् 1950 में लिखा था। तब उनके घाव ताज़ा थे। कृष्णा सोबती जी का 'गुजरात पाकिस्तान से गुजरात हिन्दुस्तान' उपन्यास 2018 में प्रकाशित हुआ एवं यह उपन्यास उनके आखिरी रचनाओं में से एक था। विभाजन के इतने वर्षों के पश्चात भी कृष्णा सोबती जी विभाजन की त्रासदी को भुला न सकी। तभी उन्होंने यह उपन्यास लिखा।

दोनों उपन्यासों में विस्थापन का सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक प्रभाव

विस्थापन का प्रभाव सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक आदि स्तर पर काफी बड़ा होता है। आज भी इस विस्थापन की विभीषिकाएँ समाज में देखी जा सकती हैं। दोनों लेखिकाओं ने सन् 1947 से पहले और बाद हुई त्रासदियों का वर्णन किया है। दोनो उपन्यासों की सबसे बड़ी खासियत यह है कि दोनों लेखिकाओं ने एक स्त्री पात्र के नज़रिए से विभाजन की कहानी कही है। 'पिंजर' उपन्यास में पूरो के माध्यम से और 'गुजरात पाकिस्तान से गुजरात हिन्दस्तान' में सोबती बाई के माध्यम से।

सामाजिक स्तर पर देखे तो भारत एवं पाकिस्तान के इतिहास का सबसे बड़ा विस्थापन भारत-पाक विभाजन ही है। समाज लोगों से बनता है और जब धर्म के नाम पर बटँवारा हो तब समाज अपने मूल्यों को खो बैठता है। पिंजर एवं गुजरात पाकिस्तान से गुजरात हिन्दुस्तान दोनों ही उपन्यासों में इस बात का सामान्य रूप से वर्णन हुआ है कि समाज अपनी इन्सानियत को उस समय खो बैठा था। पिंजर उपन्यास में पूरो की भाभी 'लाजो' को एक मुसलमान उठा कर ले जाता है और ज़ोर-ज़बरदस्ती कर अपनी पत्नी बना कर रखता है। गुजरात पाकिस्तान से गुजरात हिन्दुस्तान में भी सोबती बाई के मौसा-मौसी के घर के पास रहने वाली स्त्री विभाजन के कारण अनाथ हो जाती है, पागलों की तरह इधर-उधर भटकती है। समाज इन शरणार्थियों पर कोई दया नहीं करता, तभी कृष्णा सोबती जी कहती है- "विभाजन-एक शब्द। शरणार्थी एक विशेषण। लुटा-पुटा गरीब कैंपों में रहनेवाला। विस्थापितों को राशन मुफ्त मिल सकता है। फार्म भरा होना चाहिए तो कम्बल के भी हकदार हो सकते है।"[2]

विस्थापन का प्रभाव आर्थिक स्तर पर भी दोनों देशों में नकारात्मक ही पड़ा। पिंजर में दिखाया गया है कि किस प्रकार कई काफिले भारत की ओर प्रस्थान करते है और अपने ज़ायजाद, मकान सब कुछ पीछे छोड़ जाते हैं। रजत द्विवेदी के शब्दों में कहें तो - "दीवार पर लगी सीलन से पता चल रहा है, बहुत रोया था एक रोज़ ये भी घर बटँवारे पर!"[3]

पिंजर उपन्यास में इस बात का विवरण मिलता है कि खाने-पीने का सामान लोग अपने सोने-चाँदी के आभूषण बेच कर इकट्ठा कर रहे थे। 'गुजरात पाकिस्तान से गुजरात हिन्दुस्तान' में भी यह शरणार्थी धन के अभाव में टिन के टेंट बनाकर रहते हैं। बस एक कंबल में इन्हें गुज़ारा करना पड़ा। इनकी हालत काफी खराब थी। अत्यधिक परिश्रम के बाद सरकार इन्हें रहने के घर, अन्न, शिक्षा आदि का प्रबंध कर पायी थी। इतना ही नहीं जब मनुष्य अपना सब कुछ खो बैठता है तब वह मानसिक रूप से भी टूट जाता है। पिंजर की पूरो का सारा परिवार विभाजन के दौरान भारत चला जाता है। पूरों अब मुसलिम स्त्री थी इसलिए पाकिस्तान में ही अपने पति और बच्चे के साथ रह जाती है और आखिरी बार भी अपनी माँ से नहीं मिल पाती। कृष्णा सोबती की सोबती बाई भी अपने गाँव, अपने दोस्तों सभी से विछुड़

जाती है। यहाँ तक की उनकी सहेली और पति की हत्या कर दी जाती है। इस प्रकार देखे तो विभाजन ने मानसिक रूप से लोगों को ऐसे घाव दिए जिससे उनके जीवन पर दीर्घकालिक प्रभाव पड़ा।

राजनैतिक स्तर पर देखे तो भारत-पाक बटँवारे का कारण 'राजनीति' ही है। राजनीति के चक्कर में लाखों लोगों को जान गवानी पड़ी। गुजरात पाकिस्तान से गुजरात हिन्दुस्तान में दिखाया गया है कि 'सिरोही' का राजपरिवार अभी भी इस बात पर परेशान है कि अगला राजा कौन बनेगा। जबकि दूसरी तरफ वहाँ के निवासी नेताओं की जयकार कर रहे हैं। इस बात का चित्रण उपन्यास के इन पक्तियों में देखने को मिलता है - 'तिरंगी झंडियाँ लहरा रही थीं। महाराज और महारानी के सामने झुक-झुक जाने वाले सिरों पर गांधी टोपियाँ चमक रहीं थी।'[4]

निष्कर्ष

निष्कर्ष में कहे तो अमृता प्रीतम जी एवं कृष्णा सोबती जी भारत-पाक विभाजन की शिकार बनी थी। अपने परिवार सहित इन दोनों लेखिकाओं ने इस त्रासदी का सामना किया और अपने इस त्रासदी की कहानी को उपन्यास में बदला। दोनों ही उपन्यासों में नायिकाएँ ही विभाजन की त्रासदी से गुज़रती हैं। दोनों ही उपन्यासों में दिखाया गया है कि दोनों देशों को सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक एवं मानसिक रूप से पतन का सामना करना पड़ा।

'पिंजर' उपन्यास की पूरो विस्थापन का पाकिस्तान में रहकर कहानी दिखाती है और 'गुजरात पाकिस्तान से गुजरात हिन्दुस्तान' की सोबती बाई विस्थापन के पश्चात भारत की अवस्था का वर्णन करती है। दोनो उपन्यासों का समान भाव है 'त्रासदी'। पिंजर की पूरो अपने भविष्य को स्वीकार कर लेती है लेकिन सोबती बाई इस ज़िंदगी में आए परिवर्तनों को स्वीकार करने में अक्षम रह जाती है और मानसिक रूप से हार मान लेती है। विस्थापन की त्रासदी को आत्मसात करने में दोनों ही उपन्यास सफल हुए हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. पिंजर, पृष्ठ संख्या-80
2. गुजरात पाकिस्तान से गुजरात हिन्दुस्तान, पृष्ठ संख्या-42
3. रजत द्विवेदी शायरी, (https://www.yourquote.in)
4. गुजरात पाकिस्तान से गुजरात हिन्दुस्तान, पृष्ठ संख्या-79
5. विस्थापन का साहित्यिक विमर्श, अचला पाण्डेय, 2019
6. अमृता प्रीतम, सुतिंदर सिंह नूर, 2012

शोध छात्रा, राजकीय महिला महाविद्यालय
तिरुवनंतपुरम, केरल विश्वविद्यालय

कविता

चैन की बंसी

डॉ.रंजीत रविशैलम

है चैन.....
बेचैन क्यों तुम?
निराशा की परत हताशा तक
दुनिया के रीतों-रिवाज़ों को पारकर
उस असीम तक जी पहुँचने पर....दिखता है....
तुम्हारे पूर्वजों की लंबी कतार....
और उनके सामने अनंत वीरान जनांत है.....
वहाँ किसी जंगली मानुष तुम्हें देख-
अपने पीले पीले बन्दरनुमा हँसी हँसकर
यह कहता हो
चैन का जीवन था.... हमारा....
तुम बेचैन क्यों हो?
मालूम नहीं .... तब
चैन की बंसी बजने लगी थी।

संपादक, केरल ज्योति

कविता

हिंदी

प्रो.(डॉ.) मनु

हिंदी
हिन्द को
दुनिया भर में फैलाने की
ज़ोरदार
कारगर दवा है।

यह बाहर की बात है
अंदर की बात
यह है कि

हिंदी हिन्द को
दिलों को जुड़ाने का
ज़ोरदार
कारगर ज़ज़्बा है।

मेरे आँगन का छतनार पेड़

प्रो हिल्डा जोसफ

सुनो यार! एक ऋद्धिगाथा मेरी शिशुता की
जो वाकई चुभ रही दिल को बुढौती की साँझ में।
सिमटी है जिसमें मेरी गीली-गीली साँसें।
उजली स्मृतियों की कुछ ठंडी ठंडी आहें।।

मम जन्मगेह के आँगन की दक्खिनी बगल में
शान से खड़ा था एकपेड़ कटहल का
बरसों से ऊर्जा खींच-खींच धरती से,
पल बढ आया तरुवर नन्हा तनावर।।

दान-दया संवेदन का महत् इतिहास रचाये,
मम जन्मगेह की आन-शान उर में संजोये,
चहुँ ओर की चहल-पहल से सदा मुँह फेर,
खडा था आबदार, चैन का चमन-सा छायादार।।

छतनार वह फलदार पेड़ गर्मियों में बहुधा
अमृतोत्सव मनाता मधु-रसदार मिठफलों का।
बाल बुड्ढे, महरी, मज़दूर, माली, मनिहार सब
इकट्ठे होते उस तने की तरल तलहटी में हर रोज़।।

महादानी बुजुर्ग वह था देखन में गरिमावान
आकार था भारी-भरकम बहुल ऊर्जावान।
घनाघन चमचम पत्तों की चरमर तान
पियारे पवन के साये में छेड़ती मरमर गान।।

नयनाभ, नमीदार, नमित गुच्छे कटहल के
ऊपर से तने के नीचे तक बिल-डुल लटकते।
रोज़ पथिकों को हर्षाते, आकर्षित करते।
निज रसदार फल यथेष्ट बाँट-बाँट देते।।

नटखट लड़के गली में घूमते, फल तोड़ भागते
श्रमिक जन मध्याह्न को आते, थकान मिटाते
संग-संग बैठके फल खाते, दूसरों को देते
गप उडाते डकार भरते, चैन से लौटते।।
पीले तगडे गुच्छे शाख-शाख में लटकते
झूमते-हिलते, मन-मन डोल-डोल जाते।
दीठ न लग जाय कहीं, राह चलनेवालों की,
आशंकित हो नानी लहसुन का पानी ठिडकती।।

था एक बडा-सा खोखला पेड के तने में।
घोंसला बनातीं रमतीं नित मोहिनी मैनाएँ।
मधुभाषिणी गौरैयों का आसरा लेना वहाँ
नयनोत्सव पड़ता शिशुमन को रोज़ाना।।

मम जन्मगेह के आँगन का यह बलिष्ठ तरुवर
बरसों खड़ा रहा प्राणीजगत को सायेदार।
किंतु हो गया दूर-दूर मूझसे बुढौती की साँझ में
ललक उठा मन-झूल आये वह यार नयनों में इक बार।।

किंतु जानो यार! यह दुनिया है विलुप्ति के कगार पर।
खतम हो गया मेरे छुटपन का मोहक किस्सा।
अरसों रहा जो पेड़ मेरे जन्मगेह का अलंकरण
कुचला गया किसी अट्टालिका की नींव-तले।।

रे मन! तू अकुलाता क्यों? दुनिया है क्षणभंगुर।
नई सभ्यता की दल-दल में दबदबाये-सब
विलुप्त हो जाएँगे किसी न किसी दिन।
दुनिया है आनी-जानी, यह तेरी-मेरी कहानी।।

सेवानिवृत्त उपनिदेशक
कॉलिजीय शिक्षा विभाग, केरल।
मोबाईल : 9446328445

उच्चतर माध्यमिक स्तर पर वाणिज्य संगठन और प्रबंधन सिखाने के लिए मिश्रित शिक्षण रणनीति की प्रभावशीलता

जसवंतसिंह हरमनसिंह सोलंकी/डॉ.जयश्री दास

सारांश: मिश्रित शिक्षा को उनके वर्गीकरण के आधार पर दो या दो से अधिक विभिन्न प्रकार की शिक्षा पद्धति के एकीकरण के रूप में संदर्भित किया जाता है: भौतिक बनाम आभासी कक्षाएं, औपचारिक बनाम अनौपचारिक शिक्षा और समयबद्ध बनाम स्वयं-गति से शिक्षा। उनकी परिभाषा का एक महत्वपूर्ण पहलू यह है कि कम से कम एक सीखने का प्रकार पारंपरिक, व्यक्तिगत कक्षा शिक्षण होना चाहिए, जबकि एक अतिरिक्त प्रकार की अर्थात ऑनलाइन सीखना। यह सुनिश्चित करता है कि मिश्रित शिक्षा में पारंपरिक और डिजिटल सीखने के तरीकों का मिश्रण शामिल है। (किम, 2007) यह प्रायोगिक अध्ययन उच्चतर माध्यमिक स्तर पर वाणिज्य और प्रबंधन के संगठन विषय में छात्र की उपलब्धि पर एक मिश्रित शिक्षण रणनीति के प्रभाव की जांच करने के लिए किया गया था। इस शोध में GSHSEB से संबद्ध गुजरात के वडोदरा के दो स्कूलों के कक्षा XI के 29 छात्र शामिल थे। निष्कर्षों से पता चला कि मिश्रित शिक्षण रणनीति ने प्रयोगात्मक समूह के विद्यार्थियों की उपलब्धि में, नियंत्रण समूह के विद्यार्थियों की तुलना में, जिन्हें पारंपरिक शिक्षण विधियों का उपयोग करके पढ़ाया गया था, महत्वपूर्ण रूप से सुधार किया।

मुख्य शब्द: मिश्रित शिक्षण, मिश्रित शिक्षण रणनीति, वाणिज्य और प्रबंधन का संगठन

परिचय: 21वीं सदी में शिक्षकों को शिक्षार्थियों की ज़रूरतों और अपेक्षाओं को पूरा करने के लिए शिक्षा के क्षेत्र में नई तकनीकों का उपयोग करने में सक्षम होना चाहिए। शिक्षकों को पर्याप्त ज्ञान और निर्दिष्ट कौशल के साथ उपयुक्त शैक्षणिक प्रथाओं से लैस होना चाहिए, साथ ही तकनीक को शामिल करना आना चाहिए जो शिक्षार्थियों की भागीदारी और परिणामों को बढ़ावा देने के लिए आवश्यक है। शिक्षा में प्रौद्योगिकी एकीकरण में सीखने की प्रक्रिया को बेहतर बनाने और समृद्ध करने के लिए डिजिटल उपकरणों और संसाधनों का लाभ उठाना शामिल है। विभिन्न प्रकार की प्रौद्योगिकी को शामिल करके - जैसे कि आभासी कक्षाएँ - छात्र शैक्षिक लक्ष्यों को प्राप्त करने में अधिक सक्रिय रूप से शामिल होते हैं। यह दृष्टिकोण विभेदित निर्देश का भी समर्थन करता है, जिससे शिक्षकों को अलग-अलग छात्रों की विविध आवश्यकताओं और सीखने की शैलियों को संबोधित करने के लिए पाठ तैयार करने की अनुमति मिलती है, जबकि अभी भी एक सुसंगत कक्षा का माहौल बनाए रखा जाता है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति (एनईपी) 2020 शिक्षा में प्रौद्योगिकी के व्यापक एकीकरण की सिफारिश करती है, जिसमें पारंपरिक शिक्षण के पूरक के लिए ई-पुस्तकें, ऑनलाइन शिक्षण प्लेटफॉर्म और डिजिटल रिपॉजिटरी जैसे डिजिटल शिक्षण संसाधनों का उपयोग करना, स्व-गति से सीखने को सक्षम करना और शिक्षा के सभी स्तरों पर उच्च-गुणवत्ता वाली शैक्षिक सामग्री तक पहुँच बनाना शामिल है। मिश्रित शिक्षण पारंपरिक कक्षा निर्देश के लाभों को ऑनलाइन शिक्षण के साथ एकीकृत करता है, जिससे छात्र अपनी गति से सीख सकते हैं, किसी भी समय सामग्री तक पहुँच सकते हैं और विभिन्न शिक्षण विधियों से जुड़ सकते हैं। यह ऑफलाइन और ऑनलाइन शिक्षा दोनों का मिश्रण है, जो सीखने के लिए अधिक लचीला और विविधतापूर्ण दृष्टिकोण प्रदान करता है। किम (2007) के अनुसार, मिश्रित शिक्षण को उनके वर्गीकरण के आधार पर दो या दो से अधिक विभिन्न प्रकार के शिक्षण के एकीकरण के रूप में परिभाषित किया गया है: भौतिक बनाम आभासी कक्षाएँ, औपचारिक बनाम अनौपचारिक शिक्षण, और समयबद्ध बनाम स्व-गति शिक्षण। उनकी परिभाषा का एक महत्वपूर्ण पहलू यह है कि कम से कम एक शिक्षण प्रकार पारंपरिक, व्यक्तिगत कक्षा शिक्षण होना चाहिए, जबकि कम से कम एक अतिरिक्त प्रकार में ऑनलाइन शिक्षण शामिल होना चाहिए। यह सुनिश्चित करता है कि मिश्रित शिक्षण में पारंपरिक और डिजिटल शिक्षण विधियों का मिश्रण शामिल है। एनईपी 2020 सभी शैक्षणिक स्तरों पर 'मिश्रित शिक्षा' के कार्यान्वयन की पुरज़ोर वकालत करता है। यह स्कूलों और उच्च शिक्षा संस्थानों को पारंपरिक कक्षा शिक्षण को डिजिटल तकनीकों के साथ जोड़ने के लिए प्रोत्साहित करता है, जिससे छात्रों के लिए अधिक संवादात्मक, आकर्षक और सुलभ शिक्षण अनुभव तैयार होता है; इसमें डिजिटल सामग्री, वर्चुअल लैब और ऑनलाइन आकलन का उपयोग करना शामिल है, जबकि आमने-सामने बातचीत को भी महत्व दिया जाता है। वाणिज्य सहित लगभग हर विषय को पढ़ाने के लिए प्रौद्योगिकी का उपयोग उपयोगी है। वाणिज्य में कई विषय शामिल हैं, जिनमें से वाणिज्य का संगठन और प्रबंधन एक महत्वपूर्ण विषय है। ज़्यादातर शिक्षक वाणिज्य के संगठन और प्रबंधन को पढ़ाने के लिए व्याख्यान पद्धति का उपयोग करते हैं। पारंपरिक शिक्षण विधियों यानी व्याख्यान पद्धति की सीमाओं में छात्रों की सहभागिता और भागीदारी की कमी, रचनात्मकता और आलोचनात्मक सोच के लिए सीमित अवसर, एक ही आकार-फिट-सभी दृष्टिकोण जो

विविध शिक्षार्थियों की ज़रूरतों को पूरा नहीं कर सकता है, और गहरी समझ पर याद करने पर ध्यान केंद्रित करना शामिल हो सकता है। व्याख्यान पद्धति की सीमाओं को दूर करने के लिए, मिश्रित शिक्षण सबसे अच्छा विकल्प हो सकता है। वाणिज्य शिक्षण के लिए मिश्रित शिक्षण का अर्थ है पारंपरिक कक्षा शिक्षण को डिजिटल उपकरणों और ऑनलाइन संसाधनों के साथ एकीकृत करना, ताकि एक समग्र और समृद्ध शिक्षण अनुभव प्रदान किया जा सके। इससे छात्रों को इंटरैक्टिव गतिविधियों, वास्तविक दुनिया के केस अध्ययनों आदि के माध्यम से सैद्धांतिक अवधारणाओं से जुड़ने का अवसर मिलेगा, साथ ही कक्षा के बाहर ऑनलाइन डेटाबेस और वित्तीय विश्लेषण सॉफ्टवेयर जैसी पूरक सामग्री तक उनकी पहुँच भी सुनिश्चित होगी।

संबंधित साहित्य की समीक्षाः शिवसकर (2011) बी.एड. स्तर पर विज्ञान के शिक्षण पर विकास सत्यापन और प्रभावशीलता और मिश्रित शिक्षण मॉड्यूल। इस अध्ययन के प्रमुख उद्देश्य थे) क) पारंपरिक आमने-सामने सीखने और ई-लर्निंग के व्यक्तिगत स्पर्श को शिक्षक शिक्षा में एकीकृत करना। ख) विज्ञान विषय में मिश्रित शिक्षण मॉड्यूल के माध्यम से उपलब्धि के स्तर की पहचान करना। ग) मिश्रित शिक्षण के माध्यम से व्यक्तिगत चर के संबंध में छात्र शिक्षकों की उपलब्धियों का विश्लेषण करना। शोधकर्ता ने अध्ययन के लिए एक प्रयोगात्मक विधि का इस्तेमाल किया। MASS कॉलेज ऑफ एजुकेशन के 40 बी.एड. छात्र शिक्षकों के नमूने को एक नियंत्रण समूह के रूप में चुना गया था और SASTRA विश्वविद्यालय के स्कूल ऑफ एजुकेशन के 40 बी.एड. छात्र शिक्षकों को प्रयोगात्मक समूह के रूप में चुना गया था। अध्ययन के लिए नमूने का चयन करने के लिए उद्देश्यपूर्ण नमूनाकरण तकनीक का उपयोग किया गया था। एकत्र किए गए डेटा का विश्लेषण सांख्यिकीय तकनीकों जैसे माध्य, मानक विचलन, टी-परीक्षण और पियर्सन के उत्पाद-आघूर्ण सहसंबंध गुणाँक का उपयोग करके किया गया था। निष्कर्षों से पता चला कि मिश्रित शिक्षण रणनीति प्रभावी, आकर्षक है और शिक्षार्थियों को अधिक संतुष्टि प्रदान करती है।

शर्मा वी. (2017) ने भूगोल, उपलब्धि और सामाजिक कौशल के प्रति छात्रों के दृष्टिकोण पर ऑनलाइन, मिश्रित और पारंपरिक शिक्षण के प्रभाव की तुलना की । अध्ययन में भारत के चंडीगढ़ के तीन सरकारी स्कूलों के 150 छात्रों को शामिल किया गया, जो प्री-टेस्ट पोस्ट-टेस्ट कंट्रोल समूह डिज़ाइन का उपयोग कर रहे थे। नमूने को 50 छात्रों के तीन समूहों में समान रूप से विभाजित किया गया था, जो ऑनलाइन शिक्षण, मिश्रित शिक्षण और पारंपरिक आमने-सामने निर्देश का प्रतिनिधित्व करते थे। अध्ययन में नियोजित उपकरणों में भूगोल उपलब्धि परीक्षण, इकाई परीक्षण, भूगोल के प्रति दृष्टिकोण पैमाना, सामाजिक कौशल पैमाना और रोजमर्रा की जिंदगी में महत्वपूर्ण सोच पैमाना शामिल थे। सांख्यिकीय तरीकों जैसे माध्य, मानक विचलन, तिरछापन, कुर्टोसिस और एनोवा का उपयोग करके डेटा विश्लेषण किया गया था। परिणामों ने संकेत दिया कि मिश्रित शिक्षण रणनीति के माध्यम से पढ़ाए गए छात्रों ने ऑनलाइन और पारंपरिक शिक्षण समूहों की तुलना में भूगोल के प्रति दृष्टिकोण, शैक्षणिक उपलब्धि और सामाजिक कौशल में उच्च औसत लाभ स्कोर हासिल किए।

सेल्वाकुमार एस. (2019) अध्ययन का ध्यान भौतिकी शिक्षा के लिए मिश्रित शिक्षण दृष्टिकोणों को डिजाइन करने और उनका मूल्यांकन करने तथा छात्रों के सीखने के परिणामों पर उनके प्रभाव को निर्धारित करने पर केंद्रित था। दो अलग-अलग स्कूलों से लिए गए साठ छात्रों के नमूने को शामिल करते हुए एक प्रयोगात्मक शोध पद्धति का उपयोग किया गया। डेटा संग्रह उपकरणों में एक उपलब्धि परीक्षण और एक साक्षात्कार अनुसूची शामिल थी। डेटा का विश्लेषण करने के लिए माध्य, मानक विचलन और टी-टेस्ट जैसी सांख्यिकीय तकनीकों का उपयोग किया गया। निष्कर्षों से पता चला कि मिश्रित शिक्षण विधियों के माध्यम से भौतिकी सीखने वाले छात्रों ने पारंपरिक व्याख्यान-आधारित निर्देश का उपयोग करके पढ़ाए गए छात्रों की तुलना में काफी बेहतर प्रदर्शन किया।

लता आर. और डॉ. रामकृष्णन एन. (2019) अध्ययन का उद्देश्य कंप्यूटर विज्ञान में कक्षा ग्यारह के छात्रों की शैक्षणिक उपलब्धि पर फ्लिप्ड लर्निंग और मिश्रित लर्निंग के प्रभाव का मूल्यांकन करना था। मुख्य उद्देश्य फ्लिप्ड कक्षाओं और मिश्रित शिक्षण विधियों के माध्यम से निर्देश के बाद छात्रों के प्रदर्शन का आकलन करना था। अध्ययन में चेन्नई जिले के चार स्कूलों के कुल 120 उच्चतर माध्यमिक छात्रों ने भाग लिया। प्राथमिक डेटा संग्रह उपकरण के रूप में कंप्यूटर विज्ञान में उपलब्धि परीक्षण का उपयोग करते हुए, एक पूर्व-परीक्षण और बाद के परीक्षण के बराबर समूह प्रयोगात्मक डिज़ाइन का उपयोग किया गया था। परिणामों ने संकेत दिया कि फ्लिप्ड और मिश्रित शिक्षण दोनों तरीकों का विषय में छात्रों की उपलब्धि पर सकारात्मक प्रभाव पड़ा।

हरनामसिंह (2022) इस अध्ययन का उद्देश्य 9वीं कक्षा के छात्रों के बीच उच्च और निम्न बुद्धि के साथ प्रौद्योगिकी के कम और उच्च जोखिम के संबंध में भूगोल और रचनात्मक सोच में उपलब्धि के अंतर का अध्ययन करना और मिश्रित शिक्षण और नियमित पद्धति शिक्षण के माध्यम से पढ़ाए गए भूगोल और रचनात्मक सोच में उपलब्धि पर शिक्षण रणनीतियों और प्रौद्योगिकी के संपर्क के अंतः क्रियात्मक प्रभाव का अध्ययन

करना था। वर्तमान अध्ययन के लिए, शोधकर्ता ने एक पूर्व-परीक्षण और बाद के परीक्षण प्रयोगात्मक अनुसंधान डिजाइन का उपयोग किया। इस नमूने में जालंधर के सीबीएसई से संबद्ध वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालयों में पढ़ने वाले IXth कक्षा के छह सौ छात्र शामिल हैं। जालंधर जिले को उद्देश्यपूर्ण रूप से चुना गया है क्योंकि यह प्रयोग करने के लिए पहुँच की व्यवहार्यता में है। डेटा को दो मानकीकृत उपकरणों यानी पासी टेस्ट ऑफ क्रिएटिविटी (PTC) और रेवेन के मानक प्रगतिशील मैट्रिक्स के साथ-साथ दो स्व-निर्मित उपकरणों के साथ एकत्र किया गया था, जिन्हें अन्वेषक द्वारा निर्मित और मानकीकृत किया गया था यानी भूगोल परीक्षण में उपलब्धि परीक्षण और प्रौद्योगिकी परीक्षण के लिए एक्सपोजर। शोधकर्ता ने डेटा के विश्लेषण और दृश्य निरीक्षण के लिए वर्णनात्मक सांख्यिकीय विधियों जैसे कि माध्य, एसडी, तिरछापन, कुर्टोसिस, एफ-अनुपात, टी-टेस्ट और तीन तरह से विचरण का विश्लेषण और ग्राफिकल तकनीकों को लागू किया। अध्ययन के निष्कर्ष दर्शाते हैं कि: - मिश्रित शिक्षण पद्धति भूगोल में छात्रों की शैक्षणिक उपलब्धि को सकारात्मक रूप से प्रभावित करती है, जिसमें महत्वपूर्ण मात्रा में बुद्धिमत्ता होती है। मिश्रित शिक्षण का भूगोल में बच्चे की शैक्षणिक उपलब्धि पर काफी प्रभाव पड़ता है।

उपरोक्त सभी ने विज्ञान, भूगोल, भौतिकी, कंप्यूटर विज्ञान के शिक्षण पर प्रभावशीलता की जाँच करने के लिए मिश्रित शिक्षण पर किए गए पाँच अध्ययनों की समीक्षा की। इसलिए वाणिज्य पृष्ठभूमि वाले अन्वेषक ने उच्चतर माध्यमिक स्तर पर वाणिज्य और प्रबंधन के संगठन को पढ़ाने और अकादमिक प्रदर्शन के संबंध में इसकी प्रभावशीलता का पता लगाने के लिए मिश्रित शिक्षण रणनीति तैयार करने के लिए अनुसंधान करने का विचार किया। वाणिज्य और प्रबंधन विषय के संगठन में।

कार्यप्रणाली:

अध्ययन के उद्देश्य : (1) उच्चतर माध्यमिक स्तर पर वाणिज्य संगठन और प्रबंधन पढ़ाने के लिए एक मिश्रित शिक्षण रणनीति विकसित करना। (2) उच्चतर माध्यमिक स्तर पर वाणिज्य संगठन और प्रबंधन पढ़ाने के लिए विकसित मिश्रित शिक्षण रणनीति को लागू करना। (3) वाणिज्य और प्रबंधन के संगठन में उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के छात्रों की उपलब्धि के संदर्भ में विकसित मिश्रित शिक्षण रणनीति की प्रभावशीलता का आकलन करना।

अध्ययन की परिकल्पना : निम्नलिखित शून्य परिकल्पना को 0.05 महत्व स्तर पर परखा गया।

नियंत्रित और प्रायोगिक समूहों के छात्रों के वाणिज्य और प्रबंधन संगठनों के औसत परीक्षण-पश्चात उपलब्धि अंकों के बीच कोई पर्याप्त अंतर मौजूद नहीं होगा।

प्रस्तावित अध्ययन वडोदरा, गुजरात में गुजरात माध्यमिक और उच्चतर माध्यमिक शिक्षा बोर्ड (जीएसएचएसईबी) पाठ्यक्रम के अनुसार कक्षा 11 के अंग्रेजी माध्यम स्कूल के वाणिज्य संगठन और प्रबंधन विषय के चार अध्यायों तक सीमित है।

तरीका : प्रस्तावित अध्ययन प्रकृति में प्रयोग है। प्रस्तावित अध्ययन में, अर्ध-प्रयोगात्मक डिजाइन का उपयोग किया गया था। इसके अलावा, प्रस्तावित अध्ययन में प्रीटेस्ट-पोस्ट-टेस्ट गैर-समतुल्य नियंत्रण समूह डिजाइन का उपयोग किया गया था।

चर : प्रस्तावित अध्ययन में वाणिज्य एवं प्रबंधन के संगठन में उपलब्धि आश्रित चर है, जबकि वाणिज्य एवं प्रबंधन के संगठन को पढ़ाने के लिए विकसित मिश्रित शिक्षण रणनीति को स्वतंत्र चर माना गया है।

शब्द का स्पष्टीकरण : मिश्रित शिक्षण रणनीति: वर्तमान अध्ययन में, मिश्रित शिक्षण रणनीति है शोधकर्ता द्वारा उच्चतर माध्यमिक स्तर पर वाणिज्य संगठन और प्रबंधन पढ़ाने के लिए आमने-सामने की शिक्षा को ऑनलाइन शिक्षण के साथ जोड़कर सचेत रूप से विकसित की गई व्यवस्थित योजनाएँ।

शब्द का संचालन : वाणिज्य एवं प्रबंधन संगठन में उपलब्धि: शोधकर्ता द्वारा तैयार किए गए वाणिज्य एवं प्रबंधन संगठन उपलब्धि परीक्षण में छात्रों द्वारा अर्जित अंक ।

वाणिज्य और प्रबंधन के संगठन में उपलब्धि के संबंध में प्रभावशीलता: वाणिज्य और प्रबंधन के संगठन की उपलब्धि में नियंत्रण समूह और प्रयोगात्मक समूहों के औसत पोस्ट-टेस्ट स्कोर के बीच उल्लेखनीय अंतर ।

प्रतिदर्श : वडोदरा शहर के दो अंग्रेजी माध्यम के स्कूल, सिल्वर ओक स्कूल और अक्षर पब्लिक स्कूल, दोनों ही वाणिज्य स्ट्रीम प्रदान करते हैं, जिन्हें सुविधा नमूनाकरण विधि का उपयोग करके चुना गया था। सिल्वर ओक स्कूल को प्रायोगिक समूह के रूप में नामित किया गया था, जबकि अक्षर पब्लिक स्कूल को नियंत्रण समूह के रूप में नियुक्तकिया गया था। प्रयोग करने से पहले, दोनों स्कूलों में एक प्री-टेस्ट आयोजित किया गया था यह पुष्टि करने के लिए कि समूह समतुल्य हैं। प्रारंभ में, प्रायोगिक समूह में 71 छात्र थे, और नियंत्रण समूह में 38 छात्र थे। छात्रों को उनके पूर्व-परीक्षण स्कोर के आधार पर मिलान करने के बाद, दोनों समूहों को घटाकर 29 छात्र कर दिया गया, जिन्हें अध्ययन के लिए समतुल्य माना गया। फिर वर्तमान शोध के लिए नमूना प्रत्येक समूह के इन 29 छात्रों में से लिया गया।

डेटा संग्रह के लिए उपकरण : डेटा संग्रह के उद्देश्य से अन्वेषक द्वारा निम्नलिखित उपकरण तैयार किया गया था।

उपलब्धि परीक्षण- शोधकर्ता द्वारा कक्षा 11वीं के वाणिज्य के संगठन एवं प्रबंधन विषय पर चार अध्यायों को लेकर उपलब्धि परीक्षण तैयार किया गया, ताकि वाणिज्य एवं प्रबंधन विषय में छात्रों के प्रदर्शन का आकलन किया जा सके। ब्लूप्रिंट तैयार किया गया और विभिन्न स्तरों पर वाणिज्य एवं प्रबंधन विषय के चार अध्यायों से प्रश्न लिए गए।

अनुसंधान और डेटा संग्रहण के चरण : शोध अध्ययन तीन अलग-अलग चरणों में किया गया।

चरण 1: सीखने की रणनीति का विकास : ग्यारहवीं कक्षा के वाणिज्य स्ट्रीम के छात्रों के बीच वाणिज्य और प्रबंधन संगठन विषय को पढ़ाने के लिए मिश्रित शिक्षण रणनीति विकसित की। मिश्रित शिक्षण रणनीति को वाणिज्य और प्रबंधन संगठन की चयनित विषय सामग्री के साथ एकीकृत किया गया था। शोधकर्ता ने मिश्रित शिक्षण रणनीति को लागू करने की सीमा की जाँच करने के लिए वाणिज्य और प्रबंधन संगठन विषय की सामग्री का विश्लेषण किया है। चयनित चार अध्यायों (अध्याय-4 संचार, ई-कॉमर्स और आउटसोर्सिंग, अध्याय-5 व्यवसाय संगठन के रूप-1, अध्याय-6 व्यवसाय संगठन के रूप-2, अध्याय-7 सार्वजनिक क्षेत्र, निजी क्षेत्र और वैश्विक उद्यम) की सावधानीपूर्वक जांच की गई और पाठ योजना तैयार की गई। पाठ योजना में ऑनलाइन कक्षाओं और आमने-सामने की कक्षाओं के बारे में विस्तृत निर्देश दिए गए थे। शोधकर्ता ने ऑनलाइन कक्षाओं के लिए गूगल मीट और पढ़ने की सामग्री, किताबें और असाइनमेंट साझा करने के लिए गूगल क्लासरूम का उपयोग किया है।

चरण II: मिश्रित शिक्षण रणनीति का कार्यान्वयन : नमूना विद्यालयों से अनुमति प्राप्त करने के पश्चात शोधकर्ता ने प्रयोगात्मक समूह के लिए मिश्रित शिक्षण, ऑनलाइन कक्षाएँ, गूगल क्लासरूम से संबंधित निर्देश के बारे में एक प्राच्य सत्र निर्धारित किया है, तत्पश्चात विकसित मिश्रित शिक्षण रणनीति को अन्वेषक द्वारा प्रयोगात्मक समूह पर शैक्षणिक वर्ष 2024-25 के चार महीनों की अवधि अर्थात जुलाई, अगस्त और सितंबर और अक्टूबर 2024 के लिए लागू किया गया । इसी अवधि के दौरान, नियंत्रित समूह को उनके विषय शिक्षक के माध्यम से नियमित शिक्षण प्रक्रिया में पढ़ाया गया।

चरण III: डेटा संग्रह : चूंकि वर्तमान अध्ययन एक अर्ध-प्रायोगिक पूर्व-परीक्षण-पश्चात-परीक्षण नियंत्रण समूह डिजाइन के बाद एक प्रायोगिक अध्ययन था, इसलिए डेटा संग्रहण दो चरणों में किया गया था।

खोज और चर्चा : एकत्रित आंकड़ों का सांख्यिकीय तकनीकों जैसे माध्य, मानक विचलन, मान व्हिटनी यू परीक्षण का उपयोग करके मात्रात्मक रूप से विश्लेषण किया गया।

लक्ष्य 3 को पूरा करने के लिए अर्थात् "वाणिज्य संगठन और प्रबंधन विषय में ग्यारहवीं कक्षा के छात्रों की उपलब्धि के संदर्भ में विकसित मिश्रित शिक्षण रणनीति की प्रभावशीलता का अध्ययन करना" और शून्य परिकल्पना Ho1 का परीक्षण करना अर्थात् "नियंत्रण और प्रायोगिक समूहों के छात्रों के वाणिज्य और प्रबंधन संगठनों के औसत परीक्षण-पश्चात उपलब्धि अंकों के बीच कोई महत्वपूर्ण अंतर नहीं होगा।" निम्न तालिका इस उद्देश्य के लिए उपयोग किए गए वर्णनात्मक सांख्यिकी के बारे में विवरण देती है।

प्रायोगिक समूह और नियंत्रण समूह के अर्थशास्त्र विषय में परीक्षण के बाद उपलब्धि स्कोर का माध्य, मानक विचलन (एसडी) और माध्य की मानक त्रुटि (एसई) से यह स्पष्ट है कि विकसित मिश्रित शिक्षण रणनीति के माध्यम से पढ़ाए गए प्रायोगिक समूह के उपलब्धि परीक्षण का औसत स्कोर 56.7 था, मानक विचलन (एसडी) 10.8 था और माध्य (एसई) की मानक त्रुटि 2.01 थी। पारंपरिक निर्देश के संपर्क में आने वाले नियंत्रण समूह के उपलब्धि परीक्षण का औसत स्कोर 46.8 था, मानक विचलन (एसडी) 11.8 और माध्य (एसई) की मानक त्रुटि 2.19 थी।

यह स्पष्ट है कि प्रायोगिक समूह के उपलब्धि परीक्षण का औसत स्कोर 56.7 है जो कि नियंत्रण समूह के औसत स्कोर 46.8 से अधिक है। दो समूहों में माध्य का मानक विचलन और मानक त्रुटि कम पाई गई। यह पता लगाने के लिए कि क्या माध्य स्कोर में यह अंतर सांख्यिकीय रूप से महत्वपूर्ण है, हमें शून्य परिकल्पना के परीक्षण के लिए आगे का निष्कर्षात्मक विश्लेषण करने की आवश्यकता है ' नियंत्रण और प्रायोगिक समूहों के छात्रों के औसत पोस्ट-टेस्ट उपलब्धि स्कोर के बीच कोई महत्वपूर्ण अंतर नहीं होगा। ' पोस्ट-टेस्ट डेटा के औसत स्कोर की तुलना करने के लिए, मान-व्हिटनी यू परीक्षण प्रशासित किया गया था और परिणाम निम्नलिखित तालिका में दिए गए हैं ।

उपलब्धि परीक्षण से संबंधित प्रायोगिक समूह और नियंत्रण समूह के रैंकों (एसआर), यू-वैल्यू (यू), जेड-वैल्यू (जेड) और महत्व के संकेतक के योग का वितरण से पता चलता है कि प्रायोगिक समूह और नियंत्रण समूह के लिए रैंकों (एसआर) का योग क्रमशः 1052.5 और 658.5 था, जिसमें प्रत्येक समूह 29 अवलोकनों से बना था। यू-मूल्य 223.5 पाया गया और संबंधित जेड-मूल्य -3.05583 पाया गया, जो कि महत्व का स्तर 0.05 पर महत्वपूर्ण पाया गया। यह दर्शाता है कि प्रायोगिक समूह के उपलब्धि परीक्षण के औसत अंक, जिसे विकसित मिश्रित शिक्षण रणनीति के माध्यम से पढ़ाया गया था और नियंत्रण समूह के उपलब्धि परीक्षण के औसत

अंक, जिसे पारंपरिक कक्षा शिक्षण के माध्यम से पढ़ाया गया था, में काफी अंतर है। इस प्रकार, शून्य परिकल्पना "नियंत्रण और प्रायोगिक समूहों के छात्रों के औसत परीक्षण के बाद उपलब्धि अंकों के बीच कोई महत्वपूर्ण अंतर नहीं होगा" को खारिज कर दिया जाता है।

निष्कर्ष में, अध्ययन के निष्कर्ष स्पष्ट रूप से प्रदर्शित करते हैं कि प्रयोगात्मक समूह, जिसे मिश्रित शिक्षण रणनीति का उपयोग करके पढ़ाया गया था, ने नियंत्रण समूह की तुलना में उपलब्धि परीक्षण पर काफी अधिक अंक प्राप्त किए, जिसे पारंपरिक, व्यक्तिगत कक्षा विधियों के माध्यम से पढ़ाया गया था। दोनों समूहों के बीच औसत अंकों में यह महत्वपूर्ण अंतर इस बात का पुख्ता सबूत देता है कि मिश्रित शिक्षण रणनीति ने वाणिज्य और प्रबंधन के संगठन के विषय में छात्रों की समझ और शैक्षणिक प्रदर्शन को बेहतर बनाने में उल्लेखनीय प्रभाव डाला।

प्रायोगिक समूह, जो पारंपरिक आमने-सामने सीखने और डिजिटल शिक्षण उपकरणों (जैसे ऑनलाइन संसाधन, आभासी असाइनमेंट और इंटरैक्टिव ऑनलाइन चर्चा) दोनों से जुड़ा था, को अधिक गतिशील और लचीले शिक्षण वातावरण से लाभ हुआ। डिजिटल शिक्षण विधियों के घटकों को शामिल करने से संभवतः अधिक व्यक्तिगत शिक्षण अनुभव प्राप्त हुए, जिससे छात्रों को अपनी गति से सामग्री को फिर से पढ़ने, मल्टीमीडिया संसाधनों से जुड़ने और डिजिटल प्लेटफॉर्म के माध्यम से तत्काल प्रतिक्रिया प्राप्त करने में मदद मिली।

इसके विपरीत, नियंत्रण समूह, जिसने पारंपरिक कक्षा शिक्षण पद्धति का पालन किया जो केवल आमने-सामने की बातचीत पर निर्भर थी और जिसमें किसी भी ऑनलाइन शिक्षण तत्व को शामिल नहीं किया गया था, के पास समान संसाधनों और लचीले शिक्षण अवसरों तक पहुँच नहीं थी। नतीजतन, नियंत्रण समूह के छात्र पारंपरिक शिक्षण विधियों तक ही सीमित थे, जिसने अधिक आकर्षक और अनुकूल तरीके से सीखने की उनकी क्षमता में बाधा उत्पन्न की होगी। डिजिटल शिक्षण उपकरणों की अनुपस्थिति ने सामग्री के साथ सक्रिय रूप से बातचीत करने के उनके अवसरों को सीमित कर दिया होगा, जिससे उच्च शैक्षणिक प्रदर्शन प्राप्त करने की संभावना सीमित हो गई होगी।

इन परिणामों के आधार पर, यह निर्णायक रूप से कहा जा सकता है कि मिश्रित शिक्षण रणनीति ग्यारहवीं कक्षा के छात्रों की उपलब्धि को बेहतर बनाने में उल्लेखनीय रूप से प्रभावी है, विशेष रूप से वाणिज्य और प्रबंधन संगठन जैसे विषयों में। पारंपरिक और ऑनलाइन शिक्षण विधियों के संयोजन की रणनीति विविध शिक्षण शैलियों और जरूरतों को संबोधित करने में मदद करती है, जिससे एक ऐसा माहौल बनता है जिसमें छात्र अकादमिक रूप से आगे बढ़ सकते हैं। इसलिए, यह अनुशंसा की जाती है कि शिक्षक और नीति निर्माता छात्रों के सीखने के परिणामों को बढ़ाने और उन्हें डिजिटल और गतिशील दुनिया की चुनौतियों के लिए तैयार करने के लिए अन्य विषयों और विभिन्न शैक्षिक स्तरों पर मिश्रित शिक्षण रणनीतियों को अपनाने पर विचार करें।

REFERENCES

Aggarwal, J. C. (2014). Essentials of Educational Technology, Innovations in Teaching-Learning (3rd ed.). New Delhi: Vikash Publishing House Pvt. Ltd.

Best, J.W. & Kahn, J.V. (2006) Research in Education. 10th Edition, Pearson Education Inc., Cape Town

Government of India (2020). National Education Policy, 2020. Ministry of Human Resource Development, Government of India.

Harnamsingh (2022) Effect of blended learning on achievement in geography and creative thinking among 9th class students in relation to exposure to technology and intelligence. [Unpublished Doctoral Thesis], Panjab University, Punjab.

Kim, W. (2007). Towards a definition and methodology for blended Learning. In J. Fong., & F.L, Wang (Eds.), Blended Learning (pp.1-8). Edinburgh: Pearson/Prentice Hall.

Kothari, C.R. (2009) Research Methodology: Methods and Techniques. Second Revised Edition, New Age International Publishers, New Delhi.

Latha R. & Dr. Ramakrishnan N. (2019) Effectiveness of Flipped Learning and Blended Learning on Achievement in Computer Science Among XI Standard Students. International Journal of Research -GRANTHAALAYAH: Vol. 7 No. 10 (2019): Volume 7 Issue 10: October

Selvakumar S. (2019) Effectiveness of blended learning strategies in learning physics at higher secondary level. [Doctoral Dissertation], Alagappa University, Tamil Nadu

Sharma, K. (2017). Effect of online and hybrid learning on students' attitude towards geography, achievement and social skills in relation to their critical thinking [Unpublished Doctoral thesis] Panjab University, Chandigarh

Sivasakar. A. (2011). Development, Validation and Effectiveness of Blended Learning Modules on Teaching of Science at B.Ed. Level. [Unpublished Doctoral Thesis], Bharathidasan University, Tiruchirappalli.

शोध छात्र, शिक्षा विभाग
महाराजा सयाजिराव यूनिवर्सिटी, बडौदा

डॉ.जयश्रीदास

प्रोफेसर, शिक्षा विभाग
महाराजा सयाजिराव यूनिवर्सिटी, बडौदा

हिन्दी पखवाड़ा समारोह का उद्घाटन श्री. रमेश चेन्नित्तला (पूर्व गृह मंत्री, केरल सरकार) कर रहे हैं

हिंदी पखवाड़ा समारोह के विभिन्न दृश्य

शक्तिभद्र (अनूदित उपन्यास) - पुस्तक प्रकाशन

RNI No. 7942/1966

KERALJYOTI

Regn. No. KL/TV(S) 381/2025-2027

SPECIAL ISSUE 2025

A monthly Publication of Kerala Hindi Prachar Sabha approved for School Libraries by the Education Dept., Govt. of Kerala as per notification No. B-3 / 4036/83 SIE dated 20-9-1985
Approved by University of Kerala as per order No. Ac. A II / 1 / 31965 / Std. Journals/2013 / dtd : 27-6-2013

फिजी में आयोजित विश्व हिन्दी सम्मेलन में 'विश्व हिन्दी सम्मान' प्राप्त करते हुए सभा के मंत्री

दीक्षांत समारोह में प्रो.डी.तंकप्पन नायर को 'साहित्य कलानिधि' उपाधि समर्पित करते हैं

SGOU और केरल हिन्दी प्रचार सभा के बीच का अकादमिक गठबंधन संबंधी पत्र प्रस्तुति - उच्च शिक्षा मंत्री डॉ.आर.बिंदु की उपस्थिति में

केरल हिंदी प्रचार सभा, तिरुवनंतपुरम-695014 के लिए मंत्री अ.व.डॉ.मधु बी द्वारा प्रकाशित, राष्ट्रवाणी मुद्रणालय
केरल हिंदी प्रचार सभा, तिरुवनंतपुरम-695014 में मुद्रित डॉ.एम.एस.विनयचन्द्रन व डॉ.रंजीत रविशैलम द्वारा संपादित
Published by the Secretary, Adv. Dr. B. Madhu for Kerala Hindi Prachar Sabha, Tvpm-695014
Printed at Rashtravani Mudranalaya, KeralaHindi Prachar Sabha, Tvpm-695014
and edited by Dr.M.S.Vinayachandran & Dr.Renjith Ravisailam